आज़ादी का अमृत महोत्सव

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड–33, अंक–2 आईएसएसएन : 2321–2608 जुलाई–दिसम्बर 2021

विशेषांक

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव

भारतीय जन संचार संस्थान
नई दिल्ली

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
खंड–33, अंक–2 जुलाई–दिसम्बर 2021 आईएसएसएनः 2321–2608

संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

प्रधान संपादक
प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक
प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानन्द मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
पूर्व कुलपति, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर एवं सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह
प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव
डीन अकादमिक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. गोविंद सिंह
डीन अकादमिक, और पाठ्यक्रम निदेशक, रेडियो एवं टीवी पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. आनंद प्रधान
पाठ्यक्रम निदेशक, भारतीय भाषा विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र
प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक भारतीय जन संचार संस्थान, अमरावती, महाराष्ट्र

प्रो. संगीता प्रणवेंद्र
प्रोफेसर, रेडियो और टेलीविजन, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव
सह–आचार्य, मीडिया अध्ययन केंद्र,
सामाजिक विज्ञान स्कूल,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. शाहिद अली
विभागाध्यक्ष, जन संचार, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर

डॉ. पवन कौंडल
सहायक संपादक, 'संचार माध्यम',
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान की ओर से वीरेंद्र कुमार भारती द्वारा, मुद्रित एवं प्रकाशित

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110 067 (भारत), को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)*

***ई मेल :** sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com*
***जर्नल का वेब लिंक :** http://iimc.gov.in/content/426_1_AboutTheJournal.aspx*
***वेबसाईट :** www.iimc.gov.in*

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रधान संपादक की कलम से

प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता का बहुत गहरा रिश्ता है। उस दौर में पत्रकारिता और देशसेवा एक ही सिक्के के दो पहलू थे। अनगिनत पत्रकारों, संपादकों और लेखकों ने अपने जीवन की तमाम व्यक्तिगत आकांक्षाओं की सिर्फ इसलिए बलि दे दी, ताकि देश की आने वाली पीढ़ियाँ खुली हवा में साँस ले सकें। अनेक पत्रकारों, लेखकों और संपादकों ने अँग्रेज सरकार की यातनाएँ सहते-सहते गुमनामी में प्राण त्याग दिए। वे चाहते तो अँग्रेज सरकार से माफी माँगकर अपने प्राण बचा सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया, क्योंकि इससे स्वतंत्रता की धार कुंद हो जाती। स्वतंत्रता आंदोलन के प्रारंभिक काल में पत्रकारों और लेखकों ने ही लगातार संग्राम की अलख जगाकर रखी। कवियों ने गीत और कविताएँ गा-गाकर उसकी अग्नि को शक्ति प्रदान की। उस दौर में भाषाई पत्रकारिता ने राष्ट्रीय चेतना को पुष्ट करने में बड़ी भूमिका निभाई। अँग्रेजी के अधिकतर अखबार तो अँग्रेज सरकार के पिट्ठू ही दिखाई देते थे, परंतु देश के किसी भी कोने से छपने वाले भारतीय भाषाओं के अखबार अँग्रेज सरकार से खुलकर लोहा ले रहे थे। विभिन्न संचार माध्यमों की बदौलत ही स्वतंत्रता की चिंगारी देशभर में अलग-अलग स्वरूपों में उभरी और उससे जो ज्वाला निकली, उसके कारण 1947 में स्वराज का सूर्य उदय हुआ।

अँग्रेज सरकार ने 1780 से ही पत्रकारिता का गला घोंटने के लिए सभी हथकंडे अपनाए, सेंसरशिप लगाई, गलाघोंट कानून बनाए, पत्रकारों और संपादकों को जेलों में ठूँसा, विज्ञापनों पर हास्यास्पद प्रतिबंध लगाए, अखबारों और पुस्तकों को प्रतिबंधित किया, परंतु पत्रकारों और लेखकों की कलम की धार कुंद नहीं हुई। वे स्वयं को तिल-तिल जलाकर स्वतंत्रता की मशाल को ऊर्जा प्रदान करते रहे। बात सिर्फ पत्रकारों और लेखकों की नहीं है, ग्रामीण क्षेत्रों में लोकगायकों ने अपने गीतों, कविताओं, नारों, दोहों, सोरठों आदि के माध्यम से जनमानस में स्वतंत्रता की लौ को जलाए रखा। अनेक रियासतों ने अँग्रेज सरकार के साथ संधियाँ करके अपनी रियासतों को बचाए रखने के भरसक प्रयत्न किए, परंतु वहाँ भी लोकगायकों ने न केवल अँग्रेजों के साथ संधियाँ करने वाले राजाओं और राणाओं को धिक्कारा, बल्कि उन्हें स्वतंत्रता सेनानियों का सहयोग करने के लिए झकझोरा भी।

अंदमान की जेलों में असंख्य पत्रकार और संपादक अमानवीय यातनाएँ सहते रहे और उनके स्थान पर नए संपादक जेल जाने के लिए हमेशा तैयार रहते। 'स्वराज्य' अखबार के ज्यादातर संपादकों को कालेपानी की सजा हुई, लेकिन फिर भी नए पत्रकार संपादक पद की जिम्मेदारी सँभालने के लिए आगे आते रहे। शामदास वर्मा के बाद लद्धाराम कपूर 'स्वराज्य' के संपादक बने। उन दिनों एक अँग्रेज ने एक भारतीय महिला के साथ बलात्कार किया। उस पर टिप्पणी करते हुए लद्धाराम कपूर ने लिखा था—''वह स्त्री हर भारतीय की बहन है, अतएव उस दुष्ट अँग्रेज ने हमारी बहन के साथ बलात्कार किया।'' इस पर राजद्रोह की धारा लगाकर लद्धाराम कपूर को तीन मर्दों में 30 साल कालेपानी की सजा दी गई। उन्हें अंदमान में भयावह यातनाएँ दी गईं, लेकिन वे न झुके और न टूटे। उनकी इसी वीरता के कारण उनके साथियों ने उन्हें 'फील्ड मार्शल' की उपाधि दी थी। जब लद्धाराम को कालापानी की सजा हुई तो उन्होंने ही जेल जाने से पहले 'स्वराज्य' का वह प्रसिद्ध विज्ञापन निकाला था, जिसका आजकल अक्सर संदर्भ दिया जाता है—''चाहिए स्वराज्य के लिए एक संपादक। वेतन दो सूखी रोटियाँ, एक गिलास ठंडा पानी और हर संपादकीय के लिए दस साल जेल।'' 'स्वराज्य' के संपादकों को लगातार मिलती कालापानी की सजा के बावजूद इस विज्ञापन के छपते ही तीन लोगों ने संपादक पद के लिए आवेदन किया। यह विज्ञापन पत्रकारों में मौजूद अपराजेय स्वतंत्रता की आकांक्षा का साक्षी है।

स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ पर प्रकाशित 'संचार माध्यम' के इस विशेषांक में ऐसे ही कुछ शब्द साधकों और बलिदानी संपादकों, लेखकों, कवियों, गीतकारों, लोकगायकों आदि को स्मरण करने का प्रयास किया गया है, ताकि पत्रकारिता की वर्तमान पीढ़ी उस गौरवशाली अतीत से सबके ले सके। चूँकि आजादी का अमृत महोत्सव लंबा चलने वाला है, इसलिए 'संचार माध्यम' भी स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं से आपको लगातार परिचित कराता रहेगा। इस प्रशंसनीय प्रयास के लिए 'संचार माध्यम' की पूरी टीम को बधाई।

संपादकीय

नमन उन बलिदानी शब्द-साधकों को!

औपनिवेशिक वैश्विक ताकतों के विरुद्ध कई सौ वर्ष तक चला भारत का स्वतंत्रता संग्राम मुख्य रूप से 'स्वत्व' के जागरण का आंदोलन था, जिसमें संचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। भारत में समाचार पत्रों का इतिहास भले ही 1780 से आरंभ होता है, परंतु विदेशी हमलावरों तथा औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध भारतीय जनमानस को खड़ा करने के प्रयास उसी समय शुरू हो गए थे जब वे आक्रमण आरंभ हुए। उस समाज जागरण में लोक संचार माध्यमों ने प्रभावी भूमिका निभाई। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भी 'रोटी' और 'कमल' के माध्यम से संदेश गाँव-गाँव तक पहुँच गए और ब्रिटिश सरकार को भनक तक नहीं लगी। उसके बाद हुई सशस्त्र क्रांतियों के कारणों का अध्ययन करने के लिए अँग्रेज सरकार ने जस्टिस सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में 1917 में सेडीशन कमेटी का गठन किया था, जिसकी रिपोर्ट 1918 में आई। उस रिपोर्ट में कहा गया कि 'क्रांति की शुरूआत पश्चिमी भारत में गणेश पूजा और शिवाजी जयंती के आयोजनों से वर्ष 1894 से हुई'। रिपोर्ट में यह भी दावा किया गया कि उस समय चाफेकर बंधुओं के नेतृत्व में छत्रपति शिवाजी के अनुयायी लोगों का आह्वान करते थे कि 'अच्छे आदमियों! तलवार उठाओ। ...एक राष्ट्रीय युद्ध में हम बलिदान होंगे।'

सेडीशन कमेटी की रिपोर्ट में उन मराठी पत्रों का भी स्पष्ट उल्लेख है, जो उस समय भारत में सशस्त्र क्रांति की आवाज बुलंद कर रहे थे। उनमें महाराष्ट्र के 'केसरी', 'काल', 'बिहारी' और 'मराठा' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सशस्त्र क्रांति को बढ़ावा देने संबंधी अपने दावे की पुष्टि के लिए सेडीशन कमेटी ने उक्त समाचार पत्रों की जिस सामग्री का उल्लेख किया, वह गौर करने लायक है। 15 जून, 1897 के 'केसरी' में तिलक ने लिखा—''हम सब मिलकर अँग्रेजी शासन के भार को उतार फेंकना चाहते हैं। हमारे मार्ग में रुकावट डालने वाले को समाप्त कर दिया जाएगा। फ्रांस के क्रांतिकारी जिन्हें मारते थे, उनकी हत्या होना नहीं, अपितु उन्हें मार्ग के काँटे हटाना कहते थे।'' सेडीशन कमेटी का दावा है कि ऐसे ही लेखों के परिणामस्वरूप 22 जून, 1897 को जब प्लेग-कमिश्नर रैंड एक दूसरे अँग्रेज अफसर आर्यस्ट के साथ 'विस्टोरिया हीरक जयंती' उत्सव से लौट रहे थे तो चाफेकर बंधुओं ने उन्हें गोलियों से भून दिया। जब इसके लिए चाफेकर दामोदर पर मुकदमा चला तो उसने न केवल रैंड को मारना स्वीकार किया, बल्कि यह भी कहा कि विक्टोरिया का बुत भी उन्होंने ही तोड़ा। उस समय 'केसरी' के प्रभाव का जिक्र करते हुए सेडीशन कमेटी लिखती है कि सन् 1898 से 1906 तक 'केसरी' की ग्राहक संख्या निरंतर बढ़ती रही और सन् 1907 में उसकी बीस हजार प्रतियाँ प्रकाशित होने लगी थीं।

सेडीशन कमेटी के अनुसार सशस्त्र क्रांति का समर्थन करने वाला दूसरा मराठी पत्र था 'काल', जिसने 1998 में लिखा—''भारत और रूस में बम फेंकने के नतीजों में अंतर है। वहाँ रूसी बादशाह को भी समर्थन मिलता है, क्योंकि बादशाह भी रूसी है। यहाँ भारत में अँग्रेजों को समर्थन नहीं मिलेगा, इसलिए हमारा आंदोलन अवश्य सफल होगा।'' 'काल' के संपादक शिवराव परांजपे को उन दिनों इस प्रकार के 'उत्तेजक' लेखों के प्रकाशन हेतु पाँच बार चेतावनी दी गई और बाद में 19 महीने जेल की सजा। सेडीशन कमेटी ने पूना से प्रकाशित 'बिहारी' का भी अपनी रिपोर्ट में जिक्र किया है, जिसके संपादकों को 1906 से 1908 तक प्रतिवर्ष जेल भेजा गया। श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा लंदन से प्रकाशित पत्र 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' की सामग्री से अँग्रेज उन दिनों इतने भयभीत थे कि 1907 में लंदन की संसद में इस पत्र के विरुद्ध कार्रवाई की माँग की गई, जिसके परिणामस्वरूप पत्र के मुद्रक और प्रबंधक को एक-एक साल की सजा हुई। 1908 में खुदीराम बोस की प्रशंसा में दो लेख लिखने के आरोप में लोकमान्य तिलक को भी निर्वासित कर म्यांमार की माँडले जेल भेजा गया।

सेडीशन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में मराठी के अलावा बंगला समाचार पत्रों का भी जिक्र किया। उनमें प्रमुख थे 'युगांतर', 'वंदेमातरम्', 'संध्या', 'नवशक्ति' और 'बंगाली'। इन पत्रों की सामग्री का जिक्र उपेंद्रनाथ ने 'निर्वासितेर आत्म-कहानी' में इस प्रकार किया है—''सन् 1906 की सर्दियों के दिन थे, किंतु इधर कुछ समय से 'संध्या' में खूब चटपटा मसाला भरा रहता था। अरविंद बाबू भी राष्ट्रीय शिक्षण हेतु अपनी बड़ौदे की नौकरी छोड़ आए थे। विपिन बाबू ने भी पुरानी काँग्रेस से नाता तोड़ लिया था। ऐसा मालूम होता था, मानो सारा देश किसी नई चीज का इंतजार कर रहा है।'' 'वंदेमातरम्' ने लिखा कि हम भारत के लिए ऐसा स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें ब्रिटिश अंकुश न हो। उस समय ऐसा लिखना कम साहस की बात नहीं थी। उपेंद्रनाथ आगे लिखते हैं—''अखबारों में छपे ये शब्द मेरे कानों में गूँजते-गूँजते दिमाग में भी बस गए और रह-रह कर मेरा दिमाग कहने लगा, बैठे क्यों हो? उठो! अब तो उठ खड़े होने का समय आ गया।'' अरविंद घोष के छोटे भाई वारींद्र घोष द्वारा प्रकाशित 'युगांतर' के बारे में तो चीफ जस्टिस ने 1908 में उसे बंद करने का आदेश जारी करते हुए कहा था—''इसकी हर एक पंक्ति से अँग्रेजों के विरुद्ध द्वेष टपकता है। प्रत्येक शब्द से क्रांति के लिए उत्तेजना झलकती है।''

मराठी और बंगला पत्र ही नहीं, हिंदीभाषी पत्रों के तेवर भी कम नहीं थे। 1905 के बंग-भंग आंदोलन के दौरान संपूर्ण देश में राष्ट्रीयता, आत्मविश्वास तथा बलिदान का जो सागर हिलोरे मार रहा था, उसमें मदनमोहन मालवीय द्वारा आरंभ किया गया हिंदी

पत्र 'अभ्युदय' और माधवराव सप्रे द्वारा संपादित 'हिंदी केसरी' का बड़ा योगदान था। 1908 में 'केसरी' में प्रकाशित दो लेखों के कारण जब तिलक पर बंबई हाईकोर्ट में राजद्रोह का मुकदमा चला तो उसी समय माधवराव सप्रे पर भी राजद्रोह का मुकदमा चला और 1909 में 'हिंदी केसरी' बंद हो गया। 1909 में लखनऊ से साप्ताहिक 'आनंद' प्रारंभ हुआ, जिसके संपादकों को क्रांतिकारी भाषा के कारण अनेक बार जेल यात्राएँ करनी पड़ीं। ठाणे से प्रकाशित मराठी 'हिंदू पंच' का हिंदी संस्करण 'हिंदी हिंदू पंच' 1908 में निकला। इसके कई अंकों को अँग्रेज सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। अनेक समाचार पत्रों के अंकों पर अँग्रेज सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था। 1909 में पंडित सुंदरलाल ने इलाहाबाद से 'कर्मयोगी' का प्रकाशन किया, जो अत्यंत उग्र विचारों का पाक्षिक था। बाद में उसे साप्ताहिक कर दिया गया। 1907-08 में लाला हरदयाल की प्रेरणा से देश के अनेक हिस्सों से कई उग्र विचारों के पत्र आरंभ हुए। इलाहाबाद से प्रकाशित 'स्वराज्य' साप्ताहिक के कई संपादकों को कालेपानी की सजा हुई। उन दिनों इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद', लाहौर से प्रकाशित 'ऊषा' और आगरा से प्रकाशित 'सारस्वत' पत्र क्रांति और समाज सुधार संबंधी सामग्री के प्रकाशन हेतु चर्चा में थे।

1913 में कानपुर से प्रकाशित गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' क्रांतिकारी आंदोलन का अगुवा था, जहाँ सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों ने भी पत्रकारिता की। 1920 में 'प्रताप' दैनिक हो गया। 1910 में आर्यकुमार परिषद द्वारा काशी से 'नवजीवन' प्रकाशित किया गया, जो 1919 तक प्रकाशित हुआ। 1914 में लखनऊ से 'अवधवासी' कुछ समय तक छपा। उसके बाद 1916 में कलकत्ता से 'दैनिक विश्वमित्र' निकला। दिल्ली से 1919 में 'विजय' और 'वीर भारत' दैनिक पत्र प्रकाशित हुए। उसी वर्ष महात्मा गांधी ने 'सत्याग्रही' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। अल्मोड़ा से बद्रीदत्त पांडे ने 'शक्ति' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। ये दोनों पत्र तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन के प्राण समझे जाते थे। 1920 में कलकत्ता से 'स्वतंत्र' और 'साम्यवादी' तथा प्रयाग से 'भविष्य' तथा 'चाँद' और काशी से 'आज' का प्रकाशन शुरू हुआ। उसी साल डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पटना से 'देश' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। माखनलाल चतुर्वेदी ने जबलपुर से 'कर्मवीर' शुरू किया। 1925 में आगरा से 'आर्यमित्र' साप्ताहिक निकला। 1930 में आगरा से 'सैनिक' का प्रकाशन हुआ। मदनमोहन मालवीय की प्रेरणा से दिल्ली से 'हिंदुस्तान' दैनिक निकला, जो आज भी हिंदुस्तान टाइम्स समूह द्वारा प्रकाशित किया जाता है। काँग्रेस समाजवादी पार्टी के 'संघर्ष' का भी जलवा कम नहीं था। इसके संपादक मंडल में आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. संपूर्णानंद आदि बड़े नेता थे। 1942 में यह पत्र इसलिए बंद हो गया, क्योंकि इससे जुड़े सभी संपादक नजरबंद कर दिए गए। उन्हीं दिनों उन्नाव से विश्वंभर दयाल त्रिपाठी ने 'संग्राम' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। राजस्थान की रियासतों में स्वतंत्रता आंदोलन चलाने के आरोप में राज्य से निष्कासित विजयसिंह पथिक ने आगरा से 'संदेश' निकाला।

ये ऐसे पत्र थे, जिनका नाम भले ही पत्रकारों की वर्तमान पीढ़ी ने सुना भी न हो, परंतु इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में देशवासियों को आजादी के लिए सर्वस्व समर्पण हेतु तैयार किया। इनके संपादकों तथा पत्रकारों ने स्वतंत्रता की जनआकांक्षा को आवाज दी। भले ही अँग्रेजी भाषा के पत्रकारों और पत्रों का एक बहुत बड़ा वर्ग उस समय अँग्रेज सरकार के पिट्ठुओं की भूमिका में था, लेकिन भारतीय भाषाओं के पत्रकारों और संपादकों ने तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं को सामाजिक सम्मान और आदरास्पद संज्ञाएँ देने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महात्मा गांधी को 'महात्मा', मदनमोहन मालवीय को 'महामना', राजेंद्र प्रसाद को 'देशरत्न', जवाहरलाल नेहरू को 'हृदय सम्राट', नेताजी सुभाषचंद्र बोस को 'युवक सम्राट', पुरुषोत्तम दास टंडन को 'राजर्षि' बनाने का श्रेय भारतीय भाषाओं के पत्रों को ही जाता है। इस दृष्टि से देखें तो स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय भाषाओं के पत्रों ने सही मायने में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रहरी और उसके प्रचारक के रूप में काम करते हुए अपने राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का निष्ठापूर्वक निर्वहन किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि पत्रकारिता लोकचित्त को ही जाग्रत नहीं करती, बल्कि लोकभावना और जनआकांक्षा को भी मूर्तरूप प्रदान करती है। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'आज' के 5 सितंबर, 1920 के अंक में पत्रकारिता का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा था—''हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश के गौरव को बढावें, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह अभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।'' वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता ने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु काम किया।

स्वतंत्रता संग्राम में समाचार पत्र संचार का प्रभावी माध्यम थे ही, परंतु लोक माध्यमों की भूमिका भी कम नहीं थी, बल्कि लोक माध्यम जनमानस के अधिक निकट थे। राजस्थान के बारे में कहा जाता है कि तत्कालीन अधिकतर रियासतों ने उस समय अँग्रेजों का साथ दिया, परंतु उस दौरान लोक कलाकारों ने अँग्रेजों का समर्थन करने वाली रियासतों के राजाओं को धिक्कारते हुए उन्हें अपने पूर्वजों के बलिदान का स्मरण कराया। लोक संचार माध्यमों की ऐसी ही भूमिका देशभर में देखी गई। स्वतंत्रता संग्राम के अनेक शहीदों द्वारा समय-समय पर अपने परिवारजनों, मित्रों तथा अँग्रेज अधिकारियों को जो पत्र लिखे गए, उनसे भी स्वतंत्रता सेनानियों के मानस को समझने में मदद मिलती है। सिनेमा की भूमिका को भी कम नहीं आँका जा सकता। आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर स्वतंत्रता संग्राम के ऐसे विविध पक्षों को उजागर करते 19 शोध पत्र इस अंक में शामिल किए गए हैं। इस अंक हेतु शोध पत्रों के आमंत्रण को शोधकर्ताओं का इतना उत्साहपूर्ण प्रतिसाद मिला कि सभी शोध पत्र इस अंक में शामिल नहीं हो पाए हैं। इसलिए कुछ शोध पत्रों को जनवरी-जून 2022 के अंक में भी शामिल किया जाएगा। आशा है यह पूरी सामग्री स्वतंत्रता संग्राम में संचार माध्यमों की भूमिका को समझने में सहायता करेगी। आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, न्यू जेएनयू कैंपस, नई दिल्ली-110067

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की शोध पत्रिका

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव विशेषांक

खंड 33 (2) | आईएसएसएन: 2321-2608 | जुलाई-दिसंबर 2021

विषय सूची

1. आजादी की ऊर्जा का अमृत — 1
   प्रो. संजय द्विवेदी

2. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और लोक माध्यम — 4
   प्रो. राघवेंद्र मिश्रा

3. भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जनसंचार की एक नई प्रणाली के रूप में चपाती वितरण का अध्ययन — 9
   डॉ. अमृता शिल्पी

4. स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राजस्थान में प्रचलित गीतों, कविताओं, दोहों, सोरठों और नारों का अध्ययन — 23
   प्रो. संगीता प्रणवेंद्र

5. स्वतंत्रता संग्राम और लोकगीत : हरियाणवी रागणियों के संदर्भ में एक अध्ययन — 39
   डॉ. शिखा सैनी

6. स्वतंत्रता संग्राम और साहित्य : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य संग्रह 'हिंदू' में नवजागरण, पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीयता के मूल्यों की अभिव्यक्ति — 44
   डॉ. संजय वर्मा

7. स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में शहीदों के पत्रों का विश्लेषण — 52
   प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

8. स्वतंत्रता संग्राम में प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों का योगदान — 58
   डॉ. स्वर्ण सुमन

9. स्वतंत्रता संग्राम में 'आजाद रेडियो' की भूमिका का अध्ययन — 62
   उमेश चतुर्वेदी और सौम्या चतुर्वेदी

10. स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता के मूल्य — 66
    डॉ. बिजेंद्र कुमार

11. स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता : सार्वजनिक विमर्श के लोकमूल्य — 73
    उमेश चतुर्वेदी

12. स्वतंत्रता आंदोलन और उर्दू पत्रकारिता — 78
    प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार और डॉ. मु. अफसर अली राईनी

13. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और सिनेमा — 84
    डॉ. सोनाली नरगुंदे और डॉ. लखन रघुवंशी

14. हिंदी सिनेमा के देशभक्ति एवं प्रेरणास्पद गीतों का अध्ययन — 87
    डॉ. राजीव श्रीवास्तव

15. स्वाधीनता संग्राम के दौरान प्रतिबंधित साहित्य का अध्ययन 96
डॉ. अंशु यादव

16. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अर्द्धसत्य आख्यान : एक 'प्रोक्ति-विश्लेषण' 102
डॉ. जयप्रकाश सिंह

17. गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता और आजादी की लड़ाई 106
अमित राजपूत

18. स्वतंत्रता आंदोलन में विज्ञान संचारकों का योगदान 112
डॉ. दिलीप कुमार

19. जनसंवाद और स्वाधीनता आंदोलन : जयशंकर प्रसाद की कहानियों का मूल्यांकन 118
सत्यप्रकाश सिंह

संत्रारभ समारोह रिपोर्ट 126

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 1-3, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

आजादी की ऊर्जा का अमृत

प्रो. संजय द्विवेदी[1]

सारांश

आजादी के 75 वर्ष का अवसर जितना ऐतिहासिक और गौरवशाली है, देश इसे उतनी ही भव्यता और उत्साह के साथ मना रहा है। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने दांडी यात्रा की वर्षगाँठ पर 12 मार्च, 2021 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कर्मस्थली गुजरात से आजादी के अमृत महोत्सव की शुरुआत की थी। हम सभी का यह सौभाग्य है कि हम आजाद भारत के इस ऐतिहासिक कालखंड के साक्षी बन रहे हैं। हमारे यहाँ मान्यता है कि जब कभी ऐसा अवसर आता है, तब सारे तीर्थों का एक साथ संगम हो जाता है। 'आजादी का अमृत महोत्सव' एक राष्ट्र के रूप में भारत के लिए भी ऐसा ही पवित्र अवसर है। यह वह अवसर है जब आजादी के असंख्य संघर्षों, बलिदानों और तपस्याओं की ऊर्जा पूरे भारत में एक साथ पुनर्जाग्रत हो रही है। यह अवसर है देश के स्वाधीनता संग्राम में खुद को आहूत करने वाली महान विभूतियों के चरणों में आदरपूर्वक नमन करने का। यह अवसर है उन वीर जवानों को प्रणाम करने का, जिन्होंने आजादी के बाद भी राष्ट्र रक्षा की परंपरा को जीवित रखा और देश की रक्षा के लिए सर्वोच्च बलिदान दिए। यह अवसर है उन पुण्य आत्माओं का वंदन करने का, जिन्होंने आजाद भारत के पुनर्निर्माण में प्रगति की, एक-एक ईंट रखी और 75 वर्ष में देश को यहां तक लाए। मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों और 75 साल में देश ने जो तरक्की की है उससे समाज को अवगत कराए। साथ ही अगले 25 साल में देश कैसे एकजुट होकर आगे बढ़े, इस पर संपूर्ण राष्ट्र का प्रबोधन करे। आज मीडिया के समक्ष एक और बड़ा सवाल यह है कि क्या वह उन चुनौतियों के संबंध में देश-दुनिया को जाग्रत कर रहा है, जो आज हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रही हैं?

संकेत शब्द : भारत, स्वतंत्रता संग्राम, आजादी का अमृत महोत्सव, शहीदों के सपनों का भारत

प्रस्तावना

जब हम गुलामी के उस दौर की कल्पना करते हैं, जहाँ करोड़ों लोगों ने सदियों तक आजादी की एक सुबह का इंतजार किया, तब यह एहसास होता है कि आजादी के 75 साल का अवसर कितना ऐतिहासिक है। इस पर्व में शाश्वत भारत की परंपरा है, स्वाधीनता संग्राम की परछाई है और आजाद भारत की गौरवान्वित करने वाली प्रगति है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अमृत महोत्सव के पाँच स्तंभों पर विशेष जोर दिया है। ये स्तंभ है—फ्रीडम स्ट्रगल, आइडियाज एट 75, एचीवमेंट एट 75, एक्शंस एट 75 और रिजॉल्व एट 75। ये पाँचों स्तंभ आजादी की लड़ाई के साथ-साथ आजाद भारत के सपनों और कर्तव्यों को देश के सामने रखकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देंगे (आजतक, 2021)। किसी राष्ट्र का गौरव तभी जाग्रत रहता है, जब वह अपने स्वाभिमान और बलिदान की परंपराओं को अगली पीढ़ी को भी सिखाता है और उन्हें संस्कारित करता है। किसी राष्ट्र का भविष्य तभी उज्ज्वल होता है, जब वह अपने अतीत के अनुभवों और विरासत के गर्व से जुड़ा रहता है। भारत के पास तो गर्व करने के लिए समृद्ध इतिहास और चेतनामय सांस्कृतिक विरासत है। आजादी के 75 साल का यह अवसर एक अमृत की तरह वर्तमान पीढ़ी को प्राप्त होगा। एक ऐसा अमृत, जो हमें प्रतिपल देश के लिए जीने और कुछ करने के लिए प्रेरित करेगा।

वेदों में कहा गया है—"मृत्योः मुक्षीय मामृतात्"। अर्थात् हम दुःख, कष्ट, क्लेश और विनाश से निकलकर अमृत की तरफ बढ़ें। यही संकल्प आजादी के इस अमृत महोत्सव का भी है। आजादी का अमृत महोत्सव यानी आजादी की ऊर्जा का अमृत, स्वाधीनता सेनानियों की प्रेरणाओं का अमृत, नए विचारों का अमृत, नए संकल्पों का अमृत, आत्मनिर्भरता का अमृत। और इसीलिए, यह महोत्सव राष्ट्र के जागरण और वैश्विक शांति एवं विकास का महोत्सव है। आजादी की लड़ाई में अलग-अलग घटनाओं की अपनी प्रेरणाएँ हैं, जिन्हें आज का भारत आत्मसात् कर आगे बढ़ सकता है। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम, महात्मा गांधी का देश को सत्याग्रह की ताकत याद दिलाना, लोकमान्य तिलक का पूर्ण स्वराज्य का आह्वान, नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज का दिल्ली मार्च, 1942 का अविस्मरणीय आंदोलन, अँग्रेजों भारत छोड़ो का उद्घोष—ऐसे कितने ही अनगिनत पड़ाव हैं, जिनसे हम प्रेरणा लेते हैं। ऐसे कितने ही सेनानी हैं, जिनके प्रति देश हर रोज अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है। 1857 की क्रांति के मंगल पांडे, ताँत्या टोपे जैसे वीर हों, अँग्रेजों की फौज के सामने निर्भीक गर्जना करने वाली रानी लक्ष्मीबाई हों, कित्तूर की रानी चेन्नमा हों, रानी गाइदिन्ल्यू, चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, अशफाकउल्ला खाँ, गुरु राम सिंह, टिट्टूस जी, पॉल रामासामी जैसे वीर हों; या फिर सरदार पटेल, बाबा साहब आंबेडकर, मौलाना आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, वीर सावरकर जैसे अनगिनत जननायक। ये सभी महान व्यक्तित्व आजादी के आंदोलन के पथ प्रदर्शक हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इन्हीं लोगों के सपनों का भारत बनाने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

स्वाधीनता संग्राम : अन्याय, शोषण और हिंसा के खिलाफ भारतीय चेतना

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में ऐसे कितने आंदोलन हैं, जो

[1]महानिदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067. ईमेल : 123dwivedi@gmail.com

देश के सामने उस रूप में नहीं आए जैसे आने चाहिए थे। ये एक-एक संघर्ष अपने आप में भारत की असत्य के खिलाफ सत्य की सशक्त घोषणाएँ हैं, भारत के स्वाधीन स्वभाव के सबूत हैं और इस बात के भी साक्षात् प्रमाण हैं कि अन्याय, शोषण और हिंसा के खिलाफ भारत की जो चेतना राम के युग में थी, महाभारत के कुरुक्षेत्र में थी, हल्दीघाटी की रणभूमि में थी, शिवाजी के उद्घोष में थी, वही शाश्वत चेतना, वही अदम्य शौर्य भारत के हर क्षेत्र, हर वर्ग और हर समाज ने आजादी की लड़ाई में अपने भीतर प्रज्वलित करके रखी थी। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—यह मंत्र आज भी हमें प्रेरणा देता है। कोल आंदोलन हो या 'हो संघर्ष', खासी आंदोलन हो या संथाल क्रांति, कछोहा कछार नागा संघर्ष हो या कूका आंदोलन, भील आंदोलन हो या मुंडा क्रांति, सन्न्यासी आंदोलन हो या रमोसी संघर्ष, कित्तूर आंदोलन, त्रावणकोर आंदोलन, बारडोली सत्याग्रह, चंपारण सत्याग्रह, संभलपुर संघर्ष, चुआर संघर्ष, बुंदेल संघर्ष, ऐसे कितने ही आंदोलनों ने देश के हर भूभाग को, हर कालखंड में आजादी की ज्योति से प्रज्वलित रखा। इस दौरान हमारी सिख गुरु परंपरा ने देश की संस्कृति, अपने रीति-रिवाज की रक्षा के लिए हमें नई ऊर्जा दी, प्रेरणा दी, त्याग और बलिदान का रास्ता दिखाया।

आजादी के आंदोलन की इस ज्योति को निरंतर जाग्रत करने का काम, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, हर दिशा में, हर क्षेत्र में हमारे संतों ने, महंतों ने, आचार्यों ने निरंतर किया। एक प्रकार से भक्ति आंदोलन ने राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आंदोलन की पीठिका तैयार की। पूर्व में चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और श्रीमंत शंकर देव जैसे संतों के विचारों ने समाज को दिशा दी। पश्चिम में मीराबाई, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, नरसी मेहता हुए; उत्तर में संत रामानंद, कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, गुरु नानकदेव, संत रैदास; दक्षिण में मध्वाचार्य, निम्बकाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य हुए। भक्तिकाल के इसी खंड में मलिक मोहम्मद जायसी, रसखान, सूरदास, केशवदास, विद्यापति जैसे महानुभावों ने अपनी रचनाओं से समाज को अपनी कमियाँ सुधारने के लिए प्रेरित किया (गुप्ता, 1972)। हमें इन महान आत्माओं का जीवन इतिहास देश के सामने पहुँचाना है। इन लोगों की जीवन गाथाएँ हमारी आज की पीढ़ी को जीवन का पाठ सिखाएँगी। एकजुटता क्या होती है, लक्ष्य को पाने की जिद क्या होती है, इसका सही मतलब बताएँगी। याद कीजिए, तमिलनाडु के 32 वर्षीय नौजवान कोडि काथ् कुमरन को। अँग्रेजों ने उस नौजवान के सिर में गोली मार दी, लेकिन उसने मरते हुए भी देश के झंडे को जमीन पर नहीं गिरने दिया। तमिलनाडु में उसके नाम से ही 'कोडि काथ्' शब्द जुड़ गया, जिसका अर्थ है, झंडे को बचाने वाला (कोडि काथ् कुमरन..., पैरा 3)। तमिलनाडु की ही वेलू नाचियार वह पहली महारानी थीं, जिन्होंने अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लड़ाई लड़ी। ओडिशा में चक्रा बिसोई ने लड़ाई छेड़ी, तो लक्ष्मण नायक ने गांधीवादी तरीकों से चेतना फैलाई। आंध्र प्रदेश में मण्यम वीरुडु यानी जंगलों के हीरो अल्लूरी सीताराम राजू ने रंपा आंदोलन का बिगुल फूँका। पासल्था खुनगचेरा ने मिजोरम की पहाड़ियों में अँग्रेजों से लोहा लिया था। गोमधर कोंवर, लचित बोरफुकन और सीरत सिंग जैसे असम और पूर्वोत्तर के अनेकों स्वाधीनता सेनानियों ने देश की आजादी में योगदान दिया है। देश इनके बलिदान को हमेशा याद रखेगा।

आजादी के 75 वर्ष और भारत की उद्यमशीलता

आजादी के आंदोलन के इतिहास की तरह ही आजादी के बाद के 75 वर्षों की यात्रा, भारतीयों के परिश्रम, इनोवेशन और उद्यमशीलता का प्रतिबिंब है। हम भारतीय चाहे देश में रहें या फिर विदेश में, हमने अपनी मेहनत से खुद को साबित किया है। हमें गर्व है हमारे संविधान और हमारी लोकतांत्रिक परंपराओं पर। ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध भारत आज मंगल से लेकर चंद्रमा तक अपनी छाप छोड़ रहा है। आज भारत की सेना का सामर्थ्य अपार है, तो आर्थिक रूप से भी हम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। आज भारत का स्टार्टअप इकोसिस्टम, दुनिया में आकर्षण का केंद्र बना है। आज दुनिया के हर मंच पर भारत की क्षमता और प्रतिभा की गूँज है। आज भारत अभाव के अंधकार से बाहर निकलकर आगे बढ़ रहा है। आज भारत वह सब कर रहा है, जिसकी कुछ साल पहले तक कल्पना नहीं हो सकती थी। 75 साल की यात्रा में एक-एक कदम उठाते-उठाते आज देश यहाँ पर पहुँचा है।

हमारे देश में न प्रतिभा की कमी है, न परिश्रम की और न ही प्रयोजन की। पिछले कुछ दशकों में भारत विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में तेजी से उभरा है। आईटी सेक्टर हो, स्पेस टेक्नोलॉजी हो, मिसाइल टेक्नोलॉजी हो, भारत ने अपनी धाक पूरी दुनिया पर जमाई है। हमारे वैज्ञानिकों, हमारे तकनीकी विशेषज्ञों की ये उपलब्धियाँ पूरे देश के लिए गर्व का विषय हैं। जब इसरो के रॉकेट से एक बार में 100 से ज्यादा सैटेलाइट छोड़े जाते हैं, तो पूरी दुनिया आँखें चौड़ी करके देखती है (इसरो, 2017)। उस वक्त हम भारतीय अपना माथा ऊँचा करके अपने वैज्ञानिकों के इस पराक्रम से प्रफुल्लित होते हैं। भारत की महानता हमारे ज्ञान-विज्ञान में तो है ही, पर इस महानता का असली मकसद विज्ञान, तकनीक और नवाचार को समाज से जोड़ने का भी है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने नारा दिया था—'जय जवान, जय किसान'; बीस साल बाद पोखरण से भारत को संबोधित करते हुए श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विज्ञान की भूमिका को समझते हुए नारा दिया—'जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान'। और आज भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस नारे को एक कदम और आगे ले जाते हुए कह रहे हैं—'जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान, जय अनुसंधान' (पीआईबी, 2019)।

भारत की उपलब्धियाँ आज सिर्फ अपनी नहीं हैं, बल्कि ये पूरी दुनिया को रोशनी दिखाने वाली और पूरी मानवता को उम्मीद जगाने वाली हैं। भारत की आत्मनिर्भरता से ओतप्रोत विकास यात्रा पूरी दुनिया की विकास यात्रा को गति देने वाली है। कोरोना काल में यह हमारे सामने सिद्ध भी हो रहा है। मानवता को महामारी के संकट से बाहर निकालने के लिए वैक्सीन निर्माण में भारत की आत्मनिर्भरता का आज पूरी दुनिया को लाभ मिल रहा है। आज भारत के पास वैक्सीन का सामर्थ्य है, तो वसुधैव कुटुंबकम् के भाव से हम सबके दुख दूर करने में काम आ रहे हैं। हमने दुख किसी को नहीं दिया, लेकिन दूसरों का दुख कम करने में खुद को खपा रहे हैं। यही भारत का शाश्वत दर्शन है और आत्मनिर्भर भारत का तत्त्वज्ञान है। आज दुनिया के देश भारत का धन्यवाद कर रहे हैं। यही नए भारत के सूर्योदय की पहली छटा है। यही हमारे भव्य भविष्य की पहली आभा है। आजादी के अमृत महोत्सव का जश्न मनाते हुए हमारा यह संकल्प होना

चाहिए कि हमें विज्ञान को सामान्य मानव के जीवन से जोड़ना है। तेजी से बदल रही दुनिया में भारत को न रुकने का हक है और न ही इंतजार करने का वक्त है। हमें लीडरशिप लेनी है, हमें दुनिया में कुछ करके दिखाना है। हमें समय के अनुरूप समाधान तलाशने होंगे। हमें सिर्फ प्रतिस्पर्धा नहीं करनी, हमें श्रेष्ठता दिखानी होगी। हमें सिर्फ शोध करने के लिए शोध नहीं करना है, बल्कि अपनी खोज को उस स्तर पर ले जाना है, जिससे दुनिया उसके पीछे चलना शुरू करे। हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि हमारा प्राचीन ज्ञान शोध पर ही आधारित रहा है।

आज दुनिया के तमाम देश प्रगति और विकास की ओर तेजी से बढ़ते भारत को एक नई उम्मीद से देख रहे हैं। भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक यात्रा की एक नई शुरुआत हुई है। आज भारत की पहचान बदल रही है और वह एक समर्थ परंपरा का सांस्कृतिक उत्तराधिकारी ही नहीं है, बल्कि तेजी से विकास करता हुआ राष्ट्र है। इसलिए वह उम्मीदें भी जगा रहा है। ऐसे समय में भारतीय मीडिया का आकार, प्रकार और शक्ति भी बढ़ी है। भारत में मीडिया का इस्तेमाल और उपयोग करने वाले लोग भी बढ़े हैं। तमाम संचार माध्यमों से विविध प्रकार की सूचनाएँ समाज के सामने उपस्थित हो रही हैं। इसमें सूचनाओं की विविधता भी है और विकृति भी। मीडिया इस देश की विविधता और बहुलता को व्यक्त करते हुए इसमें एकत्व के सूत्र निकाल सकता है। हमारे देश की ताकत यह है कि हम संकट के समय में जल्दी एकजुट हो जाते हैं, लेकिन संकट टलते ही वह भाव नहीं रहता। हमें इस बात को लोगों के मनों में स्थापित करना है कि वे हर स्थिति में साथ हैं और अच्छे दिनों में साथ मिलकर चल सकते हैं। यही एकात्म भाव है। ऐसे ही जुड़ाव को जगाने की जरूरत है। बौद्धिकता सिर्फ बुद्धिजीवियों तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, उसे आम-आदमी के विचार का हिस्सा बनना चाहिए। मीडिया अपने लोगों का प्रबोधन करने में यह भूमिका निभा सकता है। मीडिया का काम सिर्फ सूचनाएँ देना नहीं है, अपने पाठकों को बौद्धिक रूप से उन्नत करना भी है। कोई भी लोकतंत्र ऐसे ही सहभाग से साकार होता है, सार्थक होता है। जनता से जुड़े मुद्दे और देश के सवालों की गंभीर समझ पाठकों और दर्शकों में पैदा करना मीडिया की जिम्मेदारी है। मूल रूप में मीडिया का मूल्यबोध भी वही है, जो समाज का मूल्यबोध है। समाज को भी स्वस्थ, प्रामाणिक और पारदर्शी होने की दरकार है। ऐसा समाज ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। विश्व का नेतृत्व कर सकता है।

आजादी के पहले, आजादी के दीवाने ही पत्रकारिता करते थे। पत्र-पत्रिकाएँ, आजादी का बिगुल बजाती थीं। आज आजाद भारत में, सुखी और समृद्ध देश के लिए सकारात्मक खबरों की भी बहुत जरूरत है। देशवासियों में कुछ करने की इच्छा जगे, देश को आगे बढ़ाने की इच्छा जगे, यह बहुत आवश्यक है। जैसी स्वराज के आंदोलन की 'स्पिरिट' थी, वैसी ही सुराज्य के आंदोलन की ऊर्जा होनी चाहिए। भारत, विश्व में एक ताकत के रूप में उभरे, इसके लिए कई क्षेत्रों में हमें वैश्विक ऊँचाई को प्राप्त करना है। चाहे साइंस हो, टेक्नोलॉजी हो, इनोवेशन हो, स्पोर्ट हो, उसी प्रकार दुनिया में भारत की आवाज बुलंद करने के लिए हमारा मीडिया भी वैश्विक पहुँच बनाए, वैश्विक पहचान बनाए, यह समय की माँग है। आज भारत के मीडिया वर्ल्ड को इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए और राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देना चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय विद्वानों ने विज्ञान से गणित तक, कला से साहित्य तक, भाषा विज्ञान से तर्कशास्त्र और चिकित्सा से लेकर दर्शन तक, दुनिया को प्रकाशित किया है (अग्रवाल, 2018)। अब समय आ गया है कि भारत दुनिया में उसी स्थान को हासिल करे। यह तभी संभव है जब दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में एक बनकर हम अपने शोध और नवाचार के जरिये दुनिया को दिशा दें। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है— "समदुःखसुखं धीरं सः अमृतत्त्वाय कल्पते"। अर्थात् जो सुख-दुःख, आराम, चुनौतियों के बीच भी धैर्य के साथ अटल अडिग और सम रहता है, वही अमृत को प्राप्त करता है, अमरत्व को प्राप्त करता है। अमृत महोत्सव से भारत के उज्ज्वल भविष्य का अमृत प्राप्त करने के हमारे मार्ग में यही मंत्र हमारी प्रेरणा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने आजादी के अमृत महोत्सव की शुरुआत करते हुए कहा था—'उत्सवेन बिना यस्मात् स्थापनम् निष्फलम् भवेत्' अर्थात् कोई भी प्रयास, कोई भी संकल्प बिना उत्सव के सफल नहीं होता। एक संकल्प जब उत्सव की शक्ल लेता है, तो उसमें करोड़ों लोगों की ऊर्जा जुट जाती है। इसी भावना के साथ हमें आजादी का अमृत महोत्सव मनाना है।

संदर्भ

आजतक (12 मार्च, 2021). अमृत महोत्सव का आगाज, पीएम मोदी बोले—वैक्सीन में भारत की आत्मनिर्भरता का लाभ उठा रही दुनिया. *आजतक.इन.* https://www.aajtak.in/india/news/story/azadi-ka-amrut-mahotsav-pm-narendra-modi-in-gujarat-dandi-march-live-updates-events-1220819-2021-03-12 से पुन:प्राप्त

अग्रवाल, वी. (2018) *लीडिंग साइंस एंड टेक्नोलोजी इंडिया नेक्स्ट?* केलीफोर्निया : सेज पब्लिकेशंस

'कोडि काथ् कुमरन-द कुमरन व्हू सेव्ट द फ्लैग'. https://www.amrit-mahotsav.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?48 से पुन:प्राप्त

गुप्ता, एम. एन. (1972). *हिस्ट्री ऑफ द इंडियन रिवॉल्यूश्नरी मूवमेंट.* मुंबई: सौमेया पब्लिकेशन

इसरो. (2017). *'पीएसएलवी सक्सेसफुली लांचेज 104 सेटेलाइट्स इन ए सिंगल फ्लाइट'.* https://www.isro.gov.in/pslv-c37-successfully-launches-104-satellites-single-flight से पुन:प्राप्त

पीआईबी. (2019, जनवरी 03).https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1558459 से पुन:प्राप्त

"मृत्योः मुक्षीय मामृतात्". http://www.vyakhya.org/mr-mantra/mr-vyakhya/ से पुन:प्राप्त

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 4-8, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और लोक माध्यम

प्रो. राघवेंद्र मिश्रा[1]

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का विस्तार लगभग दो सौ वर्षों के संघर्ष के इतिहास को समेटता है। 1857 से कुछ पूर्व की घटनाओं को जोड़कर 1947 तक अनेक बलिदान, अनेक आंदोलन इस संघर्ष का हिस्सा रहे हैं। इस आंदोलन और इसमें समाहित देश के विविध हिस्सों में हुए आंदोलनों ने लोगों को जोड़कर स्वतंत्रता के लक्ष्य को एक व्यापक राष्ट्रीय लक्ष्य बनाया और अंततः विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने का काम किया। इस आहुति में कई शहीदों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया और उनमें से कई कुर्बानियाँ तो अब विस्मृत-सी हो गई हैं। ऐसे आंदोलनों से लोगों को जोड़ने में, लोगों की संवेदनाओं को कुरेदने में, आंदोलन के संदेश जन-जन तक पहुँचाने में और आंदोलनों को धार देने में जनमाध्यमों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। भारतीय पत्रकारिता का यशस्वी इतिहास इसी तरह के योगदान से समृद्ध हुआ है। लेकिन आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने और दूर-दराज, जंगल-पहाड़ों, गाँव-गली तक राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने में लोक माध्यमों की बड़ी भूमिका रही। लोक माध्यमों ने अपने 'फॉर्मेट' में, अपनी पंक्तियों में, अपनी प्रस्तुतियों में, अपने संगीत में स्वतंत्रता आंदोलन के उद्देश्य और संदेश को आत्मसात् किया और इसे जन-जन तक पहुँचाने का काम किया। प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक दृष्टि से स्वतंत्रता आंदोलन में लोक माध्यमों की भूमिका की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : लोक माध्यम, लोकगीत, लोकनाट्य, स्वातंत्र्य चेतना, स्वतंत्रता आंदोलन

प्रस्तावना

लोक माध्यम में दो शब्द समाहित हैं–लोक और माध्यम। 'लोक' शब्द जहाँ जन या जनता की अभिव्यक्ति करता है, वहीं 'माध्यम' शब्द अँग्रेजी के मीडियम शब्द का हिंदी अनुवाद है, जो संप्रेषण के माध्यम या साधन का संकेतक है। इस तरह लोक माध्यम को हम उस जन माध्यम के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जो लोक की उपज हो, जिसमें लोक की अभिव्यक्ति हो और जो लोकरंजन के उद्देश्य की पूर्ति करता हो। इस विस्तृत दायरे में हमारी लगभग समस्त लोक-अभिव्यक्तियाँ स्वतः समाहित हो जाती हैं। लोक माध्यम का यह विस्तार लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकवाद्य, लोक साहित्य से होता हुआ मुहावरे और लोकोक्तियाँ, लोक कलाएँ, स्थापत्य, चित्रकारी, लोकसम्मिलन जैसे मेला-उत्सव, खेल-तमाशे, परंपराएँ और रीति-रिवाजों को अपने दायरे में समाहित करता है। लोक शब्द सहजता और मौलिकता का भी प्रतीक है। लोक माध्यम नियमबद्ध नहीं होते। सामूहिकता, तीव्रता, ओजस्विता, सहभागिता, समन्वय, और समावेशी होना लोक माध्यम की अद्भुत पहचान है।

परमार (1975) लोक माध्यमों को व्याख्यायित करते हुए स्पष्ट करते हैं कि पारंपरिक लोक माध्यम संचार के स्वदेशी रूप हैं, जिनकी जड़ें समुदाय की सांस्कृतिक परंपरा में हैं। पारंपरिक लोक माध्यमों के व्यापक दायरे में सभी प्रकार की कला, संगीत, मूर्तिकला, लोकगीत, प्रदर्शन, नाटक आदि शामिल हैं। पारंपरिक लोक माध्यम एक विशेष प्रकृति के उपकरण हैं। उनकी विशेष प्रकृति इस तथ्य के लिए जिम्मेदार है कि उनके पास कोई व्याकरण या साहित्य नहीं है, फिर भी उनका पोषण मौखिक और प्रदर्शनमूलक स्रोतों के माध्यम से होता है। ये उस समाज या समाज की सामाजिक-धार्मिक, नैतिक और भावनात्मक जरूरतों को व्यक्त करने के लिए चैनल प्रदान करते हैं, जिससे वे विशेष रूप से संबंधित हैं।

दिसानायके (1977) ने पारंपरिक लोक माध्यम को ऐसे माध्यम के रूप में वर्णित किया है, जो लोक मुहावरों और प्रतीकों का समावेश करता है और आबादी के उन हिस्सों तक पहुँचता है, जो आधुनिक जन माध्यमों के प्रभाव से दूर है और जो संप्रेषण की प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता के गुणों से युक्त होता है। रंगनाथ (1976) पारंपरिक लोक माध्यम को जनता के साथ अंतरंग होने के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार यह ऐसा माध्यम है जो विविधता से भरा है, कम लागत पर आसानी से उपलब्ध, विभिन्न आयु समूहों और महिला-पुरुष दोनों द्वारा पसंद किया जाता है। यह पारंपरिक संदेशों का वाहक है और लोगों को उत्प्रेरित करने का सामर्थ्य रखता है, आमने-सामने संचार में समर्थ और त्वरित प्रतिपुष्टि का सृजन करता है।

ये परिभाषाएँ स्पष्ट करती हैं कि लोक माध्यम नाच-गाने और मस्ती की तात्कालिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं हैं। ये लोक से जुड़े, मिट्टी की सोंधी खुशबू समेटे ऐसे माध्यम हैं, जिनमें लोगों की भावनाएँ, उनकी पीड़ा और दुःख, उनके संघर्ष और सपने पलते हैं। लोक माध्यमों में गतिशीलता और लोचनीयता होती है। ये परंपरा से बँधे तो जरूर होते हैं, लेकिन नए परिवेश, नए कथ्य, नए लोग और नई सोच के लिए भी जगह रखते हैं। समाज में, देश में, परिवेश में जो भी होता है, वह लोक माध्यमों में भी अभिव्यक्त होता है।

लोक माध्यमों की इन विशेषताओं के चलते राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के भाव, संदेश, नायकत्व की कथाएँ, संघर्ष और बलिदान इन माध्यमों में प्रचुर रूप में समाहित रहे हैं और इन्होंने आरंभ से ही स्वतंत्रता के विचारों को गाँव-गाँव तक पहुँचाने में अपना अप्रतिम योगदान दिया है। हमारी लोक प्रस्तुतियाँ ऐसे असंख्य उदाहरणों से भरी हैं, जिनमें स्वतंत्रता आंदोलन के आख्यान संरक्षित हैं। हालाँकि स्वतंत्रता आंदोलन में समाचार

[1]प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश. ईमेल: raghava74mishra@gmail.com

पत्रों की उल्लेखनीय भूमिका की सर्वाधिक चर्चा होती है, लेकिन लोक माध्यमों का योगदान भी काफी रहा है। अंग्रेजों के विरुद्ध आरंभिक विद्रोहों में सूचना संप्रेषण से लेकर लोगों का आह्वान करने तक ये केंद्रीय भूमिका में रहे और परवर्ती काल में जब आंदोलन का केंद्रीय स्वरूप विकसित होने लगा और अखिल भारतीय स्तर पर संघर्ष की कड़ियाँ जुड़ीं तो लोक माध्यम आम लोगों को, देश की ग्रामीण आबादी को इन आंदोलनों से जोड़ने का प्रभावी जरिया बने और इस तरह स्वतंत्रता के आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में अपना योगदान दिया।

प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष और उसके बाद लोक माध्यमों की भूमिका

सन् 1857 के प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में लोक माध्यमों के इस हस्तक्षेप को देखा जा सकता है। वस्तुतः प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले भी अनेक संघर्ष आजादी की आकांक्षा के साथ प्रस्फुटित हुए थे। बाह्य आक्रांताओं के आगमन के साथ, विशेषकर मध्ययुगीन आक्रमणों की शृंखला में प्रतिरोध के अनेक स्वर मुखरित हुए। हम भारतीय राजाओं के प्रतिरोध को निकाल भी दें तो अनेक जननायकों ने, जन ने अपने उपासना स्थलों, अपने सांस्कृतिक प्रतीकों की रक्षा के लिए अपनी कुर्बानियाँ दीं और इन अमर गाथाओं को लोक माध्यमों ने अपने गीतों में, आयोजनों में, प्रस्तुतियों में संरक्षित रखने और लोगों को उत्प्रेरित करने में अपना महती योगदान दिया। बंगाल में सन्न्यासी विद्रोह एक जनांदोलन ही था, जिसमें सन्न्यासी और फकीरों ने शासकों के अत्याचार और शोषण के खिलाफ संघर्ष का रास्ता अपनाया। ये सन्न्यासी ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर बाउल गीतों और परंपरागत भजनों के माध्यम से लोगों में अलख जगाने का काम करते थे।

सिदो और कान्हू के नेतृत्व में सन् 1755 में आज के झारखंड के साहेबगंज जिले से संथाल विद्रोह की लपटें अँग्रेजों के खिलाफ उठी थीं। यह संघर्ष हूल संथाली लोकगीतों में संरक्षित है। ऐसे ही एक गीत में हूल और उसमें संथालों के बलिदान का आख्यान उपस्थित होता है :

चेदाक दो रे सिधो मायामतेम नुमलेन,
चेदाक दो रे कान्हू हूल हूलेम होहोय,
दिसोम खातिरते नायो मायामतें नुमलेन,
जात भाय को नोवार लागित हूल हुलीं होहोय।

इस गीत में वर्णित है कि किस तरह सिदो को मातृभूमि के लिए रक्तरंजित होकर संघर्ष करना पड़ा और कान्हू को हूल का, विद्रोह का स्वर बुलंद करना पड़ा (मनु, 2021)।

लोकगीत, लोककथाएँ और लोकनाट्य कई बार उन सच्चाइयों को सँजोकर रखने का काम करते हैं, जिन्हें इतिहास झुठलाने का प्रयास करता है। हमारे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के साथ भी ऐसा ही हुआ। ब्रिटिश और पश्चिमी इतिहासकारों और सेना और शासन के दस्तावेजों में इसे 'सिपाही विद्रोह' कहकर दबा दिया गया, लेकिन हमारे लोकगीतों में यह अमर हो गया और इसने जनता में भी स्वाधीनता के प्रति जागरूकता के बीजारोपण का काम किया। सन् 1857 के हमारे स्वाधीनता संग्राम पर परदा डाल दिया गया और अँग्रेजों ने बैरकपुर कांड 'सिपाही विद्रोह' या 'बगावत' नाम दे दिया, परंतु राष्ट्रीय चेतना का जो दीप प्रज्वलित हुआ था, वह बुझा नहीं' (यादव, 2006, पृ.15)। आरा में बाबू कुँवर सिंह प्रथम स्वाधीनता संघर्ष के प्रखर योद्धा थे। उनकी वीरता और संघर्ष के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भोजपुरी के लोकगीतों में समाहित है :

कप्तान लिखे मिलऊ कुँवर सिंह,
आरा के सूबा बनाइब रे।
तोहफा देबों, इनाम देबों,
तोंहके राजा बनाइब रे।
बाबू कुँवर सिंह भेजले सनेसवा,
मोसे न चली चतुराई रे।
जब तक प्रान रही तन भीतर
मारग नाहीं बदलाई रे। (यादव, 2006. पृ. 14-15)

वस्तुतः प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और उससे पूर्व हुए कई संघर्षों में लोक माध्यम अनेक भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे थे। आदिवासी, किसान और ग्रामीण आंदोलनों में सूचनाओं के आदान-प्रदान, आंदोलन से लोगों को जोड़ने और आंदोलन का आह्वान करने में लोकगीत, लोकवाद्य, मेला, हाट-बाजार, तीज-त्योहारों का उपयोग हुआ और इसके प्रभावी परिणाम भी निकले। लोक की भाषा में, लोक के तौर-तरीके अपनाकर जो आंदोलन खड़े हुए, उनमें अलग ही पैनापन आया।

स्वतंत्रता आंदोलन का विस्तार, बीसवीं सदी और लोक माध्यम

स्वतंत्रता आंदोलन के हर पड़ाव, हर उठाव के साथ लोक माध्यमों ने भी इसे अपनी विषयवस्तु बनाया और उन आंदोलनों को जन की भाषा में उतारकर समाज के अंतिम आदमी तक पहुँचाने का काम किया। बीसवीं सदी आते-आते भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का स्वरूप व्यापक होने लगा और इसका अखिल भारतीय स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा था। हालाँकि इस समय समाचार पत्र एक प्रभावी माध्यम के रूप में सामने आ चुके थे, लेकिन लोक माध्यमों की प्रासंगिकता और उपयोगिता बनी हुई थी। इनका उपयोग कई रूपों में दिखाई देता है। स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव बहुत से लोक माध्यमों और कलाकारों पर पड़ा और उन्होंने अपनी प्रस्तुतियों में आंदोलन और उससे जुड़े नायकों के विचार और आह्वान को शामिल किया और उसे लोगों तक पहुँचाने का काम भी किया। सुब्बू अर्मुगम विल्लुपुट्टू के प्रख्यात कलाकार रहे हैं और आजादी मिलने से पहले से सक्रिय रहे हैं। विल्लुपुट्टू तमिलनाडु का प्राचीन संगीतमय कहानी प्रस्तुति का लोक माध्यम है, जो सामान्यत: त्योहारों के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है। सुब्बू ने 'द वीक' पत्रिका को दिए साक्षात्कार में महात्मा गांधी के प्रभाव को स्वीकार करते हुए बताया था कि उनकी कई प्रस्तुतियाँ महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित रहीं (सिंह, 2016)।

महात्मा गांधी बहुत सारे लोकगीतों के नायक हैं और उनके आंदोलन और विचार लोकगीतों में बहुत ही खूबसूरती से उतारे गए हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में बनारस, मिरजापुर और आसपास कजरी लोकगीतों की पुरानी परंपरा रही है, जो मूल रूप से प्रेम के गीतों पर आधारित है, लेकिन गांधीजी के आंदोलन से प्रभावित होकर बहुत से कजरी गीत लिखे गए। लोककवि मारकंडे बनारस के रहने वाले थे और गांधीजी के चरखा चलाने के आह्वान पर आधारित उनकी कजरी बहुत लोकप्रिय हुई :

'चरखा मँगईबे हम, सईयाँ रे रिरियाय के, अलईपुरा पठायके ना।
काते राँन पड़ोसिन घर में, संझा-सुबह और दोपहर में
हमको लजवावे गांधी की बात सुनाय के, ऊँच-नीच समुझाय के ना।' (यादव, 2006, पृ. 45-46)।

भोजपुरी लोकगीत में महेंद्र मिश्र बहुत बड़ा नाम हैं। वे क्रांतिकारियों की मदद किया करते थे और देशभक्ति और अँग्रेजी शासन के खिलाफ उन्होंने कई लोकप्रिय गीत लिखे। ऐसे ही एक गीत में उन्होंने अँग्रेजों के आर्थिक शोषण को अपना विषय बनाया—

'हमरा नीको न लागे राम गोरन के करनी
रुपया ले गइलें, पईसा ले गइलें, ले सारा गिन्नी
ओकरा बदला में दे गइलें ढल्ली के दुअन्नी' (पांडेय, 2019)।

इसी तरह गोपालगंज, बिहार के रसूल मियाँ का जिक्र भी आता है, जो पारंपरिक नौटंकी 'नाच' का प्रदर्शन करते थे। उन्होंने भी अँग्रेजों के विरुद्ध अनेक नाचगीतों का मंचन किया और उसके लिए जेल भी गए। कलकत्ता के लाल बाजार पुलिस लाइन में रसूल का नाच चल रहा था। नाच देखने वाले ज्यादातर भोजपुरी-भाषी सैनिक थे। वहीं रसूल ने एक कविता सुनाई :

छोड़ द गोरकी का अब तू खुशामी बालमा।
एकर कहिया ले करब गुलामी बालमा (कुशवाहा)।

इस कविता का काफी प्रभाव पड़ा और कई देशी सिपाही नौकरी छोड़ने के लिए तैयार हो गए, जिसके लिए रसूल को गिरफ्तार भी किया गया था। रसूल मियाँ जिस कला के मास्टर थे उसे समाज में कोई प्रतिष्ठा हासिल नहीं थी, लेकिन नाच प्रदर्शन का प्रभाव अद्भुत था। ऐसे ही असंख्य दृष्टांत मिलते हैं कि तवायफों और गानेवालियों ने भी स्वतंत्रता के संघर्ष में अपनी आहुति दी और इसके लिए लोकगीत सहारा बने। बनारस के मोहल्ले दालमंडी से शास्त्रीय संगीत के कई पुरोधा निकले। यहीं पर अनेक कोठों पर स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ी बंदिशें जरूर परोसी जाती थीं। 'ठुमरी गायिका राजेश्वरी बाई तो हर महफिल में अंतिम बंदिश 'भारत कभी न बन सकेला गुलाम...' गाना पेश करना नहीं भूलती थीं' (पाठक, 2019)।

मेले

लोक माध्यमों का एक जीता-जागता और नितांत भारतीय रूप हैं मेले। देशभर में मेले लगते हैं और सामाजिक मेलजोल और संचार का अद्भुत रूप इन मेलों में देखा जा सकता है। मेलों का स्वतंत्रता संघर्ष में बहुत बड़ा योगदान है। जलियाँवाला बाग का नृशंस जनसंहार बैसाखी के अवसर पर जमा निरीह, निहत्थे लोगों पर गोलियाँ बरसाकर किया गया था। इन मेलों में राजनीतिक तकरीरें की जाती थीं और अनेक बड़े आंदोलन यहीं खड़े हुए। गोविंदगुरु का नाम अधिकांश लोगों को शायद याद भी नहीं है। गोविंदगुरु भील आदिवासियों के गुरु थे और उन्होंने अपने गीतों के माध्यम से स्वतंत्रता की अलख जगाई। बाँसवाड़ा जिले के मानगढ़ धाम में माघी पूर्णिमा पर मेला लगता था, जहाँ गुरु की तकरीरें होती थीं। 'मानगढ़ धाम बाँसवाड़ा जलियाँवाला बाग के रूप में भी प्रसिद्ध है, जहाँ 1500 आदिवासी अँग्रेजों की गोलीबारी में शहीद हुए थे। आदिवासी संत गोविंदगुरु के अनुयायी यहाँ जुटे थे और उन पर ब्रिटिश सेना ने निर्मम गोलीबारी की थी' (मिश्रा, 2020, पृ. 265)।

इस दृष्टि से उत्तराखंड के बागेश्वर में लगने वाले उत्तरायणी मेले का उल्लेख करना आवश्यक है, जहाँ एक बहुत बड़ा आंदोलन मेले से खड़ा हुआ और अँग्रेजों को इसके सामने झुकना पड़ा। मेले का धार्मिक-सांस्कृतिक के साथ-साथ राजनैतिक महत्त्व भी है। आजादी पूर्व अँग्रेजों द्वारा पहाड़वासियों पर कुली-बेगार की प्रथा लाद दी गई। इसके तहत गाँव-गाँव कुली के रूप में लोग चिह्नित किए जाते थे और उनका रजिस्टर बनता था। इनमें वही लोग शामिल होते थे, जिनके पास जमीन होती थी। बुलाए जाने पर उन्हें जाना होता था और अँग्रेज हाकिमों का सामान उठाना होता था, जिससे लोगों में भारी असंतोष पनपने लगा। इस प्रथा के विरोध में आंदोलन उठा और 'सन् 1921 में कुमाऊँ केसरी बद्रीदत्त पांडे के नेतृत्व में इसी सरयू बगड़ में कुली बेगार के रजिस्टरों को डुबोया गया' (www.ignca.nic.in)। इस प्रकार से 'उत्तरायणी मेला महज धार्मिकता से ही नहीं जाना जाता, बल्कि अँग्रेजी हुकूमत के कुली बेगार जैसे काले कानून के खात्मे के लिए भी जाना जाता है (जोशी, 2014)। इस घटना को सुनकर गांधीजी भी बागेश्वर आए थे। देश के विभिन्न भागों में आज भी शहीदों को याद करते हुए मेले सजते हैं और स्वतंत्रता आंदोलन में हमारे शहीदों के बलिदान से नई पीढ़ी को परिचित कराने का काम करते हैं।

लोकनाट्य

भारत में लोकनाट्य की समृद्ध परंपरा है और जात्रा, रामलीला, लावणी, भवई, सुमंग लीला आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। लोकनाट्य संगीत और नाट्यकला का अद्भुत मिश्रण होते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन का विस्तृत फलक ऐसे असंख्य उदाहरणों से भरा पड़ा है, जहाँ इन लोकनाट्य माध्यमों का समुचित और प्रभावी उपयोग जनता को जागरूक करने और संघर्ष के लिए तैयार करने में हुआ। बंगाल का बाउल, कविगान, छऊ, महाराष्ट्र की लावणी, कर्नाटक की गी-गी या तमिलनाडु से विलुपट्टू हो, इन लोकनाट्यों ने अपनी प्रस्तुतियों से औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लोगों को जाग्रत करने में बड़ी भूमिका निभाई।

बंगाल विभाजन के समय बंगाल के संगीतमय लोकनाट्य 'जात्रा' का उपयोग बंगाल के प्रबुद्धजनों और आंदोलनकारियों द्वारा विभाजन और अँग्रेजी शासन का विरोध करने में सफलतापूर्वक किया गया। गाँवों और कस्बों में जात्रा और कथा के पारंपरिक खुले में प्रदर्शन अधिक महत्त्वपूर्ण थे और स्वदेशी आंदोलन के दौरान उनका पूरी तरह से उपयोग किया गया। बारीसाल में अश्विनी कुमार दत्त ने हेमचंद्र कविरत्न को एक नई तरह की कथाओं की रचना करने के लिए प्रेरित किया, जिनमें धार्मिक ग्रंथों और महाकाव्यों से ली गई पारंपरिक कथाओं में देशभक्ति के विचारों का मिश्रण किया गया। जात्रा में ओगेश्वर, जिन्हें मुकुंद दास (1878-1934) के नाम से जाना जाता है, एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व थे। उनके संयोजन में जात्रा स्वदेशी आंदोलनों की बैठकों का अच्छा विकल्प बनी, जो आम जनता तक प्रभावी रूप से पहुँच बनाने और राजनैतिक जागरूकता का प्रसार करने में पूर्णतया सफल रही। जात्रा एक नैतिक लोकनाट्य के रूप में गोरे लोगों को दुष्टात्मा और श्याम वर्ण को भले चरित्र के रूप में प्रदर्शित करते हुए भारतीय क्रांतिकारियों के नायकत्व को लोगों के मन में बैठाने में भी सफल हुई। साधन संगीत, पालीसेबा, ब्रह्मचारिणी, पथ, साथी, कर्मक्षेत्र, समाज आदि कुछ लोकप्रिय जात्रा-नाट्य थे, जिन्होंने बंग-भंग के विरुद्ध जनमत को उद्वेलित करने का काम किया (चटर्जी, 1999, पृ. 45-46)।

आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक के कुछ हिस्सों में बुर्राकथा एक लोकप्रिय संगीतमय कथा प्रस्तुति लोक नाट्य है, जिसका उपयोग स्वतंत्रता आंदोलन में प्रभावी रूप में हुआ था। इस संदर्भ में चिराला-पेराला का संघर्ष (1912-1913) उल्लेखनीय है। इस संघर्ष के अनाम योद्धा

बुर्राकथा के कलाकार थे, जिन्होंने ब्रिटिश राज के खिलाफ ग्रामीणों में जनमत निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह लोक माध्यम और इसकी प्रस्तुतियाँ इतनी लोकप्रिय हो गईं कि मद्रास प्रेसीडेंसी में ब्रिटिश सरकार को इस पर प्रतिबंध लगाना पड़ा और इसका अनुसरण करते हुए हैदराबाद के सातवें निजाम ने भी 30 और 40 के दशक में इस लोकप्रिय लोक माध्यम पर प्रतिबंध लगाए (बाया, 2013)।

रामलीला और नौटंकी

उत्तर भारत के लोकप्रिय लोक नाट्य रामलीला और नौटंकी में भी स्वाधीनता संघर्ष के कथ्य अनेक रूपों में शामिल हुए। रामलीला में कुछ महत्त्वपूर्ण लीलाओं जैसे नाककटैया, भरतमिलाप आदि के अवसर पर जुलूस की परंपरा रही है। सन् 1920 और 30 के दशक में अनेक जगहों पर इन जुलूसों और झाँकियों में भारत माता की छवियाँ प्रदर्शित की जाती थीं। इन झाँकियों में जलियाँवाला बाग की घटना, महात्मा गांधी, शिवाजी और रानी लक्ष्मीबाई की छवियाँ, चरखा कातने के दृश्य आदि शामिल किए जाने लगे। कई मंचनों में तो राम, लक्ष्मण और सीता की भूमिका में सजे पात्रों को खादी के वस्त्र और रावण को विदेशी वस्त्र पहनाए जाते थे (गुप्त, 2001)। इसी तरह नौटंकी के लिए भी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अनेक नाटक लिखे गए और उनका मंचन हुआ, जिन्हें जनता ने काफी पसंद किया और उनसे प्रेरणा ली। सुभाषचंद्र बोस, बलिया के शेर (चित्तू पांडे), रानी लक्ष्मीबाई, कौमी दिलेर उर्फ भारत सपूत, अमर सिंह राठौर, वीर बालक आदि ऐसे ही कुछ नाटक हैं (सिंह, 2017), जिनका नौटंकी के रूप में विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के अनेक भागों में मंचन हुआ। नौटंकी आम लोगों के बीच एक अत्यंत लोकप्रिय नाट्य कला थी और उसके देशप्रेम से भरे नाटकों ने जनता के बहुत बड़े हिस्से को उद्वेलित किया।

शिवाजी जयंती और गणपति उत्सव

कुछ लोकप्रिय प्रभावी उदाहरणों का अगर उल्लेख किया जाए तो बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी के आंदोलनों और स्वाधीनता संघर्ष के लिए चुने गए उनके साधनों में लोक माध्यम अलग से नजर आते हैं। सही मायनों में तिलक भारत के पहले जननेता थे, जिनके पीछे हजारों लोग चलते थे। सामाजिक एकता के माध्यम से राष्ट्रीयता के विचार को पुष्पित-पल्लवित करने के उद्देश्य से उन्होंने शिवाजी जयंती और गणपति उत्सव मनाने की परंपरा प्रारंभ की। 'गणेश के सार्वजनिक उत्सव की परंपरा तिलक ने 1893 में आरंभ की। तिलक ने न केवल गणपति उत्सव की पूरी योजना बनाई, वरन् अपने 'केसरी' अखबार और अपने भाषणों से सारे महाराष्ट्र में इसका प्रचार भी किया। प्राचीन यूनान के ओलंपिक त्योहार और अन्य देशों के राष्ट्रीय पर्वों का उदाहरण देते हुए उन्होंने जोरदार शब्दों में जनता से अनुरोध किया कि वह गणपति उत्सव में पूरा सहयोग दे' (मिश्र, 2011, पृ. 148)। इसी तरह लोगों को वीरता के प्रतीक नायकों से प्रेरित करने के उद्देश्य से उन्होंने शिवाजी जयंती मनाने की शुरुआत की।

महात्मा गांधी के आंदोलन और रचनात्मक कार्यक्रमों में लोक माध्यमों की स्पष्ट और प्रभावी भूमिका दिखाई देती है। प्रभातफेरियाँ एक लोकप्रिय उपकरण थीं, जिनकी सहायता से स्वयंसेवक लोगों को सक्रिय रखते थे और जागरूक करते थे। गांधीजी के नेतृत्व में हुए आंदोलन गाँवों तक पहुँचे और इन क्षेत्रों में आंदोलनकारियों ने लोक माध्यमों का जमकर उपयोग किया। विदर्भ में जंगल आंदोलन काफी प्रभावी ढंग से चला, जिसमें ग्रामीण और आदिवासी जनता को जंगल से घास काटने के लिए जुटाने में पारंपरिक सूचना प्रणाली और ढोल आदि का प्रयोग किया जाता था। महात्मा गांधी की छवि ने देशभर के लोकगायकों और लोक कलाकारों को प्रभावित किया और उन पर अनेक लोकगीत लिखे गए।

अनेक स्वतंत्रता सेनानियों ने तीज-त्योहारों का प्रयोग किया, जिनमें विनायक दामोदर सावरकर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। पुणे के फरग्युसन कॉलेज में पढ़ते हुए उन्होंने सन् 1905 में दशहरा के दिन विदेशी कपड़ों की होली जलाई और ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भाषण दिया। इसके लिए उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। सावरकर का यह क्रांतिकारी कदम था, जिसका प्रयोग बाद में महात्मा गांधी के विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आंदोलनों में खूब हुआ। 'इस प्रकार सावरकर विदेशी कपड़ों की होली जलाने वाले पहले भारतीय बन गए' (तँवर, 2016, पृ. 21)। सावरकर के इस कदम का कई उदारवादियों ने स्वागत नहीं किया, लेकिन बाल गंगाधर तिलक ने उन्हें अपना समर्थन दिया।

लोक माध्यमों की प्रभावी भूमिका के मूल पक्ष

लोक माध्यम आजादी के संघर्ष में हमेशा ही प्रभावी रहे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के प्रतीक और उसकी सारी सूचना व्यवस्था ही लोक माध्यमों की प्रभावी भूमिका का दृष्टांत प्रस्तुत करती है। हरकारों का, घुड़सवारों का प्रयोग कर क्रांति की सूचनाएँ त्वरित गति से पहुँचाने की जो व्यवस्था क्रांतिकारियों ने अपनाई, वह मध्य काल से और उससे पहले से हमारी पारंपरिक सूचना व्यवस्था का हिस्सा थीं और इनकी सहायता से 1857 की क्रांति के संदेश भी बखूबी प्रसारित किए गए। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में रोटी और कमल के फूल को प्रतीक बनाकर सभी को जोड़ने का जो अनूठा प्रयास था, वह तरीका भी हमारी लोक संचार व्यवस्था का ही एक रूप है। हमारे आदिवासी संघर्षों में चाहे वह माँझी विद्रोह हो, सिदो-कान्हू का संथाल विद्रोह हो, बिरसा मुंडा का संघर्ष हो, आदिवासी वाद्ययंत्रों ने, पारंपरिक सभाओं ने और पंचायतों और समूहों के निर्णयों ने संघर्ष को तीव्रता दी और उसे संगठित करने का काम किया।

हमारे मेले, उत्सव, तीज-त्योहार क्रांति की मशाल को और विद्रोह के आह्वान को जन-जन तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम बने। बाद के वर्षों में सामूहिक प्रार्थनाएँ, प्रभातफेरियाँ, प्रतीकात्मक होली जलाना आदि लोक परंपरा से ही निकले उपाय थे, जिन्होंने समूचे स्वाधीनता संघर्ष को एक दिशा दी और अपढ़ और बाहर की दुनिया से अपरिचित आबादी के एक बड़े हिस्से को देश की लड़ाई का हिस्सा बनाया। यदि विचार किया जाय कि ये लोक माध्यम इतने प्रभावी कैसे हो सके तो इसके मूल में अनेक कारण दिखाई देते हैं। इनमें से अधिकांश कारण लोक माध्यमों की चारित्रिक विशेषताओं से जुड़े हैं, जिनके चलते आज भी डिजिटल मीडिया के समय में ये माध्यम जीवित, स्पंदित और लोकप्रिय हैं। लोक माध्यमों की बड़ी विशेषता उनका जमीन से जुड़ाव और सहभागी होना है। लोक की भाषा में, लोकग्राह्य प्रतीकों और कथ्य की सहायता से इनके द्वारा प्रसारित संदेश सीधे हृदय में उतरते हैं। यह शक्ति राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में बड़े काम की रही और लोक माध्यमों ने आजादी के आह्वान और स्वतंत्रता के संदेश को लोक का संदेश बनाया और उसे दूर-दराज और गाँव-गाँव तक पहुँचाया। लोक माध्यम सदियों से विकसित हुए थे और इनमें स्थानीय समाज की परंपराएँ, पूर्वजों की यादें, और उनके मूल्य

निहित थे। ऐसे में इनकी स्वीकार्यता भी बहुत थी। इन लोक माध्यमों में हमारे पौराणिक चरित्र लोकनायक और संघर्ष थे। जब इन आख्यानों और प्रस्तुतियों के साथ स्वतंत्रता के संदेश जुड़े तो उनकी प्रभावोत्पादकता और भी प्रभावी हो गई।

निष्कर्ष

सार रूप में देखा जाय तो भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को विस्तार देने में और उसे आम लोगों तक पहुँचाने में लोक माध्यमों और लोक कलाकारों ने प्रभावपूर्ण भूमिका निभाई है। देश के हर हिस्से में स्वतंत्रता के लिए हुए संघर्षों ने लोगों को अँग्रेजी शासन और उसके दमन के खिलाफ आवाज उठाने की ताकत दी और लोक माध्यमों ने इसे व्यापकता और विस्तार दिया। लोक माध्यम इस लड़ाई को समाज के निचले तबके तक और दूर-दराज, ग्रामीण और आदिवासी इलाकों तक ले गए और इस तरह देश की आजादी के लिए एक स्वर मुखरित करने का माध्यम बने। लोक माध्यम ऐसा इसलिए कर सके, क्योंकि उनका मूल चरित्र समावेशी और लोचनीय है। हमारे लोक माध्यम समाज की उपज हैं और समाज में बदलावों, नई स्थापनाओं और नए विचारों से प्रेरणा लेते हैं और उनका अपनी प्रस्तुतियों में समावेश करते हुए लोगों को जागरूक करते हैं। स्वाधीनता आंदोलन के दस्तावेजीकरण में लोक माध्यमों की इस प्रभावशीलता का उल्लेख और विश्लेषण बहुत कम हुआ है, जिस पर गंभीर और शोधपरक काम किए जाने की व्यापक संभावना मौजूद है।

संदर्भ

कु. गप्तु, एन. (2001). *द पॉलिटिक्स ऑफ द अर्बन पुअर इन अर्ली ट्वेंटिएथ-सेंचुरी इंडिया (खंड 8)*. कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

कुशवाहा, एस. सी. (तिथि नहीं). रसूल. *लोकरंग*. http://lokrang.in/?page_id=76 से पुन:प्राप्त.

चटर्जी, एम. (1999). द स्वेदशी मूवमेंट एंड बंगाली थियेटर. *गूगल स्कॉलर*.

जोफकिंस, एफ. (1992). *पब्लिक रिलेशंस*. लंदन : पिटमैन पब्लिशिंग.

जोशी. जी. (2014, फरवरी 4). लगता है बागेश्वर के उतरैणी मेले को पैसों की नजर लग गई. *नैनीताल समाचार*. https://www.nainitalsamachar.org/archive/uttaraini-mela-of-bageshwar-money-is-the-motto/ से पुन:प्राप्त.

तँवर, आर. (2016). *विनायक दामोदर सावरकर*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

दिसनायके, डब्ल्यू. (1977). न्यू वाइन इन ओल्ड बॉटल्स : कैन फोक मीडिया कन्वे मॉर्डन मैसेजस? *जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन*, स्प्रिंग 1977, पृ. 122-124.

परमार, एस. (1975). *ट्रेडिशनल फोक मीडिया इन इंडिया*. भारत : गेका बुक्स.

पांडेय, एम.के. (2019). महेंद्र मिश्र, वो क्रांतिकारी-गायक जिनके लिए तवायफों ने अपने गहने उतार दिए. द *लल्लनटॉप*. https://www.thelallantop.com/bherant/dr-m-k-pandey-writes-about-poorvi-or-poorbi-samrat-mahendra-mishra-on-his-birthday/ से पुन:प्राप्त

पाठक, वि. (2019). बनारसी पान और बर्फी ने भी लड़ी आजादी की 'लड़ाई', तवायफों ने हिला दी थी अँग्रेजी हुकूमत. *नवभारत टाइम्स*. https://navbharattimes.indiatimes.com/state/uttar-pradesh/varanasi/banarasi-paan-barfi-and-tawaifs-also-fought-the-freedom-struggle-of-india/articleshow/70659739.cms से पुन:प्राप्त

बाया, वी. (2013) । बुर्राकथा लोसेस शीन सैंस पैट्रोनेज. *टाइम्स ऑफ इंडिया*. https://timesofindia.indiatimes.com/city/visakhapatnam/burrakatha-loses-sheen-sans-patronage/articleshow/18012802.cms से पुन:प्राप्त

मनु, म.भ. (2021, 29 जून). हूल विद्रोह से जुड़े सात आदिवासी गीत और उनका भावार्थ. *फॉरवर्ड प्रेस*. https://www.forwardpress.in/2021/06/celebrating-hul-revolt-anniversary-hindi/ से पुन:प्राप्त

मिश्रा, आर. (2020). *मेला : परंपरासिद्ध जनमाध्यम*. वाराणसी: भारती प्रकाशन.

मिश्र, डी.के. (2011). *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बाल गंगाधर तिलक का योगदान*. (अप्रकाशित शोध प्रबंध) वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय.

यादव, आर. (2006). *भोजपुरी और अवधी लोकगीतों में स्वाधीनता संग्राम*. (अप्रकाशित शोध प्रबंध) वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल वि_श्वविद्यालय.

रंगनाथ, एच. के. (1976). ए प्रोब इन टू द ट्रेडिशनल मीडिया: टेलिंग द पीपल टेल दैमसेल्वस. *मीडिया एशिया*, 3:1, p. 25.

सिंह, एस. (2016). ए स्ट्रिंग ऑफ टेल्स. द *वीक*. https://www.theweek.in/theweek/leisure/subbu-armugam.html से पुन:प्राप्त

सिंह, आर. (2017). नौटंकी इन द टाइम ऑफ इंडिपेंडेंस स्ट्रगल : द टैंगल्ड हिस्ट्री ऑफ संगीत्स एंड अखारास. *रूपकथा जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी स्टडीज इन ह्यूमनिटीज, खंड- IX*, संख्या 2

http://ignca.nic.in/coilnet/utrn0022.htm

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 9-22, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जनसंचार की एक नई प्रणाली के रूप में चपाती वितरण का अध्ययन

डॉ. अमृता शिल्पी[1]

सारांश

चपाती वितरण 1857 के प्रारंभ में हुआ एक ऐसा जन संचार अभियान था, जिसके बारे में ब्रिटिश अधिकारियों, इतिहासकारों और अन्य विद्वानों ने लिखा अवश्य है, परंतु वे इसके आशय, प्रकृति और प्रयोजन के बारे में एक निश्चयात्मक प्रमाण देने से चूक जाते हैं। 1857-58 के कई ब्रिटिश प्रशासनिक ब्योरों में 'चपाती' का विशिष्ट उल्लेख मिलता है। कुछ ने चपाती वितरण को संयोग भर माना, तो कुछ ने इसे गहरे षड्यंत्र का महत्त्वपूर्ण हिस्सा। चपाती वितरण क्या मात्र एक संयोग भर था? यदि हाँ, तो यह वितरण उन्हीं क्षेत्रों में क्यों हुआ, जहाँ स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला सबसे अधिक भड़की? यदि नहीं, तो साक्ष्य और अभिलेखों में कहीं भी उस गुप्त संदेश का कोई प्रमाण क्यों नहीं मिलता, जो इन चपातियों द्वारा प्रसारित हो रहा था? क्या इस समूचे प्रकरण की अनदेखी या अनभिज्ञता, ईस्ट इंडिया कंपनी की इतनी बड़ी भूल रही कि इससे जुड़े सभी साक्ष्यों को छिपा/मिटाकर इसे मात्र एक अंधविश्वास या संयोग का रूप दिया गया? जिस चपाती वितरण का संदर्भ ब्रिटिश संसद में प्रतिपक्ष के नेता डिजरायली के संसदीय संबोधन में गंभीर रूप से आता है, उसे मात्र संयोग मानना ऐतिहासिक चूक होगी। प्रस्तुत शोध पत्र में उपलब्ध साक्ष्यों, अभिलेखों और विद्वानों के वर्णन के आधार पर यह जानने का प्रयास किया गया है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में सूचना और प्रचार का एक सशक्त और उल्लेखनीय माध्यम 'चपाती' थी या नहीं?

संकेत शब्द : चपाती वितरण, 1857 का स्वतंत्रता संग्राम, सूचना प्रसार माध्यम, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद

प्रस्तावना

ऐसे कई ब्योरे हैं, जिनमें 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व हुए चपाती वितरण को संदिग्ध रूप में देखा गया (थॉर्नहिल, 1884 तथा के., 1864-76)। गुप्त सूचना फैलाने के माध्यम के रूप में उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के षड्यंत्र का अंश माना गया (वैग्नर, 2010; कैंपबेल, 1858; मैलेसन, 1891), पर चपाती के द्वारा क्या सूचना फैलाई गई, इसके बारे में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता है (चौधरी, 1955; मजूमदार, 1957)। जिस प्रकरण ने ब्रिटिश संसद तक को हिला दिया हो, वह कोई आम घटना तो हो नहीं सकती। तो क्या प्रमाण का अभाव यह संकेत करता है कि चपाती वितरण ब्रिटिश प्रशासन और सूचना तंत्र की विफलता का परिचायक रहा? प्रमाणस्वरूप आज हम अनेक विवरणों से अनुमान लगा सकते हैं कि चपाती वितरण 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का कितना महत्त्वपूर्ण प्रकरण रहा। चूँकि इतिहास लेखन एक निरंतर प्रक्रिया है, इसलिए 1857 से जुड़े हर घटनाक्रम का पुनरावलोकन आवश्यक हो जाता है। क्या गुप्त सूचना संचरण एवं सामाजिक-राजनीतिक जनजागरण के रूप में चपाती ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई? औपनिवेशिक सोच और दास मानसिकता से ऊपर उठकर इस संपूर्ण प्रकरण का स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम के दक्ष साधन के रूप में मूल्यांकन करना आवश्यक है।

हर भारतीय के लिए स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 1857 का विशेष स्थान है। अकादमिक जगत् में इसे अलग-अलग स्वरूप में देखा गया है। कुछ विद्वान इसे सिपाहियों का विद्रोह मानते हैं, कुछ क्षेत्रीय शासकों द्वारा रचित विप्लव और कुछ इसे कृषक आंदोलन का रूप देते हैं (स्टोक्स, 1969, 1980, 1986; सेन, 1958; रिजवी एवं भार्गव, 1957-61; चौधरी, 1965; पामर, 1966; बॉल, 1857; मेटकॉफ, 1898 एवं 2010; मुखर्जी, 1984; गुहा, 1983; रे, 1994; डेविड, 2002)। प्रस्तुत आलेख में 1857 को भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम के रूप में देखा गया है, जिसमें हर क्षेत्र, हर वर्ग, हर धर्म-जाति के भारतीयों की सहभागिता रही। यह संग्राम गवाह है उस देशप्रेम का, जिसमें साधारण व्यक्तियों ने अपने नायकों के नेतृत्व में असाधारण चरित्र का परिचय दिया और अँग्रेजी शासन को हिलाकर रख दिया। 10 मई, 1857 के सैनिक विद्रोह से बहुत पहले इस संग्राम की योजना और तैयारी हो रही थी, जो अंततोगत्वा प्रशासनिक और नैतिक रूप से अँग्रेजों की बहुत बड़ी पराजय का स्वरूप रहा। इस समर का परिणाम यह था कि ईस्ट इंडिया कंपनी को निकाल बाहर कर ब्रिटेन की महारानी ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। समस्त भारत में विप्लव पैदा करने वाले इस संग्राम में कई अभिनव सूचना प्रसार माध्यमों का प्रयोग हुआ होगा, जिससे क्रांतिकारी न सिर्फ अँग्रेजों को चकमा देने में सफल हुए, बल्कि मीलों दूर तक संदेश प्रसारित भी कर पाए। अतः स्वतंत्रता संग्राम में लोक संचार माध्यमों पर शोध एवं विमर्श बड़ा ही प्रासंगिक विषय है।

वर्तमान वैश्वीकृत युग का सर्वाधिक सशक्त पहलू संचार माध्यम है। उत्कृष्ट तकनीक, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सर्वोच्च प्रदर्शन संचार माध्यमों को हर दिन बेहतर करता जा रहा है। लेकिन जिस काल की विवेचना हम कर रहे हैं वह आज से लगभग 160-170 वर्ष पूर्व का है। एक ऐसा समय जब न बिजली, न रेडियो, न टेलीफोन और न ही प्रचलित रूप से प्रकाशित समाचार पत्रों का व्यवहार था। व्यक्तिगत संवाद का माध्यम या तो हस्तलिखित पत्र या फिर मौखिक संदेश ही हुआ करते थे। आज की स्थिति से तुलना की जाए तो उस काल में लोक संचार के नाम पर ऐसा कोई भी सशक्त माध्यम नहीं था, जो लोगों तक संदेश पहुँचा सके, उन्हें

[1]सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली. ईमेल: amritashilpi7@gmail.com

जागरूक कर सके या फिर उन्हें एकत्र करके किसी जन जागरण, आंदोलन अथवा प्रदर्शन के लिए प्रेरित कर सके। ऐसी स्थिति में एक प्रश्न मन में स्वतः कौंधता है कि लोक संचार के वे क्या माध्यम रहे होंगे या फिर ऐसे कौन-कौन से अभिनव साधन रहे होंगे, जिनके कारण भारतवर्ष की जनता ने खुद को अत्याचारी, औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध बार-बार संगठित किया, साम्राज्यवादी शक्तियों से लोहा लिया, जीते-हारे, पर संघर्ष की लौ को कभी बुझने नहीं दिया। प्रस्तुत शोध पत्र में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पहले लोक संचार माध्यम के रूप में 'रोटी' या 'चपाती' वितरण की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। क्या 1857 के संग्राम में सूचना और प्रचार का एक सशक्त और उल्लेखनीय माध्यम 'चपाती' थी? या नहीं? ब्रिटिश अधिकारियों, इतिहासकारों और साहित्यकारों ने चपाती वितरण को कई रूपों में देखा है। इस विषय में उनके मत भी भिन्न रहे हैं। कुछ इसे पूरी तरह अनदेखा करते हैं, कुछ इसे संयोग मात्र मानते हैं, कुछ के लिए यह अंधविश्वास और टोटका भर रहा और कुछ ने इसे एक बड़ी योजना या 'षड्यंत्र' का हिस्सा माना (डाउंस, 2000; गुहा, 1983; मजूमदार, 1957; रिजवी एवं भार्गव, 1957-61)। मत चाहे कुछ भी हों, पर इस तथ्य पर आम सहमति है कि चपातियाँ वितरित हुईं और इनके वितरण का कालखंड 1857 के संग्राम से ठीक पहले का था (बेली, 1993, पृ. 37)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय इतिहास के एक विशेष कालखंड 1857 में घटित एक अनन्य घटनाक्रम, चपाती वितरण पर किए गए शोध पर आधारित है। इस शोध में ऐतिहासिक अध्ययन विधि का प्रयोग किया गया है। विषय बोध हेतु राष्ट्रीय अभिलेखागार और नेहरू स्मारक पुस्तकालय में उपलब्ध प्राथमिक और द्वितीयक साहित्य की समीक्षा की गई है। इंटरनेट पर उपलब्ध दुर्लभ पुस्तकों का संकलन एवं अन्य संसाधन भी कोरोना काल में पूर्ण हुए इस शोध में सहायक रहे। इस विषय पर विद्वानों-इतिहासकारों द्वारा लिखी गई पुस्तकों, ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट एवं आलेख तथा प्रत्यक्षदर्शियों एवं संग्राम से संबद्ध लोगों के बयानों के आधार पर शोध परिकल्पना एवं प्रश्नों को परखने का प्रयास किया गया है।

शोध परिकल्पना

1. 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में चपाती वितरण एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम रहा, जिसमें भारत के हर वर्ग, हर जाति, हर धर्म के लोगों ने अपनी सहभागिता की।
2. जनता को एकत्रित और जाग्रत करने में चपाती वितरण ने एक अभिनव लोक संचार माध्यम के रूप में भूमिका निभाई।

शोध प्रश्न

1. औपनिवेशिक काल में भारत में ब्रिटिश शासन, भूख और रोष का क्या संबंध था?
2. क्या चपाती वितरण एक सुनियोजित योजनाबद्ध जन संचार अभियान था, जो अँग्रेजों के विरुद्ध एक बड़े 'षड्यंत्र' का हिस्सा था?
3. चपाती जैसी साधारण खाद्य सामग्री आखिर इतनी महत्त्वपूर्ण कैसे बन गई कि उसका संचार माध्यम के रूप में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उपयोग किया गया?

इस क्रम में यह शोध पत्र चार खंडों में विभाजित है :

1. भूख, दरिद्रता, रोष और रोटी
2. चपाती जैसी साधारण भोजन वस्तु लोक संचार का माध्यम क्यों और कैसे बनी
3. देशज संचार माध्यमों से संबंधित साक्ष्य
4. लोक संचार माध्यम के रूप में चपाती वितरण का विश्लेषण

भूख, दरिद्रता, रोष और रोटी

भारत और यूरोप की राजनीतिक अर्थव्यस्था का तुलनात्मक विश्लेषण :

मोटे अनाज की बनी छोटी-मोटी चपातियाँ जो ब्रिटिश शासन के दौरान अधिकांश गरीब, भूखे भारतीयों को अकाल और भुखमरी से बचाती थीं, वे 1857 के प्रारंभ में अनायास संदिग्ध हो गईं (वैग्नर, 2010; डाउंस, 2000)। चपाती जैसी साधारण खाद्य सामग्री आखिर इतनी महत्त्वपूर्ण कैसे बन गई कि उसका संचार माध्यम के रूप में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उपयोग किया गया? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि औपनिवेशिक काल में भारत में ब्रिटिश शासन और भूख का क्या कोई संबंध था? अठारहवीं सदी के प्रारंभ से भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पतन के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ही रहे (पानंदिकर, 1921; बकनन, 1966; सिन्हा, 1946; बनर्जी, 1982; साहू, 1985;)। 1760 से 1860 के दशक तक और उसके बाद भी हर दशक में हजारों-लाखों लोग अकाल और भुखमरी का शिकार बने (भाटिया, 1967; मैक ऑलपिन, 1983; डायसन, 1989; हॉल-मैथयुस, 2005; शर्मा, 2001; अर्नाल्ड, 1993; क्लीन, 1984; दामोदरन, 2007; मिश्रा, 2013)। विद्वानों का मत है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बार-बार पड़ने वाले अकाल के कारण प्राकृतिक नहीं, बल्कि राजनीतिक थे (डेविस, 2000)। अकाल से हुई सामूहिक मृत्यु, आपद और तबाही की जिम्मेदार साम्राज्यवादी राज्यों की विचारधारा और उनकी शोषक उपनिवेशवादी एवं पूँजीवादी नीतियाँ थीं (मैक ऑलपिन, 1983; डेविस, 2000)। कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि पूर्व-औपनिवेशिक काल में जाति और संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्ध, अशक्त, निराश्रित, निर्धन आदि व्यक्तियों की देखभाल करने का दायित्व मुख्यतः समाज का था। इसमें राज्य को हस्तक्षेप करने की शायद ही कोई आवश्यकता थी। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासनकाल ने आपसी सहायता और सामाजिक एकता के इस आदर्श को पूरी तरह नष्ट करके अभावों को अकाल में परिवर्तित कर दिया (भाटिया, 1975)।

भारत की समृद्धि और संपन्नता का विस्तृत उल्लेख विभिन्न अभिलेखों और साक्ष्यों में मिलता है (सुब्रह्मण्यम, 1990, 1990a, 1994; चौधरी, 1978 पृ. 185)। आक्रमणकारियों और विदेशी लुटेरों के द्वारा बार-बार भारत पर आक्रमण और लूटपाट का भी वर्णन इतिहासकारों ने विस्तारपूर्वक किया है, परंतु किसी भी विदेशी ने इस राष्ट्र की समृद्धि,

अखंडता और आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को उस प्रकार छिन्न-भिन्न नहीं किया, जैसा यूरोपीय उपनिवेशवाद की नीतियों ने किया (दत्त, 1900, नौरोजी, 1901; टैगोर, 1960, 1978)। इनके आगमन से पूर्व जितने भी लुटेरे या आक्रमणकारी आए, वे अपनी लोलुपता की तृप्ति के पश्चात् या तो वापस अपने क्षेत्र लौट गए या फिर भारत के होकर रह गए। इस राष्ट्र की उत्प्लावकता ऐसी रही कि इसने हर आघात के बाद अपनी संपन्नता को फिर से बना लिया, परंतु, लुब्ध उपनिवेशी शक्तियों की न तो क्षुधा शांत हुई और न ही इस राष्ट्र को उन्होंने अपने शासनकाल में पुनरुत्थित होने का मौका दिया। गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता आदि कई विद्वानों का मत रहा कि इसके परिणामस्वरूप जो भारतवर्ष कभी सोने की चिड़िया हुआ करता था वह चरम दरिद्रता, सामाजिक असंतुलन और राजनीतिक अधोगति को प्राप्त हुआ। हालाँकि इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जनमानस का स्वाभिमान और आत्मा की स्वतंत्रता कभी क्षीण नहीं हुई।

उपनिवेशवाद के आशय को विस्तृत रूप से समझना आवश्यक है। ऐसे क्या कारण थे जिनकी वजह से उपनिवेशवाद की नीति यूरोपीय देशों ने अपनाई? क्यों भारत की खोज महत्त्वपूर्ण रही? क्यों यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक-सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना इन तथाकथित साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए अनिवार्य हो गया? समृद्धि से अकाल तक पहुँचने के कारण दरअसल भारत में नहीं, बल्कि यूरोप में मिलते हैं। यूरोप की राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था पर कई मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे हैं। यह बात बड़ी रोचक है कि विभिन्न मत आपस में ही अकादमिक विवाद को जन्म देते हैं। यूरोप की औद्योगिक क्रांति, जिसको आधुनिकता और विकास का परचम बनाकर, पश्चिमी सभ्यता को एक मॉडल के रूप में दिखाया जाता है, दरअसल उसका पर्दे के पीछे का स्वरूप मौरिस डॉब्ब, रोडनी हिल्टन, पॉल स्वीजी, एरिक हॉब्सबॉम आदि विद्वानों ने अपने लेखों में व्यक्त किया है।

यूरोपीय सामंतवादी व्यवस्था पूरी तरह से अयोग्य और अक्षम रही। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय सामंती अर्थव्यवस्था बड़ी ही संकट की स्थिति में थी (पोस्टन, 1966; ब्रेनर, 1976)। उत्पादकता में कमी, राजस्व की बढ़ती जरूरतें, बढ़ते हुए कर, युद्ध, धर्म-युद्ध और लूटपाट में वृद्धि, सामंतों एवं शासकों की शान-शौकत एवं फिजूलखर्ची के कारण यूरोप की सामान्य जनता अत्यंत शोषित थी। सामंती प्रथा ने प्रजा पर हो रहे शोषण को और भी बढ़ाया (स्वीजी, डॉब्ब एवं अन्य, 1976)। औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन के तरीकों को अवश्य बदला, पर सामाजिक-आर्थिक दुर्दशा को ठीक नहीं किया जा सका। एक ओर शोषक सामंती वर्ग के द्वारा यूरोप के ग्रामीण क्षेत्रों के प्रत्यक्ष उत्पादकों को लगान एवं विभिन्न प्रकार के करों से विदीर्ण किया जा रहा था। दूसरी ओर औद्योगिक क्रांति के बाद पूँजीवादी उत्पादन शैली शहरों में श्रमिकों की दुर्दशा का कारण बन रही थी। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण समकालीन यूरोपीय समाज और भी अधिक दुर्दशा का सामना कर रहा था (मैनिंग, 1976)। इन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का सीधा संबंध यूरोपीय राज्य व्यवस्था से था। इंग्लैंड और फ्रांस में बड़े स्तर पर केंद्रीकृत राज्य विकसित हुए जो किसानों और जमींदारों के बीच हस्तक्षेप करते और काफी मात्रा में अधिशेष ऐंठने में कार्यरत रहते। इंग्लैंड का राष्ट्रीय केंद्रीकृत शासन तंत्र वास्तव में सामंत वर्गों पर ही निर्भर था। राज्य के समर्थन से सामंत वर्ग ने लगान और आर्थिक दंड बढ़ाए, जमीन मालिकों से प्रतिरोध को दबाया, किसान अपनी भूमि छोड़ने को मजबूर हुए और अंततः उद्योगों में मजदूरी करने को विवश हुए (थॉम्पसन, 1975; ब्रेनर, 1976)। उद्योगों को बढ़ाने के लिए संसाधन और फैक्ट्रियों में बनी वस्तुओं के लिए बाजार ऐसे दो कारण थे, जिनकी वजह से विश्व में और भी क्षेत्रों को ढूँढ़ निकालने का दबाव राज्य और व्यापार दोनों पर पड़ा। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दबाव के कारण समस्त यूरोपीय देश नई जगहों की खोज में निकल पड़े थे। ध्येय था लूटपाट और धर्मांतरण, चाहे जिस भी तरह हो।

इसी कालखंड में भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति की समीक्षा करें तो साक्ष्यों से पता चलता है कि भारतवर्ष कंधार से दक्षिण पूर्व एशिया, हिमालय से भारतीय महासागर तक व्यापार का केंद्र था (मुखर्जी, 1967; फ्रैंक, 1996)। हर क्षेत्र की शासन व्यवस्था अधिकांशतः कार्यकुशल एवं सशक्त थी। आर्थिक रूप से भारत प्राचीन काल से ही रेशम, मसालों एवं कई और वस्तुओं के व्यापार और विनिमय का केंद्र रहा (मुखर्जी, 1915)। भारत भ्रमण पर आए यात्रियों के विवरण, विदेशी आक्रमणकारियों के वृतांत या फिर उस समय के शासकों के राजकीय अभिलेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। कृषि और व्यापार दोनों ही क्षेत्रों में भारत समृद्ध था और लोकप्रिय किस्सों में भारत का संदर्भ 'सोने की चिड़िया' के रूप में दिखाई देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुल मिलाकर भारत उस कालखंड में संपन्न और समृद्ध राष्ट्र था, जबकि यूरोप में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से अराजकता फैली हुई थी और विभिन्न क्रांतियों के उपरांत समाज और उत्पादन व्यवस्था को संतुलित करने का प्रयास जारी था। ऐसे में भारत जैसी जगह यूरोपीय राज्यों के लिए किसी सोने-हीरे की खान से कम न थी। जितना खोदते उतना फायदा होता, परंतु भारत में पैठ बनाना उम्मीद से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण और कठिन साबित हुआ। फलस्वरूप सबसे आसान तरीका, जो यूरोपीय ताकतों ने अपनाया भी, वह था सामाजिक विघटन, आर्थिक नियंत्रण (जिसमें भारतीय उद्योगों का प्रतिबद्ध तरीके से खात्मा एक बड़ी योजना थी) और राजनीतिक प्रभुत्व, ताकि समय-समय पर बल एवं कानूनों द्वारा अपना वर्चस्व कायम रखा जा सके। उपनिवेश शासनकाल में पहली बार भारत में ऐसा हुआ कि सुनियोजित तरीके से भारत की अर्थव्यवस्था को तार-तार कर दिया गया। कृषि-उत्पाद का इस्तेमाल लगान उगाही एवं यूरोपीय उद्योगों के लिए संसाधनों की पूर्ति के लिए हुआ। वहीं दूसरी तरफ विदेशी उत्पादों के लिए बाजार को बनाने हेतु भारत के निजी उद्योगों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। किसान और कारीगर मजदूर बन गए और एक समय विश्व व्यापार पटल का चमकता सितारा भारत अपने लोगों की भूख शांत करने के लायक भी न रहा। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन दिहाड़ी मजदूरों का एक अलग वर्ग उभरा और बाद के दशकों में इनकी संख्या में कई गुना बढ़ोतरी हुई (भाटिया, 1975: पृ. 575-594)। समय-समय पर अँग्रेजों की शोषक नीतियों के विरोध में हुए किसान, जनजाति विद्रोह इस बात के प्रमाण हैं कि भारत के आम नागरिकों का रोष दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था (चौधरी, 1955)।

दाने-दाने को तरसते लोगों को बाँधने में भूख की बड़ी भूमिका रही।

भूख, दरिद्रता और रोष का परिचायक रही रोटी। नाना साहेब और अन्य अधिनायकों ने संदेश पहुँचाने का इसे एक अभिनव साधन बनाया। आने वाले खंड में चपाती वितरण की प्रक्रिया और साक्ष्यों का विस्तृत वर्णन है।

चपाती जैसी साधारण भोजन वस्तु लोक संचार का माध्यम क्यों और कैसे बनी ?

1857 में चपाती का गुप्त वितरण

(*स्रोत: कैंपबेल. कॉलिन नैरेटिव ऑफ दी इंडियन रिवोल्ट फ्रॉम इट्स ऑउटब्रेक टू दी कैप्चर ऑफ लखनऊ* (लंदन, 1858). *पृ 3*)

चपाती जैसी साधारण वस्तु भला संदेश वाहक कैसे हो सकती है? चपाती वितरण आखिर संचार का माध्यम कैसे हो सकता है? इंदौर से इटावा तक; अलीगढ़, मेरठ, मथुरा होते हुए दिल्ली तक; नरसिंहपुर, जबलपुर, सागर और नौगाँव, बाँदा, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, बदायूँ आदि में चपाती के चक्कर की सूचना ने ब्रिटिश प्रशासन को पूरी तरह से संभ्रमित कर दिया था (वैग्नर, 2010, पृ. 62-77)। कई इतिहासकारों और ब्रिटिश अधिकारियों का कथन है कि चपाती में न तो कोई गुप्त संदेश छिपा मिला न ही वितरण की प्रक्रिया को शासनाधिकारियों से छिपाने का प्रयास किया गया (थॉर्नहिल, 1884, पृ. 2)। अंधविश्वासों से ग्रस्त इस देश की जनता ने कई बार कई प्रकार के ऐसे टोटकों का इस्तेमाल महामारियों को रोकने या भगाने के लिए किया (केव-ब्राउन,1861 पृ. 1-2)। तो फिर 1856-57 में वितरित हुई चपातियों को लोक संचार माध्यम कैसे माना जा सकता है?

पर्याप्त साक्ष्यों और और गवाहों के अभाव में चपाती वितरण को क्या मात्र एक रहस्यमय संयोग माना जाए? यह मत अधिकांशतः उपनिवेशी सोच से मंत्रमुग्ध उन विद्वानों या अँग्रेज अधिकारियों का है, जो 1857 के संग्राम को मात्र एक सैनिक विद्रोह मानते हैं। साथ ही इस संभावना को भी नकारते हैं कि यह भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था और योजनाबद्ध तरीके से पूरे देश में संयोजित हुआ। जॉन लॉरेंस (मजूमदार, 1957, पृ. 210-11), जो काफी समय तक ईस्ट इंडिया कंपनी में कार्यरत थे और 1864 से 1869 तक भारत के वायसराय भी रहे उनका कहना है—"यदि इस देश में सच में कोई षड्यंत्र था और वह षड्यंत्र सेना तक पहुँचा, तो इस बात की यथोचित व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है कि जो लोग हमारे पक्ष में थे उनमें से कोई भी हालात से अवगत नहीं था? हमारे समर्थकों की संख्या विरोधियों की तुलना में चाहे जितनी कम हो, पर वास्तविक संख्या काफी थी। ये लोग हर आजमाइश में खरे उतरे, कुछ ने तो हमारे पक्ष में लड़ते हुए अपनी जान भी दे दी। इनमें से किसी ने भी किसी षड्यंत्र का कभी कोई जिक्र नहीं किया। षड्यंत्रकारियों ने, जिन्होंने अपने पाप का प्रायश्चित जान गवाँ कर किया, मेरी जानकारी के अनुसार कभी इस बात को नहीं स्वीकारा, जो कि निस्संदेह उनकी जान बचा सकता था।" मेटकॉफ (1995, पृ. 224) ने अपनी पुस्तक 'द न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में लिखा है कि ब्रिटिश अधिकारियों का दावा रहा है कि 'विद्रोह' का कारण मुख्यतः चर्बी वाली गोलियों से पनपी उत्तेजना थी। अधिकारियों का दृढ़ विश्वास था कि जनता उनके पक्ष में थी और यह विद्रोह अंधविश्वासी सिपाहियों के बीच जातिगत मुद्दों पर मची मूर्खतापूर्ण भगदड़ के सिवा और कुछ भी नहीं था।

1857 के संग्राम के कुछ भारतीय प्रत्यक्षदर्शियों का भी यही मत है कि यह पूरा प्रकरण एक सैन्य विद्रोह था, जिसे दुर्घटना या विश्वासघात के रूप में देखा जाना चाहिए। सैयद अहमद खान ने विस्तार से इस बारे में अपनी किताब 'असबाब-ए-बगावत-ए-हिंद' (1858) में लिखा है (रावत, 2007, पृ. 20-23)। कॉल्विन और ग्राहम ने बाद में इस किताब का अनुवाद किया, शीर्षक था—द कॉसेस ऑफ इंडियन रिवोल्ट। यह किताब ब्रिटिश सांसदों को क्रांति के वास्तविक कारणों से अवगत कराने के लिए लिखी गई थी। खान का मत था कि यह गदर न तो कोई राष्ट्रीय आंदोलन था न ही किसी योजना के परिणामस्वरूप हुआ। यह सैनिकों की अवज्ञा का फल था, जो विद्रोह की भावना से नहीं, बल्कि धार्मिक पूर्वाग्रहों और अज्ञानता से ग्रसित होकर उन्होंने किया था। अपनी एक और किताब 'सरकशी-ए-जिला बिजनौर' (मेमॉयर ऑफ दी रिबेलियन इन डिस्ट्रिक्ट बिजनौर) में सैयद अहमद खान यहाँ तक कहते हैं कि 'इस पूरी अशांति का कारण भारतीयों की अँग्रेजों के प्रति कृतघ्नता है' (रावत, 2007, पृ. 20-23)। ऐसे में चपाती वितरण जैसी दीर्घकालिक गतिविधि को एक सोचा समझा योजनाबद्ध आंदोलन मानना तो असंभव प्रतीत होता है।

आर. सी. मजूमदार (1957, पृ. 210) जैसे इतिहासकार मानते हैं कि संग्राम के योजनाबद्ध या षड्यंत्र होने के पर्याप्त सबूत नहीं मिलते। मजूमदार लिखते हैं—"हमने देखा कि बहादुर शाह कोई भी ऐसा षड्यंत्र रचने में अक्षम थे। इस बात का रत्ती भर भी सबूत नहीं मिलता कि फारस या रूस ने अट्ठारह सौ सत्तावन की इस महान क्रांति में भाग लिया होगा। जहाँ तक नाना साहेब की बात है तो उनके षड्यंत्र रचने का समर्थन करता कोई भी सबूत बेहद कमजोर है और उसकी अविश्वसनीयता इतनी अधिक है कि कोई भी आलोचनावादी इतिहासकार इस बात की अवधारणा भी नहीं करेगा। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई या कुँवर सिंह जैसे तथाकथित षड्यंत्रकारियों का संभवतः ऐसे किसी षड्यंत्र से कोई लेना-देना नहीं था। हम मौलवी अहमदुल्लाह अथवा अवध के नवाब या बेगम के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं जानते हैं, जो यह विश्वास दिला सके कि उनमें या तो ऐसी क्षमता थी या उन्हें अखिल भारतीय षड्यंत्र रचने का कोई अवसर मिला होगा।" चपाती वितरण के बारे में उनकी टिप्पणी है—"1856 -57 में एक बड़े स्तर पर चपाती वितरण जरूर एक पुख्ता और व्यापक व्यवस्थापन की ओर इशारा करता है, पर जब तक इस संचरण का अभिप्राय नहीं मालूम पड़ता तब तक वर्तमान संदर्भ में इसका कोई मूल्य नहीं है" (मजूमदार,

1957, पृ. 209)।

अगला प्रश्न यह है कि क्या सूचना तंत्र के रूप में व्यावहारिक तौर पर चपाती का संचार हुआ? क्या इसके माध्यम से कई अर्थ व्यक्त हुए और समाज में एक चेतना फैली? या फिर यह मात्र एक कोरा संदेश था? एक बार फिर हमारे समक्ष कई विवरण आते हैं।

क्या चपाती वितरण महामारी भगाने का एक टोटका या एक कोरा संदेश था?

19वीं शताब्दी में महामारियों का प्रकोप समूचे भारत में फैला हुआ था (रसल्ल, 1925; रोजर्स, 1927; रामसुब्बन, 1988)। लाखों लोग हैजा, चेचक आदि महामारियों के फैलने से काल के गाल में समा गए थे। विद्वानों का मत है कि भारत में महामारी को न सिर्फ स्वास्थ्य संकट के रूप में देखा जाना चाहिए, बल्कि इसके फैलने और रोकथाम के तरीकों का सांस्कृतिक-सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ भी है। उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि 1865 से 1947 के बीच हैजा से लगभग 2.3 करोड़ भारतीयों की मौत हुई। 1817 से 1821 के बीच भारत में हैजा अत्यंत भयावह रूप में फैला (अर्नाल्ड, 1986, ने समकालीन ब्रिटिश स्वास्थ्य रिपोर्टों का विस्तृत ब्योरा अपने लेख में प्रस्तुत किया है)। 1831 में एक फ्रांसीसी डॉक्टर मोरियो दे जोंस (अर्नाल्ड, 1986, पृ.120) ने आँकड़े इकट्ठा किए, जिससे पता चलता है कि उस समय तक भारत की जनसंख्या का दसवाँ हिस्सा हैजा से प्रभावित हो चुका था और 1/16वाँ हिस्सा काल के गाल में समा चुका था। मोरियो के अनुमान के अनुसार 1817 से 1831 की अवधि में औसत वार्षिक मृत्यु दर लगभग 12.5 लाख की रही और कुल 1.8 करोड़ लोगों की इससे मृत्यु हुई। कुछ अन्य विद्वानों के आँकड़े इससे भी कहीं अधिक मृत्यु दर का दावा करते हैं। महामारियों के प्रकोप ने भुखमरी की निरंतर होती समस्याओं को और बढ़ा दिया। इसके अलावा कुछ विद्वानों का कहना है कि हैजा और ब्रिटिश राज के फैलने का भी संबंध लोगों के मन में रोष और घृणा भरता गया। 19वीं सदी की पहली महामारी भारत में ब्रिटिश विस्तारवाद के सबसे सक्रिय और निर्णायक चरण में फैली। 1817 के हैजा फैलने के समय ब्रिटिश 60 वर्षों से बंगाल में अपनी जड़ें जमा चुके थे और उत्तर-दक्षिण में अपना शासन फैला रहे थे। 1818 के जुलाई-अगस्त माह में जब फिर महामारी फैली तो उस समय मराठा और सिख साम्राज्य को अँग्रेजों ने पराजित किया (अर्नाल्ड, 1986, पृ. 126)। इसे एक तरह से ब्रिटिश आधिपत्य के विरुद्ध दीर्घकालीन सैनिक विरोध का अंत समझा गया। सामान्य जनता और सैनिकों के लिए और ब्रिटिश विस्तारवाद के बीच का संबंध अमंगलसूचक रहा।

इसके अलावा एक साझा धारणा यह भी रही कि हैजा की उत्पत्ति के जिम्मेदार अँग्रेज थे (अर्नाल्ड, 1993)। उन्होंने हिंदू धर्म द्वारा वर्जित कई मान्यताओं का उल्लंघन किया, साथ ही प्रथाओं के साथ छेड़छाड़ की। हैजा या चेचक जैसी महामारियों को उनके अनुपात एवं प्रकृति और पारंपरिक चिकित्सा के अप्रभावी होने के कारण दैवीय क्रोध व अप्रसन्नता के रूप में भी देखा गया। यही कारण था कि दैवीय शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए समय-समय पर या फिर महामारी के खात्मे की प्रत्याशा में उसे रोकने के लिए टोटकों का प्रयोग, अनुष्ठान या बलिदान भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में नियमित अंतराल पर देखा गया। उदाहरणस्वरूप 1818 में मुंबई प्रेसीडेंसी के ठाणे जिले में दो भैंसों को अजीब तरह से रँगकर गाँव-गाँव घुमाने की सूचना मिली। पूछताछ करने पर पाया गया कि हैजा महामारी को दूर करने के लिए गाँववालों ने यह किया था (अर्नाल्ड, 1993, पृ. 177)। उसी वर्ष इंदौर में चपातियाँ बाँटी गईं। मुंबई के गवर्नर जॉन मैलकम (1823) ने जयपुर से दक्कन तक नारियल बाँटने की घटना का विवरण दिया है, जिसके बारे में बाद में पता चला कि जयपुर के किसी ब्राह्मण ने पुत्र पैदा होने पर वह नारियल खुशी में बाँटे हैं।

संग्राम के बाद भी इस प्रकार टोटके के रूप में बाँटने या प्रसारित होने के दृष्टांत मिलते हैं। 1858 में छिंदवाड़ा जिले के गाँव-गाँव में गेरुआ रंग की पताका में एक नारियल, एक सुपारी और एक पान का पत्ता बाँधकर घुमाया गया (मजूमदार,1957, पृ. 209)। 1860 के अप्रैल माह में अधिकारियों को घूरे के प्रचलन की सूचना मिली। घूरे में 215 पैसे, 160 कौड़ियाँ, धातु के बने 27 छल्ले और थोड़ा तंबाकू रखकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान के 90 सीमावर्ती गाँवों में घुमाया गया था। छानबीन पर पता चला कि यह फिर से हैजा से निपटने का तरीका था। हालाँकि अधिकारियों को सचेत रहने और तत्काल रिपोर्ट करने के आदेश मिल गए (अर्नाल्ड, 1986, पृ. 133)। तत्कालीन समाज में प्रचलित अंधविश्वास और महामारी के संदर्भ में कई विद्वान यह मानते हैं कि चपाती का वितरण आरंभिक रूप में टोटके की तरह ही हुआ, पर बाद में इससे कई मतलब जोड़े गए और अंततः यह एक रिक्त संदेश की तरह काफी समय तक वितरित होती रही। चपातियों का वितरण अँग्रेजों के प्रति भारत की जनता के बीच व्याप्त अविश्वास और भयाकुलता का लक्षण मात्र हो सकता है (गुहा, 1983, पृ. 238-46)। कई जगहों पर लिखा गया है कि चपाती संचरण की कोई सार्थकता नहीं है। यह समाज की आशंकाओं का प्रतिबिंब तो हो सकता है, पर 1857 के संग्राम का कारण नहीं।

क्या चपाती की अन्यत्रता ही उसकी विशेषता बनी?

क्या यह तर्क सही है कि कूटभाषा या संकेत लिपि के अभाव में चपाती का वितरित किया जाना संयोग मात्र हो सकता है? क्योंकि चपाती वितरण की गति, मार्ग की सुनिश्चितता (संग्राम का उपरिकेंद्र वे ही क्षेत्र थे, जिस मार्ग से चपाती वितरत हुई) और गवाहों एवं अधिकारियों के दृष्टांतों का एक ही दिशा की ओर संकेत साबित करता है कि यह पूरी प्रक्रिया सुनियोजित योजनाबद्ध आंदोलन का हिस्सा रही। उपनिवेशी सोच से प्रभावित ब्रिटिश अधिकारियों, इतिहासकारों और लेखकों का दृढ़ विचार रहा कि भारतवर्ष की जनता ऐसी अभिनव, संगठित और विलक्षण योजना को फलवती कर ही नहीं सकती। भूखे, निर्धन, धर्म-जाति में बँटे, अँग्रेजी ज्ञान से वंचित अंधविशवासी लोग ब्रिटेन जैसे महासाम्राज्य को उखाड़ फेंकने की योजना भला फलीभूत भी कैसे कर सकते थे? इस दंभ और अतिविश्वास का फल था कि ब्रिटिश अधिकारियों को 1857 में मुँह की खानी पड़ी। ब्रिटिश अधिकारी चपाती वितरण को लेकर इस कारण भी भ्रमित रहे, क्योंकि समय-समय पर चपाती, नारियल या किसी वस्तु का वितरण किसी अमंगल या अनिष्ट को दूर करने के लिए भी किया जाता था। उदाहरण के तौर पर नीमच में 1854 और 1857 में फैले हैजे को थामने के लिए कुत्तों को व्यापक रूप से चपाती खिलाने की घटना का उल्लेख है। 1857 में अवध में बीमारी फैलने पर चपाती वितरित की गई। 1857

में ही जहाँ दक्षिण दिल्ली में बकरी के माँस के साथ चपातियों का वितरण हुआ, वही बंगाल में मटके में बैंगन के फूल डालकर उसे चारों ओर घुमाया गया (वैग्नर, 2010, पृ. 65)। कहने का मतलब है कि आस्था अथवा अंधविश्वास के फैलने के माध्यमों का प्रयोग बड़ी ही विलक्षण सोच के साथ क्रांति के संचार के लिए किया गया।

क्या चपाती वितरण क्षेत्र की सुस्पष्टता, गति की तीव्रता और गोपनीयता इसके योजनाबद्ध होने का प्रमाण नहीं है?

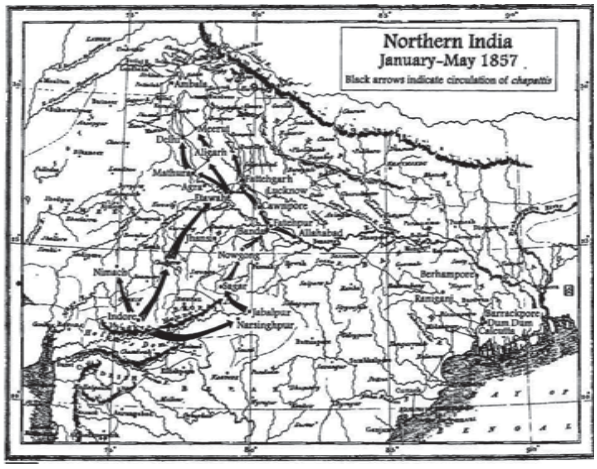

(स्रोत : वैग्नर : 2010. मैप xxx)

चपाती वितरण की प्रक्रिया बड़ी ही रोचक थी। गाँव-गाँव में चौकीदारों के हाथ से इनका वितरण बड़े ही युक्तिपूर्ण तरीके से हुआ। एक चौकीदार 10 चपातियाँ बनाकर बगल के 5 गाँव के चौकीदारों को 2-2 चपातियाँ देता। चपातियों की संख्या 2 से 5 हो सकती थी। क्रमशः उस गाँव के निकट के अन्य पाँच-पाँच गाँवों में उसी तरह 2-2 चपातियाँ वितरित करनी थीं (वैग्नर, 2010; मजूमदार, 1957, पृ. 207)। वितरण की गति के बारे में कहा गया है कि ये चपातियाँ एक रात में 160 से 200 मील तक पहुँचाई जा सकती थीं (रिजवी एवं भार्गव, 1957-61)। विशेषज्ञों का मानना है कि 100 मील प्रति रात्रि की गति से अधिक वेग होना संभव नहीं था (रिजवी एवं भार्गव, 1957-61; के, 1864-76)। आँकड़ों का खेल चाहे जो भी हो, लेकिन 'द फ्रेंड ऑफ इंडिया' समाचार पत्र (5 मार्च, 1857) के अनुसार जिस वेग से इन चपातियों का वितरण हुआ वह किसी भी भारतीय डाक के लिए तो असंभव था। यह बहुत लंबा चला।

गति के साथ-साथ चपाती वितरण की गोपनीयता भी दृष्टांत के योग्य रही। चपाती वितरण करने वाले व्यक्ति को इसके स्रोत का या प्रयोजन का पता ही नहीं होता था। यह बड़ी ही रोचक बात है कि जिस सटीक मार्ग एवं गति से इसका वितरण हुआ, उसके लिए बिना कुछ जाने इतने व्यक्ति शामिल हुए और लक्ष्य की पूर्ति भी की। अलग-अलग स्थान, जो कि एक-दूसरे से सैकड़ों मील दूर थे; जैसे—नीमच, इंदौर, सागर, फतेहपुर, शाहजहाँपुर, दिल्ली आदि—इन स्थानों से जब चपाती बँटने की खबरें आईं तो ब्रिटिश शासन में खलबली मच गई (वैग्नर, 2010, पृ. 65)। एक भारतीय पुलिस अधिकारी को दिल्ली में छानबीन करने के लिए भेजा गया तो उसे किसी भी सवाल का जवाब न मिला। जैसे ये चपातियाँ कहाँ से आईं, उनका उद्देश्य क्या है? (मेटकॉफ, 2010 : मैनुद्दीन की गवाही)। सूचना के अभाव में अँग्रेजों ने अटकलें लगानी शुरू कर दीं और सबसे आसान अर्थ, जो वह निकाल सके, वह था अंधविश्वास और बीमारियों से भगाने के तरीके (केव-ब्राउन, 1861)। इस तरह की सफाई, जिसमें 'शुतुरमुर्ग की तरह रेत में गर्दन दबाने के पश्चात् निश्चिंत हो जाना कि बवंडर नहीं आ रहा', शायद संग्राम के आयोजनकारों के लिए भी उत्तम था। जितनी निश्चिंतता के साथ अँग्रेज हर सूचना-संचार को नजरअंदाज करते, उतनी ही सहजता के साथ योजना पूर्ण होती।

क्या विशेष प्रयोजन के सृजन और प्रचार के रूप में चपाती का संचार हुआ?

पूरे देश में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा चपाती वितरण के वृत्तांत मिलते हैं। निमाड़ जिले के अधिकारी कैप्टन आर. एच. कीटिंग (के, 1864-76; डनलप, 1858) का मंडलेश्वर में चपाती वितरण का लिखित प्रमाण मिलता है। उनका प्रलेख कहता है कि वितरण की सूचना उन्हें मिलने तक निमाड़ में लगभग हर जगह से चपाती आ चुकी थी। आगमन की दिशा इंदौर की ओर बताई जा रही थी। उस समय निमाड़ में जबरदस्त हैजा फैला था, जिससे हर दिन कई व्यक्तियों की मृत्यु हो रही थी। निमाड़ के निवासियों का मानना था कि यह महामारी फैलाने के लिए इंदौर में किया गया कोई जादू टोना जिम्मेदार था। वैसे निमाड़ में ऐसी वस्तुओं का वितरण कोई अपरिचित व्यवहार नहीं था। एक गाँव में जब भी चेचक फैलता है तो गाँव से एक बकरी के गले में नारियल बाँधकर अलग-अलग गाँवों में ग्रामीणों द्वारा मनदाता (मंदिर) पहुँचने तक उसे घुमाया जाता है। ग्रामीणों द्वारा उसका शहर में प्रवेश वर्जित होता है। ग्रामीणों के इस अंधविश्वास का कारण मनदाता मंदिर में हजारों यात्रियों की आवाजाही था, जिसके कारण जिले में महामारी फैलती थी।

1857 की जनवरी का ही एक और दृष्टांत मथुरा के मजिस्ट्रेट के विवरण में भी मिलता है—"एक दिन जब मैं अपने ऑफिस आया तो मैंने अपने टेबल पर चार छोटी-छोटी रोटियाँ रखी देखीं, बिस्कुट के आकार और मोटाई की चार सबसे मोटे अनाज की बनी गंदी रोटियाँ। एक व्यक्ति ने गाँव के चौकीदार को एक ऐसी रोटी इस आदेश के साथ दी कि वह चार और ऐसी ही रोटियाँ बनाए और बगल के गाँवों के चौकीदारों में बाँट दे। और उन्हें भी यही करने को कहे। चौकीदार ने बात तो मान ली, पर पुलिस को सूचना भी दे दी। अगले दिन जिले के दूसरे क्षेत्रों से भी ऐसी ही रिपोर्ट आई और फिर हमने समाचार पत्रों से जाना कि समूचे उत्तर भारत में इस प्रकार रोटियाँ वितरित की जा रही हैं" (थॉर्नहिल, 1884, पृ. 2)।

कॉलिन कैंपबेल अपनी 1858 में प्रकाशित पुस्तक में लिखते हैं—"कानपुर (Cawnpore) का एक चौकीदार दौड़ता हुआ फतेहगढ़ (Fytteyghur) के दूसरे चौकीदार को दो चपातियाँ देता है। यह अपाच्य और बेस्वाद चपातियाँ गरीब वर्ग का साधारण भोजन हैं। वह (चौकीदार) दूसरे को दस और चपातियाँ बनाकर इसी प्रकार पाँच गाँवों के चौकीदारों को दो-दो चपातियाँ वितरित करने का निर्देश देता है। इसका पालन होता है और कुछ ही समय में पूरा देश चपातियाँ लिए भागते चौकीदारों की हलचल से व्याकुल हो उठता है। जिस वेग से यह लहर प्रांत-दर-प्रांत फैली वैसी गति किसी भी आधिकारिक आदेश की कभी न रही। सारे मजिस्ट्रेट विवश थे और किसी को भी इसके आशय का अंदाजा न था। कुछ इसे हैजा भगाने की धर्म-क्रिया समझ रहे थे, कुछ इसे विश्वासघात मान रहे थे

('टाइम्स कोलकाता' के एक संवाददाता के अनुसार एक स्थानीय अफसर का यह मत था), कुछ इसे मजाक मान रहे थे। 'टाइम्स कोलकाता' के इस संवाददाता का भी यही मत था कि कुछ मूर्ख धनवान लोग कोलाहल मचाने की चाहत में यह बात फैला रहे थे। हालाँकि यह साबित हो गया कि यह किसी मूर्ख का काम नहीं था और न ही कोई मजाक। डिजरायली कहते हैं कि यह चपातियाँ विद्रोह के लगभग बारह महीने पहले से वितरित हो रही थीं। उस स्थिति में हम संदेह मात्र ही कर सकते हैं कि सरकार इतनी महत्त्वपूर्ण कार्यवाही से अनभिज्ञ थी, या फिर यदि अनभिज्ञ नहीं थी तो उसने इसके अर्थ की उपेक्षा की" (कैंपबेल, 1858, पृ. 4)। चपाती के बारे में कैंपबेल आगे कहते हैं कि यह अत्यंत प्राचीन चिह्न है। मकई और कमल के बीज की रोटी बनाकर मिश्र निवासी ईसिस देवी को अर्पण करते थे। यह उर्वरता और विपुलता की देवी है।

हर ब्रिटिश अधिकारी ने इस सूचना को संयोग या मजाक के रूप में नहीं लिया। दिल्ली में थियोफिलस मेटकॉफ (वैग्नर, 2010) ने ऐसे वितरण को निर्दोष और टोटका मात्र होने के तर्क को सिरे से खारिज कर दिया। उनकी जाँच ने इंगित किया कि चपातियाँ बस उन्हीं क्षेत्रों में वितरित की गईं जहाँ कंपनी का आधिपत्य था। जाहिर है उनका यह मत रहा कि इस वितरण प्रक्रिया के पीछे ब्रिटिश विरोधी उद्देश्य था। मेटकॉफ और कुछ अन्य अधिकारियों की पूरी कोशिश रही कि इस वितरण प्रक्रिया को रोक दिया जाए, फिर भी यह मेरठ तक पहुँच ही गई। चपाती का संदर्भ 10 मई, 1857 के बाद अचानक बदल गया। एक नए रूप में इस पूरे घटनाक्रम का विश्लेषण हुआ और पाया गया कि इस घटना के संचालन में जबरदस्त समन्वय और नियोजन रहा और अधिकारियों को भनक भी न लगने पाई। ब्रिटिश अधिकारियों ने क्षेत्र की समझ रखने वाले अनुभवी स्थानीय अधिकारियों की चेतावनी को अनदेखा किया। कई लोग इसे 'षड्यंत्र के सिद्धांत' के रूप में भी देखते हैं। इनमें प्रमुख नाम आता है कर्नल जी. बी. मैलसन का। अपनी पुस्तक 'द इंडियन म्युटिनी ऑफ 1857' में मैलसन लिखते हैं—"अट्ठारह सौ सत्तावन की घटनाएँ, जो कि तत्क्षण प्रतीत होती हैं, वास्तव में कहीं अधिक भयावह थीं।'' उन्होंने यहाँ तक कहा है—"जो लोग उस ड्रामे में शामिल थे, वे मरते दम तक नहीं समझ पाएँगे कि यह एक विद्रोह नहीं था जिसका उन्हें सामना करना था, बल्कि यह एक सुविस्तृत षड्यंत्र था, जिसके धागे व्यापक रूप से फैले हुए थे" (के. एवं मैलसन, 1888-89, पृ. 33)। मैलसन एक स्थानीय मुखबिर की गवाही को आधार मानते हुए फैजाबाद के एक मौलवी अहमदुल्लाह (जो कि संग्राम का अगुवा था) के बारे में लिखते हैं—"इस बात पर कम ही संदेह है कि यह व्यक्ति इस षड्यंत्र का दिमाग और बाजू था। अपनी यात्राओं के दौरान इसने एक योजना बनाई जो कि चपाती योजना के रूप में जानी गई....जब ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत कार्यरत सशस्त्र व्यक्तियों को प्रभावित करने के तरीके इतने परिपक्व रहे कि पूर्व निर्धारित दिन पर सारे एक साथ उठ खड़े होंगे, उत्तर पश्चिमी प्रांतों की ग्रामीण जनसंख्या को चपाती वितरण के माध्यम से सूचित कर दिया जाएगा कि पहला अनुकूल अवसर मिलते ही एक महान विद्रोह होगा" (मैलसन, 1891, पृ.18)।

इस संग्राम के पश्चात् सैकड़ों वृत्तांतों, चरित्र-रचनाओं और कथाओं में षड्यंत्र और गुप्त संकेतों का उल्लेख मिलता है। कुछ चपाती वितरण को काल्पनिक मानते हैं, कुछ इसे 'संग्राम रूपांकन' के रूप में देखते हैं और कुछ मानते हैं कि यह मात्र टोटका भर था। एक और सरकारी दस्तावेज चपाती प्रकरण को बिल्कुल नई व्याख्या प्रदान करता है। 'ट्रायल ऑफ मोहम्मद बहादुर शाह' (नय्यर, 2007) में सीताराम बावा की आत्म-स्वीकृति का संदर्भ है, जिसमें कहा गया है—"जिन चपातियों की बात की गई है, वे वास्तव में एक जादू या टोटका थीं, जिनकी उत्पत्ति दस्सा बावा से हुई। उन्होंने नाना साहेब को यह कहा था कि वे एक जादू करेंगे और जितनी दूर तक यह रोटियाँ जाएँगी उतनी दूर तक लोग उनके साथ खड़े होंगे। उसके बाद उन्होंने कमल का सरकंडा और मखाना लिया और उसकी एक प्रतिमा बनाई। फिर उस प्रतिमा के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करके असंख्य रोटियाँ बनाईं और यह टुकड़े उनमें डाल दिए। जितनी दूर तक ये रोटियाँ आ जातीं, उतनी दूर तक लोग कंपनी राज को उखाड़ फेंकने का निश्चय कर लेते" (सेन, 1958, मजूमदार, 1957)।

भारतीय सिपाहियों में भी चपाती वितरण की खबर एक अलग संदेश के रूप में पहुँची। एक ब्रिटिश अधिकारी का ब्योरा इस प्रकार है—"मैंने उनसे पूछा कि इस संदर्भ में उनकी क्या समझ है और किसके द्वारा इनका वितरण हो रहा है; उन्होंने बताया कि ये बिस्कुट के आकार-प्रकार की थीं और सरकार के आदेश पर इनका वितरण लोगों को यह समझाने के लिए हो रहा था कि उन्हें एक तरह का भोजन ही अब खाने को मिलेगा और यह एक संकेत था कि अब उन्हें एक धर्म ही अपनाना पड़ेगा, जैसा कि उन्होंने कहा एक भोजन एक धर्म।" (नय्यर, 2007, पृ. 30, 83)। नौगाँव के एक ब्रिटिश अधिकारी की टिप्पणी है—"चपातियों का वितरण सबसे नीची जाति के लोगों के हाथों हो रहा था; लोगों का कहना है कि सरकार की मंशा मुखिया को बलपूर्वक या प्रलोभन देकर इन्हें खिलाना था, ताकि उनकी जाति भ्रष्ट हो जाए" (रे, 1994, पृ. 232)।

समकालीन समाचार पत्रों में चपाती वितरण की घटना को गंभीर रूप से देखा गया। मार्च 1857 में 'द फ्रेंड ऑफ इंडिया' (5 मार्च, 1857) समाचार पत्र ने वितरण की प्रकृति में गुणोत्तर वृद्धि का विवरण दिया। वहीं दूसरे समाचार पत्र ने षड्यंत्र का हवाला दिया—"भारत में षड्यंत्र संभव है पर गुप्त समितियाँ नहीं, एक बार फिर से यह अनुमान गलत साबित हुआ है। क्या सारे चौकीदार भत्ते के लिए हड़ताल करने वाले हैं? या फिर कोई पार्सल डाक की नई स्कीम चलाने की कोशिश कर रहा है? क्या यह राजद्रोह है या फिर एक मजाक? क्या 'भावनाओं का विस्फोट' होने वाला है या फिर सिर्फ हँसी का?" हफ्ते भर बाद वही समाचार पत्र फिर लिखता है—"बिना किसी कारण 90,000 आलसी पुलिस वाले, चौकीदार, खुद को कष्ट नहीं देंगे" (द फ्रेंड ऑफ इंडिया 19 मार्च, 1857)। कुछ का यह मत था कि चपाती वितरण अँग्रेज सरकार के आदेश पर हो रहा है, क्योंकि अँग्रेज अब लोगों का भोजन, धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा में भी हस्तक्षेप करना चाह रहे हैं और ईसाई धर्म अपनाने को मजबूर करेंगे (नय्यर, 2007 : पृ. 183)। वितरण के मुख्य कर्ता कुछ चौकीदारों का यहाँ तक मानना था कि सारी प्रक्रिया सरकार के निर्देश पर हो रही है। कुछ जगहों पर तो चपाती वितरित करने के बाद गाँव के पटवारी और स्थानीय पुलिस अफसर से प्रमाणित कराने का भी संदर्भ मिलता है। इसका संबंध महामारी की रोकथाम के लिए दवाएँ पहुँचाने में चौकीदारों की भूमिका से भी हो सकता है। चपाती वितरण को सिपाहियों एवं अन्य कई वर्गों ने अँग्रेजों द्वारा उनका धर्म भ्रष्ट करने के प्रयोजन के रूप में भी देखा (रे, 1994, पृ. 232)।

क्या चपाती वितरण एक सुनियोजित योजनाबद्ध आंदोलन था, जो एक बड़े 'षड्यंत्र' का हिस्सा था?

कुछ विद्वानों का मत है कि जिस तरीके से 1857 का संग्राम पूरे भारत में फैला और उसने अँग्रेजी सरकार को हिलाकर रख दिया, वह निःसंदेह एक सुदृढ़ योजना का हिस्सा था। 1907-1908 में प्रकाशित वी. डी. सावरकर की किताब '1857 का स्वातंत्र्य समर' उन्हीं सूत्रों का हवाला देती है, जिनमें संग्राम से संबंधित सभी सबूतों और गवाहों का विस्तृत उल्लेख है। चपाती वितरण के बारे में उनका कहना है—"इस विचित्र रोटी को कुछ पगले अँग्रेज अधिकारियों ने पकड़-पकड़ कर उसका चूरा किया और फिर उस चूरे का भी चूरा बनाकर उससे कुछ कहलवाने के प्रयास किए, परंतु किसी चुड़ैल की तरह उस चपाती को बोलने को कहते ही वह अपने मुँह की जीभ ही नष्ट कर देती और जिससे मन होता उसी से बोलती। वह रोटी गेहूँ या बाजरे के आटे की बनी होती थी। उस पर यद्यपि कुछ भी लिखा हुआ नहीं होता था, फिर भी वह हाथ में आते ही, उसका स्पर्श होते ही हर व्यक्ति की देह में क्रांति चेतना संचार करने लगती। हर गाँव के मुखिया के पास वे रोटियाँ आतीं। वह स्वयं उसका एक टुकड़ा खाता और उसको प्रसाद के रूप में सारे गाँव में बाँट देता। फिर उतनी ही ताजी रोटियाँ बनाकर गाँववाले पड़ोस के गाँव में भिजवा देते" (पृ 91)। इस प्रकार एक प्रज्जवलित मशाल की भाँति समस्त भारत में घूमते हुए हर गाँव में यह (संग्राम की) लौ जलाती गई।

1857 का संग्राम एक दीर्घकालीन आंदोलन का परमोत्कर्ष रहा। छल और बल से ईस्ट इंडिया कंपनी ने जहाँ-जहाँ अपनी जड़ें फैलाईं, वहाँ-वहाँ उसे जनता के रोष और विद्रोह का सामना करना पड़ा। प्लासी युद्ध के उपरांत एक भी ऐसा दशक नहीं था, जब भारत की विभिन्न दिशाओं से विरोध की ज्वाला न दहकी हो। 1857 से पूर्व कई क्षेत्रों से खबरें आईं कि प्लासी युद्ध के 100 वर्ष पूरे होते ही अँग्रेजों के शासन का अंत हो जाएगा (वैग्नर, 2010, पृ. 74; नय्यर, 2007, पृ. 16, 24, 111)। ब्रिटिश अधिकारी जी. डी. ट्रेवल्यन लिखते हैं—"हम अभी तक निस्संदेह मूल प्रकृति तक नहीं पहुँच पाए हैं। हर दिन सबके सामने प्रकट होते हैं जो निर्विवाद रूप से यह साबित करते हैं कि ...इस प्रकृति की गहराई साधारण रूप से नहीं समझी जा सकती है, न ही उन मापदंडों से समझी जा सकती है, जिससे कि हम यूरोपीय समंदर में नौसंचालन करते हैं। मिसाल के तौर पर महान विद्रोह के पूर्व हुए उन असाधारण चिह्नों को ही लीजिए, उस योजना का अद्भुत संचालन; विद्रोहियों और स्वतंत्र स्थानीय शक्तियों के बीच का रहस्यमय पर घनिष्ठ संबंध; धुँधली भविष्यवाणियाँ; खौफनाक अफवाहें, जिन्होंने विद्रोह का पूर्वाभास दिया; गोपनीयता; एकता; टोटके, जो लाखों गाँवों में हाथों-हाथ पहुँचाए गए" (ट्रेवल्यन, 1866, पृ. 429; वैग्नर, 2010, पृ. 7)। चपाती वितरण को संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए कोलिन कैंपबेल ने अपनी किताब 'नैरेटिव ऑफ द इंडियन रिवोल्ट फ्रॉम इट्स ऑउटब्रेक टू द कैप्चर ऑफ लखनऊ' में आधिकारिक पत्रों, चश्मदीद गवाहों के बयानों और संस्मरण पर आधारित साक्ष्य सामने रखे हैं। उनका मानना है कि चपाती वितरण संग्राम की पूरी योजना का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। अज्ञानता या लापरवाही के कारण सरकार इतनी महत्त्वपूर्ण घटना का आशय न समझ पाई और इस पूरे विद्रोह को रोकने में असफल रही (पृ० 4-2)।

जे. डब्लू. के., जिन्हें आधिकारिक रूप से अट्ठारह सौ सत्तावन की घटना का इतिहासकार माना जाता है, अपने वृत्तांत 'हिस्ट्री ऑफ सेपॉय वॉर इन इंडिया' (1864-76), में लिखते हैं कि संग्राम की सुदृढ़ योजना में नाना साहेब की भूमिका, राजकाज से बेदखल किए गए अन्य शासकों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। हालाँकि के. (Kaye) ने शब्दों और दावों का चयन बड़ी सावधानी के साथ किया है, पर फिर भी उनका इशारा एक सोची-समझी साजिश की तरफ ही जाता है। के. की मृत्यु के बाद उनकी पुस्तक को पूरा करने वाले जी. बी. मैलसन अपने शब्दों और विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार यह संग्राम एक योजनाबद्ध षड्यंत्र का नतीजा था, जिसके प्रणेता नाना साहेब, रानी लक्ष्मीबाई के साथ ऐसे कई शासक रहे, जिनके हाथ से उनका राज्य अँग्रेजों ने छीन लिया था। सैनिकों में पहले से ही ब्रिटिश शासकों के प्रति रोष था और आम जनता लगान के भार से तड़प रही थी। धर्म आधारित अंधविश्वासों और जातिगत पूर्वाग्रहों को हवा देकर इन सबने अखिल भारतीय संग्राम को फलीभूत किया। चपाती वितरण पर भी मैलसन पूरी तरह विश्वस्त हैं कि यह एक बड़ी योजना का हिस्सा था और गाँव-गाँव संदेश पहुँचाने का साधन। 1857 के संग्राम ने ब्रिटिश संसद को भी हिला दिया। प्रतिपक्ष नेता बेंजामिन डिजरायली (जो बाद में प्रधानमंत्री भी बने) ने भरी संसद में सवाल उठाया कि क्या यह केवल सैनिक विद्रोह था या फिर राष्ट्रीय आंदोलन? उनका मत था कि परिस्थितियों का अवलोकन करने के बाद सिपाहियों के इस बरताव को आकस्मिक उत्तेजना के रूप में देखा जाना उचित नहीं है। यह एक योजनाबद्ध साजिश थी, जो कि एक सही मौके की ताक में काफी समय से रची जा रही थी। उन्होंने 1857 की घटना का कारण मात्र चर्बीवाली गोलियों को मानने से इनकार कर दिया। डिजरायली के अनुसार स्थानीय प्रभुत्व का विध्वंस, संपत्ति अधिकारों और धर्म से छेड़छाड़ इतने बड़े विद्रोह का कारण बने (रावत, 2007, पृ. 16)। कोलिन कैंपबेल ने अपनी किताब में लिखा है कि डिजरायली ने यह दावा किया कि चपाती वितरण विद्रोह के लगभग बारह महीने पहले से चल रहा था। ब्रिटिश संसद में डिजरायली की बात पर भारी हंगामा हुआ और उनके बयान के ऊपर काफी टिप्पणी भी की गई। डिजरायली को अंततः यह मानना पड़ा कि यह विद्रोह सही नहीं था और भारतीय सैनिकों और लोगों की कृतघ्नता का परिचायक था। इसके बावजूद वे अपनी इस बात पर कायम रहे कि इस विद्रोह का कारण मात्र सैनिकों का रोष, चर्बीवाली गोलियाँ या फिर कोई छोटा-मोटा कारण नहीं थे, बल्कि इस विद्रोह के पीछे सोची-समझी और योजनाबद्ध तरीके से गई साजिश थी।

देशज संचार माध्यमों से संबंधित साक्ष्य

दरअसल भारत में पहले भी अँग्रेजों को गुप्त सूचनाओं के संचार का आभास तो हुआ, पर संचार के माध्यम और लोकभाषा की समझ का अभाव होने के कारण वे कुछ कर नहीं पाए (बेली, 1996)। औपनिवेशिक प्रशासन निरंतर इस भय से से ग्रस्त रहता कि स्थानीय निवासी गुप्त और रहस्यमई योजनाएँ बना रहे हैं, जो कि उनकी समझ से परे हैं (वैग्नर, 2010, पृ. 63)। उदाहरणस्वरूप जंगलों में ढोल की थाप हमेशा ब्रिटिश अधिकारियों को किसी गुप्त संकेत की संभावना से व्याकुल करती रहती थी। ठगों के गुप्त संजाल और उनके सूचनाओं के संचार की फूर्ति के बारे में तो ब्रिटिश अधिकारियों ने विस्तार से लिखा है (बेली, 1993, पृ.4-10)।

1806 का वेल्लोर विद्रोह ऐसे ही गुप्त संचार माध्यम द्वारा फलीभूत हुआ। इस विद्रोह में फकीरों ने केंद्रीय भूमिका निभाई। सामान्य जनता से लेकर सिपाहियों को सूचना पहुँचाने का काम इन्हीं का था। गोपनीयता की शपथ में बँधे ये फकीर, सन्न्यासी और आम नागरिक एक भी खबर को अँग्रेजों तक नहीं पहुँचने देते। गोपनीयता के साथ सूचना संचार माध्यम की फूर्ति भी हमेशा अँग्रेजों को व्यथित करती रही (चिन्नईयन, 1980)। इस विद्रोह में सूचना संचार के माध्यम के रूप में रोटी का वितरण हुआ और बहुत प्रयास करने पर भी अँग्रेज कुछ सिद्ध नहीं कर पाए (वैग्नर, 2010, पृ. 63)। बाजरा एवं रोटी का वितरण मराठा युद्ध के दौरान भी हुआ था। 1831-32 के कोल जनजाति विद्रोह या फिर 1855 -56 के संथाल विद्रोह में टहनियों या छोटी डालियों का प्रयोग संगठन के संकेत के रूप में हुआ था (वैग्नर, 2010, पृ. 63)।

संचार के देशज मॉडलों की रहस्यमयता की व्याख्या करते हुए के. कहते हैं—"हम बाह्य रूप, चमड़ी के रंग, कपड़े और पहनावे, घरों के बाह्य स्वरूप के अलावा स्थानीय भारतीय समाज के बारे में इतना कम जानते हैं कि इतिहास के क्रम में हम सिर्फ परिणाम और उनके कारणों का अनुमान ही लगा सकते हैं। कुछ अनुमान पूर्ण सत्य से थोड़ा कम ही होते हैं। जो हम देख नहीं पाते उन्हें महसूस कर सकते हैं और जिनको सत्यापित नहीं कर पाते उन पर विश्वास करते हैं। यह सत्य है कि एक तरीके का समाचार विद्युत गति से पूरे भारत में एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक फैलता है। कई बार अँग्रेजों के संबंध में कोई विनाशकारी गुप्त सूचना 'विद्युत डाक' की तरह स्थानीय व्यापारियों के बाजारों और स्थानीय सेनावास में, उच्च सरकारी अधिकारियों तक पहुँचने से पहले ही, प्रचारित हो जाती है। हमें इन अमंगलकारी (सूचना) प्रवाह का सुराग तक नहीं मिलता" (बेली, 1993, पृ. 4)। 1857 की शुरुआत में चपातियों का वितरण भी जिस फुर्ती के साथ हुआ, उसके बारे में एक अफसर का कथन है कि हर दिशा में गजब वेग से संकेत का प्रसार हुआ। जब तक एक जिले में इसके वितरण की सूचना अधिकारियों तक पहुँचती तब तक यह वितरण आगे बढ़ चुका होता। इसे स्वदेशी संचार के माध्यमों में स्पष्ट रूप से एक दक्ष तरीका माना जा सकता है, जो कि औपनिवेशिक प्रशासन की समझ की क्षमता से परे था।

लोक संचार माध्यम के रूप में चपाती वितरण का विश्लेषण

किसी भी राजनीतिक परिवर्तन में लोक संचार की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। कोई भी आंदोलन जनता की सहभागिता, संवेदना, एकजुटता और लक्ष्य की स्पष्टता के बिना आयोजित नहीं हो सकता। यह भी सच है कि कोई भी जन आंदोलन बिना सशक्त लोक संचार माध्यम के कभी सफल नहीं रहा। लोक संचार का माध्यम बहुधा सरल, प्रत्यक्ष और पहचान योग्य होता है, ताकि सामान्य जनता उससे जुड़ सके। ऐसे पारंपरिक और लोकप्रिय माध्यमों में नाटक-नौटंकी, गीत-संगीत आदि बड़े सफल मने गए हैं। चपाती ने एक अलग ही निमित्त का प्रचार किया। अरस्तू ने 'फिजिक्स और मेटाफिजिक्स' नामक अपनी पुस्तकों में चार कारणों (निमित्त) की परस्पर अंतःक्रिया की व्याख्या की है : भौतिक कारण (causa materialis/material cause), कार्यसाधक/गतिमान कारण (causa efficiens/efficient cause), औपचारिक कारण (causa formalis/formal cause), और अंतिम कारण (causa finalis/final cause) (फुक्स, 2020, पृ. 77)। संचार में, व्यक्ति विशेष (कार्यसाधक/गतिमान कारण efficient cause) संचार प्रक्रिया के (औपचारिक कारण (formal cause) कुछ विशेष साधनों का उपयोग करते हुए संस्कृति को विचारों और अर्थों की समग्रता देने का प्रयास करते हैं, ताकि (भौतिक कारण material cause) एक नए रूप में विशिष्ट सामाजिक संबंध और समाज (पुनः) उत्पादित (अंतिम कारण final cause) हो सकें।

चपाती वितरण प्रकरण का गहन अध्ययन किया जाय तो संचार के संबंध में अरस्तू का उपर्युक्त सिद्धांत सही प्रतीत होता है। संग्राम के योजनाकारों ने चपाती को भारतीय संस्कृति से जोड़ते हुए शोषक और दमनकारी उपनिवेशी नीतियों के विरुद्ध आंदोलन के विचारों और अर्थों को समग्रता देने का प्रयास किया, ताकि एक नए स्वतंत्र रूप में विशिष्ट सामाजिक संबंध और समाज (पुनः) उत्पादित हो सकें। संक्षिप्त रूप में कहा जाए तो सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप में 'स्व' और स्वतंत्रता के ध्येय को पूरा करने का माध्यम चपाती वितरण बना। संग्राम के योजनाकारों ने एक ओर सामान्य, निर्धन एवं ग्रामीण जनता को चपाती वितरण के माध्यम से किसी बड़ी घटना के लिए तैयार किया, वहीं दूसरी ओर विश्वस्त योजनाकारों तक सूचना भी पहुँचाई। समस्त प्रकरण की गुप्तता इतनी विश्वसनीय रही कि अँग्रेजों को कुछ भी पता नहीं चला। यह पूरा प्रकरण उनके लिए इतना शर्मनाक रहा कि कभी प्रकट रूप से उन्होंने इस अभिनव लोक संचार माध्यम को नहीं स्वीकारा। इतिहास लेखन में विदेशी एवं दास मानसिकता से ग्रसित भारतीय इतिहासकारों और लेखकों ने चपाती वितरण को मात्र एक अंधविश्वास से प्रेरित घटना माना।

चपाती वितरण की प्रक्रिया को संचार के चार मॉडलों के रूप में देखा जा सकता है (मैक्वेल, 2010, पृ.75 -69)।

- **सूचना प्रसारण के रूप में चपाती का संचार :** चपाती वितरण का क्षेत्र और मार्ग एवं संग्राम का क्षेत्रीय विस्तार लगभग एक था। रातोंरात चपातियाँ मीलों तक पहुँचाई जातीं। इस वितरण का कालखंड संग्राम से ठीक पहले का था। वितरण के बारे में हर व्यक्ति जानता था।
- **व्यावहारिक रूप में चपाती का संचार, जिसके माध्यम से कई अर्थ व्यक्त हुए और समाज में एक चेतना फैली :** सूचना प्रसारण में व्यवधान न हो, शायद इसलिए इसे कोरा संदेश स्थापित करने का पूरा प्रयोजन हुआ। चपातियों में क्या संदेश छिपा था, इसका पता या तो अँग्रेजों को कभी चला ही नहीं या फिर अपनी अक्षमता छिपाने के लिए सारे प्रमाणों को मिटा दिया गया, यह बात आज तक एक रहस्य है। ये कुछ तथ्य और प्रश्न हैं, जो चपाती के अभिनव संचार माध्यम होने को स्थापित करते हैं। एक मत यह है कि चपाती वितरण संग्राम की पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयास था, अन्य मत है कि यह जन साधारण को किसी बड़े विप्लव के लिए तैयार करने का माध्यम था। इनके अलावा यह भी माना जाता है कि लोगों को संग्राम के मूल कारण से जोड़ने का यह सहज तरीका था।
- **विशेष प्रयोजन के सृजन और प्रचार के रूप में चपाती का संचार :** चपाती अँग्रेजों की हर दमनकारी नीतियों के विरुद्ध भारतवासियों के दबे आक्रोश का प्रतीक बनी। सैनिकों में पहले

से ही ब्रिटिश शासकों के प्रति रोष था और आम जनता निर्धनता, भुखमरी, महामारियों और लगान के भार से तड़प रही थी। ऐसे में चपाती ने आम जनता को संग्राम में जोड़ने का काम किया।

- **एक ज़िम्मे के रूप में चपाती संचार, जिसके अर्थ जानने के लिए संकेतन और विसंकेतन की आवश्यकता होती है :** जिस चपाती का संदर्भ 1857 के संग्राम से जुड़ा, वह 'मोटे अनाज' की बनी बिस्कुट के आकर-प्रकार की थी। वह कालखंड, जब उपनिवेशी नीतियों के कारण भारत में अकाल और भुखमरी सर्वव्याप्त थे, तब रोटी ने एक रूपक की भूमिका निभाई, जिससे हर सामाजिक वर्ग, धर्म-जाति और क्षेत्र के लोग जुड़ सकते थे। इसे बनाने में कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना होता, न ही इसके प्रचार-प्रसार में किसी भी तरह का कोई व्यवधान आता। सावरकर अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि जेब में रोटी लेकर घूमना ही संदेश था कि कुछ बड़ा होने वाला है। कहने का तात्पर्य यह है कि आंदोलन में जागरूकता और सन्निकट संग्राम की सूचना का व्यापक संचार चपाती वितरण द्वारा संभव हुआ।

निष्कर्ष

आज तक इतिहास के अध्ययन में हर बार यह बात सामने आई कि भारत लगभग 200 वर्षों तक अँग्रेजों का गुलाम रहा और परतंत्रता की बेड़ियों को हम 1947 में तोड़ सके, परंतु इस बात को समझना भी आवश्यक है कि भारत में राजनीतिक और आर्थिक रूप से अँग्रेजों का नियंत्रण तो रहा, पर इस राष्ट्र की आत्मा ने कभी परतंत्रता को नहीं स्वीकारा। भारत के संतों, दार्शनिकों और ज्ञानियों का सर्वथा यह मत रहा है कि शरीर को बाँधा जा सकता है, पर आत्मा को नहीं। यह बात भारत और उपनिवेशी ताकतों के संदर्भ में भी खरी उतरती है। यूरोपीय शक्तियों को हर ओर से चुनौतियाँ मिलती रहीं। ऐसा एक भी दशक नहीं रहा, जबकि विभिन्न यूरोपीय शक्तियों को संगठित और सशक्त प्रतिरोध का सामना न करना पड़ा हो। ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भारत के वीरों ने हर दिशा और दशक में विदेशी ताकतों से लोहा लिया और अत्याचारी औपनिवेशिक शासन के दाँत खट्टे किए। यही कारण है कि स्वतंत्रता संग्राम निरंतर रूप से चलता रहा और अंततः राजनैतिक और प्रशासनिक रूप से अँग्रेजों को 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप से निकाल बाहर करने की प्रक्रिया संपन्न हुई। चपाती वितरण की प्रक्रिया 1857 के संग्राम की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना रही। संग्राम में चपाती वितरण की भूमिका पर लोगों के भिन्न मत हैं जो एक निरंतर वाद-विमर्श के रूप में सामने आते हैं।

किसी भी साक्ष्य का अध्ययन करने पर निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं :

1. 1857 के संग्राम से पूर्व चपाती वितरण एक सुनियोजित तरीके से हुआ। लोक संचार माध्यम से यह सर्वथा अपेक्षित होता है कि सूचना का संचार व्यापक और सुनियोजित तरह से हो।
2. पूरे उत्तरी और मध्य भारत से इस वितरण की सूचना रिपोर्ट हुई।
3. वितरण की गति और संचालन का स्वरूप सुनियोजित था।
4. गाँव के सामान्य व्यक्ति से लेकर सिपाहियों तक हर कोई इस वितरण से अवगत था।
5. अँग्रेज अधिकारियों को इसकी सूचना जनवरी 1857 से पहले ही मिल गई थी, पर उनकी तरफ से कोई कार्यवाई नहीं हुई।

चपाती वितरण की दिशा, गति और गुप्तता निस्संदेह यह प्रमाणित करती है कि सूचना प्रसारण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अब सवाल यह उठता है कि यह सूचना थी क्या? ऐसा कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, जिससे यह पता चले कि वह सूचना आखिर थी क्या? ब्रिटिश अधिकारियों की रिपोर्टें ही चपाती वितरण को संदिग्ध बताती हैं। यह पूरा प्रकरण उनकी अक्षमता और अज्ञानता को प्रतिबिंबित करता है। चपाती द्वारा प्रसारित सूचनाओं को दबा या मिटा देना उपनिवेशी शासकों के हित में था, अन्यथा इस देशव्यापी संग्राम को मात्र सैन्य विद्रोह कहकर वे उपेक्षणीय साबित नहीं कर पाते। यदि चपाती वितरण द्वारा प्रसारित सूचनाओं का वे विस्तृत विवरण देते तो उन्हें 'मूर्ख, अंधविश्वासी' भारतीय लोगों की अति कुशल सूचना संचरण क्षमता को स्वीकारना पड़ता। यह बात दंभ और शक्ति से ओतप्रोत साम्राज्यवादी ताकतों की नैतिक हार होती। तो फिर यह बात क्यों न मानी जाए कि सूचना संचार के माध्यम के रूप में चपाती वितरण को न स्वीकारना अँग्रेजों की एक सोची-समझी गतावलोकी कपट विद्या रही, जिसे उपनिवेशी और दास मानसिकता से प्रभावित इतिहासकारों ने बार-बार दोहराया। विभिन्न इतिहासकारों का मानना है कि 1857 में साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध राजाओं और शासक वर्ग ने ही हथियार उठाए, पर साक्ष्य और तथ्य इंगित करते हैं कि समाज के हर वर्ग ने दमनकारी औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध आवाज उठाई। 1857 इस बात का प्रमाण है कि समस्त भारत ने एक संग्राम को मूर्त रूप दिया और ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को खत्म करने में सफल रहे। ऐसी स्थिति में चपाती वितरण एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम रहा, जिसमें भारत के हर वर्ग, हर जाति, हर धर्म के लोगों ने अपनी सहभागिता दी। जनता को एकत्रित और जाग्रत करने में चपाती वितरण ने एक अभिनव लोक संचार माध्यम के रूप में भूमिका निभाई।

संदर्भ

अर्नाल्ड, डी. (1993). *कोलोनीजिंग द बॉडी : स्टेट मेडिसिन एंड एपिडेमिक डिजीज इन नाइनटींथ-सेंचुरी इंडिया*. बर्कले एंड लॉस ऐंजिलिस, कैलिफोर्निया : युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.

अर्नाल्ड, डी. (1986). *कॉलरा एंड कोलोनियलिज्म इन ब्रिटिश इंडिया पास्ट एंड प्रेजेंट*, नवंबर, न. 113.

के, जे. वि. (1864-76). हिस्ट्री ऑफ द सिपोय वॉर इन इंडिया, 1857-1858, 3 खंड. *इंडिया कल्चर*. https://indianculture.gov.in/ebooks/history-sepoy-war-india-1857-1858 and https://indianculture.gov.in/rarebooks/history-sepoy-war-india-1857-1858-vol2 से पुन:प्राप्त

अर्नाल्ड, डी. (1993). सोशल क्राइसिस एंड एपिडेमिक डिजीज इन द फेमिनस ऑफ नाइनटींथ सेंचुरी इंडिया. *सोशल हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन 6*.

अरस्तू. (2009). द *निकोमाकियन एथिक्स. ऑक्सफोर्ड वर्ल्डस*

क्लासिक्स. अनुवादक डेविड रॉस. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

क्लीन, इ. (1984). व्हेन द रेंस फेल्ड : फेमिन, रिलीफ, एंड मोर्टेलिटी इन ब्रिटिश इंडिया. *इंडियन इकॉनोमिक सोशल हिस्ट्री रिव्यू*. 21.

के, एवं मैलेसन. (1888-89). हिस्ट्री ऑफ द इंडिया म्युटिनी ऑफ 1857-58 लोंगमैंस. *इंडिया कल्चर*. https://www.indianculture.gov.in/rarebooks/kayes-and-mallesons-history-india-mutiny-1857-58 से पुन:प्राप्त.

केव-ब्राउन. जे. (1861). *द पंजाब एंड दिल्ली इन 1857 बीइंग ए नैरेटिव ऑफ द मेजर्स बाई व्हिच द पंजाब वाज सेव्ड एंड दिल्ली रिकवर्ड ड्यूरिंग द इंडियन म्युटिनी*. लंदन: विलियम ब्लैकवुड एंड संस. https://books.google.co.in/books?id=n4xFAAAAIAAJ&printsec=frontcover&source=gbs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=false से पुन:प्राप्त.

कैंपबेल, के. (1858). *नैरेटिव ऑफ द इंडियन रिवोल्ट फ्रॉम इट्स ऑउटब्रेक टू द कैप्चर ऑफ लखनऊ*. लंदन. https://books.google.co.in/books?id=7CkLSFzrJPAC&printsec=frontcover&source=gbs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=false से पुन:प्राप्त

क्रूक, डब्लू. (1894). *ऍन इंट्रोडक्शन टू द पॉपुलर रिलिजन एंड फोकलोर ऑफ नॉर्थेर्न इंडिया*. इलाहाबाद.

खान, एस. ए. (1858). *द कॉसेस ऑफ द इंडियन रिवोल्ट. कोलम्बिया. इडीयू*. trans. http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00litlinks/txt_sir_sayyid_asbab1873_basic.html and https://archive.org/details/AsbabEBaghawatEHind-SirSyedAhmadKhan/page/n7/mode/2up से पुन:प्राप्त

गुहा, आर. (1983). *एलीमेंट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पेसन्ट इंसर्जेंसी इन कोलोनियल इंडिया*. ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

गौतम, बी. (1988). *फोर रेबल्स ऑफ एटीन-फिफ्टी-सेवन, इन सिलेक्टेड सबाल्टर्न स्टडीज*, (सं.) रणजीत गुहा एंड गायत्री चक्रवर्ती स्पिवक. न्यूयॉर्क एंड ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

चक्रवर्ती, जी. (2005). *द इंडियन म्युटिनी एंड द ब्रिटिश इमेजिनेशन*. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

चक्रवर्ती, एफ. एन. (1990). *ट्रांस हिमालयन ट्रेड: ए रेट्रोस्पेक्ट*. दिल्ली : क्लासिक्स इंडिया पब्लिकेशन.

चिन्नईयन, पी. (1980). द वेल्लोर म्युटिनी. *थीसिस पब्लिश्ड ऑन शोधगंगा*. http://hdl.handle.net/10603/91562

चौधरी, के.एन. (1978). *द ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑफ एशिया एंड द ईस्ट इंडिया कंपनी 1660-1760*. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

चौधरी, एस. (1995). *फ्रॉम प्रोस्पेरिटी टू डिक्लाइन ऐटींथ सेंचुरी बंगाल*. न्यू दिल्ली : मनोहर.

चौधरी, एस. बी. (1957). *सिविल रिबेलियन इन द इंडियन म्यूटिनीस*. कलकत्ता: https://www.indianculture.gov.in/ebooks/civil-rebellion-indian-mutinies-1857-1859 से पुन:प्राप्त

चौधरी, एस. बी. (1955). *सिविल डिस्टर्बैंसेस ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल इन इंडिया (1765-1857)*. कलकत्ता : वर्ल्ड प्रेस. https://indianculture.gov.in/rarebooks/civil-disturbances-during-british-rule-india-1765-1857 से पुन:प्राप्त

चौधरी, एस. बी. (1965). *थेओरीज ऑफ द इंडियन म्युटिनी-1857-59*. कलकत्ता : http://ignca.gov.in/Asi_data/42503.pdf से पुन:प्राप्त

टैगोर, आर. (1941). *क्राइसिस इन सिविलाइजेशन*. कलकत्ता री-प्रिंटेड जून 1978.

टैगोर, आर. (1960). *लेटर्स फ्रॉम रशिया*. अनुवाद शशिधर सिंह. कलकत्ता.

ट्रेवल्यन. जी.ओ. (1866). द *कंपटीशन वाला*. लंदन: मैकमिलन एंड को. पृष्ठ 429.

डनलप, आर. हेनरी. वी. (1858). *सर्विस एंड एडवेंचर विथ द खाकी रेस्सलाह; और, मेरठ वालंटियर हॉर्स, ड्यूरिंग द म्यूटिनीस ऑफ 1857-58*. लंदन : आर. बेंटले. https://archive.org/details/serviceadventure00dunliala/page/n5/mode/2up से पुन:प्राप्त.

डाउंस, टी. (2000). *होस्ट ऑफ मीडियन: द चपाती सर्कुलेशन एंड द इंडियन रिवोल्ट ऑफ 1857-58 स्टडीज इन हिस्ट्री*, 16.

डॉब्ब, एम. (1946). *स्टडीज इन द डेवलपमेंट ऑफ कैपीटलिज्म*. लंदन.

डायसन, टि. (सम्पादित). (1989). *इंडियाज हिस्टोरिक डेमोग्राफी : स्टडीज इन फेमिन*. लंदन : डिजीज एंड सोसाइटी.

डेविड, एस. (2002). द *इंडियन म्युटिनी: 1857. लंदन, न्यूयॉर्क, केंबरवेल, टोरंटो*. न्यू दिल्ली : ऑकलैंड एंड रोसबैंक, वाइकिंग.

डेविस, एम. (2000). *लेट विक्टोरियन होलोकॉस्ट्स : एल नीनो फॅमिंस एंड द मेकिंग ऑफ थर्ड वर्ल्ड*. लंदन : वर्सो.

थॉर्नहिल, एम. (1884). द *पर्सनल एडवेंचर्स एंड एक्सपेरिएंसेस ऑफ अ मजिस्ट्रेट ड्यूरिंग द राइज, प्रोग्रेस, एंड सप्रेशन ऑफ द इंडियन म्युटिनी*. लंदन.

थॉमसन, ई.पी. (1975). द *मेकिंग ऑफ द इंग्लिश वर्किंग क्लास*. पेंगुइन बुक्स.

दत्त, आर.सी. (1900). *फेमिन एंड लैंड एसेसमेंट इन इंडिया*. लंदन केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रब्नर एंड को. लि.

दामोदरन, विनीता. (2007). *फेमिन इन बंगाल: ए कंपैरिसन ऑफ द*

1770 फेमिन इन बंगाल एंड द 1897 फेमिन इन छोटानागपुर. द मिडिवल हिस्ट्री जर्नल 10.

दासगुप्ता, ए. एवं एम. एन. पियर्सन (सं.) (1987). *इंडिया एंड द इंडियन ओसियन 1500-1800*. कलकत्ता : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

नय्यर. पी. के. (सं.). (2007). *द ट्रायल ऑफ बहादुर शाह जफर*. हैदराबाद : ओरिएंट लोंगमैन.

नेर, आर. (1977). द ओरिजिंस ऑफ कैपिटलिस्ट डेवलपमेंट : ए क्रिटीक ऑफ निओ-स्मिथियन मार्क्सिस्म', *न्यू लेफ्ट रिव्यु*, नं. 104, लंदन.

नौरोजी, डी. (1962 एवं 1871). *पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया*. दिल्ली : गवर्मेंट ऑफ इंडिया पब्लिकेशन.

पानंदिकर, एस. जी. (1921). *सम आस्पेक्ट्स ऑफ द इकनोमिक कॉन्सीक्वेंसेस ऑफ द वॉर फॉर इंडिया*. बॉम्बे.

पामर, जे.ए.बी. (1966). द *म्युटिनी ऑउटब्रेक ऐट मेरठ इन 1857*. कैंब्रिज: कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

पीओके. ए. डी. (2004). *प्लॉट्स ऑफ अपोर्च्युनिटी : रिप्रेसेंटिंग कांस्पीरेसी इन विक्टोरियन इंग्लैंड*. बाई कोलंबस : द ओहायो स्टेट युनिवर्सिटी प्रेस.

पोस्टन, एम.एम. (1966). *मिडिवल अग्रेरियन सोसाइटी इन इट्स प्राइम : इंग्लैंड. द कैंब्रिज इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप, खंड-1* (दूसरा संस्करण). कैंब्रिज.

फुक्स, सी. (2020). *कम्युनिकेशन एंड कैपिटलिज्म : ए क्रिटिकल थ्योरी*. लंदन : युनिवर्सिटी ऑफ वेस्टमिंस्टर प्रेस.

फ्रैंक, ए.गई. (1996). इंडिया इन द वर्ल्ड इकोनामी 1400-1750. *इकोनामिक एंड पॉलीटिकल वीकली, जुलाई 27*, खंड-31, नं. 30.

फ्रेंड ऑफ इंडिया, 5 मार्च. 1857.

फोर्रेस्ट, जी. डब्ल्यू. सेलेक्शंस फ्रॉम द लेटर्स, डिसपैचेस एंड अदर स्टेट प्रीजर्व्ड इन द मिलिट्री डिपार्टमेंट ऑफ द गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1857-58, कलकत्ता. https://archive.org/details/selectionsfromle01forruoft/page/n51/mode/2up (vol.1) and https://www.indianculture.gov.in/rarebooks/indian-mutiny-1857-1858-selections-letters-despatches-and-other-state-papers-preserved (vol.2) and https://archive.org/details/selectionsfromle03forruoft/page/434/mode/2up (vol.3) से पुन:प्राप्त.

बकनन, बी. एच. (1966). द *डेवलपमेंट ऑफ कॅपिटलिस्टिक एंटरप्राइज इन इंडिया*. फ्रैंक क्लास एवं को. ली. न्यूयॉर्क.

बनर्जी. ए.के. (1982). आस्पेक्ट्स ऑफ इंडो-ब्रिटिश इकनोमिक रिलेशंस (1858-1898), न्यू दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

बॉल, सी. (1857). द *हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्युटिनी : गिविंग अ डिटेल्ड अकाउंट ऑफ द सिपोय इंसुररेक्शन इन इंडिया; एंड अ कोनसाइज हिस्ट्री ऑफ द ग्रेट मिलिट्री इवेंट्स व्हिच हैव टेंडेड टू कंसोलिडेट ब्रिटिश एम्पायर इन हिंदोस्तान* (लंदन प्रिंटिंग, लंदन.) https://www.indianculture.gov.in/rarebooks/history-indian-mutiny-giving-detailed-account-sepoy-insurrection-india-and-concise से पुन:प्राप्त.

ब्रेनर, आर. (1976). *एग्रेरियन क्लास स्ट्रक्चर एंड इकोनामिक डेवलपमेंट इन प्री-इंडस्ट्रियल यूरोप' पास्ट एंड प्रेजेंट*. फरवरी.

बेली, क. (1986). द *ओरिजिन्स ऑफ स्वदेशी : क्लॉथ एंड इंडियन सोसाइटी, इन द सोशल लाइफ ऑफ थिंग्स : कमोडिटीज इन कल्चरल पर्सपेक्टिव*, अर्जुन अप्पादुरै सं. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

बेली. सी.ए. (1996). *एम्पायर एंड इनफार्मेशन : इंटेलिजेंस गैदरिंग एंड सोशल कम्युनिकेशन इन इंडिया*,1780 -I870. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

बेली, सी.ए. (1993). नोइंग द कंट्री : एंपायर एंड इनफॉर्मेशन इन इंडिया. *मॉडर्न एशियन स्टडीज*, फरवरी. खंड. 27, नं. 1, स्पेशल इशू : हाउ सोशल, पोलिटिकल एंड कल्चरल इनफार्मेशन इज कलेक्टेड, डिफाइंड, यूज्ड एंड एनालाइज्ड.

भाटिया, बी. एम. (1975). फॅमिन एंड एग्रीकल्चरल लेबर इन इंडिया : ए हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव, इंडियन जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशंस. 10(4).

भाटिया, बी. एम. (1967). फॅमिंस्स इन इंडिया : ए स्टडी इन सम आस्पेक्ट्स ऑफ द इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1860-1965 (लंदन).

मक्वैल, डी. (2010). *मैककैल्स मास कम्युनिकेशन थ्योरी*. लंदन: सेज. छठा संस्करण.

मजूमदार, आर.सी. (1957). द *सेपॉय म्युटिनी एंड द रिवोल्ट ऑफ 1857*. http://ignca.gov.in/Asi_data/6048.pdf से पुन:प्राप्त.

मालकम, जे. (1823). *ए मेमॉयर ऑफ सेंट्रल इंडिया इन्क्लूडिंग मालवा एंड एडजॉइनिंग प्रॉविंसेस, विथ द हिस्ट्री, एंड कोपियस इलस्ट्रेशंस ऑफ द पास्ट एंड प्रेजेंट कंडीशन ऑफ दैट कंट्री*. लंदन.

मिश्रा, एस. (2013). कैटल, डार्थ, एंड द कोलोनियल स्टेट : फेमिनस एंड लाइवस्टॉक इन कोलोनियल इंडिया, 1896-1900 *जर्नल ऑफ सोशल हिस्ट्री, समर*, खंड. 46, नं. 4.

मुखर्जी, आर. (1984). *अवध इन रिवोल्ट, 1857-1858, ए स्टडी ऑफ पॉपुलर रेजिस्टेंस*. दिल्ली.

मुखर्जी, आर. (1967). *इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1600-1800*. इलाहाबाद.

मुखर्जी, आर. (1915). द *फाउंडेशनस ऑफ इंडियन इकोनॉमिक्स*. लंदन लोंगमैनस. ग्रीन एंड कंपनी.

मुखर्जी, टी. (1972). द थ्योरी ऑफ इकनोमिक ड्रेन: द इंपैक्ट ऑफ ब्रिटिश रूल ऑन द इंडियन इकोनामी-1840-1900. *इकनोमिक इंपिरियलिज्म : ए बुक ऑफ रीडिंगस. के. एन. बोल्डिंग एंड टी.* मुखर्जी (सं.). युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन.

मेटकॉफ, सी. टी. (2010). टू *नेटिव नैरेटिव्ज ऑफ द म्युटिनी इन दिल्ली* (1898). किसिंगर पब्लिशिंग.

मेटकॉफ, सी. टी. (1995). द न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आइडियोलॉजीज ऑफ द राज. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

मैकअल्पिन, एम.बी. (1983). *सब्जेक्ट टू फेमिन : फूड क्राईसेस एंड इकनोमिक चेंज इन वेस्टर्न इंडिया*. 1860-1920 (प्रिंसटन).

मैनिंग, बी. (1975). द पैसेंट्री एंड द इंग्लिश रिवॉल्यूशन. द *जर्नल ऑफ पेसेंट स्टडीज*. खंड दो नंबर दो. लंदन. जनवरी.

मैलेसन, जी.बी. (1891). द *इंडियन म्युटिनी ऑफ 1857. न्यूयॉर्क : स्क्रिबनर एंड वेलफोर्ड.* https://www.google.co.in/books/edition/The_Indian_Mutiny_of_1857/2qg2AAAAMAAJ?hl=en&gbpv=1&printsec=frontcover से पुन:-प्राप्त.

मैलेसन. जॉर्ज ब्रूस. (...). द *इंडियन म्युटिनी ऑफ 1857*. https://www.google.co.in/books/edition/The_Indian_Mutiny_of_1857/2qg2AAAAMAAJ?hl=en&gbpv=1&printsec=frontcover से पुन:प्राप्त

रसल्ल. ए.जे.एच. (1925). ए स्टैटिस्टिकल एप्रोच टू द एपिडेमियोलॉजी ऑफ कॉलरा इन मद्रास प्रेसीडेंसी. *प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकडेमी ऑफ साइंसेज ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका*, खंड. 11, नं. 10 (अक्टूबर. 15).

रानाडे, एम.जी. (1896). *एस्सेज ऑन इंडियन इकोनॉमिक्स*. बॉम्बे: ठककर एंड कंपनी.

रामसुब्बन, आर. (1988). इंपीरियल हेल्थ इन ब्रिटिश इंडिया, 1857-1900, डिजीज, मेडिसिन, एंड एंपायर: *पर्सपेक्टिव्स ऑन वेस्टर्न मेडिसिन एंड एक्सपीरियंस ऑफ यूरोपियन एक्सपेंशन*, स. लन्दन : रॉय मैलॉड एंड मिल्टन लेविस.

रावत, आर. (2007). परसेप्शन ऑफ 1857. *सोशल साइंटिस्ट*. (नवंबर-दिसंबर). खंड. 35, नं. 11/12.

रॉय, आर. (1987). सम एस्पेक्ट्स ऑफ इकनोमिक ट्रेन फ्रॉम इंडिया ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल. *सोशल साइंटिस्ट*. मार्च 15 नं. 3.

रे, ताप्ती. (1994). द *पॉलिटिक्स ऑफ अ पॉपुलर अप्राइसिंग : बुंदेलखंड इन 1857*. दिल्ली.

रोजर्स, एल. (1927). द फोरकास्टिंग एंड कंट्रोल ऑफ कॉलरा एपिडेमिक्स इन इंडिया. *जर्नल ऑफ द रॉयल सोसाइटी ऑफ आर्ट्स*. फरवरी.18. खंड. 75, नं. 3874.

रिजवी, एस.एस.वी. एंड भार्गव, एम.एल (सं). (1957-61). *फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश. लखनऊ : पब्लिकेशंस ब्यूरो ऑफ इनफार्मेशन डिपार्टमेंट*. https://www.indianculture.gov.in/rarebooks/freedom-struggle-uttar-pradesh-source-material-vol-i से पुन:प्राप्त.

वाग्नेर, के. ए. (2013). ट्रेडिंग अपॉन फायर्स : द म्युटिनी-मोटिफ एंड कोलोनियल एन्ग्जाइटीज इन ब्रिटिश इंडिया. *पास्ट एंड प्रेजेंट*, फरवरी, नं. 218.

वैग्नर, के. ए. (2010). द *ग्रेट फियर ऑफ 1857 रयूमर कॉन्सपिरेसिस एंड द मेकिंग ऑफ द इंडियन अप्राइसिंग*. यू.के. : पीटर लॉड्ग ऑक्सफोर्ड ली. (https://www.academia.edu/442089/The_Great_Fear_of_1857_Rumours_Conspiracies_and_the_Making_of_the_Indian_Uprising) से पुन:प्राप्त.

स्टोक्स, ए. (1969). रूरल रिवोल्ट इन द ग्रेट रिबेलियन ऑफ 1857 इन इंडिया: ए स्टडी ऑफ द सहारनपुर एंड मुजफ्फरनगर डिस्ट्रिक्स. द *हिस्टोरिकल जर्नल*, दिसंबर, 1969, खंड. 12, नं. 4

स्टोक्स, ए. (...). द *पेसेंट एंड द राज : स्टडीज इन अग्रेरियन सोसाइटी एंड पेसेंट रिबेलियन इन कोलोनियल इंडिया*. न्यूयॉर्क एंड लंदन : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

स्टोक्स, ए. (1986). *दी पेसंट आर्म्ड : द इंडियन रिवोल्ट ऑफ 1857*. टोरंटो : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

स्वीजी, पॉल, मौरिस डॉब्ब एट-अल. (1976). द *ट्रांजीशन फ्रॉम फिउडालिस्म टू कैपिटलिज्म*, एन एल बी. लंदन.

सरकार, एस. (1983). *मॉडर्न इंडिया (1885-1947)*. नई दिल्ली : मैकमिलन.

साहू, ए. सी. (1985). *सम आस्पेक्ट्स ऑफ ब्रिटिश ट्रेड पालिसी इन इंडिया*. न्यू दिल्ली : अशीन पब्लिशिंग हाउस.

सावरकर, वी.डी. (2021). *1857 का स्वातंत्र्य समर*. नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स.

सिन्हा, एन. सी. (1946). *स्टडीज इन इंडो-ब्रिटिश इकॉनमी हंड्रेड इयर्स एगो*. कलकत्ता : मुखर्जी एंड कं.

सुब्रमण्यम, एस. (1990). *पॉलीटिकल इकोनामी ऑफ कॉमर्स : सदर्न इंडिया 1500-1650*. कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

सुब्रह्मण्यम, एस. (सं) (1990a) : *मर्चेंट्स, मार्केट्स एंड द स्टेट इन अर्ली मॉडर्न इंडिया*. दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

सुब्रह्मण्यम, एस. (1994) : *मनी एंड द मार्किट इन इंडिया 1100-1700*. दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

सेन, एस. एन. (1958). *एटीन फिफ्टी सेवन. दिल्ली: पब्लिकेशंस डिवीजन*, मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. https://indianculture.gov.in/eighteen-fifty-seven से पुन:प्राप्त.

शर्मा, एस. (2001). *फेमिन, फिलानथ्रॉपी, एंड द कोलोनियल स्टेट: नार्थ इंडिया इन द अर्ली नाइनटींथ सेंचुरी*. दिल्ली.

हॉल-मत्थूस. डेविड. (2005). *पेजेंट्स, फेमिन एंड द स्टेट इन कोलोनियल वेस्टर्न इंडिया* (हैंपशायर).

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 23-38, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राजस्थान में प्रचलित गीतों, कविताओं, दोहों, सोरठों और नारों का अध्ययन

प्रो. संगीता प्रणवेंद्र[1]

सारांश

स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में यह आम धारणा है कि राजस्थान में अँग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना उतनी मजबूत नहीं थी, जितनी देश के अन्य हिस्सों में थी। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि अँग्रेजों के विरुद्ध चले स्वतंत्रता संग्राम से राजस्थान का कोई नाता नहीं रहा। इसकी एक वजह यह है कि राजस्थान प्रत्यक्ष रूप से कभी ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं रहा। यहाँ स्थानीय रियासतों का राज था और वे रियासतें ब्रिटिश शासन के अधीन थीं। इसलिए जनता पर सीधे अँग्रेजों का शासन नहीं रहा। जबकि हकीकत ये है कि राजस्थान के सैनिकों और रजवाड़ों में ही नहीं, आम जनता में भी सन 1800 से लेकर 1947 तक अँग्रेज शासन के विरुद्ध जनभावना अत्यंत प्रबल रही। कवियों और गीतकारों ने न केवल अनेक गीत और कविताएँ रचीं, बल्कि ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध अनेक नारे भी गढ़े गए। वैसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 के सशस्त्र संघर्ष को माना जाता है, लेकिन राजस्थान में वर्ष 1803 में ही भरतपुर से अँग्रेजों के विरुद्ध नारे बुलंद हो चुके थे। राजस्थान के रजवाड़ों द्वारा ब्रिटिश सेना के समर्थन के बावजूद जनता में विद्रोह की भावना दबाई नहीं जा सकी। 1857 में भी राजस्थान में सैनिकों ने विद्रोह किया। मंगल पांडे के समर्थन में जब वे रवाना हुए तो कुछ रजवाड़ों ने उनको प्रश्रय भी दिया। अँग्रेजों के विरुद्ध खुलेआम युद्ध करने वाले आऊवा ठाकुर को कई रजवाड़ों ने सहयोग एवं आश्रय दिया। उस समर्थन की अभिव्यक्ति कविताओं, गीतों, दोहों और नारों के माध्यम से हुई। उन नारों ने जनता में सुलगते विद्रोह को जीवित रखने का कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र में ऐसे ही गीतों, दोहों, कविताओं और नारों का अध्ययन किया गया है। आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर ऐसे तमाम लोक साहित्य का संकलन आवश्यक है।

संकेत शब्द : राजस्थानी लोक साहित्य, रजवाड़े, नारे, गीत, कविताएँ, सोरठे, दोहे

प्रस्तावना

राजस्थान में श्रुति परंपरा कला, संस्कृति और ज्ञान के लिखित संग्रह से कहीं अधिक समृद्ध रही है। लोकगीतों, लोकोक्तियों, नारों और कहावतों के माध्यम से सूचना का प्रसार राज्य की परंपरागत विधा है। यही कारण है कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जहाँ देश के अन्य हिस्सों में साहित्यकारों द्वारा कहानियाँ, निबंध, लेख, व्यंग्य और आलेख प्रमुखता से लिखे गए, वहीं राजस्थानी साहित्यकार पारंपरिक दोहा शैली, डिंगल के छंद तथा कविताओं के माध्यम से अपनी भावनाएँ व्यक्त कर रहे थे। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में कवियों ने सोरठों की भी रचना की, जिसे आम जन ने बेहद पसंद किया। राजस्थानी साहित्य पर इन सोरठों का प्रभाव साफ दिखाई देता है। 1903 में उदयपुर नरेश महाराणा फतहसिंह को अँग्रेजों के दिल्ली दरबार में जाने से रोकने के लिए 13 सोरठों की रचना की गई थी। इसी प्रकार नारों और गीतों की भी रचना हुई, जिसे जनता ने खूब सराहा। ऐसे कई गीत और नारे आज भी जनमानस पर अंकित हैं। इसलिए उस दौर की कविताओं को मात्र काव्य रचना न मानते हुए उस दौर का इतिहास माना जाना चाहिए। पुस्तकों के अतिरिक्त गीतों और कविताओं में भी स्वतंत्रता के प्रति ललक दिखाई देती है। चाहे वंशावलिया हों या इतिहास अथवा सामाजिक स्थितियाँ, सभी का चित्रण गीतों, दोहों, छंदों के माध्यम से किया गया है। कवि और साहित्यकार ही नहीं, आम जन भी अपनी भावनाओं को कविताओं, गीतों और छंदों के माध्यम से व्यक्त करते थे। राजस्थान के दौसा जिले में स्थित लालसोट में आयोजित होने वाला 'हेला खयाल' आज भी इस समृद्ध परंपरा का प्रमाण है।

शोध प्रविधि

राजस्थान के संदर्भ में स्वतंत्रता संग्राम का अध्ययन करने हेतु सन् 1800 से 1947 तक की समयावधि का चयन किया गया—यानी अँग्रेजों के राजस्थान में दाखिल होने से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक। इस अवधि को तीन भागों में बाँटा गया है। एक, 1800 से 1856 का दौर—अँग्रेजों द्वारा राजस्थान की रियासतों से संधियाँ और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की तैयारी। दो, 1857 से 1899 का दौर—प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद का काल। तीन, 1900 से 1947 तक का दौर—स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष। अध्ययन हेतु इन कालखंडों में अँग्रेजी शासन के विरुद्ध घटी प्रमुख घटनाओं और उनसे संबंधित प्रमुख व्यक्तियों/सेनानियों/क्रांतिकारियों को चिह्नित किया गया। तत्पश्चात् उन घटनाओं और व्यक्तियों से संबंधित गीत, नारे, कविताएँ, दोहे, सोरठे आदि संकलित किए गए। इसके लिए इतिहास के जानकारों, लोक कलाकारों, उनके वंशजों तथा शोधकर्ताओं से संपर्क किया गया। जो जानकारी आम जनता के बीच प्रचलन में है उसे भी संकलित किया गया। उस जानकारी को राजस्थान की तत्कालीन रियासतों के क्षेत्रों के अनुसार वर्गीकृत किया गया। इसके अलावा मौजूदा समय में उनकी संभागीय स्थिति का भी आकलन किया गया।

सन् 1800 से 1856 तक की अवधि

वैसे तो राजस्थानी रियासतों और अँग्रेज सरकार के बीच वर्ष 1817 से संधि होनी प्रारंभ हुई, लेकिन राजस्थानी रियासतों में देश के अन्य राजाओं के प्रति सहयोग की भावना प्रबल रही। अँग्रेजों से संधि के

[1]प्रोफेसर, रेडियो एवं टेलीविजन पत्रकारिता एवं विभागाध्यक्ष, सोशल मीडिया एवं आईटी, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली.
ईमेल: sangeeta.pranvendra@gmail.com

बावजूद अनेक प्रसंगों पर उन्होंने देश के अन्य राजाओं का पक्ष लिया। 1857 की क्रांति से पूर्व भी राजस्थान में अँग्रेजी शासन के विरुद्ध भाव रहा, जो अनेक घटनाओं तथा उनसे जुड़े गीतों और नारों से सिद्ध होता है।

1803 : भरतपुर : राजस्थान की भरतपुर रियासत और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच सितंबर 1803 में संधि हुई (खन्ना, 2015), परंतु उसमें एक वर्ष बाद ही उस समय दरारें पड़ गईं, जब मराठा सरदार होल्कर ने अँग्रेजों के विरुद्ध भरतपुर के महाराजा रणजीत सिंह से सहायता माँगी। महाराजा रणजीत सिंह ने संधि के बावजूद मराठा सरदार होलकर के साथ अँग्रेजों से जमकर लोहा लिया (वर्मा, 2005)। उस ऐतिहासिक घटना पर कई गीत लिखे गए, जो आजादी मिलने तक राजस्थान के गाँव-गाँव तक में गाए जाते रहे। उनमें से एक गीत निम्नलिखित था :

ओछा, गोरा हट जा!
राज भरतपुर को रै गोरा हट जा!
भरतपुर गढ़ बाँको, किलो रै बाँको,
गोरा हट जा!
यूँ मत जाँणी रै गोरा लड़ै रे बेटो जाट को,
ओ कँवर लड़े रै राजा दसरथ को रै
गोरा हट जा! (गुप्ता, 2014)

भरतपुर के लोहागढ़ की प्राचीर से अँग्रेजी सैनिकों पर गोले दागते हुए भरतपुर सेना के दो योद्धाओं, माधोसिंह और दुर्जनशाल, के लिए जो कविता बहुत प्रसिद्ध रही, उसके अंश जाट अस्मिता जगाने के लिए आज भी प्रयोग किए जाते हैं (खन्ना, 2015, अध्याय-5)। वह कविता निम्न है :

ये भरतपुर दुर्ग
दुर्जय, दुरशय विकट भयंकर
जहाँ जटन के छोरा
दियो सूँ पटन पछाड़
आठ फिरंगी नौ गोरा
लड़े जाट रा दो छोरा। (राजस्थान तक, 2021)

उस युद्ध में अँग्रेजों ने अजेय दुर्ग लोहागढ़ पर पाँच बार आक्रमण किया, लेकिन लार्ड नेटवर्क के शब्दों में 'ब्रिटिश सेना की गरिमा भरतपुर दुर्ग के नीचे दबकर ध्वस्त हो गई।' उसी समय यह कहावत बहुत प्रसिद्ध हुई—"मारै भरतपुर में गोरा, लेडी अँग्रेजन रोवै कलकत्ता।"

1817-18 : जोधपुर : राजपुताना रियासतों में पश्चिमी राजस्थान का मारवाड़ क्षेत्र प्रमुख था, जो वर्तमान जोधपुर संभाग का हिस्सा है। इसमें जोधपुर, पाली, बाड़मेर, जैसलमेर जिले सम्मिलित हैं। वर्ष 1818 में मारवाड़ (जोधपुर) ने भी अँग्रेजों से संधि (अँग्रेज अधीनस्त सहायता संधि) की और परोक्ष रूप से यह रियासत ब्रिटिश शासन के अधीन हो गई (रेउ, 2009) । इसके बाद अँग्रेजों ने राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। रियासत की उस स्थिति पर मारवाड़ के राजकवि बाँकीदास आसिया ने 1857 के गदर से 52 वर्ष पूर्व अर्थात् 1805 ई. में 'चेतावणी रो गीत' लिखकर राजस्थान के राजाओं को फटकारते हुए अँग्रेजों की कुचालों से बचने का आह्वान किया था। उस समय कविराज बाँकीदास ने लिखा :

आयो इँगरेज मुलक रै ऊपर, आहँस लीधा खेंचि उरा।
धणियाँ मरै न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा
फौजाँ देख न कीधी फौजाँ, दोयण किया न खळा-डळा।
खवां खाँच चूड़ै खावंद रै, उण हिज चूड़े गई यळा। (गुप्ता, 2014)

बाँकीदास आसिया ने भरतपुर के जाट शासकों के अदम्य साहस व अप्रतिम शौर्य की सराहना निष्पक्ष व निडरता से की। वे लिखते हैं :

छत्रपतियाँ लागी नह छाँणत
गढ़पतियाँ धर परी गमी।
बल नह कियौ बापड़ाँ बोताँ
जोताँ जोताँ गई जमी।
वजियो भलो भरतपुर वालो
गाजै गजर धजर नभ गोम।
पहलाँ सिर साहब रौ पड़ियौ
भड़ ऊभाँ नह दीधी भोम।।

बाँकीदास ने अपनी रचना 'चुगल मुख चपेटिका' में अँग्रेजों की धूर्तता व घातक कूटनीति से सावधान करते हुए लिखा है :

चुगल फिरंगी अत चुतर
विद्या तणा विनाँण।
पाँणी माँहै पलक में
आग लगावै आँण।।

बाँकीदास ने उन तमाम राजाओं व ठाकुरों की कटु निंदा की, जो गुपचुप तरीके से विदेशी सत्ता को दंड भरते थे और ऊपर से अपनी निडरता का बखान करते थे :

सुहड़ाँ सीख घराँ नै समपे
गोढे राखो गोला।
रुपिया जाय भरो अँगरेजाँ
बँगलै बोला बोला।।

जब अँग्रेजों ने भरतपुर पर हमला किया तो वहाँ के जाट शासकों ने जो साहस दिखाया, उसकी मुग्ध कंठ से प्रशंसा मारवाड़ के इस कवि ने सबसे पहले की। यही कवि का कविधर्म होता है। भरतपुर शासकों के श्रद्धेय महंत ने जब भरतपुर के साथ घात की और लोभवश फिरंगियों का साथ दिया, उसी के परिणामस्वरूप जाटों को पराजय का सामना करना पड़ा तो इस कवि का हृदय हिल उठा। उनकी संवेदना इन शब्दों में निकल पड़ी :

माल खायो ज्याँरौ त्यारौ रति नायौ मोह
कुबुद्धि सूँ छायो भायो नहीं रमाकंत।
वेसासघात सूँ काम कमायौ बुराई वालो
माजनौ गमायौ नींबावताँ रै महंत।। (दसोड़ी, 2017).

जोधपुर के राजा मानसिंह ने 1818 में अँग्रेजों से संधि की, लेकिन उससे उपजे कई घटनाक्रमों से वे व्यथित थे और उनके मन में राजकार्य के प्रति विरक्ति भी उत्पन्न हुई (रेउ 2009)। महाराजा मानसिंह कविता के प्रशंसक थे और स्वयं भी कविता रचते थे। अपनी उस स्थिति पर दुःख

प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा :

राणियाँ तळेटियाँ ऊतरै,
राजा भुगते रेस,
गढ ऊपर गोरा फिरै,
सरग गयाँ सगतेस। (गुप्ता, 2014).

1825-1850 : डूंगरजी जवाहर जी

शेखावाटी के बठोठ गाँव के डूंगर सिंह तथा जवाहर सिंह रिश्ते में चचेरे भाई थे। इनका अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष अत्यंत संगठित, सशक्त और आतंकित करने वाला था। इनके साथ शेखावाटी के खीरोड़, मोहनवाड़ी, मझाऊ, खड़ब तथा देवता ग्रामों के ठाकुर सम्मिलित हुए। इनके संघर्ष की विशेष बात यह थी कि वह सिर्फ सामंतों या राजपूतों तक ही सीमित नहीं था। उसमें जाट, मीणा, गुर्जर, लुहार, नाई आदि जातियों के लोग भी साथ थे। इनके मुख्य सहयोगी थे सांवता मीणा, लोटिया जाट, बालिया नाई और करणिया मीणा। सीकर जयपुर रियासत के अधीन आता था और जयपुर ने 1818 में अँग्रेजों के साथ संधि की (टॉड, 2008)। शेखावाटी के अनेक राजा, ठाकुर और ठिकानेदार इस संधि के विरुद्ध थे। परिणामस्वरूप शेखावाटी में विद्रोह को थामने के लिए 'शेखावाटी ब्रिगेड' की स्थापना की गई, जिसमें ठाकुर अजमेरी सिंह पालड़ी प्रभावशाली व्यक्ति थे और ठाकुर डूँगर सिंह पाटोदा अश्वरोही सेना में रिसलदार के पद पर थे। सीकर के राव राजा रामप्रताप सिंह ने अँग्रेजों की सहायता से अपने निजी विवाद सुझाने का प्रयास करना प्रारंभ किया। व्यथित और क्रोधित होकर डूँगर सिंह ने संवत् 1891 में अपने कुछ साथियों को तैयार कर शेखावाटी ब्रिगेड से विद्रोह कर दिया और वहाँ से शस्त्र, घोड़े और ऊँट छीनकर विद्रोही बन गया। वह अँग्रेजशासित गाँवों में लूटमार करने लगा। जवाहर सिंह डूँगर सिंह के छोटे भाई उसके साथ हो गए। अपने दल-बल के लिए जब उन्हें धन की आवश्यकता हुई तो उन्होंने रामगढ़ के सेठों से धन की माँग की, लेकिन सेठों ने अँग्रेजों के भय से उन्हें धन देने से इनकार कर दिया। अतः डूंगरजी जवाहर व उनके साथियों ने रामगढ़ के सेठों के काफिलों को लूटकर धन गरीबों में बाँट दिया। सेठों ने अँग्रेजों से रक्षा की फरियाद की। इस पर अँग्रेजों ने डूंगरजी के साले भैरोसिंह को लालच दिया। परिणामस्वरूप उसने डूंगरजी को सोते हुए गिरफ्तार करवा दिया। अँग्रेजों ने उन्हें कैदकर आगरा के किले में भेज दिया। जवाहरजी उन्हें बचाने निकले। उनके दो सहयोगी, करणिया मीणा और लोटिया जाट, सेना की एक टुकड़ी को बरात का रूप देकर आगरा के किले के पास पहुँच गए। परिवार में देहांत के कारण शोक बीतने तक पड़ाव डालने और फिर विवाह करके लौटने का बहाना बनाया। कई दिनों तक भेद लिया, तत्पश्चात् आगरा के अति सुरक्षित किले की जेल से अँग्रेजों की गिरफ्त से वो डूंगरजी जवाहरजी को छुड़ा लाए (रेउ, 2009, पृ. 43-59)। वर्तमान में वे लोक देवताओं के रूप में पूजे जाते हैं।

1847 में डूंगरजी जवाहरजी ने छापामार लड़ाइयों से अँग्रेजों को हिला दिया। देशी राजाओं द्वारा अँग्रेजों का सहयोग किए जाने पर वे बेहद दुखी थे, पर उनके हौसलें बुलंद थे। 18 जून,1847 को उन्होंने नसीराबाद छावनी पर हमला किया और 52 हजार रुपये व घोड़े लूट लिए। इस घटना से डूंगरजी जवाहरजी की प्रसिद्धि चारों तरफ फैल गई। डिंगल गीतों में इसका बखान कुछ इस तरह किया गया—

''अरज करै छै फिरगाँण री काँमणी, लुट मत छावनी भँवर लाडा।
भिडियों इम ज्वार लियाँ भड़ संग, इसौ फिस सण्यौं लह जंग।
दीधी खग झाट पराक्रम आण, घणा गढ़ छोड़ भाग्या फिरंगाण।" (पटोदा, 2018)

अँग्रेज डूंगरजी जवाहरजी के नाम से भयभीत होने लगे। अँग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार करने के हरसंभव प्रयास किए। एक बार उन्होंने तीन ओर से घेराबंदी कर डूंगरजी जवाहरजी को घेर लिया। इसके बावजूद दोनों घेराबंदी तोड़कर शेखावटी से निकल पड़े। जवाहर सिंह बीकानेर के महाराजा रतनसिंह के पास चले गए, जिन्होंने अँग्रेजों के दवाब के बावजूद जवाहरजी को सौंपने से इनकार कर दिया। डूंगरजी ने स्वयं को चारों ओर से घिरा पाकर जोधपुर राज्य के आश्वासन पर कि उन्हें अँग्रेजों को नहीं सौंपा जाएगा, आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन अँग्रेजों के दवाब के कारण जोधपुर के शासक ने डूंगरजी को अँग्रेजों को सौंप दिया, परंतु जोधपुर के 52 रजवाड़ों द्वारा डूंगरजी को जोधपुर को सौंपे जाने की माँग पर अँग्रेजों ने अगस्त 1848 में डूंगरजी को पुनः जोधपुर को सौंप दिया। आज भी इन वीरों की गाथाएँ गाँव-गाँव में सुनाई देती हैं। इन दोनों को जनता ने नायक की तरह सम्मान दिया। इनकी प्रशंसा में गीत गाए जाने लगे :

कविराज शंकरदान सामोर द्वारा लिखित 'डूंगर सिंह जवाहर सिंह शेखावत' के गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"'जीते फिरंगाण साहाँ केता बेडया जाडा।
थरू किल्ले भेडया समरा भडा थाट।।
जलाबंद जाहू बार छेडया लाठ नूँ जंगा।
केवाड पाप सूँ सेखा हंडिया कपाट।।" (कुमार, 2011)

एक और गीत इस प्रकार है :

खावै आतंक आगरो, खापाँ न मावै भ्रमावै खळाँ,
धावै थावै अजाँण लगावै चौड़े धेस।
ऊगाँ भाँग नाग वंसाँ माथै खगाँ राज आवै,
दावै लागो पजावै फिरंगी वाळा देस। (गुप्ता, 2014).

डूंगरजी जवाहरजी के बारे में एक कहावत आज भी प्रसिद्ध है : "जे कोई जणती राणियाँ डूंग जिस्यौ दीवाण, तो इण हिंदुस्तान में पळतौ नीं फिरंगा।"

बीकानेर रियासत के बोबासर गाँव के कवि शंकरदान सामौर ने अपनी रचनाओं में नसीराबाद छावनी पर हमला कर खजाना और हथियार लूटने वाले डूंगर सिंह जवाहर सिंह की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। डूंगर जी जवाहर जी के वंशज एक रचना इस प्रकार बताते हैं :

जीसी बै इळ पर जबर, लडै लेण इधकार
मर मर खड़ा हुवै मरद, लिछमण ज्यूँ ललकार
दे धरती निजदुसमणाँ, जीवत घर आ जाय
दिन खोटो उण देसरो, समझ मरै सरमाय।

1857 से 1899

अँग्रेजों के साथ की गई संधि से ठिकानेदार, ठाकुर, उमराव भी

नाराज थे। वे रियासत के राजा के अधीन होते थे। उनका रुतबा उनकी सेनाएँ थीं। राजा को आवश्यकता पड़ने पर ठिकानेदार/ठाकुर/उमराव अपनी सेनाएँ देते थे। अँग्रेजों के साथ हुई संधि के बाद युद्ध समाप्त से होने लगे, इसलिए ठिकानेदारों का काम सिर्फ लगान इकट्ठा करना रह गया। उससे उनमें नाराजगी पनपने लगी। उन्हें अँग्रेजों के लिए लड़े जाने वाले युद्धों हेतु अपने सैनिक भेजना नापसंद था। अँग्रेजों की उनके राज्यों में बढ़ती दखलंदाजी भी उन्हें स्वीकार नहीं थी। अँग्रेजों के विरुद्ध जब 1857 की क्रांति भड़की, तो राजस्थान में सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एक साथ घटित हुईं। उस समय राजस्थान की ब्रिटिश छावनियों में सैनिकों ने विद्रोह किया। राजस्थान के कई ठाकुर और ठिकानेदार उनके समर्थन में खड़े हो गए। वे मंगल पांडे /ताँत्या टोपे के समर्थन में भी अँग्रेजों से लड़े। वैसे तो राजस्थान में 1857 की क्रांति का समर्थन करने के कई कारण मौजूद थे, परंतु मेरठ से आई सूचनाओं ने राजस्थान की छावनियों में बारूद के ढेर पर माचिस का काम किया।

राजस्थान में ब्रिटिश शासन का स्वरूप

राजस्थान में अँग्रेजी शासन उत्तर पश्चिमी सीमाँत प्रांत का अंग था, जिसका मुख्यालय आगरा था। ब्रिटिश भारत के गवर्नर जनरल कैनिंग द्वारा 1832 में राजपूताना रेजीडेंसी स्थापित की गई, जिसका मुख्यालय अजमेर था। उसने वहाँ अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, परंतु राजस्थान की गर्मी से परेशान होकर उस प्रतिनिधि ने 1845 में माउंट आबू को अपना ग्रीष्मकालीन मुख्यालय बनाया। विशाल राजपूताने को शासित करने के लिए छह राजनीतिक एजेंट नियुक्त किए गए। प्रत्येक रियासत पर एक राजनीतिक एजेंट नियुक्त था। 1857 की क्रांति के समय राजपूताना रेजीडेंसी का प्रतिनिधि जॉर्ज पैट्रिक लॉरेंस ग्रीष्मकालीन मुख्यालय माउंट आबू में था (इंदा 2005)।

राजस्थान में अँग्रेजों की छह प्रमुख छावनियाँ थीं। अजमेर स्थित नसीराबाद छावनी में 28 मई, 1857 को विद्रोह हुआ। मध्य प्रदेश के नीमच में स्थित छावनी में (तब मेवाड़ के अधीन) में 3 जून, 1857 को विद्रोह हुआ। पाली के ऐरनपुरा में स्थित (तब मारवाड़) छावनी में 21 अगस्त, 1857 को विद्रोह हुआ। इसके बाद टोंक के देवली में स्थित छावनी में जनवरी 1858 को विद्रोह हुआ। उदयपुर की खेरवाड़ा (मेवाड़) छावनी और अजमेर की ब्यावर छावनियों में विद्रोह नहीं हुआ। 1857 की क्रांति के समय गवर्नर जर्नल का प्रतिनिधि माउंट आबू में था। 10 मई, 1857 को आरंभ हुई क्रांति की सूचना उसे 19 मई को प्राप्त हुई। तुरंत राजाओं को संदेश भिजवाकर 1818 की सहायक संधि का स्मरण करवाया गया और आवश्यकता के समय एक-दूसरे के काम आने वाले भाग को विशेष रूप से स्मरण करवाया गया। अँग्रेजों का समस्त गोलाबारूद अजमेर दुर्ग में था, जहाँ मेरठ से आई 15वीं बटालियन तैनात थी। घबराए अँग्रेजों ने उन्हें तुरंत नसीराबाद छावनी भेज दिया। सैनिकों ने वहाँ अचानक भेजे जाने की वजह जाननी चाही। 28 मई, 1857 को उन्हें क्रांति के विषय में जानकारी मिली और उग्र सैनिकों ने अँग्रेजी अधिकारियों को गोली मार दी और दिल्ली के लिए रवाना हो गए। यह सूचना 3 जून, 1857 को नीमच छावनी पहुँची। वहाँ भी सैनिक उग्र हो गए। उन्होंने अँग्रेज अफसरों को गोलियों से भून डाला। साथ ही राजनीतिक एजेंट के पुत्र को भी गोली मार दी। अँग्रेज अधिकारी अपने परिवार सहित नीमच से भाग निकले। मेवाड़ राजा ने उन्हें उदयपुर में सुरक्षा दी। ऐरनपुरा के 90 सैनिक विद्रोह के दौरान नीमच में थे। जब वे अपनी छावनी लौटे तो उनका छावनी के सैनिकों द्वारा जबरदस्त स्वागत किया गया। ऐरनपुरा में भी विद्रोह भड़का। नेता थे शिवनाथ सिंह, जिन्होंने नारा दिया—"चलो दिल्ली, मारो फिरंगी"। सैनिक रवाना हुए और पास के आऊवा ठिकाने पहुँचे, जहाँ ठाकुर खुशाल सिंह ने उन्हें आश्रय दिया। अँग्रेजों ने मारवाड़ (जोधपुर) की सेना के साथ आऊवा ठाकुर से दो युद्ध लड़े। पहला 8 सितंबर, 1857 को बिठौड़ा में और दूसरा 18 सितंबर, 1857 को चौलावास में। दोनों युद्ध ठाकुर आऊवा ने जीते (रेउ, 2009)।

इस विद्रोह को देखते हुए खुद गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि लॉरेंस और राजनीतिक एजेंट मैक मेसन जोधपुर पहुँचे। ठाकुर आऊवा ने पोलिटिकल एजेंट का सिर काट दिया। लॉरेंस वहाँ से भाग निकला। ठाकुर आऊवा ने मारवाड़ और मेवाड़ की जनता से सहायता माँगी। दर्जन भर सामंतों ने सहयोग का आश्वासन दिया। लेकिन 19 जनवरी, 1858 को कर्नल होम्स के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना की नेटिव इनफेंट्री और मेजर मोर्रिसन के नेतृत्व में जोधपुर सेना ने आऊवा किले को घेर लिया। चार दिन तक युद्ध चला। 23 जनवरी, 1858 की रात को होम्स ने आऊवा गढ़ के एक सिपाही को धनराशि देकर मुख्य द्वार खुलवा लिया। खुशाल सिंह अपने भाई पृथ्वी सिंह को आऊवा किले की जिम्मेदारी सौंपकर गढ़ के पिछले द्वार से सहायता लेने निकल पड़े। इस प्रकार 24 जनवरी, 1858 को अँग्रेजों ने आऊवा किले पर कब्जा कर लिया। अँग्रेजों ने 18 क्रांतिकारियों और 124 आऊवा ग्रामवासियों को पंक्ति में खड़ा कर गोली से उड़ा दिया। तमाम मंदिर तोड़ दिए और कुलदेवी सुगालीमाता की प्रतिमा उठाकर अजमेर ले गए। आज भी वह प्रतिमा पुराणी मंडी संग्रहालय में रखी है। इसी बीच होम्स ने एक टुकड़ी ठाकुर खुशाल सिंह के पीछे भेजी। सहयोग के लिए आगे आए श्रीराली ठाकुर ने उसे दो दिन तक रोके रखा। बड़सू के समीप ठाकुर खुशाल सिंह की सहायता करने आए ठाकुर विशन सिंह, ठाकुर शिवनाथ सिंह और ठाकुर अजीत सिंह ने मिलकर अँग्रेजों से युद्ध किया। बगड़ी ठाकुर भी सेना लेकर सहायता हेतु पहुँचे। इन सबकी सेनाओं ने अँग्रेजी सेना से युद्ध लड़ा, लेकिन अंत में राजस्थानी सामंतों की सेना हार गई, परंतु खुशाल ठाकुर को वे सुरक्षित मेवाड़ में कोठारिया के राव जोधसिंह के पास लेकर पहुँचे। उनकी मृत्यु मेवाड़ में ही हुई।

अनेक रियासतों के राजा अँग्रेजों के साथ हो लिए, लेकिन उनके अधीन आने वाले सामंत अँग्रेजों का साथ देने के लिए अपनी सेनाएँ भेजने को तैयार नहीं हुए। कुछ खुलकर विद्रोह में उतर आए तो कुछ ने असहयोग का मार्ग अपनाया। कई ऐसे भी थे, जिन्होंने अँग्रेजों का साथ दिया और स्वतंत्रता सेनानियों की मुखबिरी की। सामंतों में अँग्रेजों के विरुद्ध असंतोष और नाराजगी के अनेक कारण थे, जिनमें प्रमुख थे सामंतों के अधिकारों पर कुठाराघात, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप, अँग्रेजों का विभेदकारी और शोषणपूर्ण व्यवहार, अँग्रेजों का भारतीय सैनिकों में अविश्वास, अँग्रेजों का भारतीय सैनिकों से दुर्व्यवहार और लगातार बढ़ती लगान राशि, जिसे जनता से एकत्रित कर राजा को भेजने का दायित्व सामंतों का था। जिन सामंतों ने विद्रोह का परचम सबसे ऊँचा लहराया, वे थे आऊवा ठिकाने के ठाकुर खुशाल सिंह चंपावत। खुशाल सिंह चंपावत का अँग्रेजों और जोधपुर राजा की सम्मिलित सेना के विरुद्ध युद्ध राजस्थान में 1857 की

क्रांति के इतिहास का सबसे रक्तरंजित पृष्ठ है। खुशाल सिंह ने अँग्रेजों को तीन बार युद्ध में हराया। अँग्रेजी राजनीतिक एजेंट का सिर काटकर किले के द्वार पर टाँग दिया। बौखलाए अँग्रेजों ने अनेक टुकड़ियाँ मँगवाकर आऊवा पर हमला किया। सैंकड़ों निर्दोष लोगों को अँग्रेजों ने तोप और गोलियों से उड़ा दिया। आज भी ठाकुर खुशाल सिंह की वीरता का बखान होली के पारंपरिक गीतों में ढोल और चंग की थाप पर आऊवा में गाए जाते हैं (सिंह एवं लखावत 2021)।

आऊवा उस समय मारवाड़ के अंतर्गत आता था। इस समय वह पाली जिले में है। अँग्रेजी शासन को सबसे बड़ा धक्का यहीं लगा था। गवर्नर जर्नल के प्रतिनिधि यानी राजस्थान के सर्वोच्च अधिकारी को मार डाला गया। आऊवा ठाकुर की बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने राजस्थान के विभिन्न हिस्सों को अँग्रेजों के विरुद्ध आजादी के युद्ध में एकीकृत करने का काम किया। उन्हें राजस्थान के विभिन्न हिस्सों से सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ। मेवाड़ में उन्हें अँग्रेजों से युद्ध हारने के बाद पनाह मिली। उनके शौर्य गीत आऊवा ही नहीं, उन सभी क्षेत्रों में सुनाई देते हैं, जहाँ से उन्हें समर्थन मिला अथवा जहाँ उनका प्रभाव रहा। आऊवा ठाकुर खुशाल सिंह चंपावत का अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष तीन साल तक यानी 1857 से 1860 तक चला। आऊवा ठिकाने के सैनिकों ने नारा दिया था—"चलो दिल्ली, मारो फिरंगी"।

1857 की क्रांति के समय क्रांतिकारी सैनिक आऊवा ठिकाणे में एकत्रित हुए, परंतु उस समय अनेक राजाओं ने अँग्रेजों का साथ दिया और भारतीय क्रांतिकारी सैनिकों का दमन किया। तब राजस्थान के कवियों ने उन राजाओं को धिक्कारते हुए लिखा था :

वणिया वाळी गोचर माँय, काळो लोग पडियो ओ,
राजाजी रै भैळो तो फिरंगी लडिया ओ,
काळी टोपी रो।
हे ओ काळी टोपी रो, फिरंगी फैलाव कीधो ओ।
काळी टोपी रो।
बारली तोपाँ रा गोळा धूड़गढ़ में लागे ओ
माँयली तोपाँ रा गोळा तंबू तोड़ै ओ,
झल्लै आउवो ।
हे झल्लै आउवो, आउवो धरती रो थांबो ओ,
झल्लै आउवो। ।
राजाजी रा घोड़लिया काळाँ रे लारै दौड़ै रा
आउवे रा घोड़ा तो पछाड़ी तोड़े ओ,
झगड़ो व्हैण दो।
हे ओ झगड़ो व्हैण दो, झगड़ाँ में थाँरी जीत व्हैला ओ,
झगड़ो व्हैण दो (गुप्ता, 2014)।

आऊवा ठाकुर के सम्मान में होली पर गाए जाने वाले फाग आज भी प्रमुख हैं, जिनके बारे में आऊवा ठाकुर के वंशज बताते हैं :

मात गुलामी मेटवा हिंद खुशालो हीर।
आडियो भूवत आऊवो , वड चंपावत वीर।।

होली के समय आज भी ढोल और चंग की थाप पर निम्न गीत गाया जाता है:

डोल बाजे चंग वाजे, भलो बाजै बाँकियो
अजेंट मार माथौ ले, दरवाजे टँकियों
कै जूझै आऊवो, आऊवो मुल्काँ में चावौ हो
आऊवा वाळो अलबेलो भारत माँ रो सूरो हो
अँग्रेजाँ रै फिरग्यो आडो, काढ्यो चूरो हो
कै जूझै आऊवो, आऊवो मुल्काँ में चावौ हो
खुशालसिंह ठाकर री हाकळ, थर थर गोरा दूजे हो
आऊवा गढ़ में आजादी रा गीत गूँजै हो
कै जूझै आऊवो, आऊवो मुल्काँ में चावौ हो (भाटी, 2020)।

होली पर ही गाया जाने वाला एक और गीत है, जिसके बारे में आऊवा के स्थानीय नागरिक बताते हैं :

फिरंगियाँ नै मार फेंकिया जबर लड्यो जंग
चार कूँट्यों सुजस चावौ, देख दुनियाँ दंग
तो घणरंग जी, घणरंग जी, राँगड़ आऊवा घणरंग
खरो खूँटो नर खुशलो, अलबेलो अनूप
ऊभो हरवळ आऊवो, राँगडो भड़ रूप
तो वड भूपजी, तो वड भूपजी, सूर आऊवो वड भूप।

होली पर गाया जाने वाला एक अन्य गीत है :

जोर जी चंपावत घोडा बाजारों में खड़िया रे
जोर जी चंपावत घोडा बाजारों में खड़िया रे
जोर जी चंपावत घोडा बाजारों में खड़िया रे
ढोल बाजे थाळी बाजे भेलो बाजे वाकियो
ऐ एजेंट ने मार ने दरवाजे टाँकियो - ओ जूझें आऊवो
आऊवो मुल्काँ में चोखो हो - ओ जूझें आऊवो
दिल्ली रे दरवाजे माथे झंडो लागे तीरंगो
दिल्ली रे दरवाजे माथे झंडो लागे तीरंगो
दिल्ली रे दरवाजे माथे झंडो लागे तीरंगो (सिंह. ए.वी. 2018)।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रान (1815-1868)

आऊवा की घटना को राजस्थान के महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रान (1815-1868) ने अपनी कविता का विषय बनाया और लिखा :

लोहाँ करंतो झाटका फणाँ कँवारी घड़ा रो लाडौ,
आडो जोधाँण सूँ खेंचियो वहे अंट। जंगी साल हिदवाँण
रा आवगो जींनै ।
आउवो खायगो फिरंगाण रो अजंट ।। (गुप्ता, 2014)

1858 : मेवाड़ (उदयपुर) में आऊवा ठाकुर की प्रशंसा के गीत

आऊवा ठाकुर खुशालसिंह को अपना ठिकाणा छोड़कर मेवाड़ रियासत के कोठारिया ठिकाणे में शरण लेनी पड़ी। उनकी और उन्हें सहायता देने वाले कोठारिया (आज का भीलवाड़ा) रावत जोधसिंह (तरुण, 2018) की प्रशंसा में भी लोकगीत गाए जाने लगे। इन्होंने ताँत्या टोपे की भी सहायता की थी।

बाँकड़ली मूँछाँ रो ठाकर कोठारिया में आयो रै
अँगरेजाँ रा दुसमण ने मेवाड़ वधायो रै
हाँ रे झगड़ो झालियो
झगड़ो झालियो
धरती में थाँरो नाम रेसी ओ
झगड़ो झालियो। (गुप्ता, 2014)

1857 : सलेदी ठाकुर कानसिंह

1857 की क्रांति में क्रांतिकारी सैनिकों की सहायता करने वाले सलेदी के ठाकुर कानसिंह की प्रशंसा में भी गीत अंकित हैं। ऐसा ही एक गीत कविराज शंकरदान सामोर द्वारा रचित है। सलेदी के कानसिंह को श्रीकृष्ण से उपमित करते हुए उनका यशोगान इस प्रकार किया है :

''हद कर ग्यो कान सलेदी को, हद कर ग्यो।
एक तो कान बिरज को वासी, दूजो कान सलेदी को।
लूट तिराय, त्याहवली लूटी, लूट्यौ बुंगलो ठेडी को।
हद कर ग्यो .....
ब्रज को कान तौ काल कंस कौ, ओ तो काल फिरंगी को।
ब्रज को कान महीदधि लूटै, ओ तो फौज फिरंगी को
हद कर ग्यो ..... '' (कुमार, 2011)

1857 में सिपाहियों की सहायता न करने पर गोपालपुरा (चुरू) के ठाकुर शंकर सिंह सामौर की आलोचना भी हुई। एक तरफ जहाँ सामंतों की वीरता की प्रशंसा करते गीत थे तो दूसरी ओर जनता और कवियों ने अँग्रेजों का साथ देने वालों की आलोचना करते हुए गीत लिखे। 1857 की क्रांति के समय गोपालपुरा के राव हम्मीरसिंह द्वारा क्रांतिकारी सैनिकों की सहायता करने से मना करने पर उन्हें धिक्कारते हुए शंकरसिंह सामौर ने लिखा था—''तन मोटो तात मोटो, मोटो बस गंभीर। हुयौ देस हित क्यूँ हमै, मन छोटो हम्मीर (गुप्ता, 2014)।

ताँत्या टोपे की राजस्थान यात्राएँ 1857

1857 में ताँत्या टोपे ने राजस्थान में दो यात्राएँ कीं। यह उनकी गतिविधियों का एक प्रमुख केंद्र रहा। वे यहाँ के राजाओं से धन, शस्त्र, आयुद्ध और भोजन के रूप में सहायता प्राप्त करने आए थे। पहली यात्रा 18 अगस्त, 1857 को हुई, जब वे भीलवाड़ा से राजस्थान में प्रविष्ट हुए। अँग्रेजों को उनके आने की तुरंत खबर लगी और अगले ही दिन युद्ध आरंभ हुआ, जिसमें ताँत्या हार गए। उन्हें सहयोग किया कोठारिया (आज का भीलवाड़ा) के रावत जोधसिंह ने। वे रूपनगढ़ से अकोला (चित्तौड़गढ़), झालावाड़ (जहाँ उन्होंने राजा पृथ्वी सिंह को पदच्युत किया, उनके खजाने और सेना को अपना बनाया), छोटा उदयपुर होते हुए ग्वालियर लौट गए (शर्मा, 2013)। दूसरी बार वे दिसंबर, 1857 में बाँसवाड़ा से राजस्थान में प्रविष्ट हुए और अँग्रेज समर्थक राजा लक्ष्मण सिंह को पदच्युत किया। वहाँ से वे प्रतापगढ़ में युद्ध हारने के बाद टोंक पहुँचे। यहाँ जनवरी, 1858 में अमीरगढ़ का युद्ध लड़ा गया। आगे बढ़ते हुए ताँत्या नाथद्वारा (मौजूदा उदैपर के समीप) के पास नरवर पहुँचे। वहाँ के ठाकुर मानसिंह नरुका उनके दोस्त थे और ताँत्या को नरवर के जंगलों में बुलवाया, जहाँ धोखा देकर उन्हें अँग्रेजों से पकड़वा दिया। अँग्रेज उन्हें शिप्रि (अब शिवपुरी) ले गए, जहाँ 18 अप्रैल, 1859 को उन्हें फाँसी दे दी गई (चितले, 2019)।

ताँत्या टोपे की प्रशंसा में कविराज शंकरदान सामोर द्वारा यह कविता लिखी गई—

''जठै गयौ जंग जीतियौ खटके बिन रणखेत
तकड़ौ लड़यौ ताँतियौ हिंदथान रै हेत
मचायौ हिंद में आरवी तहलको ताँतियौ मोटो
छोटो जेम घुमायौ लंक में हणू धोर
रचायौ रुजँनी रजपूती रौ आखरी रंग
जंग में दिखायौ सुवायौ अथाग जौर
हुय हताश रजपूती छँडयौ छत्रियाँ हाथ
साथ चगौ सोधियौ दिक्खणी महासूर
पलकती अकाश बीज कठै ई जावती पडै
छडै ताँतियै री व्हैगी इसी ही छलांग''।

'जठै गियौं जंग जीतियो, खटकै बिण रणखेत।
तकडौ लडयौ ताँतियौं, हिंद थान रै हेत।।
मचायो हिंद में आखी, तहल कौ ताँतियो मोटो,
धोम जेम घुमायो लंक में हणूँ घोर।
रचाओ ऊजली राजपूती रो आखरी रंग,
जंग में दिखायो सूवायो अथग जोर।
पलकती अकास बीज कठै ही जीवती पडै,
छडै ताँतिये री व्हैगी, इसी ही छलांग।
खलकती नंध्या रा खालमाँय हूँ तो पा'उ खडै,
लडै इणाँ विधि लाखा हूँत एक लांग।'' (कुमार, 2011)

बीकानेर रियासत के गोपालपुरा, कणवारी तथा शेखावाटी के नवलगढ़, खेतड़ी, खंडेला आदि ठिकाने भी कविराज शंकरदान सामोर के कोपभाजन बने क्योंकि इन ठिकानेदारों ने ताँत्या की मदद करने के उनके आग्रह को ठुकरा दिया था। अत्यंत तीक्ष्ण शब्दों से उन्होंने अँग्रेजभक्तों को बींध डाला। सरदारसिंह को धिक्कारते हुए कहा—

देख मरै हित देश रै, पेख सचौ रजपूत।
सरदारा तोनै सदा, कहसी जगत् कपूत।।
खास बाँधवाँ खीज, सैण गोरिया गिण सचा।
थूँ बा'वै अेहड़ा बीज, फोग फोग फळ भोगसी।।

बीकानेर दरबार को मूर्ख मंडली की संज्ञा देते हुए कवि ने कहा--
डफ राजा डफ मुसद्दी डफ ई देश दीवाँण।
डफ ई डफ भेळा हुया, (जद) बाज्यौ डफ बीकाँण।।

सरदार सिंह के उत्तराधिकारी डूंगर सिंह की अँग्रेजपरस्ती के विरुद्ध सामोर के रोष की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई—
हो-छोगो हिंदवाण रौ, अडिग फिरंती आण।
पत्थर पाट बिराजताँ, बटटौ लग्यौ बीकाँण।।

ताँत्या की मदद करने से इनकार करने पर गोपालपुरा के ठिकानेदार हमीरसिंह को उपालंभ देते हुए कहा—

तन मोटो मोटो तखत, मोटो वंश गंभीर।
हुयौ देश हित क्यूँ हमैं, (थारौ) मन छोटो हम्मीर।।

इस वजह से खेतड़ी के शासक को इन शब्दों में फटकारा—

खेतड़मिळा दूँ भेळी रेतड़ी
आकाँ ऊन ज्यूँ उड़ा दूँ हुर फुर्र।। (राजपुरोहित, 2008)

1857 के समय भारतीय जनजीवन में अँग्रेजों का मुखर विरोध था। आम जनता में अँग्रेजों के साथ-साथ उन सामंतों और राजाओं के प्रति भी तीव्र आक्रोश था, जो अपनी स्वार्थलिप्सा के वशीभूत होकर राष्ट्रहित को तिलांजलि देकर अँग्रेजों का साथ दे रहे थे। यह आक्रोश देश के विभिन्न भागों में दिखाई पड़ता है। राजस्थान के डूँगरपुर में भी अँग्रेजों के प्रति अत्यंत तीव्र रोष फैला हुआ था, क्योंकि अँग्रेजों ने कुछ जागीरदारों से मिलकर महारावल जसवंत सिंह को गद्दी से अपदस्थ करके बनारस भेज दिया था। जिन जागीरदारों ने अँग्रेजों का साथ दिया, उन पर कटाक्ष करते हुए तत्कालीन कवि दूलजी ने लिखा है :

"लाणत लूण हराम जसवंत में कीधी जका,
कुल विंदरा रो काम साबत तो में 'सादला'।
हमके 'अजमल'तोत अंसधारी बागड इला,
गढ छोडे गहलोत जातो नह रावल 'जसो'।
ओढे सिर पर औढणी सह भड माँणी सीख,
तूरका रा ताबूत ज्यूँ, मेल चल्या मछरीक।
जसवंत ने 'गिणगौर' ज्यूँ मेल तीरथ मँझार,
आया सावण गावता, साँभरियाँ सिरदार।" (कुमार 2011)

अन्य कई क्रांतिकारियों के नाम सामने आए, लेकिन उनके लिए लिखे गए गीतों, नारों, कहावतों की तलाश जारी है। इनके न मिलने का प्रमुख कारण है राजस्थान में लिखित परंपरा का कमजोर पक्ष। समय के साथ स्तुतिगान लिखने-गाने वाली जातियाँ अपने इस कार्य से अलग होतीं गईं और उनके साथ खोने लगी इतिहास की अमूल्य धरोहर यानी स्वतंत्रता संग्राम का वृत्तांत। ऐसे कुछ प्रमुख नामों में एक हैं राजस्थान के मंगल पांडेय यानी अमरचंद बाँठिया, जो बीकानेर के रहने वाले थे। उन्हें 22 जून, 1858 को रानी लक्ष्मीबाई को आर्थिक सहायता देने के आरोप में अँग्रेजों ने फाँसी दे दी थी। बीकानेर डिंगल भाषा का सशक्त क्षेत्र है। डिंगल कवियों की भाषा है। बाँठिया पर गीतों/नारों की तलाश जारी है।

1900 से 1947

यह वह समयावधि है, जब जनता अँग्रेजी शासन और राजाओं के विरुद्ध और भी मुखर और संगठित होने लगी थी। लोगों में स्वराज की भावना मजबूत हो रही थी और वे स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ने लगे थे। साथ ही यह वह समय भी है, जब रियासतें अपना रुतबा कायम रख रहीं थीं, लेकिन अँग्रेजी हुकूमत के दबाव के सम्मुख उन्हें लगातार झुकना पड़ रहा था। राजस्थान में अँग्रेजों के विरुद्ध आमजन में क्रोध की भावना के बढ़ने की एक खास वजह भी है। अँग्रेजों ने लगातार लगान में अपना हिस्सा बढ़ाना जारी रखा। वहीं दूसरी ओर राजाओं को अपने धन की मात्रा में कमी स्वीकार नहीं थी। इसलिए उन्होंने जनता पर लगान बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। इसका भार किसानों पर आया। राजाओं द्वारा लगान/टैक्स की लगातार बढ़ती माँग से उनमें विद्रोह पैदा होने लगा। यह समय 1900 के बाद का था। विदेशी शासकों के विरुद्ध नाराजगी और विभिन्न स्थानों पर पैदा हो रहे इस विद्रोह को स्वतंत्रता संग्राम के राष्ट्रीय नेताओं ने संगठित किया और इस प्रकार किसान आंदोलन के रूप में स्वतंत्रता संग्राम ने नया विस्तार पाया।

1903

सन् 1903 में जब महाराणा फतह सिंह वायसराय द्वारा बुलाए जाने पर दिल्ली दरबार में जाने लगे तो ठाकुर केसरी सिंह ने 'चेतावनी रा चूंगट्या' लिखकर महाराणा को रोकने का प्रयास किया। महाराणा दिल्ली तो पहुँचे, किंतु चूंगट्यों की टीस ऐसी थी कि दिल्ली दरबार में भाग लिए बिना ही लौट आए (कविया, 2015)। चूंगटियों की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—"पग-पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम। महाराणा मेवाड़, हिरदे बसिया हिंद रै। घण घलिया घमसाँण, राँणा सदा रहिया निडर। पेखंताँ फुरमाँण, हल चल किम फतमल हुवै। गिरद गजाँ घमसाँण, नहचै घर माई नहीं मात्रै किम महाराँण, गज सौ रै घेरे गिरद।।"

चेतावनी रा चूंगट्या

1903 में लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में सभी राजाओं के साथ हिंदू कुल सूर्य मेवाड़ के महाराणा का जाना राजस्थान के जागीरदार क्रांतिकारियों को अच्छा नहीं लग रहा था। इसलिए उन्हें रोकने के लिए शेखावाटी के मलसीसर के ठाकुर भूर सिंह ने ठाकुर करण सिंह जोबनेर व राव गोपाल सिंह खरवा के साथ मिलकर महाराणा फतह सिंह को दिल्ली जाने से रोकने की जिम्मेदारी क्रांतिकारी कवि केसरी सिंह बारहट को दी। केसरी सिंह बारहट ने 'चेतावनी रा चूंगट्या' नामक सोरठे रचे, जिन्हें पढ़कर महाराणा अत्यधिक प्रभावित हुए और दिल्ली दरबार में न जाने का निश्चय किया। दिल्ली जाने के बावजूद वे समारोह में शामिल नहीं हुए (डागर, 2018)।

पग पग भम्या पहाड, धरा छाँड राख्यो धरम।
(ईसू) महाराणा अर मेवाड़ हिरदे बसिया हिंद रै।।1।।

भयंकर मुसीबतों में दुःख सहते हुए मेवाड़ के महाराणा प्रताप नंगे पैर पहाड़ों में घूमे, घास की रोटियाँ खाईं, फिर भी उन्होंने हमेशा धर्म की रक्षा की। मातृभूमि के गौरव के लिए वे कभी कितनी भी बड़ी मुसीबत से विचलित नहीं हुए। उन्होंने हमेशा मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है। वे कभी किसी के आगे नहीं झुके। इसीलिए आज मेवाड़ के महाराणा हिंदुस्तान के जन-जन के हृदय में बसे हैं।

घणा घलिया घमसाँण, (तोई) राणा सदा रहिया निडर।
(अब) पेखँताँ, फरमाण हलचल किम फतमल! हुवै।।2।।

इसका मतलब है कि अनगिनत व भीषण युद्ध लड़ने के बावजूद मेवाड़ के महाराणा कभी किसी युद्ध से न तो विचलित हुए और न ही कभी किसी से डरे। उन्होंने हमेशा निडरता ही दिखाई। लेकिन हे महाराणा फतह सिंह! आपके ऐसे शूरवीर कुल में जन्म लेने के बावजूद लार्ड कर्जन के एक

छोटे से फरमान से आपके मन में किस तरह की हलचल पैदा हो गई, यह समझ से परे है।

गिरद गजाँ घमसाँणष नहचै धर माई नहीं।
(ऊ) मावै किम महाराणा, गज दोसै रा गिरद में ।।3।।

इसका मतलब है कि मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा लड़े गए अनगिनत घमासान युद्धों में, जिनमें हजारों हाथी व असंख्य सैनिक होते थे, धरती कम पड़ जाती थी। आज वे महाराणा अँग्रेज सरकार द्वारा 200 गज के कक्ष में आयोजित समारोह में कैसे समा सकते हैं? क्या उनके लिए यह जगह काफी है?

ओराँ ने आसान, हाँका हरवळ हालणों।
(पणा) किम हालै कुल राणा, (जिण) हरवळ साहाँ हँकिया ।।4।।

इसका अर्थ है कि अन्य राजा-महाराजाओं के लिए तो यह बहुत आसान है कि उन्हें कोई हाँककर अग्रिम पंक्ति में बिठा दे, लेकिन उस कुल के महाराणा को वह पंक्ति कैसे शोभा देगी, जिस कुल के महाराणाओं ने आज तक बादशाही फौज के अग्रिम पंक्ति के योद्धाओं को युद्ध में खदेड़ कर भगाया है।

नरियंद सह नजराँण, झुक करसी सरसी जिकाँ।
(पण) पसरैलो किम पाण, पाणा छताँ थारो फता! ।।5।।

अन्य राजा जब अँग्रेज सरकार के आगे नतमस्तक होंगे और उसे हाथ बढ़ाकर झुककर नजराना पेश करेंगे, तो उनकी तो हमेशा झुकने की आदत है वे तो हमेशा झुकते आए हैं, लेकिन हे सिसोदिया बलशाली महाराणा, उनकी तरह झुककर अँग्रेज सरकार को नजराना पेश करने के लिए आपका हाथ कैसे बढ़ेगा, जो आज तक किसी के आगे नहीं बढ़ा और न ही झुका।

सिर झुकिया सह शाह, सींहासण जिण सम्हने।
(अब) रळनो पंगत राह, फाबै किम तोने फता! ।।6।।

हे महाराणा फतह सिंह! जिस सिसोदिया कुल सिंहासन के आगे कई राजा, महाराजा, राव, उमराव, बादशाह सिर झुकाते थे, लेकिन आज सिर झुके राजाओं की पंगत में शामिल होना आपको कैसे शोभा देगा?

सकल चढावे सीस, दान धरम जिण रौ दियौ।
सो खिताब बखसीस, लेवण किम ललचावसी ।।7।।

जिन महाराणाओं का दिया दान, बख्शिशें व जागीरें लोग अपने माथे पर लगाकर स्वीकार करते थे, जो आज तक दूसरों को बख्शिश व दान देते आए हैं, आज वे महाराणा खुद अँग्रेज सरकार द्वारा दिए जाने वाले 'स्टार ऑफ इंडिया' नामक खिताब रूपी बख्शिश लेने के लालच में कैसे आ गए?

देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नह सूँ।
पण 'तारा' परमाण, निरख निसासा न्हाँकसी ।।8।।

हे महाराणा फतह सिंह, हिंदुस्तान की जनता आपको अपना हिंदुआ सूर्य समझती है। जब वह आपकी तरफ यानी अपने सूर्य की ओर स्नेह से देखेगी, तब आपके सीने पर अँग्रेज सरकार द्वारा दिया गया 'तारा' (स्टार ऑफ इंडिया का खिताब) देख उसकी अपने सूर्य से तुलना करेगी तो वह क्या समझेगी और मन-ही-मन बहुत लज्जित होगी।

देखे अंजस दीह, मुळकेलो मनही मनाँ।
दंभी गढ़ दिल्लीह, सीस नमंताँ सीसवद ।।9।।

जब दिल्ली की दंभी अँग्रेज सरकार हिंदुआ सूर्य सिसोदिया नरेश महाराणा फतह सिंह को अपने आगे झुकता हुआ देखेगी तो तब उनका घमंडी मुखिया लार्ड कर्जन मन-ही-मन खुश होगा और सोचेगा कि मेवाड़ के जिन महाराणाओं ने आज तक किसी के आगे अपना शीश नहीं झुकाया, वे आज मेरे आगे शीश झुका रहे हैं।

अंत बेर आखीह, पताल जे बाताँ पहल।
(वे) राणा सह राखीह, जिण री साखी सिर जटा ।।10।।

अपने जीवन के अंतिम समय में आपके कुल पुरुष महाराणा प्रताप ने जो बातें कहीं थीं, प्रतिज्ञाएँ की थीं व आने वाली पीढ़ियों के लिए आख्यान दिए थे कि किसी के आगे नहीं झुकना, दिल्ली को कभी कर नहीं देना, पातळ में खाना खाना, केश नहीं कटवाना—जिनका पालन आज तक आप व आपके पूर्वज महाराणा करते आए हैं और हे महाराणा फतह सिंह, इन सब बातों के साक्षी आपके सिर के ये लंबे केश हैं।

'कठिण जमानो' कौल, बाँधे नर हीमत बिना।
(यो) बीराँ हंदो बोल, पातल साँगे पेखियो।।11।।

हे महाराणा, यह समय बहुत कठिन है। इस समय प्रतिज्ञाओं और वचन का पालन करना बिना हिम्मत के संभव नहीं है। अर्थात् इस कठिन समय में अपने वचन का पालन सिर्फ एक वीर पुरुष ही कर सकता है। जो शूरवीर होते हैं उनके वचनों का ही महत्त्व होता है। ऐसे ही शूरवीरों में महाराणा सांगा, कुंभा व महाराणा प्रताप को लोगों ने परखा है।

अब लग साराँ आस, राण रीत कुळ राखसी।
रहो सहाय सुखरास, एकलिंग प्रभु आप रै ।।12।।

हे महाराणा फतह सिंह जी, पूरे भारत की जनता को आपसे ही आशा है कि आप राणा कुल की चली आ रही परंपराओं का निर्वाह करेंगे और किसी के आगे न झुकने का महाराणा प्रताप के प्रण का पालन करेंगे। प्रभु एकलिंग नाथ इस कार्य में आपके साथ होंगे व आपको सफल होने की शक्ति देंगे।

मान मोद सीसोद, राजनित बळ राखणो।
(ई) गवरमेंट री गोद, फळ मिठा दिठा फता ।।13।।

हे महाराणा सिसोदिया, राजनैतिक इच्छाशक्ति व बल रखना। इस सरकार की गोद में बैठकर आप जिस मीठे फल की आस कर रहे हैं वह मीठा नहीं खट्टा है (शेखावत, 2009)।

1915

सन् 1915 में खरवा के राव गोपाल सिंह, ब्यावर के दामोदर दास राठी तथा संयुक्त प्रांत से आए विजय सिंह पथिक ने बंगाल के क्रांतिकारियों

के सहयोग से सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई। वह योजना विफल हो गई। गोपालसिंह को जेल में बंद कर दिया गया। जब राहुल सांकृत्यायन ने जेल में राव गोपालसिंह से भेंट की तो गोपालसिंह ने राहुल सांकृत्यायन को कई स्वरचित कविताएँ सुनाई, जिनमें से एक कविता इस प्रकार थी—"गौरांग गण के रक्त से, निज पितृ गण तरपण करूँगा।" (शुभदा प्रकाशन, 2020)

1919

सन् 1919 में जलियाँवाला हत्याकांड हुआ। उसकी प्रतिक्रिया पूरे देश में हुई। अर्जुनलाल सेठी ने अँग्रेजों के शासन को खूनियों और डाकुओं का राज बताते हुए लिखा—

खूनियाँ रौ राज, यो तो खूनियाँ को राज यो तो डाकुओं को राज।
पापी गोरा पाळै छै यो, खूनियाँ को राज।
गोरा गोरा मूंडा ऊपर, राता राता दाग मिनखाँ नै मार नाँख्या, जळियाँ वाळै बाग।
म्हाँको धणी लेबा गयै, बजाराँ में खाँड गोराँ मारी गोली ऊँ के, भूलै कोनी राँड भूरी-भूरी भोपणी है,
नीली-नीली आँख सारा घर नै खूँद नाख्यौ, छोड़ी कोनी राख छोटी-छोटी कूकड़ी रे, काचौकाचौ सूत
गोराँ पापी मार गेरो, म्हाँको स्याणौ पूत।।
म्हारी सुणले रामजी रे, थाँकी पूरी आस गोरा डाकू पापियाँ को, करजै सत्यानास।

1927

सन् 1927 में बंबई में 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद' की स्थापना के बाद राजस्थान की रियासतों में प्रजामंडलों की स्थापना हुई। चालीस के दशक में प्रजामंडलों के काम ने जोर पकड़ लिया। इस दौरान आजादी के अर्थ में कुछ विस्तार हुआ। अब अँग्रेजी राज्य से मुक्ति के साथ-साथ अच्छे राज्य एवं नागरिक अधिकारों की माँग होने लगी। इस काल में मारवाड़ लोक परिषद के नेता जयनारायण व्यास ने लिखा—

"कह दो आ डंके री चोट।
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट।
अब म्हें सूता नहीं रहाँला
गाँव-गाँव आब बात कहाँलाँ
पैला काढौ घर री खोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट।।" (गहलोत,1998)

इस दौर में कृषकों और श्रमिकों को भी झकझोर कर उठाने का प्रयास किया गया—

धान घणौ उपजावै कुण,
पेट नहीं भर पावै कुण,
हाथाँ वस्त्र बनावै कुण,
फिर नागो रह जावै कुण?

जयनारायण व्यास ने राजाओं का आह्वान कर उन्हें भी जगाने का प्रयास किया—

म्हानै अँसो दीजौ राज म्हारा राजाजी,
म्हानै औसो दीजौ राज।
गाँव-गाँव पंचायत चुणकर पंच चलावै राज,
जिले-जिले री कमेटियाँ मै व्है परजा रौ राज।

मेवाड़ प्रजा मंडल के नेता माणिक्यलाल वर्मा ने किसानों को जगाते हुए कहा—

मरदाओं रे! काली तो भादूड़ा री राताँ सोवे छा।
तन का कपड़ा भी खोवे छा। हाँ पड़ा पड़ा थें रोवे छा।
आँसू सूँ डीलड़ो धोवे छा।
मरदाओं रे। ढाँडा थाने जाण सिपाई फूटे छा।
घन माल कमाई लूटे छा, दूजाँ के खूटे-खूटे छा।
आपस में भाई फूटे छा।

जनकवि गणेशलाल व्यास 'उस्ताद' ने अपने गीतों से राजस्थान में धूम मचा दी (ओंकारश्री, 1994):

जागण रौ दिन आयौ साथियाँ, जागण रौ दिन आयो, औ ढळतौ दिन आयौ, जुग जगत् पलटियौ पायौ, दिन बीत गया जद वै मतवाळा, बाँटाँ सिर लटका देता धावडियाँ सूँ धाक भराता, वैहता धन पटका लेता जद कमतरिया रोता रह जाता, वै करता मन चायौ औ सगळौ जगत् नचायौ, बेलियाँ जागण रौ दिन आयौ।

जयपुर राज्य प्रजा मंडल के नेता हीरालाल शास्त्री ने जन आंदोलनों की सफलता की कामना करते हुए लिखा—

सपनो आयो एक घणो जबरो रे, सपनो आयो।
काळी पीळी आँधी उठी, चाल्यो सूँठ घणो जबरो रे - सपनो आयो।
थळ को तो हो गया जळ, जळ को थळ होयो सपट पाट घणो जबरो रे सपनो आयो।
डूंगर टूट जमीं मिलग्या, देखो ख्याल घणो जबरो रे, सपनो आयो।...
म्हाँ को सपनो साँचो होसी,
समझो भेद धणी जबरो रे, सपनो आयो।

कोटा राज्य प्रजा मंडल के नेता भैरवलाल ने काळा बादळ नाम से एक गीत लिखा। यह गीत इतना लोक प्रिय हुआ कि उसके बाद भैरवलाल काळा बादळ नाम से ही पहचाने जाने लगे—

काळा बादळ रे!
अब तो बरसा दे
बळती आग् थाँका मन की यूँ करै जद, नाज नहीं छै, लूण नहीं छै, नहीं तेल री धार,
काळा बादळ रे। चालै बाँका हाथ,
बादळ राजा कान बिना रौ, सुणै न म्हाँ की बात
काळा बादळ रे।
छोरा-छोरी दूध बिना रे, चून बिना घर नार। (गुप्ता, 2014).

1922– अंधकवि भँवरलाल 'प्रज्ञाचक्षु'

राजस्थान स्वतंत्रता आंदोलन में रासबिहारी बोस के अनुयायी

विजय सिंह पथिक जैसे नेता थे, लेकिन इनकी सफलता का श्रेय काफी हद तक स्थानीय नेताओं जैसे माणिक्यलाल वर्मा, सीतारामदास साधु और अंधकवि भँवरलाल 'प्रज्ञाचक्षु' को भी दिया जाना चाहिए। अंधकवि भँवरलाल 'प्रज्ञाचक्षु' ने अपने गीतों और कविताओं से स्वतंत्रता आंदोलन को ऊर्जा प्रदान की। बिजोलिया राव, बूँदी महाराव अथवा मेवाड़ सरकार ने जब-जब अंधकवि भँवरलाल 'प्रज्ञाचक्षु' को गिरफ्तार किया, लोगों ने ऐसा विरोध किया कि उन्हें रिहा करना पड़ा। 1922 में 'प्रज्ञाचक्षु' मेवाड़ नरेश से सीधी बात करने के लिए राजधानी उदयपुर पहुँचे। तब महाराणा फतह सिंह प्रतिदिन महल के 'सूरज गोखड़े' से जनता को दर्शन देते थे। 'प्रज्ञाचक्षु' अपने छोटे भाई गोपीलाल स्वर्णकार के साथ महल पहुँच गए। राजा के सामने ऊँची आवाज में गीत गया। दोनों भाई गिरफ्तार कर लिए गए, लेकिन महाराणा ने उन्हें ससम्मान महल में रखा और उनसे स्वतंत्रता के कई गीत सुने और प्रशंसा की। जब रिहा किया तो महल के बाहर तक पहुँचाने के लिए घोड़े भेजे (तरुण, 2018, पृ. 114)।

उस गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

मान मान मेवाड़ा राणा,
प्रजा पुकारे रे,
सुन महाराणा फतेहमाल,
तू मत पाड़े गेला रे।
तू केवे म्हूँ बीएस मैं कर लूँ,
लेकर तलवार रे,
रूस जार रो पता न लाग्यो,
सुन महाराणा फतेहमाल रे।
मान मान मेवाड़ा राणा

1926 : बलजी भूरजी शेखावत

राजस्थान में शेखावाटी राज्य की जागीर बठोठ-पटोदा के ठाकुर बलजी शेखावत एक जागीरदार थे। उनके लिए कहा जाता है—"सिंघणी रा जण्या कदै डरे सियाळ्या सूँ।" किसानों से लगान वसूल कर राजा को भेजना जागीरदार का काम था। उस लगान का एक हिस्सा अँग्रेजों तक जाता था। बलजी को अँग्रेजों की दासता रास नहीं आती थी। वे डूंगरजी-जवाहरजी के वंशज भी थे। वही, जिन्हें माना जाता है, अँग्रेजों की मित्रता के कारण जोधपुर रियासत ने धोखे से मरवा दिया था। उनके छोटे भाई भूरजी शेखावत अँग्रेजों की फौज में सूबेदार थे। भारतीय सैनिकों से दुर्व्यवहार पर उन्होंने एक अँग्रेजी सिपाही की हत्या कर दी और फरार होकर बलजी के पास अपने घर पहुँचे। अँग्रेजी फौज उनको पकड़ने के लिए उनके पीछे पड़ी हुई थी। दोनों भाई भाग निकले। दोनों बागी बन गए और अँग्रेजों, जोधपुर रियासत और अँग्रेजी हुकूमत के सेठों को लूटते थे। वे उस धन से गरीबों की सहायता भी करते थे। अतः उन्हें आम जान से सहयोग लगातार प्राप्त होता रहा। अँग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार करने के लिए अपनी टुकड़ी लगा दी। जोधपुर रियासत ने इसमें सहयोग किया। 13 अक्टूबर, 1926 को उन्हें बख्तावर सिंह के नेतृत्व में उस टुकड़ी ने मार दिया (रेउ, 2009, पृ. 115-151)। उनकी मृत्यु के बाद जनाक्रोश फैल गया। लोग इकट्ठा हुए, शवों से दुर्व्यवहार और अपमान की आशंका के कारण, उनके शव जोधपुर नहीं ले जाने दिए गए। समाज के प्रमुख लोगों ने वहीं उनका दाह संस्कार किया और उस स्थल पर चबूतरा बना दिया गया। वहाँ आज एक स्मारक और छतरियाँ हैं। अँग्रेजों से लोहा लेने वाले बलजी भूरजी को आज लोकदेवता भोमियाजी के रूप में पूजा जाता है। उनकी पुण्यतिथि पर आज भी हजारों लोग उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करने इकट्ठा होते है । भोपों और कवियों ने उन पर कई गीत और दोहे रचे हैं। जोधपुर रियासत में उनके द्वारा डाले गए धाड़ों पर एक दोहा इस प्रकार है—"बीस बरस धाड़न में बीती, मारवाड़ नै कर दी रीति।"

राजाओं द्वारा अँग्रेजों की दासता स्वीकार करने से दुखी बलजी के भाव इस कविता में दिखाई देते हैं—

रजपूती डूबी जणाँ, आयो राज फिरंग।
रजवाड़ा भिसळया अठै ,चढ़्यो गुलामी रंग।

इसका अर्थ है कि राजपूतों के रजपूती गुण खोने (डूबने) के कारण ही ये फिरंगी राज पनपा है। राजपूताना के रजवाड़ों ने अपना कर्तव्य मार्ग खो दिया है और उनके ऊपर गुलामी का रंग चढ़ गया है।

रजपूती ढीली हुयाँ, बिगडया सारा खेल।
आजादी नै कायराँ, दई अडानै मेल।।

यानी राजपूतों में रजपूती गुणों की कमी के चलते ही सारा खेल बिगड़ गया है। कायरों ने आजादी को गिरवी रख दिया है (रियासत ए मेवाड़, 2016)।

1936

स्वतंत्रता संग्राम के इसी दौर में कन्हैयालाल सेठिया ने प्रदेशवासियों को जाग्रत करने का काम किया। उन्होंने 1936 से काव्य सृजन आरंभ किया। उनकी एक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

माँग रही है कितने युग से पीड़ित माँ बलिदान,
किंतु छिपाए बैठे हो तुम कायर अपने प्राण। (गुप्ता, 2014).

किस निद्रा में मग्न हुए हो, सदियों से तुम राजस्थान!
कहाँ गया वह शौर्य्य तुम्हारा, कहाँ गया वह अतुलित मान!
फुटकर दोहों में भी स्वतंत्रता की अलख जगाई जाती रही।
पराधीन भारत हुयो, प्यालाँ री मनुवार।
मात्र-भोम परतंत्र हो, बार-बार धिक्कार।।
ओ सुहाग खारो लगे, जद कायर भरतार।
रंडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार।।
सीख राज री होय तो, पण चालूँ में साथ। दुसमण पण फिर देख ले,
म्हारा दो-दो हाथ। (श्रीमाली, 1979)

1939 से 1942

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1942) के समय भारत में स्वाधीनता संग्राम अपने चरम पर पहुँच चुका था। उन दिनों ग्रामीण जनता में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं। एक अफवाह यह थी कि जर्मनी की फौजें भारत को आजाद करवाने के लिए आ रही हैं तथा स्वेज नहर तक पहुँच चुकी हैं। पशुपालकों में उन दिनों ये पंक्तियाँ प्रचलित थीं—"घर-घर बकरी घर-घर ऊँट, जर्मन फिरगौ चारों कूँट।।"

जैसलमेर के सागरमल

सागरमल गोपा ने जैसलमेर के महारावल द्वारा प्रजा पर किए जा रहे अत्याचारों के बारे में देशभर की पत्रिकाओं और अखबारों में लेख लिखे तथा नागपुर से 'जैसलमेर का गुंडा राज' शीर्षक से एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई। उनकी तीन प्रमुख कृतियाँ थीं—'जैसलमेर में गुंडाराज', 'आजादी के दीवाने', 'रघुनाथ सिंह का मुकदमा'। सागरमल ने महारावल के चापलूस दरबारियों के विरोध में 'महारावल के नवरत्न' शीर्षक से एक कविता लिखी, जिससे महारावल और उनके चापलूस सागरमल से कुपित हो गए। वह कविता इस प्रकार थी—

प्रथम रतन पूना जिण देश किया सूना चुगलखोरी का नमूना, भरे राज का कन्न है।
चापलूस चानणमल, चूके नहीं एक पल्ल, जेल में दरोगा करनू खल खेल चुका फन्न है।
डॉक्टर दूरगू पायो व्यभिचारी फल है नंदिए, नैपाले ने किया देश का पतन है।
राजमल, गुमान महादान डाकू आदि भूपति, जवाहर के ऐसे रतन हैं। (कुमार दिलीप, 2019)

जैसलमेर का शासक था जवाहर सिंह। सागरमल के स्वतंत्रता संग्राम में लिप्त होने के कारण इन पर दो राज्यों में प्रतिबंध लग गया था। ये दो राज्य थे, जैसलमेर और हैदराबाद। सागरमल गोपा ने जैसलमेर के महारावल जवाहर सिंह को चेतावनी देते हुए कहा—

'क्रांति की आँधी न रुकेगी मुगर से
सेकेंड की सलाह से शासन गँवाओगे
नौ रत्न के पंजों से बचो भूप जवाहर तुम
जैसाण के किले पर तिरंगा पाओगे' (राजस्थान एक गौरव, 2017).

पिता की मृत्यु पर 1941 में सरकार से अनुमति लेकर सागरमल जैसलमेर आए, लेकिन सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। अत्यधिक यातनाएँ दी गईं। अँग्रेजों और अत्याचारी शासकों के विरुद्ध जन भावनाएँ लगातार बढ़ती चली गईं। 16 जनवरी, 1946 को सागरमल गोपा ने जैसलमेर राज्य में झूठ के बल पर चल रहे शासन के बारे में जेल में एक कविता लिखी—

कूड़ी अदालत, कूड़ो शासन, कूड़ो कानून करे मन चायो
कूड़ो गवाह, कूड़ कुरान को, आई की आन में कूड़ समायो।
सैशन में जब केस गयो, तब लेश नहीं मैं साँच को पायो ढोल के तान पै नाचत पोल, मदारी गुमाने ज्यों ढोल बजायो।
मुरादाबाद से कूड़ को लाद के, मोती को पूत यहाँ अब
जीवनलाल को जेल में डाल के, लाले जोशी को कूड़ आयो, फँसायो।
सागरमल कियो न अमल, तब लाठी से कूड़ मंजूर करायो
किससे कहूँ, कौन सुने, अन्याय को यहाँ पर शासन छायो। (कुमार दिलीप, 2019)

इस गीत की आँच से घबराकर जेलर गुमान सिंह ने सागरमल पर केरोसीन डालकर जिंदा जला दिया। सागरमल गोपा की हत्या की जाँच गोपाल स्वरूप पाठक आयोग के द्वारा की गई थी। उनकी हत्या के बाद जनता में रोष फैल गया और जो नारा प्रचलित हुआ, वह था—"खून के बदले खून"।

राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण

'वंस भास्कर' और 'वीरसतसई' जैसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथों के रचियता, बूँदी ठिकाने के राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के दोहे भी देशभक्ति की भावना जाग्रत करने का कार्य करते रहे हैं—

इला न देणी आपणी हालरिया हुलराय
पूत सिखावै पालणै मरण बड़ाई माय। (श्रीमाली, 1979, पृ. 16)

कवि बाँकीदास

कवि बाँकीदास ने अँग्रेजों के शासन के विरुद्ध सोरठे लिखे, जो काफी प्रसिद्ध हुए—

आयो इँगरेज मुलक रै ऊपर आहँस लीध खैंचि उरा।
धणीयाँ मरै नै दीधी धरती धणीयाँ उभाँ गई परा।।
बजियो भलो भरतपुर वाळो, गाजै गजर धजर नभ गोम
पहिळाँ सिर साहब रो पडियो, भड़ ऊभाँ नह दीधी भोम। (कविया, 2015)

उन्नीसवीं शताब्दी में जनभाषा में आजादी के गीत अनेक कवियों, क्रांतिकारियों और सुधारकों ने लिखे और अँग्रेजी शासन के विरुद्ध चेतना जगाई। इस बात से कदापि इनकार नहीं किया जा सकता कि राजस्थानी लोकगीत और लोकधुनें आमजन की जुबान पर सरलता से चढ़ जाते हैं। यही वजह है कि प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, क्रांतिकारी, जिन्हें हिंदी की बढ़िया समझ रही, उन्होंने भी राजस्थानी रचनाओं को अपने संवाद का माध्यम बनाया। जयनारायण व्यास, हीरालाल शास्त्री, माणिक्यलाल वर्मा, भैरवलाल काला बादल, गणेशीलाल उस्ताद, आदिसा मलहा, गिरधारी सिंह पड़िहार, रेवतदान चारण, मोहम्मद सदीक, भरत व्यास आदि सभी ने राजस्थानी कविताओं को ही स्वराज की अलख जगाने का माध्यम चुना। हीरालालशास्त्री की 'जागो जागो रे जवानाँ!', जयनारायण व्यास की 'म्हानै ऐसो दिजै राज', भैरवलाल काला बादल की 'काळा बादल' और बींबगत की 'लोक कवितां वाबणी' जनमानस में आज भी जीवित हैं।

गिरधारी सिंह परिहार ने लिखा—

बुद्ध बिसरया बिदवान बायरियो अँवळों बयो
मायड़ वाळो मान भोळा भाई भूलग्या
सिख खड़्या ही साँझ मोथा मिल्या मिलायदी
बजी मा वड़ी बाँझ फर जंद मूँछयाँळा फिरै
हक भूभासा हाण जन खाँरी जामण झूरै
अण हूँतों अणमा पक्यूँ जीवोरे कायराँ।

मोहम्मद सद्दीक ने लिखा—

लुळ लुळ करो सलाम
देस री माटी नै परणाम करो
जागो जनगण जागो

राती घाटी नै परणाम करो।
जीवै जलम भोम रै खातर
प्राण होमता जैज कठै
बलिदानी वीराँ सूँ सीखो
सीस देवणो बात सटै
सदियाँ जिण पर लेख लिखै
उण पाटी नै परणाम करो।
जलम भोम रो उणियारो
सो ममता रो उणियारो है
भूखै तिरसै जीव जगत् नै
अन जळ री पूरसारो है
भोभर में कसमसती बळती
बाटी नै परणाम करो।
लुळ लुळ करो सलाम
देस री माटी नै परणाम करो। (सद्दीक, 2021)

रेंवतदान चारण ने लिखा है—

सज्जो अेक संघ टट्णपंथ पलटट्णराज उलटट्ण आज बढ़ो
मनमें मिनखा पण नैण सू रापण खाँधै खापण मेल कढ़ो
जाणै के हरीगेह सूँ आज कढयो जाणै मेह प्रचंड तूफान चढयो
जाणै बीज पळापळ मेह चढयो जाणै तीड धरातळ घेर चढयो
जाणै पंछी झपटट्ण बाज चढयो जाणै बीज कड़ंक्क तगाज चढयो
सज्जो अेक संघटट्ण पंथपलटट्ण राज उलटट्ण आज बढ़ो
मन में मिनखा पण नैण सू रापण खाँधै खापण मेल कढ़ो।

रेंवतदान चारण ने क्रांतिकारियों के बलिदान का महत्त्व बताते हुए लिखा है—

जद आबाँ रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूताँ ठौड़ पलीत जगावण अँगरेजा सूँ क्यूँ अड़िया
धरती जाया माँणस नै चंदा रौ चाव लगायौ क्यूँ
आदू अभ्यासगट करसा रौ अंदाता नाँव दिरायौ क्यूँ
मीलाँ जाय मजूराँ रै गाभाँ रगत रळायौ क्यूँ
जे आ ई राँमत रमणी ही तौ थोथा सपना क्यूँ घड़िया
जद आँबा रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूताँ ठौड़ पलीत जगावण अँगरेजाँ सूँ क्यूँ अड़िया
झूँपाँ जीवण वाळा नै महलाँ रौ काच बतायौ क्यूँ
गोलीपौ करती धीवड़ रौ आजादी नाँव धरायौ क्यूँ
ऊजड़ खड़ती आँधी नै यूँ बीच बजाराँ लायौ क्यूँ
कूच नगारा पैल धडिंगै पग धरताँ ईं आखड़िया
जद आँबा रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूँता ठौड़ पलीत जगावण अँगरेजाँ सू क्यूँ अड़िया
कद कमतरिया आड़ौ लीन्हो कै राज सूँपजौ सेठाँ नै
औ रामराज रौ सिंघासण रावण रै राकस बेटाँ नै
आ सतवंती सीता सीझै अब झाळौझाळ लपेटाँ में
बीज गमायौ वेल्या थाका खारच खेतर क्यूँ खड़िया
जद आँबा रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूताँ ठौड़ पलीत जगावण अँगरेजाँ सूं क्यूँ अड़िया
वे हुता लुटेरा परदेसी अै धरती रा धाड़ैती सिरमोर
मासी जाया भाई वीरा कुण छोटौ कुण मोटौ चोर
साथळ उघाड़ाँ किण साँम्ही पीड़ चभीकौ बेजाँ ठौर
घर-घर घाटौ नाचै थें भरम भरोसै क्यू भिड़िया
जद आंबा रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूताँ ठौड़ पलीत जगावत अँगरेजाँ सूँ क्यूँ अड़िया
मजदूराँ हैलौ साँभळज्यौ औ बोल आखरी कैणौ है
करसाँ संभ जाज्यौ हाकै नै हाँ नवौ मोरचौ लैणौ है
मरजाद निभावण माथा दौ जे अबै जीवतौ रैणौ है
थारै हारियाँ जुग हारैला अखरै जीत मोरचै जुड़ियाँ
जद आँबा रै अकडोड्या पाकै बापू बिरथा क्यूँ लड़िया
भूताँ ठौड़ पलीत जगावण अँगरेजाँ सूँ क्यूँ अड़िया (चारण, 2021)

1930 से ही कन्हैयालाल सेठिया आजादी के आंदोलन से जुड़े थे। वे गांधीजी के 'अँग्रेजों भारत छोड़ो' नारे से प्रभावित थे। उन्होंने 1942 में मुगलों से मोर्चा लेने वाले महाराणा प्रताप को केंद्र में रखकर 'पातळ'र पीथळ' की रचना की। यह कविता आज भी राजस्थानी साहित्य की अनुपम कृति मानी जाती है तथा जनमानस में जोश भरने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। राजस्थानी कविताओं के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान की चर्चा इस कविता का उल्लेख किए बिना अधूरी ही पाई जाएगी। इस कविता को राजस्थान के कोने-कोने में आमजान तक पहुँचाने के लिए बीकानेर के नरोत्तम स्वामी ने इसकी दस हजार प्रतियाँ छपवा कर रियासत भर में भिजवाई। कविता को स्वदेशी स्वाभिमान और गौरव का प्रतीक माना गया। वह कविता इस प्रकार है—

अरे घास री रोटी ही जद बन बिलावड़ो ले भाग्यो।
नान्हो सो अमरयो चीख पड्यो राणा रो सोयो दुख जाग्यो।
हूँ लड्यो घणो हूँ सह्यो घणो
मेवाड़ी मान बचावण नै,
हूँ पाछ नहीं राखी रण में
बैर्यां री खात खिडावण में,
जद याद करूँ हळदीघाटी नैणाँ में रगत उतर आवै,
सुख-दुख रो साथी चेतकड़ो सूती सी हूक जगा ज्यावै,
पण आज बिलखतो देखूँ हूँ
जद राज कँवर नै रोटी नै,
तो क्षात्र-धरम नै भूलूँ हूँ
भूलूँ हिंदवाणी चोटी नै
मैं'लाँ में छप्पन भोग जका मनवार बिनाँ करता कोनी,
सोनै री थाल्याँ नीलम रै बाजोट बिनाँ धरता कोनी,
अै हाय जका करता पगल्या
फूलाँ री कँवळी सेजाँ पर,
बै आज रुळै भूखा तिसिया
हिंदवाणै सूरज रा टाबर,
आ सोच हुई दो टूक तड़क राणा री भीम बजर छाती,
आँख्याँ में आँसू भर बोल्या मैं लिखस्यूँ अकबर नै पाती,
पण लिखूँ कियाँ जद देखै है आडावळ ऊँचो हियो लियाँ,

चितौड़ खड्यो है मगराँ में विकराळ भूत सी लियाँ छियाँ,
मैं झुकूँ कियाँ? है आण मनैं
कुळ रा केसरिया बानाँ री,
मैं बुझूँ कियाँ? हूँ सेस लपट
आजादी रै परवानाँ री,
पण फेर अमर री सुण बुसक्याँ राणा रो हिवड़ो भर आयो,
मैं मानूँ हूँ दिल्लीस तनैं समराट् सनेशो कैवायो।
राणा रो कागद बाँच हुयो अकबर रो' सपनूँ सो साँचो,
पण नैण कर्यो बिसवास नहीं जद बाँच नै फिर बाँच्यो,
कै आज हिंमाळो पिघळ बह्यो
कै आज हुयो सूरज सीतळ,
कै आज सेस रो सिर डोल्यो
आ सोच हुयो समराट् विकळ,
बस दूत इसारो पा भाज्यो पीथळ नै तुरत बुलावण नै,
किरणाँ रो पीथळ आ पूग्यो ओ साँचो भरम मिटावण नै,
बीं वीर बाँकुड़ै पीथळ नै
रजपूती गौरव भारी हो,
बो क्षात्र धरम रो नेमी हो
राणा रो प्रेम पुजारी हो,
बैर्याँ रै मन रो काँटो हो बीकाणूँ पूत खरारो हो,
राठौड़ रणाँ में रातो हो बस सागी तेज दुधारो हो,
आ बात पातस्या जाणै हो
घावाँ पर लूण लगावण नै,
पीथळ नै तुरत बुलायो हो
राणा री हार बँचावण नै,
म्है बाँध लियो है पीथळ सुण पिंजरै में जंगळी शेर पकड़,
ओ देख हाथ रो कागद है तूँ देखाँ फिरसी कियाँ अकड़?
मर डूब चळू भर पाणी में
बस झूठा गाल बजावै हो,
पण टूट गयो बीं राणा रो
तूँ भाट बण्यो बिड़दावै हो,
मैं आज पातस्या धरती रो मेवाड़ी पाग पगाँ में है,
अब बता मनै किण रजवट रै रजपती खून रगाँ में है?
जंद पीथळ कागद ले देखी
राणा री सागी सैनाणी,
नीचै स्यूँ धरती खसक गई
आँख्याँ में आयो भर पाणी,
पण फेर कही ततकाळ सँभळ आ बात सफा ही झूठी है,
राणा री पाघ सदा ऊँची राणा री आण अटूटी है।
ल्यो हुकम हुवै तो लिख पूछूँ
राणा नै कागद रै खातर,
लै पूछ भलाँई पीथळ तूँ
आ बात सही बोल्यो अकबर,
म्हे आज सुणी है नाहरियो
स्याळाँ रै सागै सोवै लो,
म्हे आज सुणी है सूरजड़ो
बादळ री ओटाँ खोवैलो;
म्हे आज सुणी है चातगड़ो
धरती रो पाणी पीवै लो,
म्हे आज सुणी है हाथीड़ो
कूकर री जूणाँ जीवै लो
म्हे आज सुणी है थकाँ खसम
अब राँड हुवैली रजपूती,
म्हे आज सुणी है म्यानां में
तरवार रवैली अब सूती,
तो म्हारो हिवड़ो काँपै है मूँछ्याँ री मोड़ मरोड़ गई,
पीथळ नै राणा लिख भेज्यो आ बात कठै तक गिणाँ सही ?
पीथळ रा आखर पढ़ताँ ही
राणा री आँख्यां लाल हुई,
धिक्कार मनै हूँ कायर हूँ
नाहर री एक दकाल हुई,
हूँ भूख मरूँ हूँ प्यास मरूँ
मेवाड़ धरा आजाद रवै
हूँ घोर उजाड़ाँ में भटकूँ
पण मन में माँ री याद रवै,
हूँ रजपूतण रो जायो हूँ रजपूती करज चुकाऊँला,
ओ सीस पड़ै पण पाघ नहीं दिल्ली रो मान झुकाऊँला,
पीथळ के खिमता बादल री
जो रोकै सूर उगाळी नै,
सिंघाँ री हाथळ सह लेवै
बा कूख मिली कद स्याळी नै?
धरती रो पाणी पिवै इसी
चातग री चूँच बणी कोनी,
कूकर री जूणाँ जिवै इसी
हाथी री बात सुणी कोनी,
आँ हाथाँ में तलवार थकाँ
कुण राँड़ कवै है रजपूती?
म्यानाँ रै बदळै बैर्याँ री
छात्याँ में रैवैली सूती,
मेवाड़ धधकतो अंगारो आँध्याँ में चमचम चमकै लो,
कड़खै री उठती तानाँ पर पग पग पर खाँडो खड़कैलो,
राखो थे मूँछ्याँ ऐंठ्योड़ी
लोही री नदी बहा द्यूँला,
हूँ अथक लड़ूँला अकबर स्यूँ
उजड्यो मेवाड़ बसा द्यूँला,
जद राणा रो संदेश गयो पीथळ री छाती दूणी ही,
हिंदवाणों सूरज चमकै हो अकबर री दुनियाँ सूनी ही। (कविता कोश, 2021)

"केसरी सिंह बारहठ भारत के ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने भारत को दासता से मुक्त कराने के लिए अपने समस्त परिवार को स्वतंत्रता के युद्ध में झोंक दिया था।" रासबिहारी बोस का ये कथन राजस्थान के भीलवाड़ा

के केसरी सिंह बारहठ की स्वतंत्रता संग्राम में सक्रियता और निष्ठा दर्शाता है। उनके भाई जोरावर सिंह और बेटे प्रताप सिंह बारहट भी देश को अँग्रेजों से स्वतंत्र करवाने के लिए समर्पित थे। जोरावर सिंह (चाचा) और प्रताप सिंह बारहट (भतीजा) दोनों 1912 हार्डिंग बम कांड दिल्ली में शामिल थे (लखावत, 2021)। इनके लिए यह कविता बड़ी प्रसिद्ध है—

काळा बुरका धार लिया हार्डिंग पर बम का वार किया।
थोड़ो सो निसानो चूक गयौ महावत और हाथी ढेर हुईया।
तब सत्ता रो हुयौ ऐलान जे बारठ ने पकड़ावै सत्ता ऋ मैहर हुवै उन पर।

बम कांड के बाद प्रताप सिंह दक्षिण भारत चले गए, लेकिन किसी कारणवश जोधपुर लौटे तो आसानाड़ा रेलवे स्टेशन पर गद्दार की मुखबिरी के कारण गिरफ्तार कर लिए गए और उनको बरेली जेल भेजा गया। जेल में उन्हें भीषण यातनाएँ दी गईं। षड्यंत्र में सम्मिलित अन्य बटांडे पर भी बहुत दबाव बनाया गया, लेकिन वह टूटा नहीं, मुँह नहीं खोला। पिता केसरी सिंह बारहठ उस समय हजारीबाग जेल में कैद थे। अँग्रेज उन्हें बेटे के सम्मुख दबाव डलवाने के लिए लाए। वही पिता-पुत्र का अंतिम मिलन था। तब भी उन्होंने बेटे को देशभक्ति की नसीहत दी। उस वार्तालाप पर भी कविताएं लिखीं गईं—

वे बिछडयेड़ा सूत बाप मिळया
वो लाडेसर हरक पड्यो
छाती सूँ चेप्यो बेटा ने
नैन नैना सूँ बरस पड्यो
भेद बता अँग्रेजाँ ने ईनाम ले घर आवैलो
पेल्ली गोळी छाती पर केसर री खावेळो
बिसरावल कर दे शीस
म्हारा वंश अमर रहे।

अँग्रेजों ने प्रताप सिंह को कई बार प्रलोभन दिया। माँ के व्यथित और पीड़ित होकर रोने का वृत्तांत सुनाया, लेकिन वह दिलेर टूटा नहीं। उसके संकल्प पर अडिग रहने को कवि ने कुछ इस प्रकार बखान किया—

रे वीर बिलख रही माँ थारी
रो रो राता नैण करया
माँ रोती है तो रोवण दो, नै लाखाँ मात रुवाउँला
माँ मरती है तो मरबा दो, नै दुधण दाग लगाउँगो
माँ मरियाँ महला मानख मरे एक
भेद दियाँ भारत तनी, अबलाँ झुरे अनेक। (झरोडा, 2018).

अँग्रेजों की यातनाओं से प्रताप सिंह की 1918 में बरेली जेल में मौत हो गई। केसरी सिंह बारहट को जब अँग्रेजों की यातनाओं के कारण बेटे की मौत के बारे में बताया गया तो वे बोले—"देश का बेटा देश के काम आ गया।" बारहट परिवार के बारे में ये सभी बातें आमजन की जुबान पर हैं।

तेजकवि (1920–1926)

जैसलमेर के तेजकवि ने 'स्वतंत्रता बावनो' लिखा। उन्होंने इसे गांधीजी को भी भेंट किया था। बीकानेर में पारंपरिक नाट्य शैली के साहित्यिक आयोजन 'रम्मत' के दौरान उन्होंने इसको खेला। जनता में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। अँग्रेजों ने गिरफ्तारी वारंट निकाल दिया। तेजकवि ने सीधे कमिशनर के घर जाकर नारा दिया जो जन जन तक फैल गया—"कमिश्नर खोल दरवाजा हमें भी जेल जाना है, हिंद तेरा है न तेरे बाप का, लगाया कैसा बंदीखाना है।" (कुमार दिलीप, 2019, पृ. 3)

अर्जुनलाल सेठी

अर्जुनलाल सेठी ने 1902 में इलाहाबाद से अपनी बी.ए. की पढ़ाई पूरी की थी। उन्हें जयपुर के निकट चौमू के राजपरिवार ने जिलाधीश का पद देना चाहा, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। उनका प्रसिद्ध इनकार, जिसे नारे की तरह उपयोग किया गया, वह था—"सेठी नौकरी करेगा तो अँग्रेजों को बाहर कौन निकालेगा।" अर्जुनलाल सेठी ने जैन शिक्षा प्रचार समिति का गठन किया। वहाँ क्रांतिकारियों को बम बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। दिल्ली का हार्डिंग बम कांड अर्जुनलाल सेठी की योजना माना जाता है। आरा बम कांड में भी वे लिप्त थे। उन्हें पाँच वर्ष की सजा सुनाई गई और वैल्लूर जैल (कर्नाटक) भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने 70 दिन भूख हड़ताल की थी। (जीके क्लास, 2021)

मोतीलाल तेजावत (1921)

राजाओं ने अँग्रेजों के दबाव में जनजातियों के अनेक अधिकारों पर रोक लगा दी थी। उनके अधिकारों के लिए संघर्षशील मोतीलाल तेजावत ने वनवासी संघ की स्थापना की। भीलों में जागृति पैदा करने के उद्देश्य से सन् 1921 में राजस्थान के चितौड़गढ़ जिले की मातृकुंडिया नामक स्थान से एकी आंदोलन (भोमट आंदोलन) की शुरूआत की तथा 21 सूत्री माँगें रखीं, जिसे 'मेवाड़ पुकार' नाम दिया गया था। आंदोलन का नारा था—"ना हुकुम, न हाकम" (जीके क्लास, 2021)।

देश को 1947 में विदेशी शासन से आजादी मिली, तब राजस्थानी कवि कानदान कल्पित ने आजादी का महत्त्व और उसके लिए किए गए त्याग और समर्पण याद दिलाते हुए आमजन को सजग रहने की चेतावनी देते हुए ये कविता लिखी थी—

आजादी रा रूखवाळा सूता मत रिजो रे
आवैला कई मोड़ मारग पर चलता ई रिजोरे
बैंव ताँई रिजोरे
आजादी खातर माँ बैना काँकड़ में बाथाँरूळगी
हथळे वै मैंदी लाग्योड़ी औराँरै हाथाँ चढगी
नूँवै दिन कामण काळा काग उडाँवती ही रैगी
माँवाँ री बेटा रैखातर पुरस्योड़ी थाळयाँ रैगी
दोरी घणी आजादी आई सुजग रिजो रै
आजादी रा रूखवाळा सूता मत रिजो रे
आवैला कई मोड़ मारग पर चलताई रिजो रे
बैंवताँ ई रिजो रे। (इनानिया म्यूजिक, 2018)

ऐसे बहुत से दोहे, सोरठे, कविताएँ आदि हैं जो राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम का संदर्भ प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

भले ही राजस्थान के बारे में कहा जाता हो कि यहाँ के रजवाड़ों ने अँग्रेज सरकार का नियंत्रण स्वीकार कर लिया था, लेकिन इतिहास गवाह है कि राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी पूरी ताकत से योगदान दिया। रजवाड़ों के राज में जीने वाली जनता के मानस में अँग्रेजों के विरुद्ध भावना 1857 की प्रथम क्रांति से पहले से ही थी। इसे दर्शाते गीत, नारे, कहावतें आदि वर्ष 1803 से राजस्थान में पाए जाते हैं। यह भावना राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में मौजूद थी और सामंतों से लेकर जन सामान्य तक में थी। कवियों और लोक कलाकारों ने अँग्रेज शासन के विरुद्ध अपनी कलम का जमकर उपयोग किया। जनभावना के प्रचार-प्रसार के माध्यम थे गीत, कहावतें, नारे, सोरठे और दोहे। आज ये माध्यम जनता के बीच गहरी पैठ रखते हैं। डिजिटल माध्यमों के उपयोग से उन कथाओं के वीडियो तैयार आज पूरे राजस्थान में जन सामान्य की जुबान पर हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के कई सेनानियों को लोक देवता का स्थान प्राप्त हुआ है और उनके सम्मान में भजन भी रचे गए। शोध में कई ऐसे सामंतों, स्वतंत्रता सेनानियों और आम व्यक्तियों का उल्लेख आया है, जिनका उन क्रांतिवीरों से करीबी और गहरा संबंध था जिनके लिए वे गीत, कहावतें, कविताएँ रची गईं। उनसे संबंधित सामग्री संकलित करने की आवश्यकता है। आवश्यकता इस बात की भी है कि इस विषय पर और शोध किया जाए और पारंपरिक कथावाचकों, भजन गायकों, भोपा-भोपी, भात चारणों, वंशावली गायकों अथवा वंशजों या क्षेत्र-समाज के लोगों से उनके विषय में सामग्री प्राप्त की जाए। शोध के दौरान यह भी पाया गया कि स्वतंत्रता संग्राम में शामिल व्यक्तियों की प्रशंसा में सामग्री प्राप्त हुई, लेकिन अँग्रेजों से संधि करने और क्रांतिकारियों के विरुद्ध अँग्रेजों का साथ देने वाले वाले रजवाड़ों के संबंध में सामग्री प्राप्त नहीं हुई। इस संबंध में भी और शोध की आवश्यकता है। सवाल यह है कि क्या उनके विरुद्ध कोई जनभावना नहीं थी अथवा इसका कोई अन्य कारण था? क्या ऐसी सामग्री की रचना पर किसी प्रकार की रोक अथवा हिचक थी, यह भी शोध का विषय है।

संदर्भ

इंदा, यू. एस. (2005). *राजस्थान में स्वाधीनता संघर्ष, राज्यशास्त्र एवं राजनीति*. जोधपुर : राजस्थानी ग्रंथागार.

इनानिया म्यूजिक. (2018). *आजादी रा रखवाला_कविता_स्वतंत्रता दिवस विशेष कवि कानदान जी कल्पित री रचना*. https://www.youtube.com/watch?v=3Nbf5omTUjs से पुन:प्राप्त.

ओंकारश्री. (1994). *राजस्थान जनकवि अवधारणा. बीकानेर: राजस्थानी भाषा साहित्य. मनखै री सार्वभौम मुगती रौ मंत्रदाता - जनकवि गणेशलाल व्यास 'उस्ताद'*. पृ. 91-108.

कविता कोश. (2021). *पातल'र पीथल/कन्हैया लाल सेठिया*. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%B2%E2%80%99%E0%A4%B0_%E0%A4%AA%E0%A5%80%E0%A4%A5%E0%A4%B2_/_%E0%A4%95%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A4%AF%E0%A4%BE_%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%B2_%E0%A4%B8%E0%A5%87%E0%A4%A0%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE से दिनांक 14 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

कविया, आर. एस. (2015). *ठा. केसरी सिंह बारहट*. https://www.charans.org/kesrisingh/ से पुन:प्राप्त.

कुमार, डी. (2019). राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम में जैसलमेर राज्य की भूमिका: एक अध्ययन. *शृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका'*. वोल्यूम-6, अंक-12, अगस्त 2019. आईएसएसएन नं: 2321-290X., पृ. 2.

कुमार, एच. (2011). *सन् 1857 की जनक्रांति और राजस्थानी लोकगीतकार शंकरदान सामोर*. https://rajasthanstudies.blogspot.com/2011/09/1857_16.html से पुन:प्राप्त.

खन्ना, ए. (2015). अजेय राज भरतपुर (1775 - 1805 ई.). जयपुर : आस्था प्रकाशन, अध्याय : 4, *भरतपुर राज व आँग्ल मराठा संबंध*, पृ. 99-120.

खन्ना, ए. (2015). अजेय राज भरतपुर (1775 - 1805 ई.). जयपुर : आस्था प्रकाशन, अध्याय : 5, *डीग का युद्ध व भरतपुर पर आक्रमण*. पृ. 121-171.

गहलोत, टी. (1998). *लोकनायक जयनारायण व्यास*. https://artandculture.rajasthan.gov.in/content/dam/doitassets/art-and-culture/Rajasthani-Bhasha-Sahitya-Avm-Sanskriti-Academy-Bikaner/pdf/jjpdf/JJ_27_05_05_August_to_August_1998.pdf से पुन:प्राप्त

गुप्ता, एम. (2014). राजस्थान सुजस. जयपुर. सूचना एवं जन संपर्क विभाग. *राजस्थान सरकार*. पृ. 16. http://dipr.rajasthan.gov.in/content/dam/dipr/sujas/2014/SujasAug14.pdf से दिनांक 10 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त

चारण, आर. (2021). आंमनौ / रेंवतदान चारण. *कविता कोश*. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%86%E0%A4%82%E0%A4%AE%E0%A4%A8%E0%A5%8C_/_%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%82%E0%A4%B5%E0%A4%A4%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%A8_%E0%A4%9A%E0%A4%BE%E0-%A4%B0%E0%A4%A3 से पुन:प्राप्त

चितले, आर. (2019). *सेनापति ताँत्या टोपे*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

जीके क्लास. (2021). *राजस्थान के क्रांतिकारी*. https://www.gkclass.com/2021/01/raajasthaan-ke-kraantikaaree.html से पुन:प्राप्त.

झरोड़ा, पी. सिंह. (2018). *देशभक्ति कविता. प्रतापसिंह बारहठ। मेरी माँ रोती है तो रोने दो*. https://www.youtube.com/watch?v=hvJBv-0IuE0 से दिनांक 17 अगस्त, 2021 को

पुन:प्राप्त.

टॉड, के. जे. (2008). *राजस्थान का इतिहास (भाग 2)*. अनुवादक केशव ठाकुर. जयपुर : साहित्यागार. अध्याय 58 : जयपुर राज्य की अँग्रेजों के साथ संधि व अन्य बातें. पृ. 130-139.

डागर, एन. (2018). *केसरी सिंह बारहठ : वह कवि जिसके दोहों ने रोका मेवाड़ के महाराणा को अँग्रेजों के दिल्ली दरबार में जाने से!* https://hindi.thebetterindia.com/8912/kesasri-singh-barahath-revolutionary-poet/ से पुन:प्राप्त.

तरुण, टी. (2018). *मेवाड़ की गौरव गाथाएँ*. जोधपुर : मिनर्वा पब्लिकेशन. अध्याय 44-जब ब्रितानी तोप का मुँह बंद किया, पृ. 116.

तरुण, टी. (2018). *मेवाड़ की गौरव गाथाएँ*. जोधपुर : मिनर्वा पब्लिकेशन. अध्याय 43-काव्य प्रेमी महाराणा. पृ.114.

दसोड़ी, जी. आर. (2017). *कालजयी कवि बाँकीदास आशिया*. https://www.khabarexpress.com/The-Great-Poet-Bankidas-Ashiya-article_701.html से पुन:प्राप्त

पटोदा, एम. एस. (2018). *महान स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी जवाहरजी*. https://www.facebook.com/dungji.jawaharji/ से पुन:प्राप्त

भाटी, डी. एस. (2020). *आऊवा ठाकुर खुशालसिंह जी चांपावत की ऐतिहासिक कथा व गीत*. https://www.youtube.com/watch?v=UxQnKnifj0U&t=11s से दिनांक 11 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

राजपुरोहित, के. एल. (2008). *राजस्थानी काव्य में राष्ट्रवादी अग्नि-शिखा के ऋत्विक : शंकरदान सामौर*. http://eakataprakashan.blogspot.com/2008/12/blog-post_17.html से दिनांक 13 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

राजस्थान: एक गौरव. (2017). https://www.facebook.com/503587756511126/photos/a.503589756510926/643178559218711/?type=3 से दिनांक 14 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

राजस्थान तक. (2021). जाट इतिहास. *आजतक वीडियो*. https://www.facebook.com/watch/?v=381319040039285 से दिनांक 14 सितंबर, 2021 को पुन:प्राप्त

रियासत. ए. एम. (2016). https://www.facebook.com/mewarcraze/posts/670646719751655/ से पुन:प्राप्त.

रेउ, वी. (2009). *मारवाड़ का इतिहास द्वितीय भाग*. जोधपुर : महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र, पृ. 11-42.

रेउ, वी. (2009). *मारवाड़ का इतिहास द्वितीय भाग*. जोधपुर : महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र, पृ. 43-59.

रेउ, वी. (2009). *मारवाड़ का इतिहास द्वितीय भाग*. जोधपुर : महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र, पृ.115-151.

लखावत, ओ. एस. (2021). स्वातंत्र्य राजसूय यज्ञ में बारहट परिवार की आहूति. https://www.charans.org/barhat-trimurti/ से पुन:प्राप्त.

वर्मा. सी. एस. (2005). भरतपुर अदम्य साहस की एक दास्तान. नई दिल्ली : कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि.

सद्दीक, एम. (2021). *लुळ-लुळ करो सलाम / मोहम्मद सद्दीक*. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B2%E0%A5%81%E0%A4%B3-%E0%A4%B2%E0%A5%81%E0%A4%B3_%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A5%8B_%E0%A4%B8%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%AE_/_%E0%A4%AE%E0%A5%8B%E0%A4%B9%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%A6_%E0%A4%B8%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80%E0%A4%95 से पुन:प्राप्त

सिंह. ए.वी. (2018). *जोरी चंपावत आऊवा*. https://www.youtube.com/watch?v=yJpCILdi_4M&t=95s से पुन:प्राप्त.

सिंह, एच. के. एवं लखावत, ओ. एस. (2021). *आऊवा ठाकुर खुशालसिंह की वंशज हर्षा कुमारी सिंह तथा ओंकार सिंह लखावत से दूरभाष पर दिनांक 11 अगस्त, 2021 को बातचीत*.

शर्मा, एम. (2013). *अमर बलिदानी ताँत्या टोपे*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

शुभदा प्रकाशन. (2020). *अजमेर का इतिहास*. https://www.rajasthanhistory.com/blog/history-of-ajmer-city/history-of-ajmer-89 से दिनांक 14 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

शेखावत, आर. एस. (2009). *चेतावनी रा चुंग्ट्या : कवि की कविता की ताकत*. https://www.gyandarpan.com/chetawani-ra-chutiya/ से दिनांक 14 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

श्रीमाली, आर. (1979). *जागती जोत*. https://artandculture.rajasthan.gov.in/content/dam/doitassets/art-and-culture/Rajasthani-Bhasha-Sahitya-Avm-Sanskriti-Academy Bikaner/pdf/JJ_All_Pdf/JJ_06_12_12_February_to_February_ 1979. pdf से दिनांक 15 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त. पृ. 19.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 39-43, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम और लोकगीत : हरियाणवी रागणियों के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. शिखा सैनी[1]

सारांश

लोक साहित्य समाज का दर्पण है, जिसके माध्यम से जन भावनाओं को समझने में सहायता मिलती है। समाज को जोड़ने और जाग्रत करने में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। चूँकि लोकगीतों में भाषा की सहजता रहती है, इसलिए जनभावनाओं को समझने अथवा उजागर करने के ये सशक्त माध्यम हैं। जनसाधारण में लोकप्रियता के कारण स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनजागृति पैदा करने के लिए लोकगीतों तथा लोक साहित्य का सहारा लिया गया। लोक गायकों तथा कलाकारों ने लोकगीतों के माध्यम से न केवल जनसाधारण को अँग्रेजी हुकूमत के अत्याचारों से अवगत कराया, बल्कि स्वतंत्रता सेनानियों के आह्वानों को गाँव-समाज तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणवी रागणियों के माध्यम से स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों और राष्ट्र-जागरण में उनकी भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है। ये रागणियाँ हरियाणा के जनमानस को गहराई तक स्पर्श करती हैं। हरियाणा ही नहीं, बल्कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा अन्यान्य हिंदीभाषी ग्रामीण क्षेत्रों में इनका गहरा असर महसूस किया जा सकता है।

संकेत शब्द : लोक साहित्य, लोकगीत, रागणी, कजरी, चैती, स्वतंत्रता सेनानी, स्वतंत्रता संग्राम, लोकगाथा

प्रस्तावना

किसी भी देश की संस्कृति का वास्तविक परिचय उस देश के लोक साहित्य से प्राप्त होता है। लोक साहित्य समाज की आत्मा का प्रतिबिंब होता है। देश के जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और आर्थिक मापदंड के लिए यदि कोई पैमाना हमारे पास है तो वह देश का लोक साहित्य ही है। लोकगीत जनसमान्य के गीत हैं, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं, अपितु समस्त समाज अपनाता है। 'लोकगीत' दो शब्दों 'लोक' और 'गीत' का योग है, जिसका अर्थ है 'लोक के गीत'। सामान्य तौर पर लोकगीत, लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार गीतों के माध्यम से अपनी तथा जन सामान्य की लोक भावनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करते हुए सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग हेतु मनुष्य अपने आनंद की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है। (लोक साहित्य, 2021)। इसलिए कहा जा सकता है कि लोकगीत लोक में प्रचलित और लोक रचित गीत हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगर व ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगरों में परिष्कृत रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं (राजकुमार, 2018)। लोकगीतों का उद्भव संभवतः उतना ही प्राचीन है, जितना मानव जीवन। आदिकाल में मानव गिरि, कंद्राओं, गुफाओं और जंगलों में रहता था। प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए वह समूह में रहता था। धीरे-धीरे समय के साथ जैसे-जैसे मानव बुद्धि का विकास हुआ, उसने अपनी भावनाओं को लयात्मक ढंग से अभिव्यक्त करना प्रारंभ किया, जिसे समय के साथ दूसरे व्यक्तियों ने गा-गाकर लोकगीत का रूप दे दिया। वही आदि गीत लोकगीत कहलाए। लोक से उन लोगों का अभिज्ञान होता है, जो नगर संस्कारों एवं सविधि शिक्षा से वंचित हैं और विदग्ध अहं चैतन्य से रिक्त हैं। 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अंहकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। इसी प्रकार 'गीत' का अर्थ प्रायः उस कृति से है जो गेय हो। लोकगीत में गेयता का होना आवश्यक है। संगीत एवं लय उसका प्राण है। इसी कारण लोकगीत को स्वतःस्फूर्त संगीत कहा गया है। लोकगीतों के संबंध में लोक साहित्य के मर्मज्ञों ने विभिन्न प्रकार के कलात्मक ढंगों से अपने विचार व्यक्त किए हैं (राजकुमार, 2018)।

लोक विषयक गीत कजरी, सोहर, चैती, लंगुरिया आदि लोकगीतों की प्रसिद्ध शैलियाँ हैं। लोकगीत साधारणत: समाज के उत्सवों जैसे बालक-बालिकाओं के जन्मोत्सव, मुंडन, पूजन, जनेऊ, विवाह आदि अवसरों पर गाए जाने वाले संस्कार गीत हैं। उदाहरणत: सोहर, खेलौनो, कोहबर, समुझ बनी इत्यादि। विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित एवं विविध लोकगाथाओं पर आधारित इन गाथा-गीतों को आल्हा-ढोला-भरथरी-नरसी भगत-घन्नइया-लोरिकायन श्रेणियों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। वीर रस से परिपूर्ण लोरिकायन लोकगाथा में गायक लोरिक के जीवन-प्रसंगों का जिस भाव से वर्णन करता है, वह देखते-सुनते ही बनता है। नयका बंजारा (विभिन्न क्षेत्रों में गाए जाने वाले लोकगीत) में प्रायः विषयवस्तु तो एक ही होती है, किंतु स्थान, पात्र तथा चरित्रों में विविधता के दर्शन होते हैं। विजमैल में राजा विजयमल की वीरता का बखान करने वाली लोकगाथा का वर्णन किया जाता है। सलहेस के बारे में कहा जाता है कि सलहेस दौना नामक एक मालिन का प्रेमी था। उसके एक शत्रु ने ईर्ष्यावश सलहेस को चोरी के झूठे आरोप में बंदी बनवा दिया। दौना मालिन ने अपने प्रेमी सलहेस को किस प्रकार मुक्त कराया, उसी को इस लोकगीत में

[1]सहायक आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कन्या महाविद्यालय, यमुनानगर, हरियाणा. ईमेल:shikhasainisaran@gmail.com

भाव-विभोर होकर गाया जाता है। दीना भदरी लोकगीत में दीना तथा भदरी नामक दो भाइयों की वीरता का वर्णन मार्मिकता से किया जाता है। इसके साथ ही हरियाणा के विभिन्न अंचलों में आल्हा-ऊदल, राजा ढोलन सिंह, छतरी चौहान, नूनाचार, लुकेसरी देवी, कालिदास, मनसाराम, छेछनमल, लाल महाराज, गरबी दयाल सिंह, मीरायन, हिरनी-बिरनी, कुँअर बृजभार, राजा विक्रमादित्य, बिहुला, गोपीचंद, अमर सिंह, बरिया, राजा हरिश्चंद्र, कारू खिर हैर, मैनावती आदि के जीवन एवं उनकी वीरताभरी गाथाओं को गाथा-गीतों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत अध्ययन के लिए लोकगीतों से संबंधित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और शोधपत्रों से द्वितीयक सामग्री प्राप्त की गई है। हरियाणवी रागणियों के जानकारों से भी बात की गई है।

लोकगीतों का महत्त्व

लोकगीत में सामूहिक चेतना की पुकार दिखाई देती है। इसमें जन सामान्य के जीवन का इतना विशद चित्रण होता है कि मूल संस्कृति तथा जनजीवन का पूर्ण चित्रण मिल जाता है। लोकगीतों में हमारी मूल संस्कृति, जिसे हम लोक संस्कृति कहते हैं, विरासत के रूप में संरक्षित है। लोकगीतों में जनजीवन के सभी पक्षों का दर्शन होता है। जन सामान्य के अपने गीत होते हैं, जिनमें किसी समाज विशेष की जीवनानुभूति की अभिव्यंजना होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था यानी जन्म से लेकर मृत्युपरांत लोकगीत समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। लोकगीत में जीवन के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुःख सभी की अभिव्यक्ति होती है।

स्वतंत्रता संग्राम में लोकगीतों की भूमिका

स्वतंत्रता संग्राम में लोकगीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। लोकगीतों ने जनमानस को संघर्ष हेतु प्रेरित करने के साथ ही स्वाधीनता आंदोलन को शक्ति प्रदान की। लोकगीत समाज की 'आत्मा' होते हैं, जो सीधे-सीधे जनमानस से संबंध रखते हैं। परतंत्र भारत में स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित लोकगीत हमारे पूर्वजों के अलिखित दस्तावेज हैं, जिन्हें सुनकर आज भी हमें अभूतपूर्व सुख की अनुभूति होती है। संदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य लोकगीतों के माध्यम से किया जाता था। इसमें अवधी लोकगीतों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता संग्राम में तलवार के साथ-साथ अवधी लोकगीतों की तेज धार ने भी जनता में जोश भरने के साथ-साथ उन्हें उद्वेलित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है (पोखरियाल, 2010)।

सुभाषचंद्र बोस पर रागणी

जब नेताजी देश को आजाद कराने के लिए आजाद हिंद फौज का गठन करने जा रहे थे, उस समय उन्होंने देशवासियों से जिस प्रकार मदद माँगी उसे हरियाणा की एक रागणी में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया :

गरज उठा था बोस जोश में यूँ आवाज लगा दी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2
न भिक्षा में राज मिले हमें खून बहाना होना
करके ही ढोल जग का बिगुल बजाना होना-2
भारत माँ की बलिवेदी पे शीश चढ़ाना होगा
तन मन धन अर्पण करना संकल्प उठाना होगा-2
उसको आगे आणा होगा जो सीने हैं फौलादी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2
साथ अहिंसा छोड़ हमें हथियार उठाने होंगे
वीरों की हिम्मत और बाहुबल आजमाने होंगे-2
सोए हैं जो सदियों से वो शेर जगाने होणे।
गिदड़ राज करे सिंघों पे, यार भगाने होणे-2
अब सम्मान बचाने होंगे खूब हुई बरबादी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2
जिन्हें मौत से डर न लागे, सोच समझ के आणा।
मेरी इस आजाद हिंद में खून से नाम लिखवाणा-2,
हस्ताक्षर करो खून से आगे सिर से कफन भी लाणा।
संयम और यजपूत फिरंगी सेना से टकराणा-2
मेरा फर्ज था समझाणा, मैंने सारी शर्त बता दी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2
बर्लिन से गूँजी दुनिया में नेताजी की वाणी
मदद करण को आगे आए जर्मन और जपानी-2
सिंगापुर जय हिंद बोल के गरजे हिंदुस्तानी।
युकर सेवा अँग्रेजों से जंग लड़ी तुफानी-2
भगवान चंद्र से अमर कहानी सबने आज भुला दी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2
गरज उठा था बोस जोस मै न्यू आवाज लगा दी
खून मुझे तुम दे देना दे दूँगा आजादी-2 (नाचोली, 2019)।

इस रागिणी के माध्यम से भगवान चंद्र ने सुभाषचंद्र बोस द्वारा आजाद हिंद फौज के गठन के दौरान दिए गए संदेश को आम जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास किया। सुभाषचंद्र बोस ने लोगों का आह्वान करते हुए कहा था कि यदि तुम मुझे खून दोगे तो मैं तुम्हें आजादी दिलवाऊँगा। नेताजी ने कहा कि आजादी हमें माँगने से नहीं मिलेगी। न ही कोई हमें हथेली पर इसे परोसेगा, अपितु हमें आजादी के लिए अपना बलिदान देने के लिए तैयार रहना होगा। भारत माँ को आजाद कराने के लिए हमें दृढ़ संकल्प करना होगा और अपने आप की बलि चढ़ाने के लिए तैयार रहना होगा। जो भारत माता पर अपना तन-मन-धन न्योछावर रखने का हौसला रखते हों, उन्हें आगे आना होगा और आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लेना होगा। सत्य और अंहिसा जैसे साधनों का साथ छोड़कर हमें हथियार उठाकर हिंसा के रास्ते को अपनाना होगा। पीढ़ियों से हमारा जो साहस सोया हुआ है उसे दुबारा जगाना होगा। ये जो गीदड़ हम पर राज कर रहे हैं, उन्हें अपने देश से खदेड़कर बाहर करना होगा। अब समय आ गया है कि हमें अपने आत्मसम्मान को बचाना होगा और अपने देश की बरबादी को रोकना होगा। इसलिए नेताजी इस बात पर जोर देते हैं कि तुम मुझे खून दो मैं तुम्हारे बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। जो लोग मौत से नहीं डरते और भारत माँ के लिए बलिदान देने को तैयार हैं वे आगे आएँ और आजाद हिंद फौज में शामिल हो जाएँ। लहू से हस्ताक्षर करो और अपने सिर पर कफन बाँधकर आजाद हिंद फौज का हिस्सा बनो, फिरंगी सेना से टक्कर लेने के लिए तैयार हो जाओ। नेताजी कहते हैं कि मेरा फर्ज तुम्हें समझाना था, मैंने तुम्हें सारी शर्त बता दी है, आगे सोच-समझकर आना।

यदि तुम बलिदान देने के लिए तैयार हो तो मैं तुम्हें आजादी दिलवाने में तुम्हारा साथ दूँगा। बर्लिन में सुभाषचंद्र बोस का बोलबाला हुआ और जर्मनी और जापान भी साथ देने के लिए आगे आए। सिंगापुर में 'जय हिंद' के जयघोष के साथ भारतीय अँग्रेज सेना से जंग लड़ने के लिए तैयार हुए। आज यह कहानी सभी ने भले ही भुला दी हो या आज उनके बलिदानों को हम भूलने लगे हों, परंतु उसे याद दिलाने की जरूरत है।

भगत सिंह पर रागणी

इसी प्रकार शहीद भगत सिंह पर भी एक रागणी है।

थर-थर काँपे अँग्रेज वे भागे छोड़ के कुर्सी व मेज
शेर वो जब ललकारया रे उस भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै।
वीर सुरया नामी न किसी से शेर डरया था
मारण और मरण नै बिल्कुल तैयार रह था-2
भरै था जुणा-2 जोश का था बैठण खायोग
वो दुश्मन खुब सुधारया रै भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै।
चोगर दे ने ध्यान लगा कै जगह देख ली खाली
जो जैसा सोच के आया था वो सारी बात बणाली
लाली चढगी थी गोरया की हिम्मत देख-देख छोरया की
ओह माय गाड पुकारया रे।
भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै-2
एक भी गोरा उसने उस दिन न मारणा चहाया
जान हथेली धर के बस चेतावण आया।
धाया धुमा चारों ओर मरते-मरते मच गया शोर
भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै-2
आजाद सिंह वही जागे भारत की आत्मा खनकी
अग्रेजों में खोफ देख कै शांति सी मिलगी।
रै डल गई हाथ हथकड़ी आज राजगुरू थे संग में साथ
खफा दिया शेर हमारा रे
ओ भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै-2
थर-थर काँपे थे अँग्रेज भागे छोड़ के कुर्सी व मेज।
भगत सिंह ने असैमली मैं गोला मारया रै-2। (चौधरी, 2018)।

सरदार भगत सिंह ने असेंबली में कैसे बम फेंका उस पूरे किस्से को इस रागणी के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इसमें भगत सिंह के साहस का वर्णन करते हुए बताया गया है कि भगत सिंह से अँग्रेज हकूमत थर-थर काँपती थी। भगत सिंह ने बम फेंककर अँग्रेजी सत्ता को चुनौती दी। वे निडर व्यक्ति थे और उनके अंदर साहस कूट-कूटकर भरा हुआ था। वे किसी से नहीं डरते थे। वे हिंसात्मक साधनों का इस्तेमाल करने और मरने-मारने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। वे चुपचाप देखने वालों और खामोश बैठकर देखने वालों में से नहीं थे। इसी साहस के बल पर उन्होंने कई बार दुश्मन को धुल चटाई। उन्होंने योजना बनाकर इस घटना को सफलतापूर्वक अंजाम दिया। उस बम धमाके का उद्देश्य आम जनमानस को हानि पहुँचाना नहीं, अपितु अँग्रेजी हुकूमत को केवल चेताना मात्र था। इसीलिए उन्होंने बम वहीं गिराया, जहाँ कोई नहीं था। वे किसी गोरे को भी नहीं मारना चाहते थे। बस अपनी जान जोखिम में डालकर केवल उन्हें चुनौती देना चाहते थे। असेंबली में बम गिराने से अँग्रेजी सरकार में खलबली मच गई थी। इससे अँग्रेज खौफजदा हो गए, जिसे देखकर भारतीयों को लड़ने की शक्ति प्राप्त हुई।

दीनबंधु छोटूराम पर रागणी

सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी सर दीनबंधु छोटूराम जी पर भी एक रागणी है।

कितणी पडली मार फेर भी न खोल्ही आँख किसान तनै-2
छोटुराम की बाताँ पर इब देणा होगा ध्यान तनै-2
सारी दुनिया करै तरक्की तू क्यूँ घटता जा रहया सै
आँख खोल कै देख लिए कुण तेरी कयाई खा रहश सै,
ऐस करणियाँ बण कै प्यारा मूर्ख तनै बणा रहया सै
क्षेत्र और जात महजब पर म्हारा लठ बजवा सै-2
खुन चुसता वो जा रहया सै क्यूँ करी हवाली ज्यान तनै
छोटूराम की बाताँ पर इब देणा होगा ध्यान तनै-2
देखण लाग्या बाट बिरागी खुन तनै लिखणा पढ़णा छोड़ दिया।
करे तजुर्बे पुरुखों नै तनै न्यूँ भी कढ़णा छोड़ दिया।
रीत पुराणी खत्म करी और न सीख्या नया ज्ञान तनै
छोटूराम की बाताँ पर इब देणा होगा ध्यान तनै-2
छोटूराम जो दिखा गए उस राह पर कदम बठाणे हो
आवण आली पीढ़ी खातिर नक्शे आज बणाणे हो
उत्तम शिक्षा दिए बिना महारे बालक कयुकर शयाणे हो।
हर भाषा और ज्ञान-विज्ञान के सारे पाठ पहचान तनै,
छोटूराम की बाताँ पर इब देणा होगा ध्यान तनै-2
मेरा किसान जै शिक्षित होण्या जो दुणी बढ़ज्जा पैदावार,
कोए भूख से नहीं मरैगा भर देगे अन्न के भंडार,
छोट बड़े व्यापारी का भी बढ़िया चालै कारोबार,
अन्न वस्त्र पर घर सबको मिलण्या आपस मैं न हो तकरार-2
सुखवीर सिंह बहलंबिया हिंद का रखणा होगा मान तनै
छोटूराम की बाताँ पर इब देणा होगा ध्यान तनै-2 (किलोई, 2017)।

इस रागणी के माध्यम से दीनबंधु छोटूराम जी की किसानों को स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दी गई नसीहत को दर्शाया गया है। इसके माध्यम से उन्होंने कहा कि आज किसानों पर कितने जुल्म हो रहे हैं, परंतु फिर भी वे अपने हितों के लिए सचेत नहीं हुए। आज वह समय आ गया है जब उन्हें छोटूराम जी की बातों पर ध्यान देना होगा। छोटूराम जी के द्वारा दिए गए संदेश को इस रागणी के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाया गया और कहा गया कि सारी दुनिया तरक्की के रास्ते पर है और किसान पिछड़ता जा रहा है। ध्यान से देख लो कि तुम्हारे द्वारा की गई कमाई किसकी जेब में जा रही है? कौन है जो प्यारा बनके तुम्हें मूर्ख बना रहा है और जात-पात और मजहब के नाम पर तुम्हें आपस में लड़वा रहा है? वह तुम्हारे खून-पसीने की कमाई को खा रहा है और तुम उस पर ध्यान नहीं दे रहे हो। अब समय आ गया है जब तुम्हें छोटूराम की बातों पर ध्यान देना होगा। तुमने दूसरों की बाट देखनी शुरू कर दी और आगे बढ़ना छोड़ दिया। तुमने मूर्ति की पूजा करना शुरू कर दिया और पढ़ाई-लिखाई करना छोड़ दिया है। पूर्वजों ने अभ्यास कर विरासत में जो तजुर्बे तुम्हें दिए थे, तुमने उन पर अमल करना भी छोड़ दिया। साथ ही तुमने अपने पारंपरिक रीति-रिवाजों को भी निभाना छोड़ दिया और कोई नया ज्ञान भी प्राप्त नहीं किया। अब तुम्हें छोटूराम की

बात पर ध्यान देना होगा। छोटूराम जी ने जो रास्ता तुम्हें दिखाया था, तुम्हें उस रास्ते पर आगे बढ़ना होगा और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए रास्ते बनाने होंगे। जब तक हम अपने बच्चों को सही शिक्षा नहीं देंगे तब तक वे समझदार कैसे बनेंगे? हमें अपने बच्चों को सभी भाषाओं की शिक्षा के साथ-साथ वैज्ञानिक शिक्षा भी देनी होगी, ताकि वे आगे बढ़ सकें। तुम्हें अपने मित्र और शत्रुओं की भी पहचान करनी होगी कि कौन तुम्हारे हित में कार्य कर रहा है और कौन तुम्हारी कमाई को छीन रहा है। अब वह समय आया गया है जब छोटूराम की बातों पर ध्यान देने की जरूरत है। इस रागणी के माध्यम से छोटूराम जी के कार्यों को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। छोटूराम जी का मानना था कि यदि किसान पढ़-लिख जाए तो खेतों में पैदावार दोगुनी हो जाएगी और देश में अन्न के भंडार भर जाएँगे। कोई भी भूखा नहीं रहेगा। साथ ही छोटे और बड़े व्यापारी का कारोबार भी अच्छा होगा। क्षेत्र के सभी लोगों की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी तो आपस में किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा। इसलिए छोटूराम जी की इन सभी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

'कैसे मिली आजादी' पर रागणी

देश को कैसे आजादी मिली, इस पर भी एक रागणी हरियाणा में बहुत पसंद की जाती है।

कैसे मिली आजादी वो मैं आज तुझको बतलाऊँगा
और किस-किस ने दी कुर्बानी मैं कुछ एक नाम गिणवाऊँगा।
मंगल पांडे करी बगावत मर के नाम अमर कर गया।
चंद्रशेखर आजाद मरया वो अलफिर पार्क में घिर गया।
नेताजी का पता चलया न किस हालत में वो मर गया।
जर्नर डायर ने जुल्म करया वो खपर अमृतसर भर गया।
जलियावाला बाग ग्वाह है। सबूत तुम्हें दिखलाऊँगा।
कैसे मिली आजादी वो मैं तुमको आज बतलाऊँगा।
और किस-किस ने दी कुर्बानी मैं कुछ एक नाम गिणवाऊँगा।
कोंडा जेल में राजिंदर लहरी फाँसी ऊपर झूल गए।
गोरखपुर में घुलाया बिसमिल क्या भारतवासी भूल गए।
रोशन सिंह इलाहाबाद की जिला जेल में झूल गए।
फैजाबाद में असफकउल्ला फाँसी कर कबूल गए।
खुदरा बोस, वीरसावर की मैं याद दिलाऊँगा।
कैसे मिली आजादी वो मैं तुझको आज बताऊँगा।
और किस-किस ने दी कुर्बानी मैं कुछ एक नाम गिणवाऊँगा।
अरे दादा तोपे फाँसी चढ़या उस ईश्वर का रट के नाम
लक्ष्मीबाई रण में मरग, उसने पाया मुक्तिधाम
लालाजी पे लाठी बरसी उनका होग्या काम तमाम
नाना साहिब का पता चलया हट से ठा लेग्या उसे राम
इतनी कहते चला गया अरे मैं फेर दोबारा आऊँगा।
कैसे मिली आजादी वो मैं तुझको आज बताऊँगा।
और किस-किस ने दी कुर्बानी मैं कुछ एक नाम गिणवाऊँगा (पासोरिया, 2017)।

जिन वीरों की कुर्बानी से हमें आजादी मिली, उनका वर्णन इन रागणियों के माध्यम से किया गया है। मंगल पांडे ने बगावत की तो उसका नाम अमर हो गया। नेताजी ने कैसे अपना जीवन आजादी के लिए अर्पित कर दिया, उसका भी पता चलता है। जनरल डायर ने जो अत्याचार आम भारतीयों पर किए, उसका सबसे बड़ा गवाह जलियाँवाला बाग है, जहाँ हजारों लोगों के जीवन को गोली मारकर समाप्त किया गया। देश को स्वतंत्र करवाने में कितनी कठिनाइयाँ और संघर्ष करना पड़ा, इन सबके बारे में वर्णन रागणियों में मिलता है। कोंडा जेल में राजेंद्र लहरी को फाँसी दी गई और गोरखपुर में जो किया गया, क्या भारतवासी उस जुल्म को भुल गए हैं! फैजाबाद में अशफाक उल्लाह ने फाँसी को कबूल कर लिया। खुदीराम बोस, लक्ष्मीबाई, लालाजी, नाना साहिब और वीर सावरकर जैसे असंख्य देशभक्तों के बलिदानों से हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुई है।

आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भरके..

भारत माँ को बंधनों से आजाद कराने में बहुत से वीरों ने बलिदान दिए। उन वीरों के बलिदानों को इस रागणी के माध्यम से व्यक्त किया गया है—

कितने वीर चले गए सजनो मेरी भारत माँ पे मरके-2
आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भर के -2
अरे महाराणा प्रताप शिवाजी बन में धक्के खाए।
वीर हकीकत जमे धर्म पे तन घट हित न पाए।
अरे जलियाँवाले बाग के अंदर कितने वीर खपाए।
जोरावर ओर फतेह सिंह दीवारों में चिनवाए।
उधम सिंह ने जाके गोली मारी उस डायर के।
आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भर के।
पीठ से बाँधे लिया लड़का जब लड़ी लक्ष्मीबाई।
चंद्रशेखर ने देश के अंदर काली जो मचाई।
भगत सिंह ने हँसते-हँसते गले में फाँसी खाई।
धरै थे बलिदान देश वे मात-पिता और भाई।
फेर हिंद में चाल पड़े रे काफन बाँध लिया सर के।
आजादी की लिखी कहानी कलम लहू से भर के।
लालाजी ने खेली लाल खून की होली।
नेताजी ने हरा दिए अँग्रेज बना के टोली।
इनकलाब का नाम ले लिया मार रहे थे बोली।
राजगुरू सुखदेव ने आके देश की निद्रा खोली।
फाँसी पे गए लटक वीर रे गले लगा ली हँस के
आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भर के।
न्याणे से बच्चे ने खाए सिर अपने पे कोड़े।
कुचले थे मासूम वीर ने अँग्रेज के घोड़े।
जबर फौज थी अँग्रेजों की हिंदुस्तानी थोड़े।
गांधीजी ने बिन हथियार माँ के बंधन तोड़े।
रतचंद्र से कावीश अंदर गोरे भागे डर कै।
आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भर के। (चौधरी दीपा, 2018)

भारत माँ पर अपने आपको बलिदान करके कितने वीर इस दुनिया से चले गए और अपने खून से उन्होंने आजादी की कहानी को लिखा। महाराणा प्रताप, शिवाजी को वनों में धक्के खाने पड़े। वीर हकीकत ने धर्म पर तन-मन-धन को न्योछावर किया। जलियाँवाला बाग में निर्दोष

लोगों की कुर्बानी दी गई। महान योद्धा जोरावर और फतेहसिंह को दीवार में चिनवा दिया गया था। वीर उधम सिंह ने डायर को गोली मार कर खत्म किया। इस प्रकार भारतीय सेनानियों ने स्वयं का बलिदान देकर भारत माँ को गुलामी के बंधनों से आजाद कराया। लक्ष्मीबाई ने अपने बच्चे को कमर पर बाँधकर अँग्रेजों से युद्ध लड़ा और लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गई। चंद्रशेखर आजाद ने अँग्रेजों के खिलाफ देश में जागरूकता फैलाई और भगत सिंह जैसे वीर हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गए। अनेकों ऐसे वीरों ने देश को आजाद कराने के लिए अपने सिर पर कफन बाँधे थे और अपने जीवन का बलिदान देकर आजादी की कहानी को लिखा। लालाजी ने खून की होली खेली और नेता जी सुभाषचंद्र बोस ने मुकाबला कर अँग्रेजों को हराया। सारे देश में इनकलाब का नारा गूँज रहा था। राजगुरु और सुखदेव ने देश को आजाद करवाने के लिए लोगों को जागरूक किया और आजादी के संघर्ष में हँसते-हँसते झूल गए। इस प्रकार अपने बलिदान से आजादी की कहानी लिखी। आजादी के संघर्ष में छोटे-छोटे बच्चों ने भी कोड़े खाने जैसी यातनाएँ सहीं, परंतु उन्होंने पूरे साहस के साथ इन यातनाओं को सहन किया। गांधीजी ने अहिंसा का मार्ग अपनाकर आजादी में योगदान दिया। भारतीयों के साहस और निडरता को देखकर अँग्रेजों को अंतत: भारत छोड़कर भागना पड़ा। इस प्रकार भारतीय वीरों ने अपने प्राणों की आहुति देकर देश को आजाद करवाया।

हरियाणा में लोकगीत रागणी, रीति-रिवाज, परंपराओं और स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित हैं। लोग इतिहास की यादों को ताजा करने के लिए और खुशी में हर किसी अवस्था में लोकगीतों को गाते हैं। यदि हम देशभक्ति की रागणियों की बात करें तो ये रागणियाँ स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों को व्यक्त करती हैं। आज भी स्वतंत्रता दिवस पर या किसी भी स्वतंत्रता सेनानी की पुण्यतिथि पर हरियाणा में रागणी प्रतियोगिता की व्यवस्था की जाती है। लोग इनके माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दिए गए बलिदानियों और सेनानियों के साहस को याद करके उन्हें श्रद्धांजलि देते हैं। ये रागणियाँ सैंकड़ों सालों से चली आ रही हैं। आज भी जब हम इन सेनानियों से संबंधित रागणियाँ सुनते हैं तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे अंदर उत्साह का संचार होता है। एक अलग-सा जोश पैदा होता है, जो हमें देश के लिए कुछ भी कर गुजरने हेतु उत्साहित करता है। ये रागणियाँ हमारी विरासत को सँभाले हुए हैं, जो हमारी आने वाली पीढ़ियों को इन सेनानियों के द्वारा दिए गए बलिदानों की गाथाओं को सुनाएँगी।

निष्कर्ष

स्वाधीनता के लिए संघर्षरत समाज ने इन लोकगीतों को रचकर, भारतीय आत्मसम्मान को झकझोरने और जगाने का काम किया। पराधीनता के उस कठिन दौर में हमारी लोक चेतना ने राष्ट्र की अस्मिता को बचाए रखने में अहम भूमिका निभाई। हमारे पूर्वजों ने जिस प्रकार हमारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण प्रतीकों का गुणगान व लोकचित्त में बसे चरित्रों का गाथा-गायन कर जनजागरण का दायित्व सँभाला, वह प्रणम्य है। ऐसे अशेष दिव्य साक्ष्य आज लोकगीतों के रूप में उपलब्ध हैं। स्वतंत्रता संग्राम से लेकर स्वतंत्रता मिलने तक हमारे देश की लोकचेतना लोकगीतों के द्वारा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता को इसी प्रकार प्रभावित और झकझोरती रही है। वर्तमान सूचना तथा प्रौद्यौगिकी के दौर में आज विश्व की दूरियाँ सिमट रही हैं। सूचनाओं का आदान-प्रदान पहले की अपेक्षा अब सहज और सरल हो गया है। लोगों तथा विभिन्न समाजों के मध्य आपसी दूरियाँ कम हो रही हैं। सूचनाओं को एकत्रित करना तथा उन्हें सँजोए रखना सहज और सरल हो गया है। अतः इन सभी सुविधाओं का लाभ उठाते हुए हमें अपने लोकगीतों तथा लोक साहित्य को सहेज कर रखना चाहिए, जिससे यह बहुमूल्य धरोहर भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित तथा लाभकारी सिद्ध हो। सूचना प्रौद्यौगिकी के विभिन्न माध्यमों और साधनों का प्रयोग करते हुए लोक साहित्य और लोकगीतों की पहुँच को आम जनमानस तक सरलतापूर्वक और बड़े पैमाने तक पहुँचाया जा सकता है। वैश्वीकरण के दौर में जब उदारवाद, पूँजीवाद, और निजीकरण के मूल्यों का आधुनिक सूचना तकनीक के माध्यम से प्रचार करके व्यक्तिवाद को फैलाया जा रहा है, ऐसे समय में राष्ट्रवाद व नैतिक मूल्यों के प्रसार की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है। इसलिए स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों और उनके द्वारा देखे गए भावी भारत के सपनों के साथ जनमानस को जोड़ना अति आवश्यक है।

संदर्भ

किलोई, डी. (2017). *सरछोटूराम जी की हिट रागिनी*. https://www.youtube.com/watch?v=rJGmCIhPjzE से 21 जुलाई, 2021 को पुन:प्राप्त.

चौधरी, डी. (2018). *आजादी की लिखी कहानी कलम लहू में भर के. केशु हरयानवी*. https://youtu.be/2Lc199Ztlgs से 26 जुलाई, 2021 को पुन:प्राप्त

चौधरी, पी. (2018). भगत सिंह: थर थर काँपे अँग्रेज. *चंदा वीडियो*. https://youtu.be/SgNsgCGi8m0 से 20 जुलाई, 2021 को पुन:प्राप्त.

नाचोली, वाई. एन. (2019). देशभक्ति रागिनी: नेताजी सुभाषचंद्र बोस. *शक्ति म्यूजिक*. https://youtu.be/ADkOwf2bTkk से 22 जुलाई, 20 21 को पुन:प्राप्त.

पासोरिया, वी. (2017). कैसे मिली आजादी. *मोर रागिनी*. https://youtu.be/rJGmCIhPjzE. से 26 जुलाई 2021 को पुन:प्राप्त.

पोखरियाल, आर. (2010). "लोकगीतों ने स्वाधीनता आंदोलन को बल दिया. *लाइव हिंदुस्तान टीम*. https://www.livehindustan.com/news/article1-story-92887.html से 28 जुलाई, 2021 को पुन:प्राप्त.

राजकुमार व अन्य. (2018). लोकगीत : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, उद्भव एवं विकास, *जर्नल ऑफ एडवांस एंड स्कॉलरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, वॉल्यूम* 15, पृ॰ 77-79.

लोक साहित्य. (2021). https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95_%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF से 26 जुलाई, 2021 को पुन:प्राप्त

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 44-51, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम और साहित्य : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य संग्रह 'हिंदू' में नवजागरण, पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीयता के मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ. संजय वर्मा

सारांश

स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य और साहित्यकारों की भूमिका और योगदान का मूल्यांकन 'राष्ट्रीयता' की अवधारणा के आधार पर होता है। उस दौर में स्वतंत्रता सेनानी जहाँ एक ओर राजनीतिक गतिविधियों से क्रांति लाना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर कलम के सिपाही अपने संचार-संवाद से राष्ट्र जागरण, पुनर्जागरण और सांस्कृतिक चेतना की अलख जगाकर जनजागृति में अपना योगदान दे रहे थे। 'राष्ट्रकवि' मैथिलीशरण गुप्त की रचनावली अध्ययन और शोध की दृष्टि से अप्रतिम है। उनकी विषयवस्तु एवं संचार-संप्रेषण कला ने स्वतंत्रता आंदोलन में अमिट छाप छोड़ी। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय जागरण, पुनर्जागरण, नवजागरण और भारतीय संस्कृति की गौरवपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उनके साहित्य का केंद्रीय भाव देश और समाज का आपसी संबंध है। उन्होंने अपने काव्य संग्रह 'भारत-भारती' और 'हिंदू' से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों पर आलोचनात्मक टिप्पणी की है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं : "गुप्त जी ने अनुभव किया कि लोक-वेदना और लोक-चेतना को वाणी दिए बिना कवि-कर्म का दायित्व पूरा नहीं होता। फलतः वे अपने देश और काल की समस्याओं, चुनौतियों के अनुरूप काव्य-सृजन में पूरे मनोयोग से प्रवृत्त हो गए।" उपर्युक्त के आलोक में प्रस्तुत शोध-पत्र, एक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

संकेत शब्द : राष्ट्रीयता, साहित्य, मैथिलीशरण गुप्त, हिंदू, नवजागरण, पुनर्जागरण, सांस्कृतिक चेतना

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य एवं साहित्यकारों की भूमिका अविस्मरणीय एवं अतुलनीय है। इस दौर में अनेक राजनैतिक एवं सामाजिक आंदोलनों को गढ़ने और उनके प्रचार-प्रसार में साहित्य की भूमिका अमिट है। तत्कालीन साहित्यकारों द्वारा रचे गए साहित्य ने पुनर्जागरण, नवजागरण, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को स्थापित करने एवं समाज के हर तबके तक प्रचारित-प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाई। उस युग के साहित्यकार न सिर्फ सृजनकर्ता थे, अपितु कलम रूपी शस्त्र से क्रांति की मशाल जलाए हुए थे। भारतीय राष्ट्रीय चेतना के प्रकटीकरण का दौर भारतेंदु काल से ही प्रारंभ होता है और वहीं से विद्वानों द्वारा हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भी माना जाता है। कई इतिहासकार एवं हिंदी साहित्य के विद्वान इस दौर को हिंदी नवजागरण भी कहते हैं। भारतीय राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह, जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतेंदु से प्रारंभ हुआ, वह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पूरे उफान पर आ गया। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का है। गुप्त जी द्वारा अभियांत्रीकृत और अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना की मौलिक विशेषताओं का विश्लेषण करना अनिवार्य है, क्योंकि यह प्रश्न ऐतिहासिक ही नहीं, अपितु समसामयिक संदर्भों में भी आवश्यक है। भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बने, यही स्वतंत्रता आंदोलन का लक्ष्य रहा और स्वाधीनता प्राप्ति के साथ यह लक्ष्य प्राप्त हुआ। स्वाधीनता संग्राम के द्वारा पूरे समाज ने कुछ राष्ट्रीय एवं सामाजिक मूल्यों का निर्माण किया, उन्हें समाहित किया। न सिर्फ स्वतंत्रता सेनानियों, सामाजिक सुधारकों, अपितु समाज के हर वर्ग ने कुछ संकल्पनाएँ विकसित कीं, स्वप्न देखे, उसके लिए संघर्ष किया। जिस राष्ट्रीय चेतना को जगाकर पूरे भारतीय समाज को मैथिलीशरण गुप्त एक सूत्र में बाँधना चाहते थे वह आज जातिवाद, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद एवं भाषाई संघर्ष के उन्माद से ग्रसित है। स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रीय एकता के समक्ष इतनी विकट समस्याएँ कभी नहीं आई। इतिहास चक्र मानों हमें स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति की ओर ले जा रहा है। पुनः राष्ट्रीय चेतना, धर्मनिरपेक्षता एवं आत्मगौरव का बोध कराने की आवश्यकता है। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रदत्त मूल्यों और राष्ट्रीय चेतना का पुनः प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है। गुप्त जी के काव्य-संग्रह का गंभीर अध्ययन एवं शोध करने की सतत आवश्यकता है।

मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं का अध्ययन किए बिना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और उस दौर को समझना कठिन है। गुप्त जी का काव्य उस युग को सुषुप्त, जीर्ण-शीर्ण और अंधविश्वास की अवस्था से जगाने एवं विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों जैसे नवजागरण, पुनर्जागरण, सामाजिक सुधार आदि को समझने में सहायक है। वे समाज के हर वर्ग में व्याप्त 'दुर्दशा' को इतिहास बोध, नवाचार और राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता से जोड़कर व्यक्त करते हैं। कवि-कर्म की उपादेयता सिर्फ इतिहासबोध या राजनीतिक व सामाजिक बोध पर ही नहीं निर्भर होती, अपितु वह भाषा-बोध पर भी निर्भर करती है। गुप्त जी ने अपना संपूर्ण साहित्य खड़ी बोली में प्रतिपादित किया है, जो आगे चलकर साहित्यकारों और स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बनी और राष्ट्रीय चेतना की मशाल के रूप में स्थापित हुई। खड़ी बोली में हिंदी नवजागरण की आधारशिला ही गुप्त जी ने रखी। हिंदी नवजागरण के पूर्व बांग्ला नवजागरण एवं मराठा नवजागरण काफी सशक्त रूप में भारत में निर्मित हुआ, किंतु दोनों ही अपने-अपने क्षेत्रों तक सीमित रहे और पूरे भारत में अपना प्रकाश फैलाने में असमर्थ रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से गुप्त जी ने खड़ी बोली में लिखना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे उनके काव्य ने समाज के हर वर्ग तक अपनी पैठ बना ली और इस प्रकार हिंदी नवजागरण एक नई ऊर्जा के

[1]सहायक आचार्य, अँग्रेजी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली. ईमेल: sanmani97@hotmail.com

साथ गतिमान हुआ और खड़ी बोली स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बन गई, जिसका प्रसार सोनार-बांग्ला और मराठी-अस्मिता से ज्यादा और व्यापक रूप में पूरे भारत में फैल गया। गुप्त जी के प्रभावशाली संप्रेषण से उस दौर के क्रांतिकारी, राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता बेहद प्रभावित थे। रचना-कर्म की दृष्टि से गुप्त जी व मुंशी प्रेमचंद का साहित्य एक समान ओजपूर्ण था। दोनों के साहित्य में मानवतावाद, भारत की दुर्दशा और आर्थिक शोषण की आवाज एक प्रकार से ही व्यक्त की गई है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र में गुप्त जी के काव्य संग्रह 'हिंदू' पर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें 92 कविताएँ शामिल हैं। इसका प्रकाशन 1927 में हुआ था। गुप्त जी पर हुए शोध और अध्ययन ज्यादातर 'भारत-भारती', 'साकेत', जयद्रथ-वध या कुछ अन्य कृतियों पर ही केंद्रित हैं। इस शोध के माध्यम से 'हिंदू' काव्य संग्रह और 'भारत-भारती' के कथ्य का तुलनात्मक अध्ययन भी करने का प्रयास किया गया है।

'हिंदू' काव्य संग्रह के रचना-कर्म की पृष्ठभूमि

मैथिलीशरण गुप्त की ज्यादातर रचनाएँ इतिहास, रामायण, महाभारत के पात्रों और परिस्थितियों से प्रेरणा लेकर आधुनिक दृष्टिकोण के तहत रची गई हैं। अतीत को वर्तमान के संदर्भ से जोड़कर प्रस्तुत करने की कला में गुप्त जी माहिर थे। वह उस समय की आवश्यकता भी थी। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में 'जयद्रथ-वध' की रचना 1910 में हुई, जिसका स्वर न्याय था, वहीं 'भारत भारती' का प्रकाशन 1912-13 में हुआ, जिसमें राष्ट्रीय चेतना के विकास को कवि ने इतिहास बोध, गौरव-गान आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'हिंदू' काव्य संग्रह का प्रकाशन लगभग डेढ़ दशक बाद 1927 में हुआ, जिसका स्वर और विचार वही थे जो 1912-13 में 'भारत-भारती' में व्यक्त किए गए थे। दोनों ही काव्य संग्रहों में भारत वंदना, अतीत का गौरव, वर्तमान की दुर्दशा का कथ्य ही प्रमुख विषय है। दोनों के प्रमुख स्वर आलोचना और उद्बोधन ही हैं। क्या कारण थे कि राष्ट्रकवि को 15 वर्षों के अंतराल के बाद उन्हीं विचारों को 'हिंदू' काव्य संग्रह के माध्यम से व्यक्त करना पड़ा? इन प्रश्नों को समझने हेतु तत्कालीन राजनीतिक-सांस्कृतिक परिस्थिति, कवि की राष्ट्रीय-दृष्टि में समयानुसार शोधन और हिंदी साहित्य में छायावाद की उत्पत्ति प्रमुख कारण हो सकते हैं।

राजनीतिक कारणों में 1905 के बंग-भंग आंदोलन और उससे उत्पन्न नई चेतना, 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना, 1907 में काँग्रेस का गरम दल व नरम दल में विभाजन एवं 1908 में खुदीराम बोस की फाँसी और लोकमान्य तिलक का कारावास हैं। इन राजनीतिक परिस्थितियों में गुप्त जी ने 'भारत-भारती' का प्रकाशन किया। 'भारत-भारती' की प्रस्तावना में गुप्त जी लिखते हैं—''मुझे दुःख है कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं मुझे कुछ कड़ी बातें लिखनी पड़ी हैं, परंतु मैंने किसी की निंदा करने के विचार से कोई बात नहीं लिखी। अपनी सामाजिक दुरवस्था ने वैसा लिखने को विवश किया है।'' 1912 के बाद के प्रमुख राजनीतिक कारणों में 1919 का जलियाँवाला बाग हत्याकांड, 1920 में असहयोग व खिलाफत आंदोलन, 1921-22 में मोपला या मालाबार विद्रोह और 1924 के कोहाट दंगे, जिनमें बड़ी संख्या में हिंदू-धर्मावलंबियों की हत्या की गई हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक राजनीतिक आंदोलन हुए, जिन्होंने गुप्त जी की राजनीतिक व सामाजिक सोच एवं उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण में परिवर्तन किया।

स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आयामों और अँग्रेजों के प्रति गुप्त जी की दृष्टि को 'हिंदू' काव्य संग्रह से अच्छी तरह समझा जा सकता है एवं उनके विकास क्रम को रेखांकित किया जा सकता है। 'हिंदू' काव्य संग्रह में कवि की दृष्टि में परिवर्तन न सिर्फ अँग्रेजों, बल्कि अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति भी चिह्नित किया जा सकता है।

''छोड़ो अमन-चैन की भ्राँति/यह मृतकों की सी शांति/
फैला है भीषण आतंक/रहते हैं जन सभय सशंक।''

'हिंदू' काव्य संग्रह की पृष्ठभूमि को समझने का तीसरा प्रमुख कारण छायावादी काव्य के उत्कर्ष का समय है। छायावाद के विपरीत प्रभाव से सशंकित गुप्त जी ने 'हिंदू' में इस पर व्यंग्यपूर्ण भूमिका लिखी है। इस भूमिका में उनकी मनःस्थिति दृष्टिगत है, जिसमें स्पष्ट दिखता है कि वे अपने कवित्व की रक्षा के लिए क्या-क्या उपक्रम करते हैं। रमेशचंद्र शाह लिखते हैं—''भारतेंदु की तरह गुप्त जी के भी कवि-कर्म का एक स्थायी भाव है—भारत दुर्दशा। वे इस यथार्थ को कभी भी आँखों से ओझल नहीं करना चाहते। हमेशा उसे अपनी आँखों के सामने रखना चाहते हैं'' (शाह, 1986, पृ. 123)। उपर्युक्त के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि कवि की राष्ट्रीय चेतना और दृष्टि के विकास क्रम में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन 'हिंदू' कविता संग्रह में देखने को मिलता है, जो 'भारत-भारती' के कथ्य से ज्यादा दृष्टि संपन्न है।

'हिंदू': भारतीयता का सत्त्व

मैथिलीशरण गुप्त के अनेक काव्य संग्रह हैं, जिनका स्वर एक है अर्थात् विषयवस्तु एक विषय पर केंद्रित है, वहीं 'हिंदू' काव्य संग्रह का स्वरूप व्यापक है। जैसा कि रमेशचंद्र शाह ने लिखा है—"...हिंदू' की रचना के लिए प्रेरित हुआ, जो एक तरह से 'भारत-भारती' की ही पुनर्रचना है, मगर एक अधिक उबरी हुई, अधिक दृष्टि-संपन्न 'भारत-भारती' की'' (शाह, 1986, पृ. 122)। इससे स्पष्ट है कि 'हिंदू' काव्य संग्रह अपने-आप में भारतीय दृष्टि/बोध अर्थात् पुनर्जागरण, नवजागरण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अस्मिता के तत्त्वों का संपूर्ण प्रकटीकरण है। इसकी विषयवस्तु विविध है। इसमें राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक एकता, हरिजनों, अछूतों, किसानों, युवाओं, विधवा एवं महिलाओं की राजनीतिक-सामाजिक दशा का चित्रण किया गया है। अंबादत्त पांडे लिखते हैं—'हिंदू' नामक काव्य में गुप्त जी ने सांप्रदायिक एकता पर जोर दिया। हरिजनों की दयनीय दशा का भी इसमें विशेष चित्रण हुआ है। गांधी प्रेरित हरिजनोद्धार की भावना के आधार पर इसकी रचना की गई है। शीर्षक भले ही भ्रामक लगे, परंतु गुप्त जी ने 'हिंदू' शब्द की विशेषता की व्याख्या ही प्रकारांतर से इसमें की है'' (पांडे, 1986, पृ. 104-105)। इस काव्य संग्रह में 92 कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं की विवेचना से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकवि ने एक काव्य-संग्रह में ही मोतियों की माला के समान अपने विचारों, आदर्शों, भारतीयता के सूत्र, अस्मिता के प्रश्नों एवं उनके उत्तरों

को पिरो दिया है। काव्य संग्रह का प्रारंभ हिंदुओं अर्थात् सभी भारतीयों के आवाहन से होता है, जिन्हें कवि अपना गौरव याद दिलाता है। अंत की दो कविताओं 'अपना भरोसा' तथा 'अपना उद्देश्य' में गुप्त जी ने राष्ट्र जागरण, नवजागरण और अस्मिता के प्रश्नों का चित्रण किया है एवं हिंदुओं अर्थात् सभी भारतीयों से अपनी राष्ट्रीय चेतना जागृति कर, स्वाधीनता प्राप्त करने का आवाहन किया है। विश्व-बंधुत्व एवं शांति का संदेश फैलाने की प्रेरणा भी इन कविताओं के माध्यम से दी गई है।

लोकजागरण एवं 'हिंदू' काव्य संग्रह

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में भारतेंदु युग से प्रारंभ हुई राष्ट्रीय चेतना को जगाने का कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दिनों में मैथिलीशरण गुप्त के कवित्व से चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। गुप्त जी के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय चेतना ही है। उनका प्रारंभिक उद्देश्य अतीत के गौरव गान द्वारा राष्ट्रीयता को जगाने का है, जिसके लिए उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों को चुना और अतीत के गौरवशाली चित्रों का जनमानस के समक्ष चित्रण किया। उनका लक्ष्य था कि पराधीनता की हीन भावना से मुक्त करके भारतीय समाज को स्वाधीन भारत का सुनहरा सपना दिखाया जाए और समाज स्वयं जाग्रत होकर इस सुनहरे सपने को अपनी आँखों से देखे और प्राप्त करने के लिए संघर्ष करे। इसलिए गुप्त जी को आधुनिक हिंदी काव्य जगत् में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि कवि माना गया है। उनका काव्य, स्वतंत्रता संग्राम के युग में, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के विकास के प्रत्येक चरण में परिपक्व होता गया और लोकजागरण और नवजागरण में अपना योगदान देता रहा। तात्पर्य यह है कि उनकी स्वयं की राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टि समयानुसार अधिक स्पष्टता से उभरती गई।

जनमानस में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने और वर्तमान दुर्दशा के कारणों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए गुप्त जी ने अतीत के वैभवशाली भारत का परिदृश्य अपने काव्य संग्रह के माध्यम से प्रस्तुत किया। 'हिंदू' काव्य संग्रह की प्रथम कविता 'विस्मृति' में गुप्त जी लिखते हैं :

श्री श्रीरामकृष्ण के भक्त/रह सकते हैं कभी अशक्त?/
दुर्बल हो तुम क्यों हे तात!/उठो हिंदुओं, हुआ प्रभात।
(पालीवाल, 2008, पृ. 167)

इसी कविता की अगली चार पंक्तियाँ पराधीन भारतीय समाज को जाग्रत करने के लिए कवि के मानस को स्पष्ट करती हैं। गुप्त जी लिखते हैं :

हे हिंदू, तुम हो क्यों हीन?/क्यों हो दलित, दुखी, अति दीन?
क्यों तुम हो यों आज हताश?/क्यों यह पराधीनता-पाश?
(पालीवाल, 2008, पृ. 167)

उन्होंने अपनी कविताओं में लोकजागरण हेतु पंद्रहवीं शताब्दी की भक्ति-भावना को राष्ट्र-भावना से जोड़कर इतिहास बोध, पौराणिक नायकों, तीज-त्योहारों आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—"गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता, अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते है'' (शुक्ल, पृ-406)।

गुप्त जी ने अतीत के भव्य और उदात्त चरित्रों का कथाओं के माध्यम से, युग की आवश्यकता के अनुरूप एक नई प्रेरणा, नया रूप देकर चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया। उन्होंने इतिहास के प्रमुख नायकों के साथ रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं के भिन्न-भिन्न प्रसंगों का चुनाव किया। वे अतीत की गौरवपूर्ण परंपरा में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि भारत की प्राचीन सभ्यता ही जनता को जाग्रत और प्रेरित कर सकती है, जिससे राष्ट्रीय चेतना का निर्माण और प्रवाह हो सके। अंबादत्त पांडे लिखते हैं—''उनके पौराणिक पात्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनका चरित्र मानवीय गुणों से मंडित होकर विश्वसनीय और अनुकरणीय बन बैठा है। इसी विशेषता के कारण इन काव्यों में युग-सापेक्षता दिखाई देती है'' (पांडे, 1986, पृ-105)। अँग्रेजों ने बड़ी चतुराई से पाश्चात्य सभ्यता को अँग्रेजी शिक्षा के बहाने भारत में फैलाया, जिससे स्वाधीनता संग्राम के दिनों में युवाओं के चारित्रिक गुणों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में। 'हिंदू' काव्य में संकलित गुप्त जी की कविता 'शौर्य-वीर्य' कुल 52 पंक्तियों की है, इसमें उन्होंने भारत के गौरवशाली और शौर्यपूर्ण इतिहास, रामायण-महाभारत के नायकों का खूबसूरती से चित्रण किया है, जो उस दौर में ही नहीं, आज की युवा पीढ़ी को भी प्रेरित करने में पूर्ण समर्थ है—

किसने किए विश्वजित याग?
और विश्व-विभवों के त्याग?

याद करो निज वीर्य विलुप्त,
कहो कौन थे मौर्य कि गुप्त?

चढ़कर आया था यूनान,
लौट गया कर कन्या-दान।

किसका था वह पुण्य प्रताप
चौंका जिससे अकबर आप?
(पालीवाल, 2008, पृ. 170-172)

उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि के मानस को समझने में सहायक हैं कि वे इतिहास बोध से कैसे युगांतर में चेतना जाग्रत करना चाहते थे। उन्होंने प्राचीन इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत की ओर हमारी दृष्टि बहुत ही सहजता से खींची है और वर्तमान के साथ युगानुकूल और पाथेय प्रदान करने का कार्य किया है। गुप्त जी को राजनीतिक पराधीनता का बोध है, साथ ही उसका दर्द, पीड़ा भी उनके मन को उद्वेलित करती है। वे इस बात से परिचित हैं कि परतंत्रता के कारण देश और समाज की उन्नति और विकास संभव नहीं है और इससे सामाजिक जीवन संगठित होकर विकास नहीं कर पाएगा। समाज के अंदर व्याप्त दोष, अंधविश्वास, कुरीतियाँ समाज को पतन की ओर ले जा रही हैं। अँग्रेजी शासन इस स्थिति का उत्तरदायी है। इस संदर्भ में रघुवंश जी लिखते हैं—''हम यह समझकर चले कि युग-विशेष के व्यापक मूल्य-संदर्भ से जुड़कर रचना-कर्म में प्रवृत्त होना महत्त्वपूर्ण होता

है। विशेषकर संक्रांति के युग में मूल्यों के संक्रमण की प्रक्रिया से जुड़कर रचना-कर्म में संलग्न व्यक्तित्व का महत्त्व इस दायित्वबोध के साथ पाया जाता है'' (रघुवंश, 1986, पृ. 80)। वे इस दायित्वबोध से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने 'हिंदू' काव्य-संग्रह की कविता 'आशा' में देशवासियों का आवाहन किया है। उन्हें करो या मरो की प्रेरणा देते हुए दायित्व बोध कराया है—

न हों बंधुगण, न हों निराश/शून्य नहीं निज भाग्याकाश।
अब भी शीतल नहीं कृशानु/उदित पूर्व ही में है भानु।
(पालीवाल, 2008)

गुप्त जी का मानना है कि युगीन परिस्थितियों के अनुरूप अपने विचारों को बदलने से बहुत सी समस्याएँ दूर हो सकती हैं। इसलिए युगीन मूल्यों के साथ उन्होंने प्राचीन गौरवपूर्ण तत्त्वों का संतुलन किया है।

'हिंदू': नवजागरण से स्वतंत्रता की प्रेरणा

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचना राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के निर्माण से ओतप्रोत है। उन्होंने काव्य में राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने हेतु पुनर्जागरण और नवीन चेतना या नवजागरण के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। उनके काव्य में नवजागरण को समझने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भारत में राष्ट्रीयता कैसे विकसित हुई? यदि राष्ट्रीयता के इस इतिहाससम्मत पहलू की समझ विकसित हो तो किसी भी साहित्य को इस आलोक में समझा जा सकता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक मूल्यों का सही मूल्यांकन इसी परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है। रघुवंश जी लिखते हैं— ''उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य में नवजागरण की चेतना व्याप्त देखी जा सकती है और इस चेतना के केंद्र में भारतेंदु का व्यक्तित्व है। एक ओर अपने प्राचीन इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत की ओर हमारी दृष्टि रही है और दूसरी ओर पश्चिमी प्रभाव तथा संघात से हमारे मानस में नए युग में प्रवेश करने की आकुलता थी। गुप्त जी इस सांस्कृतिक उद्बोधन और नए युग की आकांक्षा से प्रेरित दिखाई देते हैं'' (रघुवंश, 1986, पृष्ठ-80)। रघुवंश जी के उपर्युक्त कथन से नवजागरण के विभिन्न तत्त्वों को समझना आसान हो जाता है।

भारत में नवजागरण का आरंभ बंगाल से हुआ। जहाँ रवींद्रनाथ ठाकुर, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जैसे साहित्यकारों ने बांग्ला साहित्य की रचना कर सामाजिक चेतना फैलाने का कार्य किया, किंतु बांग्ला नवजागरण बंगाल के बाहर पैर नहीं पसार सका और 'सोनार बांग्ला' तक सीमित रह गया। हिंदी नवजागरण का आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र युग से माना जाता है। हिंदी में नवजागरण की संकल्पना सबसे पहले डॉ. रामविलास शर्मा ने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (1977)' पुस्तक में प्रस्तुत की। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय साहित्यकार एवं समाज सुधारक अतीत के गौरव (रिनेसां) के साथ पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को साहित्य और समाज में प्रसारित कर रहे थे और इस बदलाव को महसूस कर रहे थे। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं—"उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय स्वयं भी उस समय की नई सांस्कृतिक चेतना को एक 'रिनेसां' समझते थे। पादरी अलेक्जेंडर डफ से एक बार उन्होंने कहा था—''मुझे ऐसा लगने लगा है कि यहाँ भारत में यूरोपीय रिनेसां से मिलता-जुलता कुछ घटित हो रहा है'' (सिंह, 1986, पृ. 1)।

भारतेंदु युग में सांस्कृतिक चेतना के संचार से हिंदी साहित्य रीतिकालीन शृंगारिकता से अपने को मुक्त कर देशभक्ति का स्वर देने में सफल रहा। साहित्य में नए-नए विषयों का विस्तार प्रारंभ हुआ, जिसमें देशभक्ति, स्वदेश-प्रेम, शिक्षा, नारी-सम्मान, हरिजन उद्धार, किसान, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि। साहित्यकारों की लेखनी में देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दुर्दशा के प्रति विरोध के स्वर फूटने लगे। अँग्रेजी राज की फूट डालो शासन करो की नीति पर साहित्य और काव्य में खुलकर लिखा जाने लगा। अंबादत्त पांडे लिखते हैं—"अँग्रेजों की फूटनीति, अलगाव नीति और शोषण की नीति से भारतवासियों की राष्ट्रीयता और भी प्रखर रूप से निखरने लगी'' (पांडे, 1986, पृ. 100)। गुप्त जी बीसवीं शताब्दी के आरंभ में नवजागरण के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्थापित हुए। उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में सांस्कृतिक, सामाजिक नवजागरण के विषय को समाहित करते हुए नवीन चेतना का संचार किया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में पुनरुत्थान और नवजागरण की कड़ी को जोड़ने का कार्य किया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वे पुनर्जागरण एवं नवजागरण को जोड़ने वाली कड़ी के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने लिखा—

सबके ऊपर चारु चरित्र/पवित्रता का जीवित चित्र।
वह साधन, वह अध्यवसाय/नहीं रहा हममें अब हाय।
(पालीवाल, 2008, पृ. 168)

हिंदुओं अर्थात् देशवासियों को अपनी गौरवशाली प्राचीन सभ्यता की याद दिलाते हुए गुप्त जी संबोधित करते हैं—

तुम हो सबसे पहले सभ्य,
जिन्हें न कुछ भी रहा 'अलभ्य'।
(पालीवाल, 2008, पृ. 169)

'हिंदू' काव्य संग्रह की कविता 'संदेश' में गुप्त जी ने प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा एवं धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार-प्रसार करने में भारत की अग्रणी भूमिका पर लिखा है—

देकर सबको प्रथम प्रकाश
किया सभ्यता का सुविकाश।
(पालीवाल, 2008, पृ. 123)

भारत सदैव शांति और अहिंसा का पुजारी रहा है, जिसको गुप्त जी ने 'धर्म-प्रचार' कविता में उल्लेखित किया है—

प्रिय था तुमको धर्म-प्रचार/किंतु नहीं लेकर हथियार।
उठते थे जब अपने हाथ/अभ्याश्वासन के ही साथ।
(पालीवाल, 2008, पृ. 175-176)

गुप्त जी के 'हिंदू' काव्य संग्रह से उनके स्वतंत्रता संग्राम और देश के सामाजिक, राजनीतिक दृष्टिकोण के अंतर्द्वंद को समझा जा सकता है। 'भारत-भारती' से प्रारंभ हुई राष्ट्रीय चेतना के विकास को 'हिंदू' काव्य संग्रह में पूर्ण विकसित हुआ देख सकते हैं। अपनी कविता 'अवनति के कारण', जो 'हिंदू' में संकलित है, में वे सामाजिक अवनति के कारण बता रहे हैं या अपना क्षोभ प्रकट कर रहे हैं—

क्या है इस अवनति का मूल?/अपने कर्म गए हम भूल।
खो बैठे अपना कुल-शील/पाई चंचल मन ने ढील।

व्यक्तिगत सामाजिक बुराइयों के कारण राष्ट्र का क्या नुकसान हुआ या परतंत्रता के क्या कारण थे, इन सबका गुप्त जी ने वर्णन अगली पंक्तियों में किया है—

औरों से मिल-मिलकर मंद,
बनकर अमीचंद, जयचंद....

आज हमारा है यह हाल
हम हैं दीन, दास, कंगाल..!
(पालीवाल, 2008, पृ. 183-184)

सामाजिक, राजनीतिक अवनति के कारणों में गुप्त जी जातिवाद, आपसी फूट और तन-मन की दुर्बलता को भी प्रमुख कारण मानते थे। वे जातिवाद के घोर विरोधी थे। उन्होंने समूचे देशवासियों को 'हिंदू' या 'आर्य' कहकर संबोधित किया है, जिसका तात्पर्य 'भारतीय' से है, अर्थात् वे सभी, जो भारतभूमि के निवासी हैं और इस धरती की संतान हैं। अँग्रेजों की फूटनीति की सफलता और देश की सामाजिक अवनति का कारण ही जातीय और धार्मिक उन्माद था। उन्होंने लिखा है—

ऐसा है वह कौन विवेक
करता हो जो हमको एक?
(पालीवाल, 2008, पृ. 184)

उन्होंने देश के विकास और मातृभूमि की रक्षा के लिए सभी को एकजुट रहने का आह्वान किया। उन्होंने अनुभव किया कि बिना सामाजिक एकता के देश को एकजुट नहीं रखा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्त करना भी दुष्कर है। उन्होंने 'स्वाभिमान' कविता के माध्यम से लिखा—

जैन, बौद्ध, सिख, वैष्णव, शैव,
हिंदू कौन रहा फिर दैव?
(पालीवाल, 2008, पृ. 186-189)

गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना जैसे-जैसे विकसित होती गई, उन्होंने महसूस किया कि हमारा करुणा-भाव या अतिरिक्त करुणा ने हमें सबके समक्ष दुर्बल बना दिया है। इस करुणा-भाव ने हमारी प्रतिरोध क्षमता को नष्ट कर दिया है। यह वही 'भाव' है जो 'भारत-भारती' की अपेक्षा 'हिंदू' में अधिक परिपक्व रूप में निखरा है। गुप्त जी ने करुणा-भाव से उपजे दौर्बल्य के संबंध में जो चिंता व्यक्त की है, उस विषय पर रमेशचंद्र शाह लिखते हैं—''गुप्त जी के मन में जो क्षोभ है वह यह है कि हमारी अतिरिक्त करुणा ने हमें दूसरों के समक्ष दुर्बल बना दिया। यह क्षोभ कवि का स्थायी-भाव जैसा है'' (शाह, 1986, पृ. 124)। गुप्त जी ने 'दौर्बल्य' कविता, जो 'हिंदू' में संकलित है, में लिखा है—

तन-मन से तुम निर्बल आज,
रख सकते हो कैसे लाज?...
xxxxx
... मरो न यदि तो डरो अवश्य,
डरो न तुम यदि मरो अवश्य।
(पालीवाल, 2008, पृ. 189-190)

नारी सम्मान - नव चेतना

भारतीय नवजागरण और समाज-सुधारवादी आंदोलनों के कारण समाज में नारी को सम्मान की नजर से देखा जाने लगा। समाज के प्रबुद्ध वर्ग में नारी की अपमानजनक और उपेक्षित स्थिति के बारे में चर्चा होने लगी। ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने विधवा विवाह, बाल विवाह को लेकर आंदोलन चलाए। नए ज्ञान-विज्ञान के आलोक में यह उस मध्यकालीन मानसिकता का नकार था, जो नारी को केवल भोग की वस्तु मानता था। नारी अधिकारहीन थी और घर की चारदीवारी ही उसका कार्यक्षेत्र था। आधुनिक युग में इस विचार-दृष्टि को अस्वीकार किया गया एवं सामाजिक चेतना के विपरीत माना गया। समाज सुधारकों ने नारी की स्वतंत्र पहचान एवं उसकी अस्मिता को नया स्वर दिया। गुप्त जी की सामाजिक-सांस्कृतिक काव्य चेतना पर नारी संबंधित नवजागरण का गंभीर प्रभाव पड़ा। डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं—"गुप्त जी की नारी भारतेंदुयुगीन नारी विषयक चेतना का संस्कार है'' (सिंह, 1999, पृ. 112)।

उन्होंने 'हिंदू' काव्य संग्रह में 'विधवा' व 'स्त्रियों के प्रति कर्तव्य' में नारी चेतना का उल्लेख किया है। 'विधवा' कविता में वे पुरुषवादी समाज को झकझोर रहे हैं। समाज की मध्यकालीन सोच एवं शोषण नीति पर कुठाराघात करते हुए उन्होंने लिखा—

किस पर है इसका दायित्व/यही तुम्हारा है न्यायित्व?
कि तुम करो ब्याहों पर ब्याह/पर विधवाएँ भी भरें न आह!
(पालीवाल, 2008, पृ. 190-191)

उन्होंने नारी को पूज्य दर्जा दिया है। विधवाओं के खिलाफ सामाजिक शोषण एवं अत्याचार को गुप्त जी धार्मिक अपराध मानते हैं। वे लिखते हैं—

सोचो तुम हो कितने क्रूर/दया और ममता तो दूर!
करते हो उनका अपमान/धर्म का कहाँ है हे भगवान!
(पालीवाल, 2008, पृ. 190-191)

उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में नारी की बदहाल सामाजिक स्थिति का चित्रण तो किया है, किंतु समाज में स्थापित नारी शक्ति, जो प्रेरणा का स्रोत है, उसे भी भरपूर स्थान दिया है। राजपूत वीरांगनाओं, जैसे रानी पद्मिनी के साहस-शौर्य एवं जौहर का वर्णन गुप्त जी ने 'स्वाभिमान' कविता में किया है—

रही पद्मिनी रूपी साख/पाई बस रिपुओं ने राख।
हिंदूसत्-सुवर्ण की जाँच/कि थी जौहरों की वह आँच?
(पालीवाल, 2008, पृ. 186-189)

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य संग्रह नारी के त्याग तपश्चर्या, साधना, तप, साहस-शौर्य के प्रेरणास्पद चरित्रों से भरपूर हैं, जिनका वर्तमान नारी को प्रेरित करने के उद्देश्य से चित्रण किया गया है।

युवा प्रबोधन एवं 'हिंदू' काव्य संग्रह

युवा शक्ति किसी भी राष्ट्र और समाज की धुरी होती है। युवा ही राष्ट्र निर्माता होते हैं। इसी भावना को मैथिलीशरण गुप्त भलीभाँति

महसूस करते थे। उनकी सोच सर्वथा सही थी। गुप्त जी के संपूर्ण काव्य की आत्मा राष्ट्रीय चेतना के प्रवाह को युवा शक्ति में संचारित करने की थी। उनकी काव्य रचना उद्बोधनात्मक है। वे युवाओं का आह्वान करते हैं कि चरित्र निर्माण, राष्ट्र-समाज का निर्माण एवं स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित करने हेतु न्यायोचित उद्योग करें। वे युवाओं को शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत गाँवों के विकास के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे कृषि सुधार, मादकता, मायावाद और धार्मिक कट्टरता से सावधान करते हैं। रमेशचंद्र शाह लिखते हैं—''राय कृष्णदास ने एक बड़े पते की बात कही है कि मैथिलीशरण 'कर्तव्य' के कवि हैं'' (शाह, 1986, पृ. 120)। उन्होंने 'हिंदू' काव्य संग्रह में अपनी राष्ट्रीय चेतना और समाजोन्मुखी दृष्टि को खुलकर व्यक्त किया है, जो पूर्ण विकसित और स्पष्ट है। उन्होंने इस काव्य संग्रह में 'युवकों के प्रति', 'गाँवों का सुधार', 'पराया मोह', 'मादकता,' 'संतान वृद्धि', 'निस्संतान', 'बाहर' जैसी कई कविताओं को शामिल किया, जो उस दौर में सिर्फ युवा शक्ति का प्रबोधन कर रही थीं—

हिंदू-युवक, उठो तुम आज-
रक्खो निज समाज की लाज।.....
शाला और सभाएँ खोल/तथा कथा-कीर्तन अनमोल।
कर करके तुम बारंबार/हिंदूपन का करो प्रचार।
(पालीवाल, 2008, पृ. 201-202)

गुप्त जी ने 'गाँवों का सुधार' कविता के माध्यम से ग्रामीण भारत की समृद्धि का अपना सूत्र या सपना साकार किया है और इसे पूरा करने हेतु युवा पीढ़ी का आवाहन किया है—

करके शिक्षा-कार्य समाप्त/विद्यालय की पदवी प्राप्त।
फिर तुम ग्रामों में कर वास/ग्रामीणों का करो विकास।
(पालीवाल, 2008, पृ. 202)

किसान धरतीपुत्र हैं, जो कड़ी मेहनत करके देशवासियों के लिए अन्न उपजाते हैं, किंतु किसान खुशहाल नहीं हैं। किसानों की दुर्दशा और साहूकारों के ऋण से किसानों की मुक्ति के उपाय करने के लिए गुप्त जी युवाओं का आह्वान कर रहे हैं—

उन पर-उपजा कर भी अन्न।
रहते हैं जो स्वयं विपन्न!....
मरते हैं फिर भी ऋण छोड़!
बतलाओ कुछ उन्हें उपाय।
बढ़ा सकें वे अपनी आय।
(पालीवाल, 2008, पृ. 202)

गुप्त जी युवाओं का आह्वान कर रहे हैं कि गाँवों में व्याप्त अंधविश्वास से ग्रामीण बच्चों की बढ़ती मृत्युदर व उनकी पीड़ा को कैसे दूर करें? इसका उपाय युवाओं को करना है—

मिथ्या विश्वासों के ग्रास/बनें भोगते हैं बहु त्रास।....
हाय! हमारे कितने लाल/लूट रहा है काल-अकाल!
दो जाकर तुम उन्हें प्रबोध/करो न उन पर घृणा न क्रोध।
(पालीवाल, 2008, पृ. 203-204)

दो कविताएँ, जो 'हिंदू' काव्य संग्रह में सम्मिलित है, युवा शक्ति में नवजागरण, नई चेतना को जगाने हेतु मार्ग प्रशस्त करती हैं और गुप्त जी की उदार मानवतावादी सोच को समाज में प्रवाहित करती हैं। इन कविताओं के संदेश आज भी प्रासंगिक हैं—

शिक्षा, दीक्षा, रक्षा-योग/प्राप्त करो धन, बल, आरोग्य।
तब उत्पन्न करो संतान/तभी सुगति होगी मतिमान।
(पालीवाल, 2008, पृ. 240)

गुप्त जी ने अपनी 'निस्संतान' कविता में नवजागरण, समाज-सुधार एवं विकसित समाज की अवधारणा को प्रदर्शित किया है। चार पंक्तियों की यह कविता कितनी खूबसूरती से सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ समाज की खुशहाली की बात करती है। निसंतान युवाओं का आह्वान करते हुए गुप्त जी पूरे समाज का प्रबोधन कर रहे हैं—

यदि अपुत्र हो, ले लो गोद/कोई संस्था, संघ समोद।
जहाँ राष्ट्र-सुत सौ सौ छात्र/श्रद्धांजलि दें, बने सुपात्र।
(पालीवाल, 2008, पृ. 241)

'निस्संतान' कविता द्वारा गुप्त जी की काव्य रचना की दृष्टि और विचार को समझा जा सकता है। यह कविता नवजागरण, लोकजागरण, समाज-सुधार और देश के विकास के प्रति गुप्त जी के मन, कर्म और विचार की भावना को सुस्पष्ट करती है।

स्वाधीनता संग्राम एवं सांप्रदायिकता के स्वर

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचना 1905 से प्रारंभ हुई। इसी वर्ष बंगाल का विभाजन हुआ, जिसने स्वाधीनता आंदोलन की दिशा ही बदल दी। अँग्रेजों की फूटनीति के परिणामस्वरूप भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्वकर्ता दो धाराओं में विभक्त होने लगे। इस शोध पत्र में पूर्व में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों ने कवि के मन को प्रभावित किया। बंगाल विभाजन के बाद 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना, 1907 में काँग्रेस का नरम व गरम दल में विभाजन तथा अन्य राजनीतिक गतिविधियों का गुप्त जी के मानस पर जो प्रभाव पड़ा, वह 'भारत-भारती' के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ। किंतु विद्वानों का मत है कि गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना उस दौर में कम विकसित थी तथा मानवता व करुणा का भाव ज्यादा प्रबल था। 'हिंदू' का प्रकाशन 1927 में हुआ, तब तक गुप्त जी की राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-दृष्टि पूर्ण विकसित हो चुकी थी। अँग्रेजों की क्रूर आक्रामक नीति के तहत मुस्लिम नेतृत्व स्वाधीनता आंदोलन में अलग धारा के रूप में चल पड़ा था। अँग्रेजों ने स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने हेतु अपनी फूटनीति का सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में उपयोग किया। एक ओर स्वतंत्रता आंदोलन से मुस्लिम समाज को अलग कर दिया, दूसरी ओर ईसाई मिशनरी के माध्यम से हिंदू समाज में 'धर्म परिवर्तन' जैसे नीच कर्म प्रारंभ किए। इस संबंध में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं—''हिंदी प्रदेश के नवजागरण के सम्मुख यह गंभीर प्रश्न है कि यहाँ का नवजागरण हिंदू और मुस्लिम दो धाराओं में क्यों विभक्त हो गया? ...हैरानी की बात यह है कि हिंदी प्रदेश का नवजागरण धर्म, इतिहास, भाषा सभी स्तरों पर दो टुकड़े हो गया। स्वत्व रक्षा के प्रयास धर्म तथा संप्रदाय की जमीन से किए गए'' (सिंह, 1986, पृ. 6)। उपनिवेशवाद की छाया में अँग्रेजों द्वारा किए जा रहे

कुत्सित प्रयासों से भारतीय संस्कृति के लोप होने का खतरा बढ़ रहा था। साथ ही ईसाई मिशनरियों द्वारा राजसत्ता के प्रभाव में धर्म परिवर्तन किया जा रहा था। इस आलोक में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं—''...मैक्समूलर ने इस धार्मिक दमन के आँकड़े देकर बताया था कि 1885 तक भारत में 38 ईसाई मिशन-समाज काम कर रहे थे, जिनके विदेशी सदस्यों की संख्या 887 थी और देशी-प्रचारक 751 तथा गैर-ईसाई सहायक 2856 थे। ये ईसाई मिशन अन्य साधनों के अतिरिक्त स्कूलों और अस्पतालों के जरिये भी धर्म-परिवर्तन करवा रहे थे'' (सिंह, 1986, पृ. 4)।

राष्ट्रीयता तभी सुरक्षित रह सकती है जब सभी धर्मावलंबी पारस्परिक एकता और सौहार्द के साथ रहें। 'हिंदू' में गुप्त जी ने सांप्रदायिक एकता का मंत्र दिया है। उन्होंने सांप्रदायिक एकता को समाज के आवश्यक अंग के रूप में माना है। 'भारत-भारती' और हिंदू' के रचना काल में लगभग 15 वर्षों का अंतराल था। इस दौरान गुप्त जी की रचना दृष्टि एवं राष्ट्रीय दृष्टि दोनों ही परिपक्व हुईं। 1920 के खिलाफत आंदोलन, 1921-22 में केरल के मालाबार में हुई सांप्रदायिक हिंसा (मोपला विद्रोह) तथा 1924 में कोहाट दंगे और अन्य घटनाओं ने कवि के मानस को झकझोर दिया। 'हिंदू' में सम्मिलित कई कविताओं में मुस्लिम बर्बरता, मध्यकालीन अवधारणाओं, धर्म-परिवर्तन का उल्लेख गुप्त जी ने किया है। विशेषकर उन्होंने 'मुसलमानों के प्रति' कविता में उपर्युक्त विषयों पर विस्तार से लिखा है।

धर्म परिवर्तन के लिए अपनाए जाने वाले अनैतिक साधनों के प्रति कवि आगाह कर रहे हैं—

हमें बनाने को बेधर्म।
होते हैं कैसे क्या कर्म?...
हिंदू, सजग रहो सब ओर।
लगे धर्म-धन के हैं चोर।
(पालीवाल, 2008, पृ. 210-211)

ईसाइयों और मुसलमानों द्वारा हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करने को लेकर गुप्त जी क्षोभ प्रकट कर रहे हैं—

फिर भी हा! यह कैसी लाज
हिंदू ईसाई हो आज!....
हिंदू मुसलमान हैं हाय!
(पालीवाल, 2008, पृ. 211-212)

'हिंदू' काव्य संग्रह की कविता 'मुसलमानों के प्रति' में गुप्त जी ने हिंदू-मुस्लिम मतभेद, सांप्रदायिक हिंसा, मालाबार एवं कोहाट में हिंदुओं पर की गई बर्बरता, स्वामी श्रद्धानंद पर आघात, अँग्रेजों की फूटनीति, मुसलमानों द्वारा मंदिर तोड़ना, गौवध आदि तत्कालीन विषयों पर सीधे-सीधे संवाद किया है।

हिंदू-मुस्लिम एकता पर गुप्त जी लिखते हैं—

मुसलमान भाई हो शांत/सोचो तुम्ही तनिक एकांत।
तुम निज हेतु करो सब कर्म/और छोड़ दे हम निज धर्म?

वे मुसलमानों को याद कराना चाहते हैं कि उनके पूर्वज हिंदू थे और वे भी भारतीय हैं—

तुम अधिकांश यहीं की सृष्टि।
तुम हिंदू हो, धार विधर्म,
भूल गए हो निज कुल कर्म।

1920-21 में खिलाफत आंदोलन के दौरान केरल के मालाबार में सांप्रदायिक हिंसा हुई, जिसमें सैकड़ों निर्दोष हिंदुओं की बर्बरतापूर्ण हत्या की गई। इस पर चेतावनी देते हुए वे लिखते हैं—

उचित न होंगे वे विभ्राट,
जैसे मलाबार-कोहाट।

मुस्लिमों द्वारा हिंदुओं के मंदिर तोड़ने पर—

हुए हमारे मंदिर नष्ट,
करते गए उन्हें 'तुम भ्रष्ट'!

स्वतंत्रता संग्राम के दौर में स्वामी श्रद्धानंद जैसे समाज सुधारक, मुस्लिमों द्वारा हिंदुओं के जबरन व अनीतिपूर्ण धर्म परिवर्तन के खिलाफ आंदोलन छेड़े हुए थे, जिनसे उन पर मुसलमानों द्वारा प्राणघातक आक्रमण हो रहे थे। इस पर गुप्त जी लिखते हैं—

श्रद्धानंद-सदृश अपघात,
सिद्ध कर रहे हैं क्या बात?

गोवंश की हत्या किए जाने पर—

गावकुशी? मरजी की बात/सोचो किंतु तनिक हे तात!
अर्थ-धर्म का है यदि कार्य/तो गोकुशी नहीं अनिवार्य।

मुसलमानों द्वारा हिंदू मंदिरों, तीर्थों पर पूजा, कीर्तन आदि करने के विरोध को लेकर गुप्त जी ने लिखा है—

नए मुसलमाँ हो तुम यार!
कर दें हम निज कीर्तन बंद,
तुम्हीं अजानें दो स्वच्छंद।
(पालीवाल, 2008, पृ. 264-271)

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन में साहित्य की भूमिका का विश्लेषण सदैव राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति, संप्रेषण और जनमानस पर प्रभाव की पड़ताल से किया जाता है। किसी भी साहित्य में राष्ट्रीय भावना की खोज से पूर्व राष्ट्रीयता की अवधारणा को समझना आवश्यक है। इस अवधारणा के मूलभूत परिप्रेक्ष्य को समझने के बाद किसी भी रचनाकार के कथ्य का राष्ट्रीयता की कसौटी पर मूल्यांकन किया जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चेतना की नींव पर निर्मित हुए हैं। गुप्त जी के साहित्य का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान अतुलनीय है, क्योंकि वे जनसरोकारों के साथ-साथ अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। अपने युग के सरोकारों के प्रति इतने जागरूक हैं कि वे उस युग के सभी रचनाकारों को प्रेरित करते हैं। उन्होंने समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों, पराधीनता का बोध एवं शोषण की नीति को न सिर्फ अनुभव किया, अपितु खड़ी बोली के माध्यम से जनमानस के कंठ में उतारा। उनके

साहित्य की विषयवस्तु बहुत व्यापक है। उन्होंने अतीत के गौरव को वर्तमान मूल्यों से परिभाषित किया है। आधुनिक भारतीय साहित्य के दो महत्त्वपूर्ण रचनाकार भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त हैं। जिस प्रकार भारतेंदु ने लोकजागरण काल में अपने रचना-कर्म से जनजागरण का दीपक जलाया, उसी प्रकार गुप्त जी ने भी अपने युग में कवि-कर्म के महत्त्व को समझते हुए इतिहास बोध एवं नई चेतना के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम में कलम की भूमिका निभाई। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' तथा 'हिंदू' काव्य संग्रह के माध्यम से सामाजिक जीवन की प्रगति को सुनिश्चित करने हेतु स्वतंत्र राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की प्रेरणा दी। इस दृष्टि से उनके रचना-कर्म पुनरुत्थान, नवजागरण, सांस्कृतिक, भाषाई अस्मिता के अद्भुत उदाहरण हैं। उनके साहित्य का केंद्रीय भाव देश और समाज के आपसी संबंध से निर्मित होता है। 'हिंदू' काव्य संग्रह में भी देश और समाज के गहरे संबंध की अपनी अनुभूति को उन्होंने काव्य के रूप में व्यक्त किया। 'हिंदू' काव्य संग्रह गुप्त जी के रचना-कर्म, शिल्प, इतिहास-बोध, सांस्कृतिक अस्मिता और उनके मानस को समझने में एकमात्र रूप से परिपूर्ण है। इसका रचनाकाल स्वतंत्रता संग्राम के उस दौर में हुआ जब राजनीतिक, सामाजिक, समाज-सुधार आंदोलनों का स्वरूप पूर्ण रूप से निखर चुका था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की 'हिंदू' काव्य संग्रह विविध-विषयों पर गुप्त जी की तत्कालीन राष्ट्रीय-दृष्टि का उदगार है, जिसमें अतीत का गुणगान है तो सामाजिक सांस्कृतिक विकास की चिंता एवं रूपरेखा है। 'हिंदू' में भारतीयता का बोध जाग्रत करने की अद्भुत क्षमता है और इन्ही अर्थों में गुप्त जी 'भारतीयता' के प्रतिनिधि कवि हैं।

संदर्भ

चतुर्वेदी, आर. (2002). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ-97-98*, (तेरहवाँ संस्करण). इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

पालीवाल, डी.के. (2008). *मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली. (खंड-1, एड.)*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

पालीवाल, डी.के. (2008). *मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली. (खंड-2 ,एड.)*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

पाण्डे, ए. (1986, अक्टूबर-दिसंबर). राष्ट्रीय भावना और गुप्त काव्य. *आलोचना*, 79, 100-105.

रघुवंश. (1986, अक्टूबर-दिसंबर). भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त: मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य. *आलोचना*, 79, 80.

शाह, आर. (1986, अक्टूबर-दिसंबर). भारत-भारती के बहाने. *आलोचना*, 79, 120-126.

शुक्ल, ए.आर. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ- 406* (नवीन संस्करण). नयी दिल्ली : कमल प्रकाशन.

सिंह, एन. (1986, अक्टूबर-दिसंबर). संपादकीय : हिंदी नवजागरण की समस्याएँ. *आलोचना*, 79, 1-6.

सिंह, बी. (1999). *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-109-112*, (नवीन संशोधित संस्करण). इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 52-57, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में शहीदों के पत्रों का विश्लेषण

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

विदेशी आक्रांताओं और पश्चिमी औपनिवेशिक शक्तियों ने अलग-अलग अन्तराल में भारत के कुछ हिस्सों पर करीब 800 साल तक शासन किया। अँग्रेजों का शासन करीब 200 साल रहा, परंतु इतिहास साक्षी है कि भारतीय जनमानस ने विदेशी शासन को कभी स्वीकार नहीं किया। हर आक्रांता के हमले और हर औपनिवेशिक ताकत की साजिशों का कड़ा प्रतिकार हर काल में और हर हाल में हुआ। स्वाभाविक है उन सशस्त्र संघर्षों में अनेक देशभक्तों का बलिदान भी हुआ। अँग्रेज शासन की बात करें तो उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही पूरा देश अँग्रेजी शासन के विरुद्ध खड़ा हो गया था। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम इसकी मिसाल है। अँग्रेजों ने उसे 'गदर' कहा, पर वह अँग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों का प्रथम संगठित सशस्त्र संघर्ष था। उस संघर्ष में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, ताँत्या टोपे, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि की अहम् भूमिका थी। बाद के काल में लाला लाजपत राय, चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त आदि असंख्य वीरों ने देश की आजादी हेतु अपना बलिदान दिया। शहीदों की उन कुर्बानियों से सभी परिचित हैं, परंतु उन शहीदों के कुछ सपने थे, जिनका जिक्र उन्होंने समय-समय पर अपने परिवारजनों अथवा मित्रों को लिखे गए पत्रों में किया है। इसके अलावा उन्होंने कुछ पत्र अँग्रेज सरकार के अधिकारियों और इंग्लैंड की महारानी को भी लिखे। कुछ पत्र ऐसे भी हैं जो उन्होंने क्रांति का संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए लिखे। कुछ पत्र संकेत भाषा में हैं यानी खत का जो मजमून है वह असली संदेश नहीं था। उसका असली मतलब पत्र प्राप्त करने वाला समझ जाता था। कुछ पत्रों में शहीदों ने स्पष्ट किया है कि उनके सशस्त्र संघर्ष का उद्देश्य नरसंहार अथवा अँग्रेज अधिकारियों की हत्या नहीं था, बल्कि अँग्रेज सरकार को डराना और उन्हें देश छोड़ने के लिए बाध्य करना था। जिस दौर में स्वतंत्रता हेतु सशस्त्र संघर्ष हुआ उस दौर में न टेलीविजन था, न रेडियो और न ही मोबाइल फोन अथवा इंटरनेट। उस समय संचार के प्रमुख साधन थे पत्र और अखबार। स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ पर शहीदों के पत्रों में मौजूद संदेशों को समझना और नई पीढ़ी को उनसे अवगत कराना प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध पत्र में शहीदों के कुछ पत्रों के माध्यम से उनमें मौजूद शहीदों के मनोभाव को समझने का प्रयास किया गया है। ऐसे कुछ पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार और राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कुछ पत्रों का संकलन और प्रकाशन भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के संस्थान प्रकाशन विभाग ने भी किया है।

संकेत शब्द : शहीदों के खत, स्वतंत्रता संग्राम, आजादी का अमृत महोत्सव, स्वतंत्रता-75

प्रस्तावना

अँग्रेजी दासता से भारत को मुक्त कराने के लिए स्वतंत्रता संग्राम में दो धाराएँ साथ-साथ चलीं। एक धारा बातचीत और अहिंसा के मार्ग से स्वतंत्रता चाहती थी, जबकि दूसरी धारा सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से अँग्रेज सरकार को देश छोड़ने के लिए मजबूर कर देना चाहती थी। वैसे तो भारत में अँग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष उसी दिन से प्रारंभ हो गया था जिस दिन उन्होंने व्यापार की दृष्टि से देश में पहला कदम रखा था, परंतु देशव्यापी संगठित संघर्ष की शुरूआत 1857 से मानी जाती है जब पूरा देश एक साथ अँग्रेजों के विरुद्ध खड़ा हो गया था। 1857 से लेकर 1947 तक यानि करीब 90 साल में देशभर में असंख्य स्वतंत्रता सेनानियों ने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों की आहूति दी। खासतौर से इन 90 वर्षों में देश में ऐसा माहौल पैदा कर दिया गया कि अँग्रेजों ने देश छोड़कर भागना ही बेहतर समझा। गांधीजी और उन जैसे अन्य सेनानियों के नेतृत्व में चले अहिंसक आंदोलन के बारे में अक्सर लिखा ही जाता रहता है, परंतु देश की आजादी के लिए अपने प्राणों की कुर्बानी देने वाले शहीदों के बारे में बहुत कम लिखा जाता है। अकादमिक जगत् में जितनी चर्चा गांधीजी और उनके चिंतन पर होती है उतनी किसी क्रांतिकारी पर नहीं होती। जो होती है वह उनकी जयंती अथवा शहीदी दिवस पर ही होती है। सवाल यह है कि आखिर वह क्या जज्बा था, जिसके कारण क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की तनिक भी परवाह नहीं की।

शहीदों के बारे में प्रायः दो प्रकार से जानकारी मिलती है। एक तो अँग्रेज सरकार द्वारा उन पर चले मुकदमों के दौरान तैयार की गई फाइलों से तथा सरकारी खुफिया एजेंसियों की रपटों से और दूसरी उन शहीदों द्वारा स्वयं अपने परिवारजनों, मित्रों अथवा सरकारी अधिकारियों आदि को लिखे गए पत्रों से। खुफिया एजेंसियों की रपटें तथा अँग्रेज सरकार के अधिकारियों द्वारा स्वतंत्रता सेनानियों के संबंध में एकत्र की गई जानकारी में कहीं न कहीं अँग्रेज सरकार का दबाव झलकता है, परंतु जो पत्र शहीदों ने स्वयं लिखे उनसे यह आकलन करना आसान है कि आखिर वे चाहते क्या थे, वह क्या जज्बा था जिसने उन्हें देश के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए प्रेरित किया? उनका मकसद क्या सिर्फ तत्कालीन अँग्रेज सरकार को डराना था अथवा देश में बड़े पैमाने पर नरसंहार करना? स्वतंत्रता के बाद का भारत कैसा होना चाहिए क्या इसका कोई खाका उनके मन में था? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनका उत्तर स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ पर तलाशना प्रासंगिक है। अनेक स्वतंत्रता सेनानी ऐसे हैं, जिन्होंने अँग्रेज सरकार से माफी माँगकर अपनी जान नहीं बचाई, बल्कि अपना बलिदान दिया। इसी प्रकार बहुत से सेनानी ऐसे थे जो चाहते तो अँग्रेजों से समझौता करके अपनी रियासत को भी बचा सकते थे, परंतु उन्होंने मरते दम तक ऐसा नहीं किया। जिन्होंने समझौता नहीं किया वे आज

[1]आचार्य, अँग्रेजी पत्रकारिता विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेलः drpk.iimc@gmail.com

अमर हैं और जो समझौता कर अँग्रेजों के साथ चल दिए, उन्हें आज कोई नहीं जानता। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद और भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने संयुक्त रूप से 'शहीदों का राष्ट्रीय रजिस्टर' तैयार करने की दृष्टि से देशभर के करीब 13,000 शहीदों के बारे में जानकारी पाँच खंडों में संकलित की है (भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, 2021)। इसी प्रकार राष्ट्रीय अभिलेखागार में स्वतंत्रता सेनानियों से जुड़े महत्त्वपूर्ण दस्तावेज संग्रहित किए गए हैं (राष्ट्रीय अभिलेखागार, 2021)। शहीदों के जो पत्र सरकार के पास संरक्षित हैं उनमें अधिकतर ऐसे हैं जो संकट के समय अथवा कारागार से लिखे गए हैं। कारागार से लिखे गए शहीदों के बहुत से पत्रों को तो अँग्रेज सरकार ने अपने गंतव्य तक पहुँचने ही नहीं दिया। फिर भी जो पत्र आज राष्ट्रीय अभिलेखागार अथवा शहीदों के परिवारजनों के पास सुरक्षित हैं, उनसे शहीदों के मंतव्य का स्पष्ट पता चलता है।

शोध प्रविधि

शहीदों ने खासतौर से दो प्रकार के पत्र लिखे हैं। एक, अपने परिवारजों और मित्रों को और दूसरे, अँग्रेज अधिकारियों को। उनमें से कुछ पत्र भारत सरकार के राष्ट्रीय अभिलेखागार और राष्ट्रीय संग्रहालय में आज भी सुरक्षित हैं। जो पत्र परिवारजनों और मित्रों को लिखे गए वे सरकार के पास नहीं हैं। ऐसे पत्रों को खोजना कठिन काम है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में संरक्षित कुछ पत्रों का प्रकाशन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के संस्थान प्रकाशन विभाग द्वारा वर्ष 1997 में किया गया। कुछ पत्र हिंदी में हैं, जबकि कुछ उर्दू, अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में हैं। प्रस्तुत शोधपत्र उन्हीं पत्रों पर आधारित है।

लक्ष्मीबाई की रणनीति

यह सर्वविदित है कि रानी लक्ष्मीबाई और उनके सहयोगी महाराजा मर्दनसिंह मिलकर 1857 की क्रांति का नेतृत्व कर रहे थे। महाराजा मर्दनसिंह को जून 1857 में सागर और ललितपुर की सेनाओं द्वारा सेनानायक बनाया गया था। मर्दनसिंह ने खिमलासा, खुरई, विनेका, बरोदिया के दुर्गों पर अधिकार करके सागर जिले को पूरी तरह घेर लिया था। इसी युद्ध में मर्दनसिंह की गोली से कर्नल डलले मारा गया और मर्दनसिंह ने सागर जिले पर अधिकार कर लिया। उसके बाद ह्यूरोज पीछे भाग रहा था, परंतु उसी समय जबलपुर से अँग्रेज सेना की नई टुकड़ी आ गई, जिसके कारण मर्दनसिंह को मदनपुर घाटी से मोर्चा हटाकर अमझरा घाटी पर लगवाना पड़ा। उसी का फायदा उठाकर ह्यूरोज बानपुर पहुँचा और उसने झाँसी दुर्ग को जीत लिया। झाँसी से निकलकर रानी लक्ष्मीबाई कालपी पहुँचीं। वहाँ से उन्होंने महाराजा मर्दनसिंह को लिखा—''...आप सागर के लिए कूच करें। वहाँ पर साहबों की दो कंपनियाँ बीच में पड़ती हैं। उन्हें रौंदते हुए शाहगढ़ वाले राजा को लेकर कूच करें। हम ताँत्या टोपे और नाना साहब फौज की तैयारी में लगे हुए हैं। आप सीधे नौट घाट पर ह्यूरोज को भगाते हुए और खदेड़ते हुए कालपी कूच करें। वहाँ हम सब लोग मिलकर ग्वालियर में अँग्रेजों पर धावा बोलेंगे। अब इसमें बिल्कुल भी देर नहीं होनी चाहिए'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 1-4)। पत्र पर तिथि और स्थान के रूप में सावन सुदी, 14 सोमवार, सं. 1914, मुकाम कालपी लिखा हुआ है। संवत् 1914 में ही लिखे गए रानी लक्ष्मीबाई के और भी पत्र हैं, जिनसे पता चलता है कि रानी लक्ष्मीबाई और महाराजा मर्दनसिंह ने भरतगढ़ (तालबेहट) दुर्ग में बैठकर 1857 की क्रांति की योजना बनाई थी। एक पत्र से पता चलता है कि रानी लक्ष्मीबाई 'सुराज' और 'स्वशासन' के लिए अँग्रेजों से लड़ीं।

नाना साहब का वृहत्तर भारत का सपना

1857 की क्रांति से अपेक्षित परिणाम नहीं मिला। अनेक सेनानी या तो शहीद हो गए अथवा छुपकर रहने लगे। ऐसे ही सेनानी थे नाना साहब, जो अँग्रेजों के हाथ नहीं आए। कहा गया कि वे नेपाल चले गए, परंतु इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपने साथियों के साथ भारत में वेश बदलकर रहे और सन्न्यासी के वेश में स्वतंत्रता संग्राम का संचालन करते रहे। उनकी ओर से साम्राज्ञी, ब्रिटिश पार्लियामेंट, कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स, गवर्नर-जनरल, लेफ्टिनेंट गर्वनर और असैनिक अधिकारियों के नाम दिनांक 20 अप्रैल, 1859 को एक इश्तहारनामा जारी हुआ, जिसका हिंदी अनुवाद इस प्रकार है : ''...मैं जब तक जीवित रहूँगा, लड़ूँगा। मैं भी एक आदमी हूँ। मैं आपसे दो कोस की दूरी पर रहता हूँ। यह एक आश्चर्य की बात है कि आप जैसा महान और शक्तिशाली राष्ट्र दो वर्ष से मेरे साथ लड़ता रहा है और मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सका है, विशेषतः तब, जबकि मेरे सैन्यदल मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते और मेरे अधिकार में कोई देश नहीं है। आपने सबको अपनी ओर मिला लिया है। मैं ही केवल बचा हूँ, परंतु आप देखेंगे कि जिन सिपाहियों को मैं दो वर्ष से बचाकर रख रहा हूँ, वे क्या-क्या कर सकते हैं? हम मैदान में मिलेंगे और फिर मैं अधिक खून को बहाऊँगा, जो घुटनों तक गहरा होगा। मैं मरने के लिए तैयार हूँ। यदि अँग्रेज जैसे शक्तिशाली राष्ट्र के लिए मैं अकेला ही शत्रु होने के योग्य हूँ तो वह मेरे लिए बड़े सम्मान की बात है। मेरे हृदय की प्रत्येक इच्छा पूरी हो चुकी है। मृत्यु तो एक दिन आनी ही है, फिर मुझे किसका डर है? परंतु आप यह समझ लें कि जिन लोगों को आपने अपनी ओर मिलाया है, वे ही नियत दिन पर आपके विरुद्ध हो जाएँगे और आपको मार देंगे। आप बुद्धिमान हैं, परंतु अपनी बुद्धिमत्ता के कारण ही आप गलती कर गए हैं'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 7-8)।

नाना साहब अपनी पहचान गुप्त रखने के लिए अनेक नामों का प्रयोग करते थे। कभी 'बालूनाना' तो कभी 'बिठूर निवासी' शब्द का प्रयोग करते थे। नाना साहब का स्पष्ट मत था कि अँग्रेजों को देश से निकालने का एक ही मार्ग है सशस्त्र युद्ध, जिसके लिए सभी भारतवासी एकमत होने चाहिए। नाना साहब का संपर्क विदेश में बसे भारतीयों से भी था। इसका प्रमाण भी उनके पत्रों से मिलता है। उनकी विदेश नीति बहुत सरल और स्पष्ट थी—अपने शत्रु का शत्रु अपना मित्र। उनकी दृष्टि केवल भारत तक सीमित नहीं थी। वे वृहत्तर भारत का सपना देख रहे थे। वे लिखते हैं—''अपना प्रभाव क्षेत्र हिराज से सिंगापुर तक तथा हिराज से लंका तक होना चाहिए। जावा, सुमात्रा व बाली हमारे ही बंधु देश हैं। काबुली पठान व मलेक अपने ही भाई-बंद हैं। मुसलमानों के साथ बराबरी का बर्ताव होना चाहिए। जब हम सब एक होंगे, उसी दिन अपना ध्येय पूर्ण होगा (परवीन, 2018, पृष्ठ 11)।

नाना साहब को पूर्ण विश्वास था कि वे अँग्रेजों के खिलाफ छेड़े गए स्वतंत्रता संग्राम को बड़ी आसानी से जीत लेंगे। फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, संवत् 1912 को वे एक पत्र में लिखते हैं—''यहाँ युद्ध की सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं। ताँत्या साहब का मत है कि हमला करने का यह उपयुक्त

अवसर है। मान लो रजवाड़ों ने हमारा साथ नहीं दिया, तो क्या होगा? अपने पास तीन लाख फौज है। फिरंगियों और देशी राजाओं की तीन लाख सेना विद्रोह करके हमसे मिल जाएगी। फिरंगियों के पास केवल एक लाख सेना बचेगी। तीन दिन में दिल्ली पर कब्जा कर लेंगे और एक बार जम गए तो फिर हम इन देशी रजवाड़ों का फैसला कर डालेंगे। सारी सेना 'एक दिल', 'एक पाँव' हो चुकी है। हमला किस दिशा में, कैसे किया जाए, इस संबंध में आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 14)। स्वतंत्रता संग्राम में पराजय के संबंध में नाना साहब को भारत के देशी राजे-रजवाड़ों की दगाबाजी पर सबसे ज्यादा रोष था। वे लिखते हैं—''मैं सारे देश की स्वतंत्रता के लिए जिया और लड़ा। इन दुष्ट रजवाड़ों ने अपने स्वार्थ के लिए देश को अँग्रेजों के हवाले कर दिया, नहीं तो इन फिरंगियों की हमारे सामने क्या बिसात थी'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 15)। हार के बाद नाना साहब छुपकर सौराष्ट्र पहुँच गए थे। वे अपने साथ छत्रपति शिवाजी की खड़ाऊँ, मृगचर्म, भवानी तलवार, शंख आदि ले गए थे। इस संबंध में नाना साहब का अपने स्वयं के हस्ताक्षर से लिखा गया एक पत्र है, जिसमें वे लिखते हैं—''हमारी प्रतिज्ञा दूसरी जगह जन्म लेकर गोरों को लात मारकर भारत को स्वतंत्र कराने की है। हमारी लड़ाई अमर रहे।''

लाला लाजपत का साहित्य प्रेम

नाना साहब ही नहीं और भी अनेक स्वतंत्रता सेनानी विदेशों में बसे भारतीयों से सतत संपर्क रखते थे। लाला लाजपत राय का लंदन में रहने वाले भाई परमानंद से घनिष्ठ संबंध था। लाहौर से 28 फरवरी, 1907 को भाई परमानंद को लिखे एक पत्र में वे क्रांतिकारी और राष्ट्रवादी साहित्य भेजने की बात कहते हैं। वे लिखते हैं—''...मैं कृतज्ञ रहूँगा यदि आप मुझे प्रति मास एक नई पुस्तक भेज सकें। यह क्रांतिकारी या राजनैतिक उपन्यास, किसी राजनैतिक आंदोलन का इतिहास या किसी राष्ट्रवादी का जीवन आदि हो सकता है। श्यामजी (कृष्ण वर्मा) चाहें तो अपना थोड़ा-सा रुपया यहाँ के विद्यार्थियों के लिए ऐसी पुस्तकों पर खर्च कर सकते हैं, जिनमें राजनीति के सत्य विचार हों। मुझे विश्वास है कि यदि लड़कों को अच्छे ढंग का साहित्य दिया जाए तो उससे ठोस परिणाम निकल सकते हैं''(परवीन, 2018, पृष्ठ 24-25)।

राम प्रसाद 'बिस्मिल' की संकेत भाषा

राम प्रसाद 'बिस्मिल' ने अपने नौ साथियों के साथ 9 अगस्त, 1925 को लखनऊ से 16 किमी पहले काकोरी स्टेशन के आउटर सिगनल पर रेलगाड़ी रोककर सरकारी खजाना लूटा था। उसके बाद अपने साथियों को मेरठ के एक अनाथालय में 13 तारीख को एकत्र होने के लिए उन्होंने जो पत्र लिखा वह संकेत भाषा में था। पत्र का मजमून इस प्रकार है—''मेरे प्यारे, हम अच्छी तरह से हैं। संभवतः आपको मालूम ही होगा कि हमारे पितामह का श्राद्ध-संस्कार इस महीने की तेरहवीं तारीख (रविवार) को होगा। उसमें आपकी उपस्थिति अनिवार्य है। अतः आपसे निवेदन है कि नियत समय में पहुँचें और कृतार्थ करें''(परवीन, 2018, पृष्ठ 26)। काकोरी केस में बिस्मिल के सहयोगी राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को भी फाँसी की सजा हुई। 14 दिसंबर, 1928 को अपने एक मित्र को लिखे पत्र में वे लिखते हैं—''...लगता है कि देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के बलिदान की ही जरूरत है। मौत क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के सिवाय कुछ नहीं। जीवन क्या है? मौत की दूसरी दिशा का नाम। फिर डरने की क्या जरूरत है? यह तो प्राकृतिक बात है, उतनी ही प्राकृतिक जितना कि प्रातः सूर्योदय। यदि हमारी यह बात सच है कि इतिहास पलटा खाता है तो मैं समझता हूँ कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा''(परवीन, 2018, पृष्ठ 27)।

क्रांतिकारी महावीर सिंह को लाहौर षड्यंत्र केस में आजीवन कारावास की सजा हुई थी। सजा के बाद उन्हें अंदमान की सेलुलर जेल भेजा गया। महावीर सिंह के पिता कुँअर देवीसिंह उसका विवाह करना चाहते थे, परंतु जब महावीर सिंह ने उन्हें लिखा कि वे देश के लिए अपना जीवन समर्पित करना चाहते हैं तो इस पर उनके पिता कुँअर देवीसिंह ने अपने बेटे को लिखा—''मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि तुमने अपना जीवन देश के काम लगाने का निश्चय किया है। मैं तो समझता था कि हमारे वंश में पूर्वजों का खून अब नहीं रहा और उन्होंने दिल से गुलामी कबूल कर ली है। तुम्हारा पत्र पाकर आज मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझ रहा हूँ। तुम जहाँ भी रहोगे मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ चलेगा'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 39)। महावीर सिंह के साथ जेल में जेल अधिकारीयों द्वारा जो पाश्विक व्यवहार हुआ उसके चलते 17 मई, 1933 को वे जेल में ही शहीद हो गए।

अशफाक उल्ला खाँ की नसीहत

काकोरी केस में अशफाक उल्ला खाँ राम प्रसाद बिस्मिल के सहयोगी थे। 16 दिसंबर, 1927 को फैजाबाद जेल से देशवासियों के नाम जो संदेश अशफाक ने दिया वह इस प्रकार है—''...हिंदुस्तानी भाइयों, आप चाहे किसी भी धर्म या संप्रदाय के मानने वाले हों, देश के काम में साथ दो। व्यर्थ आपस में न लड़ो। रास्ते चाहे अलग हों, लेकिन उद्देश्य तो सबका एक है। सभी कार्य एक ही उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं, फिर यह व्यर्थ लड़ाई-झगड़े क्यों? एक होकर देश की नौकरशाही का मुकाबला करो, अपने देश को आजाद कराओ। देश के सात करोड़ मुसलमानों में मैं पहला मुसलमान हूँ जो देश की आजादी के लिए फाँसी चढ़ रहा हूँ, यह सोचकर मुझे गर्व महसूस हो रहा है। आखिर में सभी को मेरा सलाम। हिंदुस्तान आजाद हो'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 50)।

भगतसिंह का 'गीता' प्रेम

एक खास विचारधारा के लोगों ने स्वतंत्रता सेनानियों को भी अपनी विचारधारा का अनुयायी बताकर उसका नाजायज फायदा उठाने का प्रयास किया। सरदार भगतसिंह को भी कुछ लोगों ने वामपंथी विचार का समर्थक सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। असेंबली हॉल में बम फेंकने के बाद दिल्ली जेल से अपने पिता सरदार किशन सिंह को भगतसिंह ने घर से कुछ सामान मँगाने के लिए जो पत्र लिखा, उसमें वे कहते हैं—''..अगर संभव हो तो 'गीता रहस्य', 'नेपोलियन की जीवन गाथा' जो आपको मेरी किताबों में से मिल जाएगी और अँग्रेजी के कुछ अच्छे उपन्यास लेते आना'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 63)। एक वामपंथी का 'गीता रहस्य' से क्या काम? भगतसिंह के कुछ साथी उन्हें फाँसी के तख्ते से बचाने का प्रयास कर रहे थे। बलिदान से एक दिन पूर्व 22 मार्च, 1931 को इस प्रयास में लगे अपने साथी कैदियों को अपने अंतिम पत्र में भगतसिंह लिखते हैं—''...मेरा नाम हिंदुस्तानी इनकलाब पार्टी का निशान बन चुका है और इनकलाब-पसंद पार्टी के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया है। इतना ऊंचा कि जिंदा रहने की सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता। आज मेरी कमजोरियाँ लोगों के सामने नहीं हैं। अगर, मैं फाँसी से बच गया तो वे जाहिर हो जाएँगी और इनकलाब का

निशान मद्धिम पड़ जाएगा या शायद मिट ही जाए, लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते फाँसी पाने की सूरत में हिंदुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जाएगी कि इनकलाब को रोकना साम्राज्यवाद की संपूर्ण शैतानी शक्तियों के बस की बात न रहेगी।'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 103)।

फाँसी की सजा सुनाए जाने के बाद भगतसिंह ने लाहौर की सेंट्रल जेल से मुलतान जेल में बंद बटुकेश्वर दत्त को अक्तूबर 1930 को एक पत्र लिखा। बटुकेश्वर को आजीवन कारावास का दंड मिला था। एक क्रांतिकारी यदि फाँसी से बच जाए तो उसे जीवन में क्या करना चाहिए, इसका बहुत प्रेरक वर्णन उस पत्र में है। स्वयं को फाँसी की सजा होने के बावजूद उनके मन-मस्तिष्क में भारत को आजाद कराने की योजनाएँ घूम रही थीं और जीवित बच गए क्रांतिकारियों को क्या करना चाहिए, इसका खाका भी स्पष्ट था। भगतसिंह लिखते हैं—''...मुझे फाँसी का दंड मिला है, किंतु तुम्हें आजीवन कारावास का दंड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रहकर यह दिखाना है कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए केवल मर ही नहीं सकते, बल्कि जीवित रहकर मुसीबतों का मुकाबला भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रांतिकारी संयोगवश फाँसी के फंदे से बच गए हैं, उन्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फाँसी पर चढ़ सकते हैं, वरन् जेल की अंधकारपूर्ण छोटी कोठरियों में घुल-घुलकर निकृष्टतम दरजे के अत्याचारों को भी सहन कर सकते हैं'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 97-98)। भगतसिंह के छोटे भाई कुलतार सिंह का परिवार आजकल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर में रहता है। कुलतार सिंह को भगत सिंह ने तीन मार्च 1931 को जो पत्र लिखा, वह आज भी उस परिवार के पास सुरक्षित है (प्रकाश, 2020)।

सुखदेव ने बताया क्रांतिकारी गतिविधियों का असली मकसद

लाहौर षड्यंत्र केस में जिस दिन भगतसिंह और राजगुरु के साथ सुखदेव को भी फाँसी की सजा सुनाई गई, उसी दिन तलाशी में सुखदेव का एक अधूरा पत्र मिला, जिसमें निरुद्देश्य हिंसक कार्रवाइयों का विरोध किया गया था। 7 अक्तूबर, 1930 को लिखा गया वह पत्र सुखदेव के बोर्स्टल जेल से लाहौर सेंट्रल जेल में स्थानांतरण के समय प्राप्त हुआ था। वह पत्र किसे लिखा गया, यह नहीं मालूम। उसमें सुखदेव लिखते हैं, ''...जब से हम लोग जेल में आए हैं, बाहर का वातावरण बहुत गरम हो रहा है। जहाँ तक एक्शंस (क्रांतिकारी कार्रवाइयों) का संबंध है, पत्रों द्वारा पता चलता है कि करीब हर एक प्रांत में खासकर पंजाब और बंगाल में तो हद ही हो गई है। उनके सामने बम तो एक साधारण-सी बात हो गई है। बम द्वारा इतने एक्शंस हमारे इतिहास में शायद ही कभी हुए होंगे। इन्हीं एक्शंस के बारे में मैं यहाँ आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। एक्शंस के संबंध में हमारी अपनी पॉलिसी क्या थी, आपके सम्मुख रखूँगा। इसके पश्चात् एक्शंस के संबंध में अपने विचार कहूँगा। हम कुल दो एक्शंस कर पाए। एक सांडर्स मर्डर, दूसरा असेंबली बम। इसके अतिरिक्त हमने दो-तीन और एक्शंस करने का प्रयत्न किया था, यद्यपि उनमें हमें सफलता नहीं प्राप्त हुई। इनके संबंध में मैं इतना कहना चाहता हूँ कि हमारे एक्शंस तीन प्रकार के थे : प्रोपेगैंडा (प्रचार), मनी (धन) और स्पेशल (विशेष)। इन तीनों से हमारा मुख्य ध्यान प्रचार की ओर था। बाकी दोनों गौण कहे जा सकते हैं। इससे मेरा अभिप्राय उनके महत्त्व को कम करने का नहीं है तो भी हमारे लिए हमारे अस्तित्व का उद्देश्य प्रचार के एक्शंस करना ही था। बाकी दोनों प्रकार के एक्शंस हमारे उद्देश्य नहीं थे, वरन् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक थे। इन तीनों को स्पष्ट करने के लिए असेंबली एक्शन, पंजाब नेशनल बैंक डकैती और जोगेश चटर्जी को छुड़ाने की कोशिश आज आपके सामने रखता हूँ। पिछले दो प्रकार के एक्शंस को छोड़कर मैं प्रोपेगैंडा एक्शंस को इस स्थान पर डिसकस करना चाहता हूँ। ...पहले हमने सोचा था कि एक आदमी पिस्तौल लेकर आए और स्काट को मारकर वहीं पर अपने-आपको पेश कर दे। फिर स्टेटमेंट द्वारा यह कह दे कि नेशनल इनसल्ट का बदला जब तक क्रांतिकारी जिंदा हैं, इसी प्रकार लिया जाता रहेगा। किंतु आसपास मैन पॉवर कम होने के कारण तीन आदमियों को भेजना ज्यादा उचित समझा गया। इसमें भी बचकर निकल जाने की आशा का विचार मुख्य नहीं था। ...मारकर भाग जाना ही हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो चाहते थे कि देश जान जाए कि यह पॉलिटिकल मर्डर है और इस एक्शन के करने वाले क्रांतिकारी हैं न कि मालंगी के साथी। इसलिए हमने उसके बाद पोस्टर्स लगाए और कुछ पोस्टर्स अखबार वालों को छापने के लिए भेजे। अफसोस, हमारे नेताओं और अखबार वालों ने हमें इस संबंध में कुछ सहायता न की और गवर्नमेंट को धोखे में रखने के विचार से देशवासियों को धोखा दिया। ...हमारा विचार था कि हमारे एक्शंस जनता की इच्छाओं और सरकार द्वारा माँगों के उत्तर में होने चाहिए, ताकि हम लोग जनता को अपने साथ ले सकें और जनता हमारे प्रति सहानुभूति और सहायता दिखाने के लिए तैयार हो जाए (परवीन, 2018, पृष्ठ 107-110)।

बटुकेश्वर का युवाओं को संदेश

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेलों में बंद राजनीतिक बंदियों से किए जाने वाले व्यवहार में सुधार करवाने के लिए भूख हड़ताल की योजना बनाई। उस भूख हड़ताल का नोटिस देते हुए बटुकेश्वर दत्त ने लाहौर जेल के अधीक्षक को 17 जून, 1929 को लिखा कि हम राजनीतिक बंदी हैं और हमारे साथ राजनीतिक बंदी जैसा व्यवहार होना चाहिए। अच्छी खुराक के अलावा हमें हर प्रकार का साहित्य और समाचार पत्र मिलने चाहिए। बाद में 24 जुलाई, 1929 को भगत सिंह ने मियाँवाली जेल से भारत सरकार को भेजे गए पत्र में प्रत्येक राजनैतिक कैदी को कम-से-कम एक दैनिक समाचार पत्र देने की माँग की थी। इसके बाद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की ओर से विद्यार्थियों के नाम जेल से एक पत्र भेजा गया जो 19 अक्तूबर, 1929 को पंजाब छात्र संघ लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया। उस अधिवेशन के सभापति नेताजी सुभाषचंद्र बोस थे। बाद में यह पत्र लाहौर से प्रकाशित 'ट्रिब्यून' समाचार पत्र के 22 अक्टूबर, 1929 के अंक में भी छापा गया। वह पत्र इस प्रकार है : ''इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठाएँ। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। आने वाले लाहौर अधिवेशन में काँग्रेस देश की आजादी के लिए जबर्दस्त लड़ाई की घोषणा करने वाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतंत्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी में वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचाएँगे? नौजवानों को क्रांति का संदेश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में गंदी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रांति की अलख जगानी

है, जिससे आजादी आएगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असंभव हो जाएगा। पंजाब वैसे ही राजनैतिक तौर पर पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेदारी युवक वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतींद्रनाथ दास के महान बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतंत्रता के इस संघर्ष में दृढ़ता से टक्कर ले सकते हैं। (परवीन, 2018, पृष्ठ 133)।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने अपने बड़े भाई शरतचंद्र बोस को 8 जनवरी, 1913 को जो पत्र लिखा वह देश के संबंध में उनके चिंतन को स्पष्ट करता है। वे लिखते हैं—''...भारत का भावी इतिहास तूफान के साथ अंधकाराच्छन्न आकाश जैसा है। इंग्लैंड और संपूर्ण यूरोप भी शायद प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। यूरोप के अंतरिक्ष में धर्म के नक्षत्र का उदय हो रहा है, लेकिन भारतीय आकाश में वह क्रमशः अस्त हो रहा है। भारत क्या था और क्या हो गया है! यह कैसा भयावह परिवर्तन है। वे ऋषि-मुनि और दार्शनिक आज कहाँ हैं-हमारे वे पूर्वज आज कहाँ हैं, जिन्होंने ज्ञान का उसकी चरम सीमा तक अन्वेषण किया था? उनका ओजस्वी व्यक्तित्व आज कहाँ लुप्त हो गया है? उनके जैसा नैष्ठिक ब्रह्मचारी आज कहाँ है? उनकी भगवान की अनुभूति कहाँ है? उनकी आत्मा का परमात्मा से मिलन कहाँ है, जिसकी आज हम चर्चा करके ही संतुष्ट हो जाते हैं। सभी कुछ तो विलुप्त हो चुका है। उनके द्वारा वैदिक मंत्रों का उच्चारण अब कहीं नहीं सुनाई देता। पवित्र गंगा के तट पर अब सामवेद की ध्वनि नहीं गूँजती, लेकिन फिर भी आशा अभी शेष है, कम-से-कम मुझे तो ऐसा ही लगता है। हमारे बीच में आशा की देवी हमारी बुझी हुई आत्माओं को फिर से आलोकित करने के लिए और हमारे आलस्य को झकझोरने के लिए आ चुकी है। उसका आविर्भाव स्वामी विवेकानंद के रूप में हुआ है। वह देखिए उनका दिव्य तेज से दीप्त मुखमंडल, उनकी बड़ी-बड़ी मर्मभेदिनी आँखें और उनका पवित्र गैरिक परिधान। वह संपूर्ण विश्व को हिंदू धर्म में बद्धमूल पावन सत्यों की सीख दे रहे हैं। सांध्य नक्षत्र डूब चुका है—अब निश्चय ही चंद्रोदय होगा। भारत का भविष्य आशाओं से जाज्वल्यमान है। भगवान सदैव हितकारी हैं। पाप, अधर्म, अनाचार और ऐसी ही बुराइयों के बीच में वह हमें हमारे एकमात्र लक्ष्य की ओर लिए जा रहे हैं। वह एक ऐसा चुंबक है जिसकी ओर सब कुछ, सभी ओर से खिंच रहा है और जिसकी ओर से संपूर्ण सृष्टि को अनिवार्यतः बढ़ना है। हमारा मार्ग भले ही खतरनाक और पथरीला हो, हमारी यात्रा भले ही कष्टदायक हो, हमें आगे बढ़ना ही है। हमें अंततः उसमें लीन होना ही है। वह दिन दूर हो सकता है, पर उसका आना अनिवार्य है। इसी आशा को मैं पाले हुए हूँ, अन्यथा शेष सब कुछ तो मुझे निराशाजनक और मन को तोड़ने वाला ही लगता है'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 160-161)।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस का आई.सी.एस. में चयन हो गया था, परंतु वे ब्रिटिश सरकार की नौकरी नहीं करना चाहते थे। इसके विपरीत वे कॉलेज में पढ़ाना अथवा अखबार में काम करने के इच्छुक थे। 16 फरवरी, 1921 को देशबंधु चितरंजन दास को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं—''...स्वदेश लौटने के बाद मैं दो तरह के काम हाथ में ले सकता हूँ—एक तो कॉलेज में पढ़ाने का और दूसरा अखबारों में लिखने का। मैं सर्विस त्यागने से पहले आगे की स्पष्ट योजना बना लेना चाहता हूँ। ...निजी तौर पर मैं महसूस करता हूँ कि अगर आप 'स्वराज' का अँग्रेजी संस्करण आरंभ करें तो मैं उसमें एक उपसंपादक के रूप में काम कर सकता हूँ। इसके अलावा मैं नेशनल कॉलेज में जूनियर कक्षाओं को पढ़ा भी सकता हूँ।'' इसी पत्र में वे काँग्रेस को भी और प्रभावी बनाने के लिए विचार व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं—''...काँग्रेस के लिए बैठकें करने का कोई स्थायी स्थान होना चाहिए। इसके लिए हमारे पास एक भवन होना चाहिए। इसमें शोधकर्ताओं का एक दल होना चाहिए जो विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं पर अनुसंधान करता रहे। जहाँ तक मुझे मालूम है, काँग्रेस ने भारतीय मुद्रा और मुद्रा विनिमय के बारे में अपनी कोई निश्चित नीति नहीं बनाई है। यह भी निश्चय संभवतः नहीं किया गया है कि काँग्रेस को देशी राज्यों के प्रति क्या रूख अपनाना चाहिए। लोगों को यह भी पता नहीं है कि मताधिकार (पुरुषों और स्त्रियों के लिए) के संबंध में काँग्रेस का दृष्टिकोण क्या है? इसके अतिरिक्त क्रांग्रेस संभवतः यह भी नहीं सोच पाई है कि दलित वर्गों के प्रति उसे क्या करना है?...मेरी निजी राय है कि काँग्रेस के पास स्थायी कर्मचारी होने चाहिए। उन्हें अलग-अलग समस्याओं पर शोध करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति आँकड़े एकत्रित करेगा और उनके आधार पर काँग्रेस कमेटी प्रत्येक समस्या के संबंध में अपनी नीति निर्धारित करेगी। ...इसके अतिरिक्त कांग्रेस को एक सूचना विभाग खोलना चाहिए। उसकी व्यवस्था ऐसे ढंग से की जानी चाहिए, जिससे देश के बारे में सभी ताजे समाचार और तथ्य उपलब्ध होते रहें। प्रचार विभाग द्वारा प्रत्येक प्रांतीय भाषा में पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाएँ और उन्हें जनता में निःशुल्क बाँटा जाए। इसके अतिरिक्त प्रचार विभाग द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक प्रश्न पर एक किताब प्रकाशित की जाए। उस किताब में काँग्रेस की नीति स्पष्ट की जाए और यह भी बताया जाए कि किस आधार पर कोई नीति तैयार की गई है'' (परवीन, 2018, पृष्ठ 170-173)।

निष्कर्ष

भारत के ही स्वतंत्रता सेनानियों का एक वर्ग सशस्त्र संघर्ष से आजादी प्राप्त करने का सपना देखने वाले क्रांतिकारियों की यह कहकर सदैव आलोचना करता था कि वे हिंसा में लिप्त हैं। जबकि शहीदों के पत्रों से पता चलता है कि उनके सशस्त्र संघर्ष का मकसद हिंसा नहीं, बल्कि अँग्रेजों में भय पैदा करना था। यह भय पैदा करने में वे मीडिया की भी सक्रिय भूमिका चाहते थे, जो उन्हें अपेक्षा के अनुरूप नहीं मिली। इस बात का उन्हें मलाल भी रहा। शहीदों के पत्रों से यह भी पता चलता है कि भारतीय क्रांतिकारी विदेशों में बसे क्रांतिकारियों से अत्यधिक सहयोग की अपेक्षा रखते थे और वह सहयोग उन्हें समय-समय पर प्राप्त भी होता था। नेताजी सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के लिए आईसीएस में चयन के बाद भी सरकारी नौकरी नहीं करना स्वीकार किया। स्वतंत्रता आंदोलन को लेकर उनके मन में कुछ बातें बहुत स्पष्ट थीं और स्वतंत्र भारत कैसा होगा यह भी उनके मन में पूरी तरह स्पष्ट था। सरदार भगतसिंह जैसे क्रातिकारियों ने जेलों में बंद कैदियों को बेहतर सुविधाएँ देने के लिए लंबा संघर्ष किया। वे चाहते थे कि स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े क्रांतिकारियों को राजनीतिक कैदी का दर्जा प्रदान कर उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए, परंतु लंबी भूख हडताल के बावजूद उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। शहीदों के पत्रों से इस बात का भी पता चलता है कि क्रांतिकारी देश दुनिया में चल रही हलचल पर पैनी नजर रखते थे। इसीलिए उन्होंने इस बात के लिए संघर्ष किया कि सभी राजनीतिक कैदियों को प्रतिदिन दैनिक समाचार पत्र अवश्य मुहैया कराया जाए। दिनांक 20 मार्च, 1931 को भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के एक संयुक्त पत्र में यह

भी माँग की गई कि उनके साथ युद्धबंदी का व्यवहार किया जाए। उस पत्र में वे लिखते हैं—''...भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड्यंत्र अभियोग की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण स्थापित किया था, जिसने 7 अक्तूबर, 1930 को हमें फाँसी का दंड सुनाया। हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा आरोप यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह है कि अँग्रेज और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप में इस युद्ध में भाग लिया है। अतः हम युद्धबंदी हैं।'' इन पत्रों से यह बात भी स्पष्ट होती है कि क्रांतिकारी अँग्रेज सरकार से माफी माँगकर अपनी जान नहीं बचाना चाहते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि उनकी शहादत से देशभर में और भी युवा सशस्त्र संघर्ष के लिए खड़े होंगे, जिससे कारण अँग्रेजों को एक दिन देश छोड़कर भागना ही होगा।

शहीदों के पत्र उनके मानस को समझने का लिए प्रामाणिक दस्तावेज हैं, इसलिए मीडिया की जिम्मेदारी बनती है कि वह अपने पाठकों को समय-समय पर उनसे अवगत कराते रहें। आजादी के अमृत महोत्सव के निमित्त शहीदों के पत्रों पर केंद्रित कुछ प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जानी चाहिए, ताकि खासतौर से युवा पीढ़ी शहीदों के सपनों से परिचित हो सके। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय और भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् ने मिलकर 13,000 से अधिक शहीदों का एक नेशनल रजिस्टर तैयार किया है। इसी प्रकार का संकलन शहीदों के पत्रों का भी होना चाहिए। उन पत्रों में जो जानकारी है वह शहीदों के चिंतन का खजाना है और यह खजाना राष्ट्रीय धरोहर है। यह खजाना भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

संदर्भ

डिक्सनरी ऑफ मार्टिर्स. (2018). डिक्सनरी ऑफ मार्टिर्स. इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल (1857-1947). वॉल्यूम-5. *संस्कृति मंत्रालय*, भारत सरकार और भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्. https://www.indiaculture.nic.in/sites/default/files/pdf/Martyrs_Vol_5_06_03_2019.pdf से दिनांक 15 जुलाई, 2021 को पुनःप्राप्त

परवीन, एफ. (2018). *याद कर लेना कभी... शहीदों के खत*. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार. पृष्ठ 1-4.

प्रकाश, ए. (2020). जब भगत सिंह ने लाहौर जेल से छोटे भाई को लिखा था ये अंतिम पत्र, आप भी पढ़िए. *अमर उजाला*. https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/meerut/amar-ujala-special-report-bhagat-singh-wrote-the-last-letter-from-lahore-jail-to-his-younger-brother-kultar-singh-in-1931 से दिनांक 10 अगस्त, 2021 को पुनःप्राप्त

भारतीय इतिहास अनंसुधान परिषद्. (2021). *डिक्शनरी ऑफ मार्टिर्स*. http://ichr.ac.in/content/innerpage/research-outcomes.php से दिनांक 10 जुलाई, 2021 को पुनःप्राप्त

राष्ट्रीय अभिलेखागार. (2021). *प्राइवेट पेपर्स*. http://nationalarchives.nic.in/content/private-papers-0 से दिनांक 12 जुलाई, 2021 को पुनःप्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 58-61, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम में प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों का योगदान

डॉ. स्वर्ण सुमन[1]

सारांश

स्वतंत्रता संग्राम में जितना योगदान भारत में प्रकाशित समाचार पत्रों का रहा, उतना ही प्रवासी भारतीयों द्वारा विदेशों में प्रकाशित समाचार पत्रों का भी था। प्रवासी स्वतंत्रता सेनानियों में प्रमुख रूप से श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल, मैडम भीकाजी कामा और महात्मा गांधी का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने विदेशी भूमि से अपनी मातृभूमि के लिए आजादी की लड़ाई लड़ी। इस मिशन की पूर्ति में उनके सबसे बड़े हथियार समाचार पत्र बने। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन और पेरिस में 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' द्वारा ब्रिटिश शासन को चुनौती दी। लाला हरदयाल ने अमेरिका से 'गदर' पत्रिका प्रकाशित कर क्रांतिकारियों में नया जोश भरा। मैडम भीकाजी कामा ने पेरिस से 'वंदेमातरम्' और 'तलवार' नामक पत्रों के जरिये राष्ट्रवादियों को आजादी के लिए प्रेरित किया। वहीं गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' के माध्यम से अँग्रेजी शासन के शोषण और भारतीयों की समस्याओं को उजागर किया। एक ओर प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित इन पत्रों ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना पैदा की, वहीं दूसरी ओर दुनिया भर में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक माहौल तैयार किया। प्रस्तुत शोध पत्र में स्वतंत्रता संग्राम में प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित किए गए समाचार पत्रों और उनके योगदान का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता संग्राम, प्रवासी भारतीय, द इंडियन सोशियोलोजिस्ट, वंदेमातरम्, तलवार, गदर, इंडियन ओपिनियन

प्रस्तावना

स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य विदेशी साम्राज्य से मात्र मुक्ति नहीं था, बल्कि जनसाधारण में राष्ट्रीय चेतना का विकास करना भी था। इस अहम कार्य में पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पत्रकारिता ने एक ऐसा वातावरण निर्मित किया, जिससे सारा देश एक होकर अँग्रेजी सरकार के शोषण, अन्याय और दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिए एक साथ खड़ा हो सका। पत्रकारिता के प्रभाव को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्रों पर कई सेंसरशिप धाराएँ लगाईं, परंतु कठोर प्रतिबंधों के बावजूद पत्रकारिता एक मिशन के रूप में कार्य करती रही। इसने भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा संपूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। भारत में पत्रकारिता अँग्रेजी शासन के विरुद्ध एक सशक्त हथियार बनी। यह हथियार केवल भारत की सीमाओं तक ही सीमित नहीं था, बल्कि विदेशों से भी समाचार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भारतीय स्वाधीनता के लिए प्रयास किए गए। विदेशों में रह रहे देशभक्त भारतीयों ने विभिन्न समाचार पत्रों द्वारा अँग्रेजी शासन के अत्याचारों को उजागर किया तथा दुनिया भर में भारत की आजादी के लिए जनसमर्थन जुटाने का प्रयास किया। प्रवासी भारतीयों ने पत्रकारिता के माध्यम से अँग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियों की कड़ी आलोचना की और आजादी की लड़ाई में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। उनके प्रवासी जीवन की भूमिका को स्वतंत्रता संग्राम से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम में प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित पत्रों के योगदान का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए सामग्री द्वितीयक स्रोतों यानी पुस्तकों एवं मीडिया में प्रकाशित लेखों आदि से प्राप्त की गई। भारत के बाहर अँग्रेजी राज्य के विरुद्ध संघर्ष में जिन प्रमुख प्रवासी भारतीयों और पत्रों का विशेष योगदान रहा है, उनका वर्णन निम्नांकित बिंदुओं के अंतर्गत किया गया है :

श्यामजी कृष्ण वर्मा और 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट'

श्यामजी कृष्ण वर्मा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रमुख प्रवासी स्वतंत्रता सेनानी थे। उनका जन्म 4 अक्टूबर, 1857 को गुजरात के कच्छ जिले में हुआ था। वे क्रांतिकारी, देशभक्त, वकील और पत्रकार थे, जिन्होंने लंदन में इंडियन होम रूल सोसाइटी, इंडिया हाउस और द इंडियन सोशियोलोजिस्ट की स्थापना की (चंद्रा, 1989)। श्यामजी कृष्ण वर्मा ऐसे क्रांतिकारी विचारक और देशभक्तों के प्रेरणास्रोत रहे, जिनका जन्म तो भारत में हुआ, लेकिन वे मातृभूमि की आजादी के लिए विदेशों में संघर्ष करते रहे। वे उन क्रांतिकारियों में से एक थे, जो मानते थे कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष न केवल भारत में, बल्कि अन्य देशों, विशेषकर ब्रिटेन में भी होना चाहिए। महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन में प्रवेश करने से कई वर्ष पहले ही उन्होंने इंग्लैंड में स्वतंत्रता आंदोलन की शुरूआत कर दी थी। लंदन में रहते हुए उन्होंने राष्ट्रवादी संस्था 'इंडिया हाउस' की स्थापना की, जो इंग्लैंड जाकर पढ़ने वाले छात्रों के परस्पर मिलन एवं क्रांतिकारियों के प्रशिक्षण का एक प्रमुख केंद्र था। उन्होंने प्रमुख भारतीय राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारी छात्रों को लेकर 1905 में 'इंडियन होम रूल सोसायटी' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारत में स्व-शासन स्थापित करना था। श्यामजी ब्रिटिश निरंकुशता से पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करने वाले और 'स्वराज' शब्द का प्रयोग करने वाले पहले भारतीय नेता थे, जिसे बाद में दादाभाई नौरोजी और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में उनके सहयोगियों द्वारा अपनाया गया।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 1905 में लंदन में भारतीय राष्ट्रवादी पत्रिका 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' का प्रकाशन किया। 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' एक मुखर, वैचारिक मासिक था, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनविरोध को पोषित करना था। इस पत्रिका का ध्येय वाक्य था—'स्वतंत्रता और राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सुधार का मुखपत्र'। श्यामजी हर्बर्ट स्पेंसर के दर्शन के अनुयायी थे। यही

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, ईमेल: swarnsuman@gmail.com

कारण है कि इस पत्रिका के नारे के नीचे हर्बर्ट स्पेंसर के दो कथन लिखे होते थे, जो पत्रिका की विचारधारा को भी परिलक्षित करते हैं। ये दो कथन थे—1. "प्रत्येक व्यक्ति वह करने के लिए स्वतंत्र है जो वह चाहता है, बशर्ते कि वह किसी अन्य व्यक्ति की समान स्वतंत्रता का उल्लंघन न करे।", 2. "आक्रामकता का प्रतिरोध न केवल उचित है, बल्कि अनिवार्य है। गैर-प्रतिरोध परोपकारिता और अहंकार दोनों को चोट पहुँचाता है।" श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' पत्रिका का संपादन 1905 से 1914 तक, फिर 1920 और 1922 के बीच किया। यह मूल रूप से मई 1907 तक लंदन से प्रकाशित होता था। उसके बाद जब श्यामजी पेरिस चले गए तो पत्रिका वहीं से छपने लगी। पत्रिका को जून 1907 से पेरिस में संपादित किया गया, लेकिन पते के परिवर्तन की घोषणा केवल सितंबर 1907 के अंक में ही की गई थी। 1914 तक पेरिस में इसका प्रकाशन जारी रहा। श्यामजी प्रथम विश्वयुद्ध के कारण जिनेवा चले गए। जिनेवा में रहते हुए, उन्होंने स्विस अधिकारियों के दबाव में प्रकाशन बंद कर दिया। उन्होंने दिसंबर 1920 में फिर से प्रकाशन शुरू किया और सितंबर 1922 तक जारी रखा (शाह, 2006)।

'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' के जरिये श्यामजी ने भारत में ब्रिटिश शासन पर कड़ा प्रहार किया। पत्रिका के अक्टूबर 1905 के अंक में 'भारत में विदेशी शासन कैसे समाप्त करें' जैसे क्रांतिकारी मुद्दे को छापा गया। इसके लिए तीन विकल्प सुझाए गए—1. इंग्लैंड के कब्जे की स्वैच्छिक वापसी, 2. विदेशी शासन को हटाने के लिए भारतीयों की ओर से एक सफल प्रयास, 3. किसी विदेशी शक्ति का स्वार्थरहित हस्तक्षेप। पहला और आखिरी विकल्प संभव नहीं था, इसलिए दूसरे विकल्प के लिए, जो भारतीयों द्वारा विदेशी शासन को हटाने का एक सफल प्रयास है, श्यामजी वर्मा ने मेरेडिथ टाउनसेंड को उद्धृत किया—''भारत में ब्रिटिश साम्राज्य एक दिन में आया और एक रात में गायब हो जाएगा (वर्मा, 1993)।" उनकी कलम की ताकत ने ब्रिटिश साम्राज्य को झकझोर कर रख दिया था, जिसने कई बुद्धिजीवियों को भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। इस मजबूत, शक्तिशाली, यथार्थवादी वैचारिक मासिक ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनउत्थान में एक महान उद्देश्य की सेवा की और भारत और विदेशों में भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए कई बौद्धिक क्रांतिकारी पैदा किए। श्यामजी को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक महान क्रांतिकारी पत्रकार, लेखक और स्वतंत्रता सेनानियों के निर्माता तथा भारतीय युवाओं के लिए स्वतंत्रता आंदोलन की सबसे प्रेरक प्रतिभा के रूप में याद किया जाता है। उल्लेखनीय है कि मैडम कामा, मदनलाल ढींगरा, लाला हरदयाल, एस.आर. राणा, चंपक रमन पिल्लई, वीरेंद्र चट्टोपाध्याय और कई अन्य क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा के ही मार्गदर्शन में प्रशिक्षित हुए।

प्रवासी क्रांतिकारियों का पत्र 'गदर'

भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की शुरुआत सिर्फ बंदूकों और बमों से ही नहीं, बल्कि अखबारों के प्रकाशन से भी हुई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम लाला हरदयाल का बड़ा ऋणी है। उन्होंने न केवल भारत में, बल्कि भारत के बाहर भी राष्ट्रीय चेतना की लौ को जलाए रखा। लाला हरदयाल एक उत्साही राष्ट्रवादी, प्रतिभाशाली, भाषाविद् तथा दुर्लभ मेधा और अपार क्षमता के बड़े लेखक थे। वे हिंदी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बांग्ला और तमिल सहित 7 भाषाओं के जानकार थे। उन्हें 'हफ्त जबान' (सात भाषाओं का स्वामी) कहा जाता था। इसके अलावा, वे सात यूरोपीय भाषाओं को भी जानते थे—अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी, तुर्की, स्वीडिश और पुर्तगाली। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका (कैलिफोर्निया) और कनाडा (ब्रिटिश कोलंबिया) में सिख किसानों और अन्य भारतीयों की मदद से भारत की पहली सशस्त्र और धर्मनिरपेक्ष क्रांति का आयोजन किया।

अँग्रेजी साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से नवंबर 1913 में अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को में भारतीय क्रांतिकारियों की संस्था 'गदर पार्टी' की स्थापना हुई। गदर पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष सरदार सोहन सिंह भाकना थे और लाला हरदयाल महामंत्री थे। 'गदर' का अर्थ 'विद्रोह' होता है। नाम के अनुरूप ही इसका उद्देश्य बल प्रयोग करके ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना और भारत को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त कराना था। गदर पार्टी ने एक साप्ताहिक अखबार 'गदर' प्रकाशित किया। लाला हरदयाल इसके संपादक थे। यह अखबार हिंदी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, बांग्ला और पश्तो सहित छह भाषाओं में छपता था। एक वर्ष के भीतर इसकी लाखों प्रतियाँ प्रकाशित हुईं और भारत एवं दुनिया के उन सभी हिस्सों में भेजी गईं, जहाँ भारतीय रहते थे। यह अखबार अमेरिका से कनाडा फिर वहाँ से भारत आता था। अँग्रेजी सरकार अमेरिका से आने वाली डाक पर कड़ी निगरानी रखती थी, इसलिए यह रास्ता अपनाया जाता था। बाद में कनाडा का रास्ता बंद हो गया तो 'गदर' पत्र अमेरिका से जापान, पुनः वहाँ से फ्रांस और फ्रांस से भारतीय क्रांतिकारी महिला मैडम कामा इसे हांगकांग, कलकत्ता, सिंगापुर, बंबई पहुँचाती थीं। रूस के क्रांतिकारी 'गदर' की प्रतियाँ चीन और ईरान के रास्ते भारत भिजवाते थे (तिवारी, 1997)।

साप्ताहिक 'गदर' की एक शाखा के रूप में, गदर पार्टी मुख्यालय ने कई पैंफलेट प्रकाशित किए थे। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण 'गदर-दी-गूँज' नामक कविताओं/गीतों का संकलन था। यह काव्य गदर साहित्य का अभिन्न अंग था। इसका प्रमुख विषय अधीनस्थ देशों के प्राकृतिक संसाधनों के शोषण और बंदूक के बल पर लोगों के निर्दयतापूर्ण दमन को उजागर करना था। देशभक्तिपूर्ण कविताओं के जरिये यह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बलिदान के लिए प्रेरणा का एक अतुलनीय स्रोत बन गई (गदर दी गूंज...)। इस पैंफलेट की दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित की गईं, जिनके जरिये न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अन्याय, उत्पीड़न जैसे विचारों द्वारा पूरी दुनिया में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया गया। अप्रैल 1914 में लाला हरदयाल को अराजकतावादी साहित्य छापने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका सरकार द्वारा गिरफ्तार किया गया। लाला हरदयाल के दोस्तों द्वारा जमानत कराने के बाद अमेरिकी सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। फिर उन्होंने स्विट्जरलैंड में शरण ली और बाद में वहाँ से भारत की स्वतंत्रता के लिए जर्मनों के साथ काम करने के लिए बर्लिन चले गए। जाने से पहले लाला हरदयाल ने रामचंद्र को 'गदर' अखबार के संपादक के रूप में नियुक्त किया। रामचंद्र ने दो अन्य भारतीयों, भगवान सिंह और मौलवी बरकतुल्लाह की मदद से लाला हरदयाल का काम जारी रखा। 'गदर' पूरी दुनिया में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष का एक मजबूत हथियार बन गया था।

मैडम भीकाजी कामा के पत्र 'वंदे मातरम' और 'तलवार'

मैडम भीकाजी कामा का जन्म 24 सितंबर, 1861 को मुंबई के एक समृद्ध पारसी परिवार में हुआ था। वे एक राष्ट्रवादी विचारों वाली

महिला थीं और हर हाल में भारत को आजाद देखना चाहती थीं। 1885 में उनकी शादी रूस्तमजी कामा से हुई। रूस्तमजी कामा भारत में ब्रिटिश शासन के हिमायती थे। इस मुद्दे पर दोनों के बीच इतना मतभेद था कि उन्हें अलग होना पड़ा। 1906 में भीकाजी लंदन चली गईं। लंदन में वे भारतीय देशभक्तों, नेताओं, छात्रों और यूरोपीय बुद्धिजीवियों के संपर्क में आईं। वहाँ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के महान नेता दादाभाई नौरोजी की निजी सचिव भी बनीं। उस समय दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश संसद के सदस्य थे। भीकाजी कामा नौरोजी से प्रभावित थीं, लेकिन उनका अँग्रेजों के प्रति उदारवादी रवैया उन्हें पसंद नहीं आया। बाद में जब विनायक दामोदर सावरकर का आगमन लंदन में हुआ तो भीकाजी उनके संपर्क में आईं और 'अभिनव भारत समाज' से जुड़ गईं।

भीकाजी ने 1905 में विनायक दामोदर सावरकर और श्यामजी कृष्ण वर्मा की मदद से भारत के ध्वज का पहला डिजाइन तैयार किया। इस झंडे में देश के विभिन्न धर्मों की भावनाओं और संस्कृति को समेटने की कोशिश की गई थी। उसमें इस्लाम, हिंदुत्व और बौद्ध मत को प्रदर्शित करने के लिए हरा, पीला और लाल रंग इस्तेमाल किया गया था। साथ ही उसमें बीच में देवनागरी लिपि में 'वंदे मातरम्' लिखा हुआ था। यह ध्वज वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय ध्वज का एक सच्चा अग्रदूत था। जर्मनी के स्टटगार्ट शहर में 22 अगस्त, 1907 में हुई सातवीं अंतरराष्ट्रीय काँग्रेस में भीकाजी कामा ने इस तिरंगे झंडे को फहराकर अँग्रेजी शासन को चुनौती दी और कहा—"ऐ संसार के कॉमरेड्स, देखो ये भारत का झंडा है, यही भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, इसे सलाम करो।'' बाद में वे अमेरिका गईं और भारत की आजादी के लिए संघर्ष के बारे में वहाँ के लोगों को जानकारी दी।

फिर भीकाजी लंदन वापस आ गईं और देशभक्तिपूर्ण साहित्य प्रकाशित करना शुरू कर दिया। वे श्यामजी कृष्ण वर्मा के संपर्क में भी आईं। लंदन में मैडम भीकाजी कामा ने श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' नामक पत्र के लिए अनेक लेख लिखे। इसमें उन्होंने 'भारत के लोगों के लिए एक खुला पत्र' लिखा, जो जून 1907 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस पत्र में उन्होंने भारतवासियों से हिंदू-मुस्लिम एकता की अपील की। उनके ब्रिटिश विरोधी रवैये ने उन्हें मुश्किल में डाल दिया और उन्हें पेरिस जाना पड़ा। पेरिस में भीकाजी कामा की ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों ने गति पकड़ी और उनका घर वैश्विक क्रांतिकारियों का आश्रय स्थल बन गया। यहाँ तक कि रूसी क्रांति के जनक लेनिन भी उनके घर गए और उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान किया। मैडम कामा ने सावरकर को स्वतंत्रता के पहले भारतीय युद्ध का इतिहास लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया, जिसे बाद में हॉलैंड से छापा गया, क्योंकि उस समय किसी भी अँग्रेजी प्रकाशक ने इसके प्रकाशन में रुचि नहीं ली (गुप्ता एवं गुप्ता, 2006)।

भीकाजी कामा ने सितंबर 1909 में पेरिस से 'वंदे मातरम्' नामक क्रांतिकारी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह नाम उन्होंने बंकिम चटर्जी की राष्ट्रवादी कविता 'वंदे मातरम्' पर ब्रिटिश प्रतिबंध के जवाब में रखा था। इसके मास्टहेड पर नाम के साथ उसी तिरंगे झंडे की छवि छापी जाती रही, जिसे मैडम कामा ने फहराया था (आर्या, 2018)। उन्होंने 1909 में एक और पत्र 'मदन तलवार' शुरू किया (यादव, 1991)। इस पत्र का नाम मूल रूप से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के नायकों में से एक मदनलाल ढींगरा के नाम पर रखा गया, जिन्हें विलियम हट कर्जन वायली की राजनीतिक हत्या के लिए फाँसी दी गई थी। इन पत्रिकाओं का उद्देश्य राष्ट्रवादियों को आजादी के लिए प्रेरित करना और ब्रिटिश भारतीय सेना के सिपाहियों की वफादारी को प्रभावित करना था। ये दोनों पत्र वहाँ रहने वाले प्रवासियों के बीच काफी लोकप्रिय थे। भीकाजी कामा अपने संपादकीय में काफी उग्र भाषा का प्रयोग करती थीं। कामा इन दोनों पत्रों की स्वयं वितरक हुआ करती थीं, जो उस समय एक अत्यंत कठिन कार्य था। यद्यपि इन पत्रों को उनके ब्रिटिश विरोधी रुख के कारण भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया था, तथापि यह साहसी कामा ही थीं, जो किसी तरह उन्हें भारत भेजने में कामयाब रहीं। अपने पत्रों के माध्यम से कामा ने अँग्रेजों के निरंकुश शासन की खुलकर निंदा की। उनका लोकप्रिय नारा था—''भारत आजाद होना चाहिए; भारत एक गणतंत्र होना चाहिए; भारत में एकता होनी चाहिए।'' वे कहती थीं—''अत्याचार का विरोध ईश्वर का आज्ञापालन है।" देश की आजादी के लिए उन्होंने भारत के साथ-साथ विदेशों में भी निडर होकर लड़ाई लड़ी। 13 अगस्त, 1936 को उनकी मृत्यु हो गई। तीस साल से ज्यादा समय तक भीकाजी कामा ने यूरोप और अमेरिका में भारतीय संघर्ष के बारे में जागरूकता पैदा करने में प्रमुख भूमिका निभाई।

महात्मा गांधी का 'इंडियन ओपीनियन'

महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका प्रवास उनके राजनीतिक और पत्रकारीय जीवन के उत्कर्ष की एक प्रयोगशाला थी। गांधी ने कहा भी था- 'भले ही मैं भारत में जन्मा हूँ लेकिन दक्षिण अफ्रीका ने मुझे बनाया है'। गांधी के अनुयायी मदनजीत ने डरबन में 'द इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस' की स्थापना की। उन्होंने एक साप्ताहिक अखबार निकालने का विचार किया और गांधी से सलाह और सहायता माँगी। फलस्वरूप महात्मा गांधी ने 4 जून, 1903 को चार भाषाओं में 'इंडियन ओपिनियन' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। प्रथम अंक अँग्रेजी, हिंदी, गुजराती और तमिल में निकाला गया। यह एक साप्ताहिक पत्र था, जो शनिवार के दिन निकलता था। बाद में यह बुधवार को छपने लगा। 'इंडियन ओपिनियन' छह कालम में प्रकाशित होता था, जिसके चार पृष्ठ अँग्रेजी, दो पृष्ठ गुजराती, दो पृष्ठ हिंदी तथा दो पृष्ठ तमिल के होते थे (तिवारी, 2019), परंतु हिंदी एवं तमिल संस्करण 4 जून, 1903 से 27 जनवरी, 1906 तक तथा बाद में 31 दिसंबर, 1913 से 8 अप्रैल, 1914 तक ही प्रकाशित हुआ। 1909 में छह कालम के स्थान पर तीन कालम का पत्र अँग्रेजी और गुजराती में निकलने लगा। 'इंडियन ओपिनियन' पत्र के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए इसके प्रथम अंक में गांधी ने लिखा था—"भारतीय लोगों पर हुए अत्याचार को प्रदर्शित करना तथा उनके विचारों का प्रसार करना इसका पहला उद्देश्य है, जिससे लोगों में सत्यनिष्ठा जाग्रत हो सके" (तिवारी, 2019)। इस तरह पत्र का लक्ष्य भारतीय समुदाय की इच्छाओं को अभिव्यक्त करना और उनके हितों के लिए काम करना था।

गांधी के भारत प्रस्थान करने तक 'इंडियन ओपिनियन' के 581 अंक निकले, जिनकी कुल पृष्ठ संख्या 15,544 के लगभग थी। गांधी के समय इसकी सर्वाधिक संख्या 3500 तक थी, किंतु गांधी के जाने के बाद 1915 में ग्राहकों की संख्या 500 ही रह गई। गांधी के भारत जाने के बाद 1916 से 1958 तक मणिलाल गांधी इसके संपादक रहे और गांधी समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहे (गोयनका, 2010)। इसके पहले

संपादक मनसुखलाल हीरालाल नाजर थे, जो बंबई के एक पत्रकार थे। वे 1897 से गांधी को जानते थे और बोअर युद्ध में उनके अधीन भारतीय चिकित्सा कोर में स्वेच्छा से काम किया था। यद्यपि नाजर ने अखबार के संपादक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, परंतु संपादन का सच्चा बोझ गांधी पर ही था, क्योंकि नाजर यह मानते थे कि दक्षिण अफ्रीका के विषयों पर गांधी ही बेहतर तरीके से लिख सकते हैं। वास्तव में गांधी 'इंडियन ओपिनियन' के सच्चे संपादक या पत्रकार ही नहीं थे, वे समाचारपत्र एवं प्रेस का अधिकांश कार्य करते, देखते और संचालन करते थे। 'इंडियन ओपिनियन' के लिए सामग्री की व्यवस्था और चयन, ग्राहकों की संख्या और संपर्क, प्रेस की व्यवस्था और वितरण, हिसाब-किताब आदि कार्यों पर उनका ही नियंत्रण था (गोयनका, 2010)। 'इंडियन ओपिनियन' में 1903 से 1914 तक गांधी ने भारत की स्थिति, समस्याओं तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर अनेक लेख लिखे और प्रवासी भारतीयों के मातृभूमि के प्रति प्रेम और चिंता को जाग्रत किया।

गांधी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"इंडियन ओपिनियन मेरे जीवन का निचोड़ है और इसने हिंदुस्तानी समाज की अच्छी सेवा की है। इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई नहीं चल सकती थी।" गांधी ने लोक-सेवा, लोक-शिक्षा, लोक-जागृति एवं लोक संघर्ष से 'इंडियन ओपिनियन' को जोड़कर इसे प्रवासी हिंदुस्तानियों का मुखपत्र बना दिया और भारतीयों को एक मंच पर लाकर मुक्ति और संघर्ष के अपने दर्शन का सहभागी बनाया। इस तरह 'इंडियन ओपिनियन' गांधी के जीवन और विचारों का दर्पण बना और उस पत्रकारिता की बुनियाद भी बना, जो बाद में गांधी द्वारा भारत में 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' समाचार पत्रों में प्रतिफलित हुआ। महात्मा गांधी 9 जनवरी, 1915 में दक्षिण अफ्रीका से वापस भारत लौटे थे, इसलिए भारत के विकास में प्रवासी भारतीयों के योगदान को चिह्नित करने के लिए प्रतिवर्ष 9 जनवरी को 'प्रवासी भारतीय दिवस' का आयोजन किया जाता है (प्रवासी भारतीय दिवस)।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता संग्राम में प्रवासी भारतीयों और उनके द्वारा प्रकाशित पत्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन भारतीयों ने दुनिया के तमाम देशों में जाकर भारत को आजाद कराने के पक्ष में माहौल बनाने का काम किया, जिससे भारत की आजादी के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन हासिल करने में भी मदद मिली। इतना ही नहीं, इन्होंने विदेशों में रह रहे भारतीयों को आजादी के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित भी किया। विदेशों में आजादी की लड़ाई को जीवित रखने और उसे विकसित करने में इनका अहम योगदान है। इस मिशन में अनेक कठिनाइयों और यातनाओं के बावजूद इन स्वतंत्रता सेनानियों ने अपनी लेखनी द्वारा आंदोलन और पत्रकारिता को मजबूती और दिशा प्रदान की। इनमें श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल और भीकाजी कामा ऐसे देशभक्त थे, जो जीवनपर्यंत आजादी के लिए विदेशों में संघर्ष करते रहे। निश्चय ही इन महान स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने पत्रों के माध्यम से दुनिया भर में ब्रिटिश शासन के शोषण को उजागर किया और राष्ट्रवाद के स्वर को जन-जन तक पहुँचाया। इन्हीं के प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत की आजादी का आंदोलन एक वैश्विक आंदोलन बन गया।

संदर्भ

आर्या, डी. (2018, मार्च 08). *वो औरत जिन्होंने विदेश में पहली बार फहराया भारत का झंडा*. https://www.bbc.com/hindi/india-39190433 से पुन:प्राप्त.

गदर दी गूँज (तिथि नहीं). *सिक्ख पॉयनियर्स*. https://legacy.sikhpioneers.org/gadardigunj.html से पुन:प्राप्त.

गोयनका, के. के. (2010). *महात्मा गांधी*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

गुप्ता, के. आर. एवं गुप्ता, ए. (2006). *कॉनशाइज एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडिया*. नई दिल्ली : अटलांटिक पब्लिशर्स.

चंद्रा, बी. (1989). *इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस*. नई दिल्ली : पेंग्विन बुक्स इंडिया.

तिवारी, ए. (1997). *हिंदी पत्रकारिता का बृहद इतिहास*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

तिवारी, ए. (2019). *राष्ट्रपिता की पत्रकारिता*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

प्रवासी भारतीय दिवस. (तिथि नहीं). *मिनिस्ट्री ऑफ एक्सटर्नल अफेयर्स*. https://www.mea.gov.in/pravasi-bharatiya-divas-hi.htm से पुन:प्राप्त.

यादव, बी. डी. (1991). *एमपीटी आचार्य, रेमिनिसेंसेज ऑफ एन इंडियन रिवॉल्यूशनरी*. नई दिल्ली : अनमोल पब्लिकेशंस.

वर्मा, जी. एल. (1993). *श्यामजी कृष्ण वर्मा, द अननॉन पैट्रियट*. नई दिल्ली : पब्लिकेशंस डिविजन, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.

शाह, ए. (2006). द इंडियन सोशियोलोजिस्ट, 1905-14, 1920-22. *इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 41(31), 3435-3439. http://www.jstor.org/stable/4418537 से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 62-65, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम में 'आजाद रेडियो' की भूमिका का अध्ययन

उमेश चतुर्वेदी[1] और सौम्या चतुर्वेदी[2]

सारांश

सूचना क्रांति के दौर में माना जा रहा है कि जिसके पास सूचना है, वही ताकतवर है। हालाँकि मीडिया माध्यमों का जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे दुनिया की ताकतों ने प्रचार माध्यमों का अपने हित के लिए प्रयोग करना शुरू किया। प्रचार की ताकत पहली बार दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान दिखी, जब दुनिया की ताकतों ने अपने लिए 'प्रोपेगंडा' करना शुरू किया। बाद में इस ताकत को जर्मनी के शासक हिटलर और उसके सूचना मंत्री गोएबल्स ने पूरी शिद्दत से स्वीकार किया। कहा जा सकता है कि दूसरा विश्वयुद्ध एक तरफ जहाँ जमीन और आसमान पर सेनाओं के जरिये लड़ा जा रहा था, दूसरी तरफ लड़ाई तरंगों पर रेडियो के जरिये भी लड़ी जा रही थी। जिस समय दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था, उन्हीं दिनों भारत में आजादी का आंदोलन अपने निर्णायक दौर में पहुँच चुका था। देश के अंदर जहाँ गांधीजी की अगुआई में भारत छोड़ो आंदोलन चल रहा था, देश के बाहर नेताजी सुभाषचंद्र बोस की अगुआई में अँग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष चल रहा था। इन संघर्षों में अपनी तकनीकी क्षमता और पहुँच के चलते रेडियो प्रभावी भूमिका निभा रहा था। इनमें से एक तरफ जहाँ 'काँग्रेस रेडियो' था, तो दूसरी तरफ 'आजाद हिंद रेडियो'। देश में जहाँ कुछ युवा काँग्रेसी नेता और सक्रिय कार्यकर्ता 'काँग्रेस रेडियो' के जरिये आजादी की अलख जगाए हुए थे, वहीं दूसरी तरफ देश के बाहर 'आजाद हिंद रेडियो' के जरिये नेताजी सुभाषचंद्र बोस न सिर्फ वैश्विक स्तर पर समर्थन जुटा रहे थे, बल्कि देशवासियों तक अपनी बात भी पहुँचा रहे थे। आजादी के आंदोलन के संदर्भ में देखें तो काँग्रेस और आजाद हिंद रेडियो के अलावा दुनिया में दो और उदाहरण मिलते हैं, पहला 'रेडियो रेबेल', जिसका इस्तेमाल क्यूबा के विद्रोहियों ने अपने विचार फैलाने और समर्थन जुटाने के लिए किया, वहीं दूसरा उदाहरण दक्षिण अफ्रीका के 'रेडियो फ्रीडम' का है। प्रस्तुत शोध पत्र में स्वतंत्रता संग्राम में 'आजाद हिंद रेडियो' के योगदान का अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द : स्वाधीनता संग्राम, काँग्रेस रेडियो, आजाद हिंद रेडियो, रेडियो रेबेल, रेडियो फ्रीडम

प्रस्तावना

नौ अगस्त, 1942 को गांधीजी ने मुंबई में 'करो या मरो' का जो संदेश भारतवासियों को दिया था, दरअसल वह एक दिन पहले मुम्बई में ही काँग्रेस कार्यसमिति द्वारा पारित 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' का विस्तार था। गांधी समेत पूरा काँग्रेस नेतृत्व जानता था कि ब्रिटिश साम्राज्य के भारतीय हिस्से के ताबूत में आखिरी कील ठोकने का सबसे सही वक्त यही है। तानाशाही पर उतरी ब्रिटिश सरकार ने बेशक काँग्रेस नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, लेकिन इस आंदोलन ने इतिहास बदलकर रख दिया। लोगों में ऐसी जागृति आई कि उनके चरम विरोध से अँग्रेज सरकार हिल गई और ठीक पाँच साल बाद उसे अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर वापस लौटना पड़ा। लेकिन इस जागृति को बढ़ाने और लोगों में जोश भरने में दो महत्त्वपूर्ण कारकों ने बड़ी भूमिका निभाई। भूमिगत स्तर पर जारी 'काँग्रेस रेडियो' के प्रसारणों ने लोगों तक भारत छोड़ो आंदोलन की सूचनाएँ पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जबकि हजारीबाग जेल में बंद जयप्रकाश नारायण ने फरार होकर देश के नौजवानों के हौसले को बढ़ा दिया। 'काँग्रेस रेडियो' भारतीय राजनीति के चिर विद्रोही डॉ. राममनोहर लोहिया और ऊषा मेहता के दिमाग की उपज थी। भारतीय इतिहास के नाजुक मोड़ पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले 'काँग्रेस रेडियो' ने 27 अगस्त, 2021 को अपनी 79वीं सालगिरह मनाई है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध चूँकि ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन पर आधारित है, इसलिए इसमें द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है। इस संदर्भ में विभिन्न पुस्तकों और मीडिया में प्रकाशित आलेखों और साक्षात्कारों का सहारा लिया गया है।

काँग्रेस रेडियो

8 अगस्त, 1942 की शाम को मुंबई में काँग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई थी। उसी बैठक में काँग्रेस कार्यसमिति ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया था। वैसे 'भारत छोड़ो' नारा काँग्रेस के समाजवादी धड़े के नेता युसूफ मेहर अली ने दिया था। युसूफ मेहर अली इससे पहले 'साइमन वापस जाओ' का भी नारा दे चुके थे। बहरहाल, काँग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव से बौखलाई अँग्रेज सरकार ने भारतीय नेताओं की रात को ही गिरफ्तारी शुरू कर दी थी। गांधी, नेहरू, मौलाना आजाद, पटेल आदि तमाम नेता रात को ही गिरफ्तार कर लिए गए। गिरफ्तारी के बाद जब गांधीजी को अँग्रेज पुलिस लेकर जा रही थी, तब उन्होंने एक पर्ची पर काँग्रेस कार्यकर्ताओं को संदेश दिया था, जिस पर उन्होंने अँग्रेजी में संदेश दिया था, डू ऑर डाइ , जिसे हम 'करो या मरो' के रूप में जानते हैं। इसके बावजूद अगले दिन निर्धारित वक्त नौ अगस्त 1942 को ग्वालिया टैंक मैदान में काँग्रेस नेताओं की भीड़ जुटी, जिसे कस्तूरबा गांधी ने संबोधित किया और उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में वापस लौट रहे लोगों की नासिक, पुणे और नागपुर स्टेशनों पर गिरफ्तारियाँ हुईं, लेकिन राममनोहर लोहिया फरार होने में कामयाब रहे। चूँकि उस दौरान पुलिस की गतिविधियाँ तेज थीं, मुंबई से ट्रेन या मोटर से बाहर जाना खतरे से खाली नहीं था, लिहाजा लोहिया ने मुंबई में ही भूमिगत रहकर आंदोलन को बढ़ाना तय किया। इसी दौरान उन्हें विचार आया कि भारत छोड़ो

[1]मीडिया सलाहकार, आकाशवाणी समाचार, नई दिल्ली. ईमेल : uchaturvedi@gmail.com
[2]असिस्टेंट मैनेजर, रिसर्च एंड डेवलपमेंट, स्केलनट, गुरुग्राम, हरियाणा. ईमेल : soumyachaturvedi1999@gmail.com

आंदोलन की गतिविधियों के समाचारों का प्रसारण होना चाहिए। इस दौरान उनका संपर्क बीस साल के गुजराती युवक विट्ठलदास माधवजी खाखड़ से हुआ। मधुकर उपाध्याय (2017) लिखते हैं कि इस दौरान कुछ युवाओं की काँग्रेस के नेताओं के भाषणों के प्रचार-प्रसार को लेकर बैठक हुई, जिसकी अगुआई निश्चित तौर पर लोहिया कर रहे थे। उन्हें बाबूभाई खाखड़, विट्ठलदास झवेरी, ऊषा मेहता और नरीमन अबराबाद प्रिंटर का साथ मिल गया था। 9 अगस्त, 1942 की शाम को हुई इस बैठक में आमराय बनी कि नया अखबार निकालना संभव नहीं होगा। चूँकि अँग्रेज सरकार की दमनकारी नीतियाँ तेज थीं, इसलिए माना गया कि अखबार या पत्रिका का प्रकाशन आसान नहीं होगा। बैठक में माना गया कि पुलिस की दमनकारी नीतियों की वजह से अखबार की पहुँच बढ़ाना चुनौतीपूर्ण होगा। इतना ही नहीं, उसका प्रसार सीमित ही रह सकेगा। तब तक काँग्रेस के नेता ज्यादातर अपने भाषणों के जरिये जनता से सीधा संपर्क करते थे, लेकिन अब वे जेल में थे, इसलिए तय हुआ कि उनकी आवाज को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए रेडियो ही बेहतर विकल्प हो सकता है।

इसलिए तय हुआ कि क्यों न रेडियो चलाया जाय। चूँकि उस टीम में नरीमन प्रिंटर के पास रेडियो ट्रांसमीटर का लाइसेंस था, लिहाजा इस विचार पर सहमति बन गई। उस समय तक सरकारी स्तर पर 'ऑल इंडिया रेडियो' काम करने लगा था। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के चलते रेडियो ट्रांसमीटर के लाइसेंस या तो वापस ले लिए गए थे या खारिज कर दिए गए थे। बहरहाल, इन चारों लोगों ने लोहिया के नेतृत्व में तय किया कि रेडियो ट्रांसमीटर बनाया जाय। इसमें बीस साल के नरीमन अबराबाद प्रिंटर ने अपने अनुभव का इस्तेमाल किया और इस तरह 'काँग्रेस रेडियो' बना, जिसे 'रेडियो फ्री वायस' नाम दिया गया। यह बात और है कि इसका जो पहला प्रसारण हुआ, उसे 'काँग्रेस रेडियो' के नाम से किया गया। गौतम चटर्जी (2018) अपनी पुस्तक 'अनटोल्ड स्टोरी ऑफ ब्राडकास्ट ड्यूरिंग क्विट इंडिया मूवमेंट' में बताते हैं कि काँग्रेस रेडियो की आवाज मुंबई के वायुमंडल में पहली बार 27 अगस्त, 1942 को गूँजी, जबकि मधुकर उपाध्याय (2017) ब्रिटिश अभिलेखागार के दस्तावेजों के जरिये बताते हैं कि काँग्रेस रेडियो का प्रसारण पहली बार 14 अगस्त, 1942 को हुआ था।

गौतम चटर्जी (2017) के मुताबिक इस रेडियो का पहला ट्रांसमीटर 41.78 मीटर बैंड पर प्रसारण योग्य था, जिसे बाद में 42.34 मीटर बैंड पर सेट किया गया। इस रेडियो का ट्रांसमीटर 13 अगस्त, 1942 की रात को ही तैयार कर लिया गया था। बहरहाल, इसे मुंबई की चौपाटी स्थित सी व्यू बिल्डिंग के किराये के घर में स्थापित किया गया (उपाध्याय, 2017)। 'काँग्रेस रेडियो' का पहला प्रसारण 27 अगस्त, 1942 को मुंबई के चौपाटी इलाके की एक इमारत में ट्रांसमीटर लगाकर शुरू किया गया। इस रेडियो स्टेशन के पहले प्रसारण में ऊषा मेहता ने इन शब्दों के साथ शुरूआत की—"ये इंडियन नेशनल काँग्रेस का रेडियो है, 42.34 मीटर बैंड्स पर आप हमें भारत में किसी स्थान से सुन रहे हैं।" बाद में इस ट्रांसमीटर को बालेश्वर रोड के रतनमहल बिल्डिंग में स्थानांतरित किया गया (अशरफ, 2020)।

विशुद्ध देसी प्रयास

भारत की आजादी के सबसे महत्त्वपूर्ण 'भारत छोड़ो' आंदोलन में गिरफ्तारी से कुछ नेता बच निकले थे, जिसमें राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन शामिल थे। जब गांधीजी को अँग्रेज सरकार ने गिरफ्तार किया, तब उन्होंने कहा था, 'आज से हर कोई अपने ढंग से फैसला लेने के लिए आजाद है' (उपाध्याय, 2017)। जाहिर है कि 'काँग्रेस रेडियो', जिसे बाद में 'आजाद रेडियो' कहा गया, उसके प्रसारण में भूमिगत तौर पर काम कर रहे इन नेताओं की बड़ी भूमिका थी। इस रेडियो से ऊषा मेहता की आवाज गूँजती थी, जिससे वे अँग्रेज सरकार की आँख की किरकिरी बन गईं। ऊषा मेहता एक गुजराती परिवार की बेटी थीं। उनके पिता अँग्रेज सरकार के दौरान जज रह चुके थे और उन्हें पसंद नहीं था कि वे इस आंदोलन में हिस्सा लें, लेकिन ऊषा नहीं रुकीं (ओझा, 2001)। इसके प्रसारण के बाद अँग्रेज पुलिस के कान खड़े हो गए। अँग्रेज सरकार को लगता था कि इसके प्रसारण के पीछे द्वितीय विश्वयुद्ध में अँग्रेजों के खिलाफ मोर्चा सँभाले बैठी जापानी या जर्मन ताकतों का हाथ है, जबकि 'काँग्रेस रेडियो' विशुद्ध देसी प्रयास था और इसके प्रसारणों में ज्यादातर ऊषा मेहता की उद्घोषक के तौर पर आवाज गूँजी।

आजाद रेडियो पर न सिर्फ गांधी, नेहरू, पटेल के भाषणों पर आधारित संदेशों को प्रसारित किया जाता रहा, बल्कि गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक जैसे भारतीय राजनीति के पुरोधाओं के भाषणों पर आधारित समाचार कथाएँ और कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाते रहे। इन सारे कार्यक्रमों की प्रस्तोता और निर्माता ऊषा मेहता ही थीं। उन्हें भूमिगत तौर पर राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और पुरुषोत्तम त्रिविक्रम जैसे नेताओं का साथ मिलता रहा था। यही वजह थी कि इस साधनहीन रेडियो के प्रसारणों में प्रखरता रही। एक दौर तो ऐसा भी आया कि मुंबई के आसपास के लोग इसे निर्धारित वक्त पर सुनने के लिए अपने रेडियो को ट्यून करके बैठ जाते थे। जाहिर है कि इससे तब लोगों तक काँग्रेस और आजादी के आंदोलन के संदेशों को पहुँचाने में बहुत मदद मिली।

पूरी टीम की गिरफ्तारी

ब्रिटिश सरकार के खुफिया एजेंट इस रेडियो की खोज में लगे हुए थे। इस कारण इस रेडियो ट्रांसमीटर को जगह-जगह ले जाया जाता रहा। पहले इसे मुंबई के लाबर्नम रोड के अजित विला में रखा गया, फिर सैंडर्स्ट रोड के लक्ष्मी भवन में स्थापित किया गया। इसके बाद इसे गिरगाँव बैक रोड के पारिख वाडी बिल्डिंग में छुपाया गया। सबसे बाद में उसे महालक्ष्मी मंदिर के पास पैराडाइज बिल्डिंग में रखा गया और यहीं से काँग्रेस के संदेशों का प्रसारण होता रहा। लेकिन पुलिस इसके पीछे लगातार लगी रही। पुलिस के दबाव को देखते हुए इसे मुंबई से हटाने का फैसला हुआ। इसी के तहत 12 नवंबर, 1942 को जब इसके ट्रांसमीटर को विट्ठल राव पटवर्धन नासिक लेकर जा रहे थे, तभी पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। इतिहासकारों के मुताबिक एक तकनीशियन की गद्दारी के चलते इस रेडियो को पकड़ा जा सका। इसके बाद ऊषा मेहता सहित 'काँग्रेस रेडियो' से जुड़े सभी लोगों को अँग्रेज सरकार ने पकड़ कर जेल में डाल दिया। अँग्रेज सरकार इस रेडियो से इतनी परेशान थी कि छह माह तक सभी लोगों से पूछताछ की जाती रही। इस दौरान ऊषा मेहता को अलग कोठरी में रखा गया। चूँकि उनके पिता जज रह चुके थे, अँग्रेज सरकार को लगता था कि उन्हें वह तोड़

सकती है। इसके लिए ऊषा मेहता को कई प्रलोभन दिए गए। उनसे कहा गया कि अगर वह प्रशासन का साथ देंगी, तो उन्हें अध्ययन के लिए विदेश भेजा जाएगा, लेकिन उषा मेहता ने अपनी खामोशी नहीं तोड़ी।

इस रेडियो ने पहले सिर्फ अँग्रेजी में प्रसारण किए। 27 अक्टूबर, 1942 वह पहला दिन था, जब इस रेडियो ने हिंदी में समाचार देने का ऐलान किया। इन प्रसारणों से अँग्रेज सरकार का बौखलाना स्वाभाविक था। चूँकि तब काँग्रेस के तमाम बड़े नेता जेल में बंद थे, लिहाजा काँग्रेस और उसके आंदोलन से जुड़ी खबरें अखबारों की सुर्खियों से दूर थीं, तब 'काँग्रेस रेडियो' ने ही चुनौती स्वीकार की थी। बेशक 'काँग्रेस रेडियो' को लेकर लोहिया और ऊषा मेहता का ही नाम सामने आता है, लेकिन अगर विट्ठलदास झवेरी, बाबू भाई खाखड़ और नरीमन अबराबाद प्रिंटर नहीं होते तो शायद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इस रोमांचक इतिहास पर पर्दा ही पड़ा रह जाता। लोहिया तो गिरफ्तार नहीं हुए, लेकिन अजित विला पर छापे के दौरान पुलिस ने प्रिंटर को पकड़ लिया था। प्रिंटर ही इस पूरी टीम के तकनीकी जानकार थे, लेकिन वे सरकारी गवाह बन गए, इसलिए उन्हें सजा नहीं हुई, जबकि इस मामले के पाँच आरोपियों के खिलाफ मुंबई की अदालत ने 14 मई, 1943 को फैसला सुनाया, जिसमें बाबूभाई खाखड़, चंद्रकांत झवेरी और ऊषा मेहता को जेल की सजा सुनाई, लेकिन विट्ठलदास झवेरी और शिकागो रेडियो कंपनी के नानक मोटवानी को सारे आरोपों से बरी कर दिया। नानक मोटवानी पर ट्रांसमीटर के पुर्जे मुहैया कराने का आरोप था।

आजाद हिंद रेडियो

जिन दिनों 'काँग्रेस रेडियो' ने अँग्रेजों की नाक में दम किया हुआ था, उन्हीं दिनों नेताजी सुभाषचंद्र बोस के निर्देशन में जर्मनी की राजधानी बर्लिन में 'आजाद हिंद रेडियो' की स्थापना की गई थी। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में जुटे नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने इस रेडियो को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ प्रचार के एक साधन के रूप में स्थापित किया था। गौरतलब है कि इसका प्रसारण काँग्रेस रेडियो से बहुत पहले यानी 7 जनवरी, 1942 को ही शुरू हो चुका था। जब तक नेताजी जर्मनी में रहे, तब तक इसका मुख्यालय जर्मनी में ही रहा। लेकिन जब नेताजी ने पूर्वी एशिया का रुख किया तो पहले इसका मुख्यालय सिंगापुर और फिर म्यांमार में कर दिया गया। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के कथित निधन के बाद इस रेडियो के प्रसारण का दायित्व ए.सी.एन. नांबियार ने सँभाला। उस समय वे जर्मनी में भारतीय सेना के प्रमुख थे। नेताजी इस रेडियो के जरिये पूरे देश से संपर्क करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस रेडियो के जरिये अँग्रेजी, हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगाली, पश्तो, तमिल, फारसी और तेलुगू में प्रसारण कराने का इंतजाम किया था। इसी रेडियो के जरिये उन्होंने 23 अक्टूबर, 1942 को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ युद्ध का ऐलान किया था (कुमार, 2018)।

भारत छोड़ो आंदोलन में सुभाषचंद्र बोस बेहद दिलचस्पी ले रहे थे। इसका उदाहरण 'आजाद हिंद रेडियो' पर 31 अगस्त, 1942 को उनके संबोधन में दिखता है। अपने इस लंबे संबोधन में वे कहते हैं—"कामरेडो, इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में हमारी रणनीति, परिणाम की परवाह किए बिना, अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ाई जारी रखने की होनी चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य जल्द ही ढह जाएगा और युद्ध के सभी मोर्चों में पराजय के फलस्वरूप वह टूट जाएगा और जब अंतिम विघटन होगा तो शक्ति स्वतः ही भारतीय लोगों के हाथों में आ जाएगी। हमारी अंतिम जीत अकेले हमारे प्रयासों की बदौलत ही होगी। हमारे लिए यह कम मायने नहीं रखता कि हम भारत में अस्थायी झटके झेलते हैं, विशेष रूप से तब, जब हमारा सामना मशीनगनों, बमों, टैंकों और हवाई जहाजों से होता है। हमारा काम है कि सभी बाधाओं और असफलताओं के बावजूद मुक्ति की घड़ी आने तक राष्ट्रीय संघर्ष जारी रखना" (सिंह, 2021)। इसी रेडियो से अपने एक प्रमुख संबोधन में 25 जून, 1944 को नेताजी ने कहा था—"जब काँग्रेस आजाद हिंद फौज के जवानों को भाड़े का सिपाही कहकर ताना मार रही है, वैसे समय में वीर सावरकर साहस के साथ भारत के युवाओं को फौज में शामिल होने के लिए लगातार भेज रहे हैं, यही सैनिक हमारी आजाद हिंद फौज की ताकत बन चुके हैं" (सिंह, 2021)। स्पष्ट है कि चाहे 'काँग्रेस रेडियो' हो या फिर 'आजाद हिंद रेडियो', दोनों ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में जबरदस्त भूमिका निभाई है।

रेडियो रेबेल

किसी देश के स्वतंत्रता आंदोलन में आंदोलनकारियों द्वारा भूमिगत रेडियो के इस्तेमाल का पहला उदाहरण 'काँग्रेस रेडियो' ही है। इसके करीब सोलह साल बाद क्यूबा की क्रांति में शामिल चे ग्वेरा ने 24 फरवरी, 1958 को सियेरा मैस्ट्रेरा में 'रेडियो रेबेल' की स्थापना की, जिसे गुरिल्ला रेडियो स्टेशन भी कहा जाता है। इस रेडियो ने विचारों के जरिये क्यूबा के लोगों के संगठित होने में बड़ी भूमिका निभाई। एक जनवरी 1959 को क्यूबा में क्रांति के बाद इस रेडियो को सरकारी रेडियो में शामिल कर लिया गया। 'रेडियो रेबेल' की वेबसाइट पर इस रेडियो का पूरा इतिहास दर्ज है। इसके साथ ही जिस तरह काँग्रेस रेडियो को लेकर हमारे तत्कालीन रणबाँकुरों को भागना पड़ता था, उसी तरह 'रेडियो रेबेल' के कर्ता-धर्ताओं को भी अपने ट्रांसमीटर लेकर भागना पड़ा। चूँकि क्यूबा के नेता फिदेल कास्त्रो के भाषणों पर रोक थी और समाचार पत्र उसे प्रसारित नहीं कर पाते थे, ऐसी स्थिति में 'रेडियो रेबेल' उनका महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गया। इस पर उन्होंने लंबे साक्षात्कार दिए, इसमें टेलीफोन का सहयोग लिया गया। कहीं एक जगह इसका प्रसारण होता और उसे टेलीफोन के जरिये दूसरे लोगों तक जोड़ दिया जाता था। वैसे जब 'रेडियो रेबेल' अपने चरम पर था, तब पूरे क्यूबा में विद्रोहियों ने 32 जगह पर उसके भूमिगत ट्रांसमीटर लगा रखे थे और उनके जरिये होने वाले प्रसारण को टेलीफोन लाइनों से जोड़ दिया जाता था। निश्चित तौर पर क्यूबा की जनता को क्रांति के प्रति जागरूक करने में इस रेडियो ने गंभीर सहयोग दिया। यही वजह है कि क्यूबा की क्रांति के बाद उसे आधिकारिक सरकारी रेडियो में तबदील कर दिया गया (रेडियो रेबेल, 2020)।

रेडियो फ्रीडम

इसी तरह दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद और आजादी की लड़ाई के लिए 'रेडियो फ्रीडम' की स्थापना हुई। स्मिथ (2013) के मुताबिक 'रेडियो फ्रीडम' की स्थापना 1963 में हुई। दरअसल इसकी शुरुआत 1960 में जोहांसबर्ग के दक्षिणी हिस्से में हुई पुलिस फायरिंग में 69 लोगों की मौत के बाद उभरे जनाक्रोश के समर्थन में हुई। इस रेडियो ने न सिर्फ दक्षिण

अफ्रीका, बल्कि बाद में तंजानिया, इथियोपिया, मेडागास्कर और जांबिया तक के स्वतंत्रता आंदोलन में बड़ी भूमिका निभाई। यह आंदोलनकारियों का प्रमुख मुखपत्र बनी रही। 'काँग्रेस रेडियो' को जहाँ भूमिगत स्तर पर चलाना पड़ा या 'रेडियो रेबेल' को भी गुरिल्ला ढंग से चलाना पड़ा, वहीं 'रेडियो फ्रीडम' के प्रसारणकर्ताओं को नीदरलैंड, सोवियत संघ और पूर्वी जर्मनी जैसे देशों में प्रशिक्षण मिला (लेख्गोअथी, 2010)।

निष्कर्ष

विशेष तकनीक और सहज ही तरंगों के जरिये हर जगह पहुँच की वजह से रेडियो ऐसा माध्यम है, जिसके जरिये सहज ही संदेश दिया जा सकता है। बस इसके लिए एक ट्रांसमीटर और रिसीवर की जरूरत होती है। अखबार और पत्रिका की तरह इसमें कागज, छपाई, मशीनें और छपाई के बाद उसे लोगों तक पहुँचाने के लिए टीम की जरूरत नहीं होती। श्रव्य माध्यम होने की वजह से इसकी पहुँच और इसका प्रभाव व्यापक होता है। यही वजह है कि स्वतंत्रता आंदोलन में जब भूमिगत होकर नेताओं ने इसका प्रयोग किया तो इसके अपेक्षित परिणाम मिले। गिरफ्तारी और भूमिगत अवस्था में नेताओं के चले जाने से जनता के समक्ष यह चुनौती बड़ी हो जाती है कि आखिर वह क्या करे और किससे दिशा-निर्देश ले। यह बात और है कि आठ अगस्त 1942 को गिरफ्तारी के बाद गांधीजी ने सबको अपने फैसले लेने का अधिकार होने की बात कही थी। लेकिन इस संदेश के बावजूद बड़ी संख्या में ऐसे भी लोग थे, जो अगले कदम को लेकर असमंजस में थे। 'काँग्रेस रेडियो' ने इस असमंजस को तोड़ा। अपने नेताओं के विचारों और संदेशों से भारतीय जनता ने नया संदेश लिया और उसकी वजह से भारत को बदलने के स्वप्न को साकार करने के लिए अपना जीवन लगा दिया। यही वजह है कि काँग्रेस रेडियो के जरिये स्वाधीनता आंदोलन में रेडियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका जैसी भारत में दिखती है, वैसी अगर कहीं और दिखती भी है तो वह दक्षिण अफ्रीका में 'रेडियो फ्रीडम' और क्यूबा में 'रेडियो रेबेल' के रूप में दिखती है। 'रेडियो रेबेल' की महत्ता ही है कि क्यूबा की क्रांति के बाद उसे सार्वजनिक रेडियो के तौर पर स्वीकार कर लिया गया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान 'काँग्रेस रेडियो' को अँग्रेज सरकार ने अपने लिए कितना खतरनाक माना यह इसी तथ्य से जाहिर होता है कि इसे रोकने और खोजने के लिए उसने जान लगा दी। जब इस रेडियो के संचालनकर्ता गिरफ्तार किए गए तो उन्हें कठोर सजा दी गई। 'आजाद हिंद रेडियो' ने तो भारत के बाहर भारत की अँग्रेज सरकार की तरफ से लड़ रहे भारतीय सैनिकों को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के साथ जोड़ने और भारत से बाहर समर्थन जुटाने में बड़ी भूमिका निभाई। इसी तरह कहा जा सकता है कि 'रेडियो रेबेल' और 'रेडियो फ्रीडम' ने भी अपने-अपने देशों की आजादी में गंभीर योगदान दिया।

संदर्भ

अशरफ, मो. उ. (2020). *काँग्रेस की खुफिया रेडियो सेवा, जिसने की अँग्रेजों की नींद हराम....। हेरिटेड टाईम्स* https://heritagetimes.in/congress-radio से पुन:प्राप्त

उपाध्याय, एम. (2017). *खुफिया काँग्रेस रेडियो की अनकही दास्तान*. *बीबीसी* https://www.bbc.com/hindi/india-40920994 से पुन:प्राप्त.

ओझा, एस. (2001). *होमेज टु ऊषा मेहता*. नई दिल्ली : गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति.

कुमार, डी. (2018). *आजाद हिंद फौज*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

चटर्जी, जी. (2018). *अनटोल्ड स्टोरी ऑफ ब्रॉडकास्ट डूरिंग क्विट इंडिया मूवमेंट*. नई दिल्ली : इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स.

रेडियो, फ्रीडम. स्मिथ. क्रिस. https://www.sahistory.org.za/archive/radio-freedom-history-south-african-underground-radio-chris-smith से पुन:प्राप्त

रेडियो, रेबेल. (2020). अबाउट उस. *रेडियो रेबेल्दे*. https://www.radiorebelde.cu/english/ से पुन:प्राप्त

लेख्गोअथी, से. पी. (2010). द अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस रेडियो फ्रीडम एंड इट्स ऑडियंसेज इन साउथ अफ्रीका 1963-1991. https://www.researchgate.net/publication/233504378_The_African_National_Congress's_Radio_Freedom_and_its_audiences_in_apartheid_South_Africa_19631991 से पुन:प्राप्त.

सिंह, वी. एस. (2021). "देशवासियों, लड़ते रहो! "मैं, सुभाषचंद्र बोस आजाद हिंद रेडियो पर आप को संबोधित कर रहा हूँ!" *मीडिया विजिल*. https://www.mediavigil.com/op-ed/document/historic-speech-by-subhash-chandra-bose-in-1942-from-azad-hind-radio/ से पुन:प्राप्त

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 66-72, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता के मूल्य

डॉ. बिजेंद्र कुमार[1]

सारांश

मूल्य समाज के आदर्श मापदंड हैं। समाचार माध्यमों और मूल्यों का नाभिनाल संबंध है, क्योंकि कोई सूचना किसी स्थिति या संदर्भ से जुड़े होने पर ही सार्थक होती है। मूल्यबोध आरंभ से ही भारतीय पत्रकारिता में अंतर्निहित मूलभूत विशेषता है। अधिकतर मूल्य भारतीय परंपरा से स्वाभाविक रूप से आए। कुछ पश्चिमी विचारधारा, सभ्यता और संस्कृति के प्रभावस्वरूप भी लिए गए। 'बंगाल गजट' और 'उदंत मार्तंड' दो अलग-अलग भाषाओं के पत्र इसके उदाहरण हैं। भाषाई पत्रकारिता का बुनियादी मूल्य 'हिंदुस्तान का हित' ही रहा है। भारतेंदु और द्विवेदी युग के पत्रकारों ने देश हित को सर्वोपरि मानते हुए पत्रकारिता को साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनजागरण का औजार बनाया। आगे इस परंपरा को समृद्ध करते हुए तिलक, गणेश शंकर विद्यार्थी, पराड़कर और गांधी जैसे अनेक राजनीतिज्ञों एवं पत्रकारों के नेतृत्त्व में मूल्य आधारित भाषाई पत्रकारिता ने स्वाधीनता आंदोलन को दिशा देकर देश को स्वतंत्र कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने समाज में जनसंचार की विधा के रूप में न केवल भारतीय मूल्यों का संचार किया, बल्कि वस्तुपरकता, निडरता, सत्य, पवित्रता, विश्वसनीयता, साहस, निष्पक्षता, त्याग, बलिदान और संघर्ष जैसे अपने पेशे के मूल्य भी गढ़े। एंग्लो सेक्शन प्रेस साम्राज्यवाद का समर्थक था, लेकिन भाषाई पत्रकारिता ने स्वतंत्रता की भावना, लोकमंगल, लोकशिक्षा, वैज्ञानिक चेतना, स्वदेशी, नागरिक अधिकार, कर्तव्य निर्वहन, स्वदेशप्रेम व स्वाभिमान की भावना जाग्रत की तथा मानवीय, नैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के प्रेरणादायी मूल्यों को जन-जन तक पहुँचाया। इन मूल्यों से प्रेरित होकर स्वाधीनता आंदोलन में जन-जन की भागीदारी हुई और स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। स्वतंत्रता के बाद की पत्रकारिता को ये मूल्य धरोहर के रूप में प्राप्त हुए हैं।

संकेत शब्द : पत्रकारिता के मूल्य, भाषाई पत्रकारिता, स्वदेशी, लोक मंगल, हिन्दुस्तान का हित, वैज्ञानिक चेतना, लोकशिक्षा

प्रस्तावना

ग्रीक दार्शनिकों के अनुसार मूल्य किसी व्यवहार और कार्य के मार्गदर्शक और प्रोत्साहित करने वाले मूलभूत और बुनियादी विश्वास हैं (ठाकुरता, 2020)। समाज में सही और गलत के निर्धारण के पीछे का विचार असल में मूल्य ही होता है। ये लोगों के व्यवहार को जानने और प्रोत्साहित करने में भी सहायक होते हैं (क्लिफोर्ड, 2017)। जन-जीवन की आकांक्षा और आदर्शों की सामूहिक अभिव्यक्ति होने के कारण समाज की जरूरत के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन भी होता रहता है। भारतीय समाज मूल्य-आधारित समाज व्यवस्था है। दो सभ्यताओं और संस्कृतियों के परस्पर संक्रमण की स्थिति में भी मूल्य परिवर्तन होता है जैसा कि साम्राज्यवाद के भारत में प्रवेश के बाद हुआ। साम्राज्यवाद के साथ देश में मुद्रण तकनीक आई और प्रकाशन का कार्य आरंभ हुआ। मुद्रण-प्रकाशन ने सूचना के सार्वजनिक महत्त्व को उद्घाटित किया और उसकी सामाजिक ताकत का अहसास कराया। सूचना में मूल्यबोध का होना अनिवार्य होता है। मूल्यबोध से उद्घाटित होता है कि सूचना का सार्वजनिक या सामाजिक या राष्ट्रीय महत्त्व है या नहीं। मूल्य को किसी वर्ग विशेष से नहीं, मानव की नियति से, एक जीवन दर्शन से जुड़ा होना चाहिए जो बहुजन-हिताय, बहुजन–सुखाय हो। पत्रकार घटना प्रभाव से तटस्थ नहीं हो सकता, सार्वजनिक मूल्यों से उसकी प्रतिबद्धता ही उसकी निष्पक्षता है (तिवारी एवं गुप्त, 1999)। पत्र-पत्रिकाएँ मूल्यों के न केवल वाहक होते हैं, बल्कि उनको प्रोत्साहित करने वाली प्रेरक शक्ति भी हैं। पत्र का चरित्र, उसकी मर्यादा और प्रतिष्ठा इसी में है कि वह पाठकों के प्रति ईमानदार और जनता तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह करें, क्योंकि पत्र (प्रेस) लोकतांत्रिक प्रणाली का अभिन्न अंग हैं और लोकतंत्र की सफलता के लिए मर्यादापूर्ण पत्रों का होना आवश्यक है, जो बौद्धिक, तकनीकी और अन्य सभी दृष्टि से उच्च स्तर के हों, जो स्वतंत्र, ईमानदार एवं ज्ञानवर्धक हों और समाज के लोगों का जो श्रेष्ठ है, उसे प्रोत्साहित करें तथा समाज की सेवा करते हुए भी उसका मार्गदर्शन करें (तिवारी, 1995)। स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने समाज में जनसंचार की एक नई विधा के रूप में न केवल भारतीय मूल्यों का संचार किया, बल्कि अपने पेशे के मूल्यों का निर्माण भी किया। हमारे पौराणिक आख्यानों में पत्रकारिता के मर्म की ठीक व्याख्या मिलती है। देवऋषि नारद के सूचना संप्रेषण में लोक मंगल की भावना है (श्रीधर, 2017)। भारतीय समाज और उसकी भाषाई पत्रकारिता में यह लोक मंगल की भावना आरंभ से ही रही है।

भारतीय समाज व्यवस्था को प्रगतिशील, वैज्ञानिक और आधुनिक बोध से संबद्ध करने में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। माध्यम और मूल्य दोनों ही सार्वजनिक क्षेत्र से संबंधित हैं, यही कारण है कि स्वाधीनता आंदोलन की पत्रकारिता मूल्यों से सज्जित पत्रकारिता थी और इसलिए समाज पर उसका असर भी अधिक हुआ। मूल्यनिष्ठ होने के कारण इस युग में पत्रकारिता स्वाधीनता आंदोलन का विश्वसनीय उपकरण बन गई थी, इसलिए इसे मिशनरी पत्रकारिता भी कहा गया, जिसका उद्देश्य देश को साम्राज्यवाद के शोषणकारी चंगुल से मुक्त कराना था। पश्चिमी मीडिया ने जो मूल्य व्यवस्था निर्मित की, उसमें औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक, तकनीकी विकास और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न आधुनिकता का बड़ा योगदान रहा है। भारतीय पत्रकारिता ने कई पश्चिमी मूल्यों का

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल : bijender.du@gmail.com

भारतीयकरण करते हुए अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा के परिप्रेक्ष्य में उनका विवेचन किया और परिवेश की आवश्यकता के अनुसार उनको परिवर्तित किया। आजादी से पूर्व देश में दो किस्म के अखबार थे। एक राष्ट्रीय धारा थी और दूसरी एंग्लोसेक्शन अँग्रेजी प्रेस। राष्ट्रवादी लोगों द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय धारा के अखबारों का मिशन देश को आजाद कराना था। जाहिर है ये ब्रिटिश सत्ता के विरोधी थे। लेकिन एंग्लोसेक्शन प्रेस की मिल्कियत विदेशी थी। उन्हें किसी मिशन से मतलब नहीं था। ऐसे प्रेस खबरों के व्यापारी थे (सिन्हा, 1997)। औपनिवेशिक काल में मिशनरी और प्रोफेशनल पत्रकारिता के मूल्य और प्राथमिकताएँ अलग-अलग थीं। तमाम राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संक्रमण के औपनिवेशिक काल में पत्रकारीय मूल्यों ने न केवल अपने समकालीन समाज और राजनीति को दिशा दी, बल्कि भावी पत्रकारों की पीढ़ी का मार्गदर्शन भी किया। 20वीं सदी में स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता की एक हस्तक्षेपकारी भूमिका थी। स्वाधीनता, लोकमंगल, लोकशिक्षण, लोकसेवा, जन-जागरण, समाज–सुधार, देशप्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता, नैतिकता, देशप्रेम, त्याग, बलिदान, जीवटता, समानता और बंधुता जैसे राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को भाषाई भारतीय पत्रकारिता ने संप्रेषित और स्थापित किया। स्वतंत्रता आंदोलन के समय पत्रकार रचनाकार और स्वाधीनता सेनानी थे, जो पत्रकारिता और स्वतंत्रता आंदोलन दोनों में सक्रियता से अपना योगदान दे रहे थे। उनके समक्ष प्रमुख चुनौती थी कि व्यापक जनमानस को स्वाधीनता आंदोलन से जोड़कर कैसे स्वतंत्रता के पथ पर अग्रसर किया जाए।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में शोध प्रविधि की दृष्टि से ऐतिहासिक दृष्टि का प्रयोग किया गया है। इस पद्धति के अंतर्गत पत्रकारिता के विकास, सिद्धांत, पत्रकारों और पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री का विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि के प्रयोग से तत्कालीन राजनीति, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य के साथ पत्रकारिता के विविध पक्षों को भी समझने का प्रयास किया गया है। सामग्री का चयन और अवलोकन उसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया गया है, जिसकी वर्तमान संदर्भ में भी सार्थकता है। भारतीय पत्रकारिता के दो शताब्दी से अधिक के इतिहास की सामग्री का चयन विषय की जरुरत को ध्यान में रखकर किया गया है, ताकि समग्र कालखंडों की पत्रकारिता में अंतर्निहित मूल्यों का संधान करके उनकी समसामयिक भूमिका की सार्थकता का अवलोकन किया जा सके। सामग्री की गुणवत्ता और मात्रात्मक पक्ष के मध्य भी संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है। शोध आलेख की सामग्री को विभिन्न कालखंडों में विभाजित कर विश्लेषित किया गया है, ताकि विभिन्न कालखंडों की पत्र–पत्रिकाओं और उनके मूल्यों का वस्तुपरक आकलन किया जा सके।

पत्रकारिता के बुनियादी मूल्य

मूल्यबोध भारतीय पत्रकारिता में अंतर्निहित एक मूलभूत विशेषता है। यह अँग्रेजी और हिंदी दोनों के प्रथम प्रकाशक-संपादक की कार्यप्रणाली, उद्देश्य और विषय चयन से साबित होता है। जेम्स ऑगस्टस हिकी का 'बंगाल गजट' हो या पंडित युगल किशोर शुक्ल का 'उदंत मार्तंड', दोनों ने ही मूल्य आधारित पत्रकारिता की नींव रखी। नैतिकता और देशहित वाली पत्रकारिता ने आगे चलकर साम्राज्यवादी व्यवस्था के शोषण, अन्याय और अत्याचार के विरोध में देशप्रेम, राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के मूल्यों की पैरवी की। जेम्स आगस्टस हिकी आरंभ से ही मूल्य समर्पित पत्रकारिता के हक में खड़े दिखाई देते हैं। कंपनी के प्रति शिकायतों को व्यक्त करना और कर्मचारियों के निजी जीवन के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना इनका मूल उद्देश्य था। हिकी ने यह दृष्टांत पेश किया कि जिन करतूतों को हाकिम गोपनीय रखना चाहते हैं, उनको समाज के सम्मुख प्रगट करना पत्रकारिता का दायित्व है, भले ही इसके लिए कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े (श्रीधर, 2017)। वायसराय हेस्टिंग्स की आलोचना का दुष्परिणाम हिकी को झेलना पड़ा। हिकी ने पहले अंक में लिखा—"मुझे अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता मोल लेने हेतु अपने शरीर को दास बनाने में प्रसन्नता होती है" (तिवारी, 1995, पृ. 18)। इससे कंपनी विरोधी चेतना विकसित हुई। हिकी कई तरह से जीवंत प्रिंट उद्योग के आवश्यक तत्त्व स्वतंत्रता का प्रतीक था। यह वह स्वतंत्रता है जिसे 'इस' दुनिया के हिकी चाहते हैं। अपनी मर्जी से लिखने की स्वतंत्रता (कोहली, 2013)। ईस्ट इंडिया कंपनी की आलोचना का दंश हिकी को झेलना पड़ा। 1782 में सरकार ने उनका छापाखाना और संपत्ति जब्त कर ली। यातनाएँ भी दी गईं, लेकिन हिकी ने अपने विचारों में कोई परिवर्तन नहीं किया और अपने पत्र का संपादन करते रहे। कुछ समय पश्चात् उन्होंने बंगाल छोड़ दिया (जैन, 1987)।

हिकी के बाद भारत में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला चल निकला। 1784 में 'कलकत्ता गजट', 1785 में 'मद्रास कोरियर', 1789 में 'मुंबई हैराल्ड' जैसे अँग्रेजी के पत्र प्रकाशित हुए। समाचार-पत्रों की ताकत को देखते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1795 में मद्रास में पहली बार समाचार-पत्रों के नियमन के लिए कानून बनाया। 1816 में गंगाधर भट्टाचार्य ने 'बंगाल गजट' से भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों के प्रकाशन की नींव रखी। 1821 में समाज-सुधारक राजा राममोहन राय ने 'मिरात उल अखबार' और 'संवाद कौमुदी' के माध्यम से जन जागरण अभियान शुरू किया। 17वीं सदी के दौर में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का लक्ष्य भारत के साथ व्यापार और भारत की लूट था (राय, 2016)। सन् 1766 से 1768 तक 3 सालों में 63,11,250 पाउंड का माल बाहर भेजा गया और 6,24, 375 पाउंड का माल देश में आया (दत्त, 1977)। इससे भारतीय शिल्प, हस्तकला और व्यापार पर विपरीत प्रभाव पड़ने के साथ-साथ कंपनी के कार्यों में भ्रष्टाचार ने भी जन्म लिया। इस भ्रष्टाचार को हिकी ने अपने पत्र के माध्यम से उजागर कर पत्रकारिता में सच्चाई, संघर्ष और निर्भीकता के मूल्यों की नींव रखी।

देशहित, समाज-सुधार, समानता और वैज्ञानिक चेतना

आरंभिक भाषाई पत्र-पत्रिकाओं ने अपने समकालीन परिवेश की सामाजिक विसंगतियों, अंधविश्वास और रूढ़ियों के निवारण में वैज्ञानिक व लोकतांत्रिक चेतना के साथ प्रगतिशील दृष्टिकोण को महत्त्व प्रदान किया। प्राचीन भारत के गौरव, हिंदुत्व, धर्म, सांस्कृतिक हीनता बोध के साथ सामाजिक पिछड़ापन इस समय के पत्र-पत्रिकाओं की चिंता के प्रमुख बिंदु थे। 30 मई, 1826 को कोलकाता से पंडित युगल किशोर

शुक्ल ने पहले हिंदी समाचार पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन किया। उन्होंने उसका उद्देश्य 'हिंदुस्तानियों के हित के हेत' बताया। यही मंत्र आगे जाकर भारतीय और हिंदी पत्रकारिता का मूल मंत्र बना। भारतीय पत्रकारिता अपने पारंपरिक अनुष्ठान से ही राष्ट्रभक्ति, जनसेवा और लोकमंगल के मूल्यों से अनुप्राणित होती रही है (द्विवेदी, 2020)। पत्र-पत्रिकाओं की शक्ति देखकर ईस्ट इंडिया कंपनी ने इनको नियंत्रित करने के प्रयास शुरुआत से ही कर दिए थे। 1823 में जॉन एडम ने पत्रकारिता के लिए लाइसेंस अनिवार्य करने और लाइसेंस रद्द करने का अधिकार प्राप्त किया, क्योंकि कंपनी अपनी विस्तारवादी नीति के चलते निरंतर लूट, शोषण और दमनकारी रवैया अपना रही थी।

देश की परंपरागत व्यवस्था में औपनिवेशिक नीतियों के कारण नई कृषि, प्रशासनिक और शिक्षा व्यवस्था आने से कई परिवर्तन घटित हुए। नई तकनीक, परिवहन, संचार-व्यवस्था और पूँजी आदि सब मिलकर औपनिवेशिक सत्ता के बाजारू हितों को साधने के यंत्र बन गए। भारत दिनों-दिन कंगाली के कगार पर पहुँचने लगा। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के पतन के साथ देश की चिंता इस समय के समाचार-पत्रों में दिखाई देती है। कृषि को निजी मिल्कियत में बदलना और निर्यात पर भारी शुल्क से लघु उद्योग-धंधों को भारी हानि हुई। कृषि पर दबाव बढ़ने से बदहाली, बेकारी, अकाल और बीमारी ने जनजीवन को त्रस्त कर दिया। इन सबके मूल में पत्रकारिता ने साम्राज्यवादी सत्ता और शोषण को चिह्नित किया। साम्राज्यवादी सत्ता के दिनों-दिन बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप, विस्तारवादी हड़प नीति, विभाजनकारी सोच और शोषक आर्थिक नीति ने सभी वर्गों को न केवल प्रभावित किया, बल्कि उनमें असंतोष का भाव भर दिया, जिसकी परिणति 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में दिखाई देती है। साम्राज्यवाद की हस्तक्षेपकारी भूमिका राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं,, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी थी (कौल, 2010)।

स्वदेश-प्रेम, स्वाभिमान, राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना

1857 के बाद लूट और शोषण का सिलसिला तेज हो गया। व्यापारिक वैश्वीकरण के इस दौर में बाजार राजनीतिक हितों को साधने का एक प्रमुख आधार था। इस साम्राज्यवादी व्यवस्था में नैतिकता, लोकतांत्रिक और मानव मूल्यों की कोई जगह नहीं थी (कौल, 2010)। शोषित, पीड़ित और त्रस्त जनता में आत्मगौरव का भाव भरने और भारतीय मूल्यों के लिए आवाज उठाने और स्थापित करने का काम वर्नाकुलर प्रेस ने किया। साम्राज्यवादी और शोषणकारी मूल्यों पर आधारित व्यवस्था के विरुद्ध पत्रों को संघर्ष करना पड़ा (तिवारी, 1997)। पश्चिमी और भारतीय सभ्यता संस्कृति के संक्रमण के दौर में पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष मूल्यों की सुरक्षा एक बड़ी चुनौती थी। समयानुकूल प्रासंगिक मूल्यों का निर्माण और स्थापना भी वर्नाकुलर प्रेस का एक दायित्व बन गया, क्योंकि एंग्लोसेक्शन प्रेस साम्राज्यवाद का समर्थक था। वर्नाकुलर प्रेस नई वैज्ञानिक चेतना जाग्रत करने, अधिकार प्राप्ति व कर्तव्य निर्वहन, स्वदेशप्रेम व स्वाभिमान की प्रेरणा जाग्रत करने के साथ-साथ सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के प्रेरणास्पद मूल्यों के निर्माण और स्थापना के लिए प्रतिबद्ध था। भाषाई प्रेस की प्रतिबद्धता 1857 के प्रथम मुक्ति संग्राम की पृष्ठभूमि में और उसके बाद स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

1857 : प्रथम स्वाधीनता संघर्ष और पत्रकारिता का मूल्यबोध

स्वतंत्रता, एकता और संघर्ष : 1857 के स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी खबरों को 'समाचार सुधावर्षण' ने निर्भीकता और साहस के साथ प्रकाशित किया। बहादुरशाह जफर के संदेश को प्रकाशित करने के साथ-साथ इस पत्र ने मुक्ति संग्राम में हिंदू-मुस्लिम को एक होकर शामिल होने की अपील भी की थी, जिसके कारण संपादक श्यामसुंदर सेन को मुकदमे का सामना करना पड़ा। 1857 के मुक्ति संग्राम से भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने भी एक नई करवट ली। 1857 के स्वाधीनता संग्राम में 'पयामे आजादी' एक दूसरा महत्त्वपूर्ण समाचार पत्र था, जिसने क्रांति का बिगुल बजाया। इसकी भाषा आग उगलती थी। इसके विचारों में तूफान था और अँग्रेज इस पत्र की चिंदी भी नहीं देखना चाहते थे (तिवारी, 1997)। भाषाई पत्रकारिता में स्वतंत्रता, निर्भयता, साहस, एकता और जनजागृति के भावों को देख लॉर्ड कैनिंग ने 'गैगिंग एक्ट' लगाकर प्रिंटिंग प्रेस को नियंत्रित करने और उसमें समाचार पत्रों के लाइसेंस रद्द करने का प्रावधान किया। इस कठोर कानून के कारण कुछ समय के लिए पत्र प्रकाशन की गति अवरुद्ध हो गई, लेकिन 1857 के मुक्ति संग्राम में भाषाई पत्रकारिता ने सच्चाई, निडरता, साहस और संघर्ष के कई ऐसे मूल्य गढ़े जो आगे चलकर पत्रकारिता की आधारभूमि बने।

भारतेंदु युग : लोकमंगल, लोकशिक्षा और देशहित : पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से इस समय भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों में एक संक्रमण की स्थिति दिखाई देती है, जिसके कारण इस समय की पत्रकारिता युगधर्म और आवश्यकता के अनुसार परंपरागत और नवीन मूल्यों को कसौटी पर कसती हुई उनका समर्थन और विरोध करती है। भाषाई पत्रकारिता के समक्ष इस समय एक और तो 'वसुधैवकुटुम्बकम', 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' व 'हिंदुस्तानियों के हित' की बात करने वाली भारतीय संस्कृति और पत्रकारिता की परंपरा है तो दूसरी ओर व्यक्तिवादी, उपभोक्तावादी, बाजारवादी मूल्यों की वकालत करने वाली पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति है। हिंदी के आरंभिक पत्रों ने समग्र जातीय चेतना को आत्मसात कर समाज के सांस्कृतिक-राजनीतिक उन्नयन में सक्रिय सहयोग दिया (तिवारी, 1995)। 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी के बाद सत्ता ब्रिटिश क्राउन के पास जाने से साम्राज्यवादी सरकार के लूट और दमन का सिलसिला और तेज हो गया। अल्प समय के लिए पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी रणनीति को थोड़ा परिवर्तित करते हुए एक और जहाँ आर्थिक शोषण और दमन के लिए ब्रिटिश शासन की आलोचना की, वहीं कुछ जनहित कार्यों के लिए उनकी थोड़ी प्रशंसा भी की।

सत्य, न्याय और आत्मगौरव : भारतेंदु और उनके आसपास कई रचनाकार पत्रकार थे। उन्होंने नए-नए विषयों पर लेखन के साथ-साथ भाषा के पक्ष पर भी काम किया और ऐसे नए मूल्यों का निर्माण किया जो समय के अनुकूल थे। भारतेंदु के दौर में 'कविवचन सुधा' (1867), 'अल्मोड़ा अखबार' (1870), 'बुद्धि विलास' (1870), 'भारत मित्र' (1877), 'उचित वक्ता' (1978), 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1870) तथा 'बाला बोधिनी' आदि साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं में रूद्रदत्त शर्मा, बालकृष्ण भट्ट, सदानंद मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, राजा रामपाल सिंह, प्रताप नारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, देवकीनंदन

खत्री और बाबू जगन्नाथ दास आदि प्रबुद्ध प्रकाशक-संपादकों ने इस दौर में शिक्षा, धर्म, समाज-सुधार, महिला-उत्थान, अंधविश्वास, रूढ़ियों, आर्थिक दुर्गति, टैक्स, अकाल, बालिका विवाह, विधवा-विवाह आदि विषयों पर जनजागृति अभियान चलाया। समग्रता में इन पत्र-पत्रिकाओं का लक्ष्य भारतवर्ष का हित ही था, जिसकी नींव 'उदंत मार्तंड' ने रखी थी। इस समय के सामाजिक और धार्मिक सुधार से जुड़े आंदोलनों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान, स्वदेशप्रेम, स्वदेशी, राष्ट्रीय निष्ठा, विश्व बंधुत्व, एकता, स्वाभिमान, समानता, प्राचीन गौरव का संचार करने के साथ-साथ प्रचलित रूढ़ियों, अंधविश्वासों का विरोध किया गया, जिसकी अभिव्यक्ति इस समय की पत्रकारिता में हुई। भारतेंदु ने पत्रकारों को सच्ची बातों का प्रकाशक और जन सामान्य का अधिवक्ता बताया (तिवारी, 1997)। भारतेंदु और उनकी पीढ़ी के पत्रकारों को चतुर्मुखी दायित्वों का भार उठाना पड़ा। जीवन की गतानुगतिकता, कूपमंडूकता, संकीर्णता और स्वार्थ परायणता के जाल को छिन्न-भिन्न कर उन्हें समानता, स्वतंत्रता, न्याय और सत्य के उदात्त मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करना था (तिवारी, 1997)।

स्वदेशी की स्थापना : भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1867 में अपने सत्त्व को पहचानने, कर के बोझ से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करने और स्त्री-पुरुष में समानता पर बल देने का आवाहन किया। 1880 में 'उचित वक्ता' ने कर्तव्य-निष्ठा और धर्म की रक्षा हेतु संपादकों को निडर होने का आवाहन किया। वस्तुत इस समय की राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से संदर्भित हिंदी पत्रकारिता ने देशवासियों की नस-नस में स्वतंत्रता, समानता और विश्व बंधुत्व की भावना का संचार किया (तिवारी, 1997)। राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल रूप प्रदान करते हुए 'सारसुधानिधि' ने राष्ट्र उन्नति के लिए राष्ट्र के नागरिकों के राजनीतिक संस्कार को मूलाधार बताया। पत्र-पत्रिकाओं की देशप्रेम, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की आकांक्षा को देखते हुए लॉर्ड लिटन ने 1876 में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया, जिसका भाषाई पत्रकारिता ने विरोध किया। विरोध के कारण लॉर्ड लिटन ने इस कानून को वापस लिया। भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष में भाषाई पत्रकारिता संपूर्ण विश्व भर में बड़ी भूमिका निभाने के नाते जानी जाती है (जोशी, 1997)। भारतेंदु जी अपने युग के केंद्र बिंदु थे जो भाषा, संस्कृति और स्वाधीनता के अतिरिक्त नर-नारी की समानता, करों के कर्ज से मुक्ति पाने आदि विषयों पर निरंतर लिखते और लिखवाते रहे (पतंजलि, 1997)। भारतीय भाषाई पत्रकारिता का यह आरंभिक समय था और भाषा के साथ पत्रकारिता भी आकार ग्रहण कर रही थी, इसलिए दोनों जगह पर एक प्रतिमान स्थापित करने की चुनौती और जिम्मेदारी थी। भारतेंदु मंडल ने इस जिम्मेदारी का निर्वाह बहुत कुशलता के साथ किया। आदि पर्व के पत्रकारों की साधना का एकांत लक्ष्य साम्राज्यवादी अभिशाप से मुक्ति था। इसके लिए वे बड़ी से बड़ी कठिनाई झेलने को तैयार रहते थे और बड़े से बड़े प्रलोभन उन्हें पदच्युत करने में विफल रहे (पतंजलि, 1997)। पाश्चात्य सभ्यता के संक्रमण और पश्चिमी प्रौद्योगिकी व संस्कृति के भौतिकवादी मूल्यों के आक्रमण के समय पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष कई तरह की चुनौतियाँ थीं। भारत जैसे परंपरागत सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचे वाले समाज को इसके लिए न केवल तैयार करना था, बल्कि उनमें स्वदेशी और स्वतंत्रता की नई ऊर्जा का संचार भी करना था। प्रौद्योगिकी क्रांति और पूँजी ने पुराने तौर-तरीके और सामाजिक राजनीतिक व्यवहार में परिवर्तन किया (कौल, 2010)।

नागरिक अधिकार, कर्तव्यपरायणता और प्रजातांत्रिक मूल्य : 1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के साथ देश में राजनीतिक गतिविधियाँ बढ़ने लगीं। स्वतंत्रता, लोक संप्रभुता, लोकतांत्रिक सरकार, स्वराज और नागरिक अधिकार संबंधी राजनीतिक मूल्य भले ही पश्चिमी संपर्क और विमर्श से भारतीय परिधि में आए हों, लेकिन उनको राष्ट्रीय–सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरत के अनुसार पल्लवित-पुष्पित और स्थापित करने में राजनीतिक कार्यकर्ताओं, नेताओं और पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेंदु युग के पश्चात् महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन पत्रकारिता में राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों में तीव्रता आई। ब्रिटिश शासन भारतीय स्वतंत्रता और मूल्यों के विरोध में खड़ा रहा, लेकिन पत्र-पत्रिकाओं ने पूरी कर्तव्यनिष्ठा से इन मूल्यों के समर्थन में अपने दायित्व का निर्वाह किया। बंगाल विभाजन ने राजनीतिक गतिविधियों को तेज कर दिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कालीन पत्रकारिता में बंगाल को लेकर राष्ट्रीय प्रेम और एकता का स्वर सुनाई दिया।

द्विवेदी युग : ज्ञान, विवेक और जातीय निष्ठा

द्विवेदी युग का पत्रकार एक साथ कई भूमिकाओं में दिखाई देता है। वह स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार, संपादक, प्रकाशक के साथ समाज सुधारक की बहुआयामी भूमिकाओं में विभिन्न मोर्चों पर कार्यरत है। इस युग के केंद्रबिंदु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी संपादक, न्यायप्रिय समालोचक, कर्तव्यपरायण सुधारक और परिश्रमी निबंध लेखक थे। उन्होंने भाव के बजाय ज्ञान और विवेक को महत्त्व प्रदान किया (मेहता, 2006)। भाषा के प्रति उनका विशेष आग्रह था। 1903 में 'सरस्वती' के संपादन का कार्यभार सँभालने के बाद उन्होंने भाषिक संस्कार और भाषाई मूल्यों के प्रति विशेष ध्यान दिया। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से संस्कारित लेखकों की एक टीम का निर्माण किया। वे एक सिद्धांत पालक कुशल व्यक्ति थे और मौलिक विचारों और सिद्धांतों की व्यावहारिक रूप से स्थापना का काम करते थे (मेहता, 2006)। राजनीति और सामाजिक उग्रता को इस युग की पत्रकारिता ने एक नई पहचान दी। पत्रकारिता में निर्भरता और जुझारूपन का मूल्यबोध इस युग में अधिक परिपक्व हुआ है। 1899 में बालमुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र' का संपादन सँभाला। गुप्तजी युग चेतना के प्रति सचेत थे और उनकी जातीय निष्ठा बलवती थी इसलिए स्वभाविक था कि उग्र राष्ट्रीयता ही पत्रकारिता की नीति बने (मेहता, 2006)।

स्वराज, संघर्ष, मानवता, एकता और भाईचारा : 19वीं सदी के पश्चात् स्वाधीनता आंदोलन को तीव्र करने में पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 'अभ्युदय', 'वसुंधरा', 'हिंदुस्तान' आदि ने उदारवादियों की नीतियों की आलोचना करते हुए स्वतंत्रता और स्वराज का आह्वान किया। हिंदुस्तान लिखता है—''स्वराज एक राष्ट्र के लिए उसी प्रकार है जिस प्रकार शरीर के लिए आत्मा, जो मनुष्य को जीवित रखने के लिए उससे पृथक् नहीं की जा सकती।'' इस दौर के क्रांतिकारी और राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं ने देशभक्ति का शंखनाद कर साहस और

स्वतंत्रता के विचारों को जनता में फैलाया (मेहता, 2006)। साम्राज्यवादी रंगभेद, जातिभेद, असमानता और भेदभाव के विरुद्ध समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञ और पत्रकारिता तीनों ने मुखर होकर इस समय आवाज उठाई। द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाओं ने समानता और बंधुत्व के मूल्यों की वकालत करते हुए राजनीतिक और प्रशासनिक भेदभाव का विरोध किया। औपनिवेशिक शासन की भेदभावकारी नीतियों के कारण भारतीयों के साथ प्रशासनिक सेवा, राजनीति, सरकारी नौकरियों, सेना, पुलिस, न्याय व्यवस्था और शिक्षा आदि सभी जगह भेदभाव किया जाता था और उन्हें उच्च पदों से वंचित रखा जाता था। भारतीय समाज में भी जातिवाद, लिंगभेद, अस्पृश्यता जैसी समस्याओं के कारण समानता, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी हो गई थीं। स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने लगातार इस दिशा में प्रयास किए जिसे समाचार पत्र–पत्रिकाओं ने निरंतर प्रकाशित और प्रोत्साहित किया। इस समय के समाचार पत्र समानता, स्वतंत्रता, बंधुता और सामाजिक न्याय के साथ-साथ प्रजातांत्रिक मूल्यों के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं।

आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और नैतिक बल का संचार : 'कवि वचन सुधा' और 'आर्यमित्र' ने जिस स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना की थी, उसे द्विवेदी युग की पत्रकारिता ने स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुख मूल्य के रूप में स्थापित किया। देश के आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण और उसे विदेशी माल के आयात की मंडी बना देने से भारतीय अर्थव्यवस्था आयात आधारित हो गई थी। इस कारण परंपरागत भारतीय उद्योग-धंधे, हस्तकला, दस्तकारी और शिल्पकला विनाश के कगार पर पहुँच गए थे। देश का आत्मनिर्भर ग्रामीण ढाँचा कमजोर हो गया था, जिससे कृषि पर दबाव बढ़ा और परिणामस्वरूप बेकारी ने गरीबी में वृद्धि कर प्रति व्यक्ति आय को कम कर दिया था। इन सबके लिए पत्रकारिता ने साम्राज्यवादी शोषण और दमन को एक मात्र कारण मानकर उसका विरोध करते हुए स्वराज्य और स्वदेशी का समर्थन किया। इस युग की पत्रकारिता में जनता में नैतिक बल का संचार करने के लिए सच्चाई, चरित्र बल, ईमानदारी, मानवीयता, परोपकार, उदारता, परहित, आत्मगौरव, आत्मसम्मान जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में भी पत्र-पत्रिकाओं ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। सामाजिक और नैतिक अवमूल्यन और अपसंस्कृति इस युग की पत्रकारिता की चिंता का मुख्य विषय है। 'आज' के संपादक कमलापति त्रिपाठी ने लिखा कि पत्रों से आशा की जाने लगी है कि वह जनता को अधिकारों का बोध कराएँ। उनकी प्राप्ति के लिए युक्ति बताएँ। उनके अधिकारों का हनन करने वालों से युद्ध ठाने और इस प्रकार के जन-जीवन के प्रहरी का काम करें। क्रमश: यह भी माना जाने लगा है कि वह व्यक्ति और समाज के पारस्परिक कर्तव्य की सरणी का निर्माण करें और उन पर आधारित नैतिक मूल्यों को आकार प्रदान करें जिनके द्वारा जीवन का मूल्यांकन संभव हो (त्रिपाठी, 1970)।

गांधी युग : सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और उच्च पत्रकारीय आदर्श

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में गांधीजी का प्रवेश हुआ। उन्होंने भारतीय राजनीति में सत्य, अहिंसा, सत्यागह, उच्च नैतिक और सामाजिक मूल्य को प्राथमिकता देते हुए साध्य की प्राप्ति में साधन की पवित्रता पर सर्वाधिक बल दिया। गांधीजी ने अपने अनुभव से पत्रकारिता के उच्च सिद्धांत बनाए और पत्रकारों ने उनका अनुसरण किया। गांधीजी ने पत्रकारिता में निरंकुशता का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि पत्रकार स्वयं पर अंकुश रखें। गोपनीयता और विश्वासभंजन न करें। महात्मा गांधी एवं उनके समकालीन पत्रकार संपादक, प्रकाशक, स्वतंत्रता के मिशन के सिपाही और मार्गदर्शक थे, इसलिए मूल्यों के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। गांधीजी के अनेक राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्य स्वाधीनता संग्राम की आधारभूमि हैं। गांधीजी की पत्रकारों के लिए बनाई गई दायित्वों की सूची, प्रतिमानों की व्याख्या और आचार-संहिता के तत्त्व पराधीन और स्वाधीन देश के पत्रकार एवं पत्रकारिता के लिए अनिवार्य माने गए हैं (गोयनका, 2016)। गांधीजी ने स्वयं 'इंडियन ओपिनियन', 'मुंबई क्रॉनिकल', 'हरिजन' और 'यंग इंडिया' जैसे पत्रों का संपादन और प्रकाशन किया। वह विभिन्न भाषाओं के बीच भारतीय पत्रकारिता के मूल्यों के प्रवर्तक पुरुष के रूप में सामने आए। महात्मा गांधी ने अपना तीन-चौथाई जीवन अखबार निकालकर और संपादकीय लिखकर बिताया (पतंजली,1997)। 'प्रताप' इस युग का ऐसा पत्र था, जो गांधीवादी और क्रांतिकारी मूल्यों को एक साथ लेकर चला। 'प्रताप' में अश्लील विज्ञापन को दूर रखा जाता था, ताकि इस पेशे की पवित्रता पर कोई आँच न आए। स्वाधीनता के बड़े लक्ष्य और पत्रकारिता के उच्च आदर्शों की स्थापना के लिए वे बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने में पीछे नहीं हटे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से कभी समझौता नहीं किया। 'प्रताप' उनके लिए अखबारनवीसी नहीं राष्ट्रीय जनजागरण का अभियान था (बहुवचन, 2016)।

स्वाधीनता, स्वशासन, स्वसंस्कृति, स्वभाषा और पवित्रता : गांधीजी ने पत्रकारिता के माध्यम से स्वतंत्रता, लोक सेवा, समाज सुधार, आत्मसंयम, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, समानता, लोकजागरण, ईमानदारी, साहस, संयम, संतुलन और निष्पक्षता जैसे राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और पत्रकारीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की और पत्रकारिता को परिवर्तन का आधार बनाया। अंतिम व्यक्ति की आवाज और समाचार पत्रों को उनके पक्ष का हथियार बनाने का काम भी गांधीजी ने किया। यह उनके नेतृत्व का ही प्रभाव था कि वह युगीन पत्रकारिता के मात्र योद्धा पत्रकार नहीं थे, वरन् एक साथ राजनीतिक कार्यकर्ता, आंदोलनकारी, साहित्यकार और सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका निभा रहे थे। गांधीजी का ध्येय तो स्वराज्य था जिसमें स्वशासन, स्वसंस्कृति, स्वभाषा के साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी और पत्रकारिता इस राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति का साधन थी। गांधी का उद्देश्य पवित्र था, अपने देश को स्वतंत्र कराना या इसे प्राप्त करने के साधन के रूप में पत्रकारिता को भी पवित्र और शुद्ध होना था। गांधीजी ने जिस राष्ट्रीय चेतना की रचना की उसमें पूर्ण रूप से पवित्रता, शुद्धता, लोकहित, लोकसेवा, नैतिकता, स्वार्थ विसर्जन और मानवीयता विद्यमान थी (गोयनका, 2016)।

सेवा भाव और अंतिम जन की पत्रकारिता : गांधीजी ने अपने सामाजिक, राजनीतिक मूल्यों को पत्रकारिता में भी जिया और प्रतिष्ठित किया। स्वतंत्रता आंदोलन में निम्न और कमजोर सामाजिक वर्गों को जोड़ने के लिए अस्पृश्यता एक प्रमुख बाधा थी। इसके निवारण के लिए उन्होंने 'हरिजन' पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। स्वराज प्राप्ति के लिए उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता निवारण केवल समाज सुधार का एजेंडा था और इसके निवारण को उन्होंने मानवता से जोड़कर वैश्विक रूप से भी प्रासंगिक

बना दिया था। गांधीजी पश्चिमी पत्रकारिता से परिचित थे, इसलिए उनके पत्रकारिता के मूल्य में पश्चिमी और भारतीय मूल्यों का सम्मिश्रण दिखाई देता है। दोनों सभ्यता संस्कृति के मूल्यों के सम्मिश्रण में से सेवा भाव को उन्होंने सामान्य सूत्र के रूप में पत्रकारिता के लिए महत्त्वपूर्ण माना। उनकी मान्यता थी कि पत्रकारिता सेवा भाव के लिए होनी चाहिए, जिसमें निजी स्वार्थ या लाभ के बजाय व्यापक राष्ट्रीय, सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों को महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए। उन्होंने कमजोर से कमजोर वर्गों की वकालत की, जिसमें स्वदेशप्रेम, मानव धर्म और राष्ट्रधर्म जैसे मूल्य समाहित हैं। पत्रकारिता उनके लिए इन मूल्यों को अंतिम जन तक ले जाने का साधन थी। गांधीजी लिखते हैं कि 'नवजीवन' को प्रकाशित करने का उद्देश्य व्यवसाय करना नहीं है, अपितु उनके माध्यम से जनता की थोड़ी बहुत सेवा और जनता में नवजीवन का संचार हो जाने पर यथाशक्ति सीधी और सरल राह बताते हुए जटिल प्रश्नों को सुलझाने में मदद करना है (गोयनका, 2016)।

पत्रकारिता के मूल्य राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानवीय और नैतिक मूल्यों से मिलकर निर्मित होते हैं। गांधीजी के समय की पत्रकारिता इसका प्रमाण है, जिसमें अपने समसामयिक परिवेश और जनमानस की स्वतंत्रता की आकांक्षा को सच्चाई, ईमानदारी, निर्भीकता और शिष्टता के साथ अपना उत्तरदायित्व समझते हुए उन्होंने वाणी दी। गांधी की प्रेरणा से पत्रकारिता करने वाले बाबूराव विष्णु पराड़कर पत्र में अश्लील समाचारों को देना एक तरह का अपराध समझते थे तो गणेश शंकर विद्यार्थी ने पैसे के बजाय लोकसेवा को प्राथमिकता दी। स्मरणीय है कि देश की अस्मिता के उद्धार की सहज चिंता से राजनीति से जुड़ना तब गर्व का विषय माना जाता था (पतंजलि, 1997)। गणेश शंकर विद्यार्थी, विष्णु पराड़कर, खुशहाल चंदखुरसंद आदि मालिक-प्रकाशक-संपादकों का एक ऐसा वर्ग था, जो पत्रकारिता में स्वतंत्रता के मिशन भाव से संचालित था और उसके लिए समाज को जाग्रत करना उत्तरदायित्व समझता था। किसी-न-किसी प्रकार के लोकदायित्व का अहसास उन्हें था, ऐसे में प्रकाशक और संपादक के बीच केवल मालिक और नौकर के रिश्ते नहीं थे। एक सामाजिक दायित्व, एक लक्ष्य प्राप्ति की कामना, सबके लिए एक साझी समझ उनके बीच एक सेतु का काम करते थे (कौल, 2010)। इन्हीं सामाजिक सरोकारों के कारण ही पत्रकारिता में सामाजिक प्रतिबद्धता स्वतंत्रता आंदोलन का महत्त्वपूर्ण मूल्य बनकर उभरी। मानव-मानव में धर्म, जाति, रंग, लिंग को 'प्रताप' ने दूर करने में प्राण-प्रण से भूमिका निभाई। संभवत उस समय तक देश का कोई संपादक ऐसा नहीं था, जिसने इतनी स्पष्टता के साथ अपने उद्देश्यों को अपने पाठकों के समक्ष रखा (चतुर्वेदी, 2009)।

20वीं सदी के आरंभ से ही वैश्विक एवं भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम तेजी से बदलने लगा। इस बदलाव में पत्र-पत्रिकाओं की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बंगाल विभाजन के बाद भारतीय राष्ट्रीय राजनीति तेजी से परिवर्तित हुई और साम्राज्यवाद की विभाजन की नीतियों को जन-जन के बीच ले जाने और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनमत का निर्माण करने में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण काम किया। उदारवादी राजनीति के विरुद्ध लाल-बाल-पाल की उग्र रणनीति और क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने स्वतंत्रता आंदोलन को नया आयाम दिया। प्रथम विश्वयुद्ध, होमरूल आंदोलन और गांधीजी के असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन की वाहक भी हिंदी पत्रकारिता बनी। चौरीचौरा कांड, साइमन कमीशन, काँग्रेस के अधिवेशन, काकोरी कांड, भगत सिंह और उनके साथियों की फाँसी, गोलमेज सम्मेलन, गांधी-इरविन पैक्ट, नेवी विद्रोह, द्वितीय विश्वयुद्ध और काँग्रेस की गतिविधियों पर भाषाई पत्रकारिता ने निरंतर नजर बनाए रखी और साम्राज्यवाद के विरुद्ध अलख जगाने के अपने दायित्व से इंच मात्र भी पीछे नहीं हटी। राजनीति में अधिक रुचि रखने का एक लाभ पत्रकारिता को यह मिला कि अन्य खुले और लोकतांत्रिक समाज के अखबारों का जो चरित्र बना वह भारतीय अखबारों का नहीं बना। लोकसेवा और लोक शिक्षण का भारतीय पत्रकारिता का यह मूल स्वभाव राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभावों और दबावों के बीच भी दीर्घ अवधि से किसी-न-किसी रूप में आज तक बना हुआ है।

निष्कर्ष

स्वाधीनता आंदोलन को दिशा देने और गति प्रदान करने में भारतीय मूल्य और पत्र-पत्रिकाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इस आंदोलन में भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने समाज में जनसंचार की एक नई विधा के रूप में न केवल भारतीय मूल्यों का संचार किया, बल्कि अपने पेशे के मूल्य भी गढ़े। भारतीय मूल्य व्यवस्था को प्रगतिशील, वैज्ञानिक और आधुनिक बोध से संबद्ध करने में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। औपनिवेशिक काल में मिशनरी और प्रोफेशनल पत्रकारिता के मूल्य और प्राथमिकताएँ अलग-अलग थीं। भारतीय भाषाई पत्रकारिता आरंभ से ही मूल्यनिष्ठ रही है। तमाम राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध संक्रमण के औपनिवेशिक काल में भाषाई पत्रकारीय मूल्यों में निष्ठा और दृढ़ता न केवल बनी रही, बल्कि उसने भावी पत्रकारों की पीढ़ी का मार्गदर्शन भी किया। आरंभिक भाषाई पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी समकालीन परिवेश की सामाजिक विसंगतियों, अंधविश्वास और रूढ़ियों के निवारण में वैज्ञानिक व लोकतांत्रिक चेतना के साथ प्रगतिशील दृष्टिकोण और मूल्यों को महत्त्व प्रदान किया। प्राचीन भारत के गौरव, हिंदुत्व, धर्म, सांस्कृतिक हीनता बोध के साथ सामाजिक पिछड़ापन इस समय के पत्र-पत्रिकाओं की चिंता के प्रमुख बिंदु थे। पश्चिमी और भारतीय सभ्यता संस्कृति के संक्रमण के दौर में पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष मूल्यों का संरक्षण और संवर्धन एक बड़ी चुनौती थी। प्रासंगिक मूल्यों का निर्माण और स्थापना भी वर्नाकुलर प्रेस का एक दायित्व बन गया, क्योंकि एंग्लोसेक्शन प्रेस साम्राज्यवाद का समर्थक था। भारतेंदु और उनके आसपास कई रचनाकार-पत्रकार थे, जिन्होंने ऐसे नए मूल्यों का निर्माण किया, जो समय के अनुकूल थे। द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाओं ने समानता और बंधुत्व के मूल्यों की वकालत करते हुए राजनीतिक और प्रशासनिक भेदभाव का विरोध किया। द्विवेदी युग की पत्रकारिता ने स्वाधीनता को राजनीतिक आंदोलन के प्रमुख मूल्य के रूप में स्थापित किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में गांधीजी का प्रवेश हुआ। उन्होंने भारतीय राजनीति में सत्य, अहिंसा, सत्यागह, उच्च नैतिक और सामाजिक मूल्यों को प्राथमिकता देते हुए साध्य की प्राप्ति में साधन की पवित्रता पर सर्वाधिक बल दिया। गांधीजी पश्चिमी पत्रकारिता से परिचित थे, इसलिए उनकी पत्रकारिता के मूल्य में पश्चिमी और भारतीय मूल्यों का सम्मिश्रण दिखाई देता है। पत्रकारिता उनके लिए इन मूल्यों को अंतिम जन

तक ले जाने का साधन थी। लोकसेवा और लोक शिक्षण का भारतीय पत्रकारिता का यह मूल स्वभाव राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभावों और दबावों के बीच भी दीर्घ अवधि से किसी-न-किसी रूप में आज तक बना हुआ है।

संदर्भ सूची

कोहली. वी. और खांडेकर, के. (2013). *मीडिया व्यवसाय*. दिल्ली : सेज प्रकाशन.

क्लिफोर्ड, के. पी. (2017). *मीडिया एथिक्स*. न्यूयॉर्क : राउटलेज.

कौल, जे. एल. (2010). *हिंदी पत्रकारिता का बाजार भाव*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

गोयनका, के. के. (2016). *गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान*. दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन.

चतुर्वेदी, जे. पी. (2009). *हिंदी पत्रकारिता का इतिहास*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

जैन, आर. (1987). *हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास*. जयपुर : बोहरा प्रकाशन.

ठाकुरता, पी. जी. (2020). *मीडिया एथिक्स*. दिल्ली : ऑक्सफोर्ड प्रेस.

तिवारी, ए. (1997). *हिंदी पत्रकारिता का वृहद इतिहास*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

तिवारी, बी. और गुप्त, जी. (1999). *पत्रकारिता के अनुवाद की समस्याएँ*. दिल्ली : शब्दकार प्रकाशक.

तिवारी, आर. (1995). *संपादन के सिद्धांत*. दिल्ली : आलेख प्रकाशन.

त्रिपाठी, के. (1970). *हीरक जयंती ग्रंथ*. बनारस : नागरी प्रचारिणी सभा.

दत्त, आर. पी. (1977). *आज का भारत*. दिल्ली : मैकमिलन प्रकाशन.

द्विवेदी, एस. (2020, मई 19). *वेबदुनिया*.कॉम. https://hindi.webdunia.com/my-blog/journalism-120051900063_1.html से पुन:प्राप्त.

पतंजली, पी. सी. (1997). *मीडिया के पचास वर्ष*. दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.

बहुवचन. (अप्रैल-जून,2016). *वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय*.

मेहता, ए. (2006). *भारत में पत्रकारिता*. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.

राय, एम. एस. (2016). *भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद*. दिल्ली विश्वविद्यालय : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय.

श्रीधर, वि. (2017). *हिंदी समकालीन पत्रकारिता*. दिल्ली : मेधा पब्लिशिंग हाउस.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 73-77, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता : सार्वजनिक विमर्श के लोकमूल्य

उमेश चतुर्वेदी[1]

सारांश

भारत का स्वतंत्रता संग्राम मात्र सदियों से चली आ रही गुलामी से मुक्ति का आंदोलन नहीं था। 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बाद ब्रिटिश सरकार को आभास हो गया था कि भारतीयों को अब ज्यादा दिनों तक गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता। इसका यह असर हुआ कि भारत में अँग्रेजों ने दो तरह के प्रयत्न शुरू कर दिए। ब्रिटेन की सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी से सीधे अपने हाथों में सत्ता ले ली और दूसरी तरफ भारत में अपने ढंग की शिक्षा और व्यवस्था का विस्तार करना शुरू किया। संस्कृत और फारसी माध्यम के साथ अँग्रेजी पढ़ाने का प्रस्ताव 1835 में मैकाले प्रस्तुत कर ही चुका था। हालाँकि उसे जमीनी हकीकत 1860 में ही बनाया जा सका। अँग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारतीयों का पश्चिमी विचारधारा से संपर्क बढ़ा। इसी दौरान पश्चिमी सोच के तहत जो 'आधुनिक विचार बोध' भारत में विकसित हुआ, भावी स्वाधीनता आंदोलन की वैचारिक नींव में उसका भी असर दिखता है। स्त्री शिक्षा पर जोर इसी दौर में बढ़ा। छुआछूत और भारतीय विचार बोध आधारित राष्ट्रवाद भी इसी दौर में बढ़ा। कानून के समक्ष बराबरी, स्वच्छता, केंद्रीय भाषा के तौर पर हिंदी पर निर्भरता बढ़ाने की सोच भी इन्हीं दिनों विकसित होती है। कालांतर में गांधी का जैसे-जैसे प्रभाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे इन मूल्यों की लोकवृत्त में चर्चा बढ़ती गई। तब तक पत्रकारिता भी स्वाधीनता आंदोलन का एक औजार बन गई थी। विशेषकर भाषाई समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने दो काम शुरू किए। पहला यह कि वे राष्ट्रवादी विचारधारा के संवाहक बन गए। दूसरा, उन्होंने सार्वजनिक विमर्श में मूल्यों को प्रतिष्ठापित करना शुरू कर दिया। आज जिन मूल्यों के आधार पर भारत में समाज और राजनीतिक जीवन की पड़ताल होती है, उनका आधार स्वाधीनता आंदोलन के दौरान लोकवृत्त में स्वीकार किए गए मूल्य ही हैं, जिन्हें हिंदी सहित दूसरी भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता ने गढ़ा और विस्तारित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में उन्हीं मूल्यों की पड़ताल की गई है।

संकेत शब्द : लोकवृत्त, सार्वजनिक विमर्श, लोक मूल्य, सार्वजनिक मूल्य, स्वाधीनता संग्राम, मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, पत्रकारिता के मूल्य

प्रस्तावना

वर्ष 1857 का स्वाधीनता संग्राम भले ही असफल रहा, लेकिन वह देसी समाज को बदलने और अब तक के भिन्न राष्ट्र की अवधारणा से आगे आधुनिक राष्ट्र-राज्य की ओर विकसित करने का माध्यम बना। भारत और भारतीयता की अवधारणा 1857 के पहले तक राजनीतिक इकाई के बजाय सांस्कृतिक इकाई के रूप में ज्यादा विकसित रही है, लेकिन 1857 एक ऐसा प्रस्थान बिंदु है, जो आधुनिक अर्थों में राजनीतिक रूप से स्पष्ट राजनीतिक इकाई के रूप में भारत को स्थापित करता है। समाजवादी राजनेता और विचारक डॉ. राममनोहर लोहिया अपनी पुस्तक 'इतिहास चक्र' (लोहिया, 1955) में कहते हैं कि भारतीय इतिहास में चूँकि केंद्रीय स्तर पर मजबूत राजनीतिक ताकत नहीं रही, उस वजह से विदेशी भारत को गुलाम बनाने में सहजता से कामयाब रहे। विनायक दामोदर सावरकर पहले व्यक्ति हैं, जो 1857 के संघर्ष को देश का पहला स्वाधीनता संघर्ष मानते हैं। अपनी पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' (मूल मराठी '1857 चे स्वातंत्र्य समर') में वे उस अवधारणा को खारिज करते हैं, जिसे कई इतिहासकारों ने सिपाही विद्रोह की संज्ञा देकर उसके प्रभाव को सीमित करने की कोशिश की थी (सावरकर, 2020)। वैसे कार्ल मार्क्स भी अपनी पुस्तक 'द फर्स्ट इंडियन वार ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस' (मार्क्स, 1968) में स्थापित कर चुके हैं कि 1857 से 1859 के बीच जो युद्ध हुआ, वह सिपाही विद्रोह नहीं, बल्कि भारत की आजादी के लिए पहला युद्ध था।

हिंदी का लोकवृत्त

बहरहाल, इस आंदोलन के बाद भारत में दो तरह का सार्वजनिक क्षेत्र दिखता है। पहला सार्वजनिक क्षेत्र बंगाल में दिखता है, जबकि दूसरा हिंदीभाषी उत्तर भारत में विकसित होता है। लंदन की भारतविद फ्रांचेस्का आर्सिनी अपनी शोध पुस्तक 'हिंदी का लोकवृत्त' में बताती हैं कि हिंदीभाषी क्षेत्र के इस सार्वजनिक क्षेत्र के केंद्र में प्रयाग और बनारस थे, जिसे हम आज वाराणसी के नाम से जानते हैं। चूँकि अँग्रेजी शासन के दौरान भारत का सत्ता केंद्र बंगाल का प्रमुख शहर कलकत्ता था, लिहाजा बंगाली समाज का अँग्रेजी शासक वर्ग से ज्यादा संपर्क था। इसका असर यह था कि बंगला सार्वजनिक क्षेत्र और उसके विमर्शकार अँग्रेजी व्यवस्था और स्थानीय लोगों के बीच कड़ी थे, जबकि हिंदीभाषी इलाके का सार्वजनिक क्षेत्र बंगाली भद्र लोक से इतर था (आर्सिनी, 2011)। इसका ही असर है कि हिंदी के लोकवृत्त में बंगाली के भद्र की तुलना में लोक कहीं ज्यादा गहराई से दिखता है। यही वजह है कि जैसे-जैसे स्वाधीनता आंदोलन आगे बढ़ता गया, हिंदी के लोक विमर्श का असर बढ़ता जाता है। इसलिए लोक से जुड़े विषय और मूल्य हिंदीभाषी समाज के केंद्रबिंदु बनने लगते हैं, जिनके प्रसार-प्रचार में हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ बड़ी भूमिका निभाती नजर आती हैं। देखते-ही-देखते सार्वजनिक विमर्श में ये मूल्य स्थापित हो जाते हैं और भारतीयता की नई धारा नए रूप में विकसित होने लगती हैं।

इस बिंदु पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर लोकवृत्त क्या है और इसकी अवधारणा किसने दी है? लोकवृत्त बुनियादी रूप से अँग्रेजी के शब्द 'पब्लिक स्फीयर' (Public Sphere) का हिंदी अनुवाद है। इसकी अवधारणा जर्मन दार्शनिक जुर्गेन हेबरमास ने दी। वे कहते हैं—"सार्वजनिक क्षेत्र (लोकवृत्त) से हमारा अभिप्राय सबसे पहले, हमारे

[1]मीडिया सलाहकार, आकाशवाणी समाचार, नई दिल्ली. ईमेल : uchaturvedi@gmail.com

सामाजिक जीवन का एक ऐसा जगत् है, जिसमें जनमत जैसी कोई चीज रूप ले सकती है, जिस तक सभी नागरिकों की पहुँच है। सार्वजनिक क्षेत्र का एक अंश हर उस बातचीत में अस्तित्व ग्रहण करता है, जिसमें सामान्य नागरिक सार्वजनिक संस्था स्थापित करने के लिए एकत्रित होते हैं। फिर वे न तो निजी मामलों को निपटाने वाले व्यापारिक या पेशेवर व्यक्तियों की तरह काम करते हैं और न कानूनी पाबंदियों के बीच संवैधानिक व्यवस्था के सदस्यों की तरह। नागरिक सार्वजनिक संस्था के रूप में तब व्यवहार करते हैं, जब वे सामान्य हितों के विषयों पर अबाध रूप से विमर्श करते हैं। ऐसा करते वक्त उन्हें इकट्ठा होने और संगठित होकर अपनी राय व्यक्त करने की आजादी होती है" (हेबरमास, 2005)। इस अवधारणा को थोड़ा बेहतर करते हुए पीटर उवे होहेनडाल कहते हैं कि सार्वजनिक सरोकार को लेकर सही तौर पर उसके भागीदारों के बीच तर्कपूर्ण बहस से तय किया जाने वाला सार्वजनिक स्पेस ही दरअसल सार्वजनिक विमर्श का क्षेत्र है (होहेनडाल,1982)। हेबरमास और होहेनडाल की परिभाषाओं और अवधारणाओं पर विमर्श के बाद कहा जा सकता है कि लोकवृत्त समान भलाई वाले विषयों और सामाजिक मूल्यों के बारे में आम राय है (आर्सिनी, 2011)।

स्त्री शिक्षा और अछूतोद्धार

हिंदी का यही सार्वजनिक विमर्श स्वाधीनता आंदोलन में परवान चढ़ता है। जब अछूतोद्धार की बात होने लगती है, तब स्त्री शिक्षा पर जोर दिया जाने लगता है। कानून के सामने सबकी बराबरी का विमर्श केंद्र में उठकर आ जाता है, लेकिन तब तक इन मूल्यों को प्रसारित करने वाली हिंदी ही विकास के सोपान तय कर रही थी। इसलिए आप देखेंगे कि स्वाधीनता आंदोलन में सबसे पहले हिंदी खुद लोकवृत्त का विषय बनती है और फिर बाद में वह दूसरे मूल्यों को प्रसारित करने का बड़ा औजार बनती है। कल्पना की जा सकती है कि अगर खुद हिंदी इस दौर में विकसित नहीं हो पाती तो हिंदी का अपना लोकवृत्त नहीं रचा जा सकता था। ऐसे में हिंदी का अपना लोकवृत्त स्थापित नहीं हो पाता। उन्नीसवीं सदी के आखिर तक ब्रिटिश शासन की नीतियों के चलते अँग्रेजी माध्यम का बोलबाला बढ़ना शुरू हो गया था। इसका असर यह हो रहा था कि जो भारत 1835 तक लगभग पूरी तरह साक्षर और शिक्षित था, अँग्रेजी माध्यम का बोलबाला बढ़ने के चलते 1922 आते-आते भारत की साक्षरता का प्रतिशत घटकर महज सात प्रतिशत रह जाता है (धर्मपाल, 1994)।

हिंदी को स्थापित करने में राष्ट्रीय नेताओं का बड़ा योगदान है। इनमें बंगला भद्रलोक का योगदान कम है। हालाँकि केशवचंद्र सेन को अपवाद कहा जा सकता है, जिन्होंने 1875 में पहली बार हिंदी को भावी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। इतना ही नहीं, केशवचंद्र सेन पहले व्यक्ति हैं, जो हिंदू धर्म और आधुनिक राष्ट्र की अवधारणा के साथ देशाटन कर रहे दयानंद सरस्वती को उनके प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिंदी में लिखने की प्रेरणा देते हैं। जब कलकत्ता में उनकी मुलाकात केशवचंद्र सेन से हुई तो उन्होंने ही दयानंद से लोकभाषा हिंदी में 'सत्यार्थ प्रकाश' को रचने का सुझाव दिया। मूर्ति देवी पुरस्कार से सम्मानित हिंदी साहित्यकार कृष्ण बिहारी मिश्र कहते हैं कि केशवचंद्र सेन ऐसी नफीस अँग्रेजी बोलते थे, जिन्हें लंदन में सुनने के लिए अँग्रेजों की भारी भीड़ जुटती थी। उन्होंने हिंदी को स्थापित करने का पहला विचार दिया (मिश्र, 2019)। हिंदी की इस ताकत को उस दौर में काँग्रेस के सबसे बड़े नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भी समझा था। 1905 में काशी की नागरी प्रचारिणी सभा की बारहवीं वर्षगाँठ के कार्यक्रम का उद्घाटन भाषण देते हुए तिलक ने कहा था—"मैं समझता हूँ कि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को पूरे देश के लिए एक आम भाषा की जरूरत है। एक आम भाषा का होना राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वह आम भाषा ही होती है, जिसके द्वारा आप अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाते हैं। इसलिए यदि हम देश को एक साथ लाना चाहते हैं, तो सबके लिए एक आम भाषा से बढ़कर दूसरी कोई ताकत नहीं हो सकती और यही सभा (नागरी प्रचारिणी सभा) का उद्देश्य भी है। देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए" (चतुर्वेदी, 2008)।

राष्ट्रीय विचार की संवाहक हिंदी

बाद में मदनमोहन मालवीय, गांधीजी और दूसरे नेताओं ने भी हिंदी को सार्वजनिक विमर्श के केंद्र की भाषा के साथ ही आम राय की राष्ट्रीय भाषा बनाने में बड़ा योगदान दिया। यही वजह है कि असहयोग आंदोलन शुरू होने के बाद हिंदी सार्वजनिक विमर्श की भाषा बनकर उठ खड़ी होती है। इस दौर तक आते-आते हिंदी की पत्रकारिता भी विकसित हो उठती है। जिसकी शुरूआत भारतेंदु हरिश्चंद्र उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कर चुके थे। हिंदी की सामर्थ्य बढ़ाने में स्वाधीनता आंदोलन और उसमें शामिल नेताओं की कोशिशों का भी बड़ा योगदान रहा। गांधीजी सहित दूसरे नेताओं की प्रेरणा से हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा आदि का गठन होता है। इस दौर में सरस्वती, मर्यादा, माधुरी, प्रभा, चाँद, प्रवासी जैसी पत्रिकाओं, भारत दूत, स्वराज, आज, जैसे अखबारों का प्रकाशन होना शुरू होता है। देखते-ही-देखते भारतीय राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय आंदोलन और सार्वजनिक विमर्श का केंद्र हिंदी बन जाती है। हिंदी का यह केंद्र बनने से लोगों की उम्मीद बढ़ जाती है कि आने वाले दिनों में हिंदी का डंका बजने लगेगा। 'माधुरी' पत्रिका के जून 1926 के अंक में प्रकाशित लज्जा राम मेहता के लेख में हिंदी को लेकर बढ़ा यह आत्मविश्वास इस रूप में दिखता है—"देश में एक ओर से दूसरे छोर तक हिंदी का सार्वजनिक डंका बजेगा। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के भिन्न-भिन्न भाषाभाषी अपनी-अपनी भाषाओं की उन्नति करते हुए एक तंत्र से नत-मस्तक हो, हाथ जोड़े हुए हिंदी की आरती करेंगे और इसकी छोटी बहन या यदि कोई छोटी कहने से बुरा मानते हों तो बड़ी बहन उर्दू पास खड़ी हुई इसकी बलैया लेगी, और राज-भाषा अँग्रेजी अपने ठाठ, अपने गौरव, अपनी प्रतिभा और अपने आतंक को अपने हृदयकोण में धारण किए भी इसे फूलों की माला पहनाएगी" (मेहता, 1926)।

हिंदी को राष्ट्रवादी विचारधारा के संवाहक के रूप में स्थापित करने से पहले मातृभाषाओं को ताकतवर बनाने और उनकी महत्ता को भी स्थापित करने की कोशिश इसी दौर में होती है। ठीक ही है कि भारत की आजादी की लड़ाई के लिए एक ऐसी भाषा की जरूरत थी, जो पूरे देश को एक सूत्र में बाँध सके। दक्षिण के कुछ एक इलाकों को छोड़ दें तो एकमात्र हिंदी ही ऐसी भाषा थी, जो इस गुण से परिपूर्ण नजर आती थी। चूँकि देशवासियों, उनके अगुआ लोगों और आंदोलनकारियों को एक सूत्र में

जोड़ने वाली भाषा की जरूरत थी, इसी आवश्यकता की वजह से हिंदी की तरफ लोगों, नेताओं और विद्वानों का स्वाभाविक ध्यान गया। चंद्रशेखर शास्त्री ने 1916 में साहित्य सम्मेलन पत्रिका में लिखा—"आवश्यकता ने देशवासियों के हृदय में राष्ट्रभाषा का महत्त्व प्रकाशित किया। ...देश के समस्त दूरदर्शी विचारवानों ने इस विचार का स्वागत किया। राष्ट्रभाषा की आवश्यकता सबने स्वीकार की। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि वह पद हमारी मातृभाषा (हिंदी) को मिला" (शास्त्री, 1916)।

मातृभाषा की प्रतिष्ठा

यह नहीं भूलना चाहिए कि उन्नीसवीं सदी के खत्म होते-होते मैकाले की शिक्षा नीति के असर से देश में अँग्रेजी सार्वजनिक विमर्श और भद्र लोक की भाषा भी बन गई थी। नीति-नियंताओं की भाषा तो खैर वह थी ही। ऐसे में उसके सामने हिंदी को खड़ी करने के लिए विशेष और बुनियादी तार्किक आधार की जरूरत थी। उसके लिए विचारवानों ने पहले मातृभाषा को प्रतिष्ठापित करने की अवधारणा पर काम किया। मातृभाषा के इस विचार को हिंदीभाषी विद्वानों और स्वाधीनता आंदोलनकारियों दोनों ने स्थापित किया। 1923 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का 13वाँ अधिवेशन कानपुर में हुआ था। उस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। समिति के अध्यक्ष के नाते उन्होंने जो कहा था, उसमें भी मातृभाषा की महत्ता स्थापित करने की कोशिश दिखती है। द्विवेदी जी ने तब कहा था—"मैं तो केवल इतना कहना चाहता हूँ कि मनुष्य की मातृभाषा उतना ही महत्त्व रखती है, जितनी की उसकी माता और मातृभूमि रखती है। एक माता जन्म देती है, दूसरी खेलने, कूदने, विचरण करने और सांसारिक जीवन निर्वाह के लिए स्थान देती है; और तीसरी मनोविकारों और मनोगत भावों को दूसरों पर प्रकट करने की शक्ति देकर मनुष्य जीवन को सुखमय बनाती है" (हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, 1923)। स्पष्ट है कि भाषा के साथ राष्ट्र का सवाल भी जोड़ दिया गया और उसे माता जितना पवित्र बनाने की कोशिश हुई। क्या आप सोच सकते हैं कि इस सोच के बिना सार्वजनिक विमर्श की अवधारणा के मुताबिक सार्वजनिक मूल्य भारत में स्थापित हो सकते थे?

स्वाधीनता आंदोलन के साथ-साथ अपनी भाषा की महत्ता जैसे-जैसे स्थापित होने लगी, वैसे-वैसे भारतीय विमर्श में स्त्री शिक्षा को लेकर हिंदी समाज गंभीर होने लगता है। लोकवृत्त में स्त्री शिक्षा का महत्त्व हिंदीभाषी क्षेत्रों में ज्यादा बढ़ता है। बंगाल, पंजाब, मुंबई और दक्षिण की स्थिति इस मायने में कुछ ठीक थी। 1914 के एक आँकड़े के मुताबिक, संयुक्त प्रांत, जिसे हम अब उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के तौर पर जानते हैं, जहाँ 55 हजार 49 लड़कियाँ पढ़ रही थीं, वहीं मद्रास में दो लाख 59 हजार 24 लड़कियाँ पढ़ रही थीं। इसी तरह बंगाल में दो लाख 20 हजार आठ सौ 91, मुंबई में एक लाख 49 हजार एक सौ सात और पंजाब में एक लाख छह हजार एक सौ लड़कियाँ पढ़ रही थीं (धर्मपाल 1994)। उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा को लेकर आर्य समाज की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। गांधीजी 1916 में जब बिहार के चंपारण पहुँचे और वहाँ की महिलाओं की दुर्दशा देखी तो उन्होंने नीलहे किसानों के हक की लड़ाई के साथ ही साथ महिलाओं में स्वच्छता और उनकी पढ़ाई के लिए जागरूकता का काम शुरू किया। उसमें कस्तूरबा उनकी बड़ी और गंभीर सहयोगी बनकर उभरीं। गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन में स्त्रियों को भी जोड़ने में बड़ा काम किया। इसकी वजह से पत्रकारिता में स्त्री शिक्षा और उनके अधिकार की भी बात होने लगती है। प्रेमचंद की एक कहानी है जुलूस। उसे शुरूआती दौर में खादी भंडार ने प्रकाशित किया था। इसकी नायिका शराब के ठेके की पिकेटिंग करती है। इसी दौरान पुलिस लाठी चार्ज के दौरान उसे चोट लग जाती है, लेकिन वह पीछे नहीं हटती। लेकिन 1920 के आते-आते पत्रकारिता में स्त्रियों के स्वर सुनाई देने लगते हैं। इसके पहले तक भारतीय महिलाओं की स्थिति बेटी, बहू, पत्नी और माँ के रूप में सीमित थी। इस पर बहस की काफी गुंजाइश है कि ऐसा कब और कैसे शुरू हुआ? क्योंकि इसी देश में गार्गी, अपाला, विद्योत्तमा की परंपरा रही है। बहरहाल, स्वाधीनता आंदोलन में यह सोच बदलती है। भारतीय पत्र-पत्रिकाएँ इस नवीन सोच की वाहक बनती हैं। और देखते-ही-देखते, स्त्री का प्रश्न, भारतीयता का प्रतीक बन गया। यानी भारतीय नारी में भारत का वह विशिष्ट आध्यात्मिक तत्त्व जो उसे पश्चिम से श्रेष्ठ और मूलभूत रूप से अलग बनाता है (चटर्जी, 1993)। इसी का असर है कि कालांतर में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में बड़ी संख्या में स्त्रियाँ शामिल होने लगती हैं, जगह-जगह लड़कियों की पढ़ाई के लिए स्कूल-कालेज खोलने की होड़ लग जाती है। इसे हिंदी साहित्य भी अपने ढंग से उद्घाटित और प्रभावित करने लगता है। जयशंकर प्रसाद की नायिकाएँ मधुलिका, चंपा और उनके चरित्रों के इर्द-गिर्द रची रचनाएँ इसी दौर में सामने आती हैं। स्त्री शिक्षा की महत्ता को स्थापित करने में निराला के उपन्यास 'अप्सरा' जैसी रचना को भी शामिल किया जा सकता है, जिसकी नायिका पढ़ी-लिखी तवायफ लड़की है। महादेवी वर्मा भी इसी दौर में उभरती हैं और वे स्त्री शिक्षा का कम-से-कम हिंदी भाषी क्षेत्र में प्रतीक बनकर उभरती हैं।

किसान और मजदूर

स्वाधीनता आंदोलन के साथ हिंदीभाषी इलाकों में किसानों, मजदूरों, अछूतों के भी सवाल न सिर्फ गंभीरता से उठने लगते हैं, बल्कि वे सार्वजनिक विमर्श के केंद्र में शामिल हो जाते हैं। इलाहाबाद से प्रकाशित 'कर्मभूमि' के किसान अंक का प्रकाशन इस दावे के साथ हुआ था कि इसे पढ़ने वाला व्यक्ति किसानों की समस्याओं को लेकर सवाल उठाने वालों को मुँहतोड़ जवाब देने योग्य हो जाएगा। 'अभ्युदय' ने इस अंक में स्वाधीनता आंदोलन में किसानों की सीधी भागीदारी की खूब प्रशंसा की और उसे तार्किक बताया। इस अंक में मदन मोहन मालवीय, पीडी टंडन, कृष्णकांत मालवीय, पद्मकांत मालवीय, लाल बहादुर शास्त्री आदि के विचारोत्तेजक लेख छपे थे। इसी दौर में स्वामी सहजानंद उभरते हैं, जो क्रांतिकारी के तौर पर पहले सार्वजनिक जीवन में आए। लेकिन 1922 में एक साल की सजा से छूटने के बाद एक साथ खादी के प्रचार और किसानों के हितों के लिए काम करने के लिए उन्होंने अपना जीवन झोंक दिया। आर्सिनी (2011) बताती हैं कि एक तरह से सहजानंद का किसान कार्य उनके राष्ट्रवादी विचार का ही प्रसार था। इसके बाद किसानों की समस्या केंद्र में आती है। प्रेमचंद का लेख 'महाजनी सभ्यता' इसी दौर का है, जो किसानों की समस्याओं को विमर्श के केंद्र में स्थापित करता है। उनका उपन्यास 'गोदान' भी इसी श्रेणी में आता है। इसी दौर में हिंदी में छायावाद

का प्रभाव था। छायावाद की कविताओं में भी किसानों की समस्याएँ गंभीरता से सामने आती हैं। निराला अपनी रचना बादल के जरिये एक प्रतीक रचते हैं और किसानों की समस्या को बागीपन के नजरिये से दूर करने की कोशिश करते नजर आते हैं। इस दौर की पत्रकारिता भी इन समस्याओं से जूझने लगती है। इन सबका समन्वित प्रयास का नतीजा है कि किसान भारतीय राजनीतिक चिंतन और मुख्यधारा में शामिल होता है और लोकवृत्त में उसकी समस्याएँ प्रभावी होने लगती हैं। यही चिंता आगे चलकर 1934 में काँग्रेस के अधीन ही काँग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना की भी वजह बनती है। बेशक समाजवादी आंदोलन बिखराव की ओर है, लेकिन किसानों के सवालों को वह आज भी इसी मूल्यबोध के आधार पर उठाता है।

अतीत का वास्तविक चित्र

इन मूल्यों को स्थापित करने के लिए इतिहास की भारतीयता की अवधारणा पर भी स्वाधीनता संग्राम में जोर दिया गया। भारतीय इतिहास दृष्टि को राष्ट्रवादी आधार और संदर्भ में देखने और अपनी समस्याओं को उसके नजरिये से देखने की कोशिश भी इसी दौर में दिखती है। स्वाधीनता आंदोलन में कैसे-कैसे जीवट वाले व्यक्ति थे, इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि सिर्फ बीसवीं सदी की शुरूआत से लेकर स्वाधीनता आंदोलन की परिणति तक के महज साढ़े चार दशक में भारतीय समाज तमाम मोर्चों पर सक्रिय रहा। उसने अपने मूल्य गढ़े जो स्वाधीनता आंदोलन के महत्त्वपूर्ण हिस्सा बने। नवंबर 1924 में देहरादून में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के 14वें अधिवेशन में भारतीय इतिहास दृष्टि की आवश्यकता पर पहली बार सार्वजनिक तौर पर चिंता दिखती है। इस अधिवेशन में वाराणसी के ज्ञानमंडल यंत्रालय, दैनिक आज और काशी विद्यापीठ के संस्थापक नगर सेठ शिवप्रसाद गुप्त ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। उस प्रस्ताव में गुप्त ने कहा है—"जिस राष्ट्र का प्रामाणिक इतिहास नहीं है, वह जीवित राष्ट्र नहीं। भारतीय स्कूलों और कॉलेजों में जो इतिहास की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, वे बहुत अविश्वसनीय और भ्रामक होती हैं। शिवाजी जैसे हमारे राष्ट्रीय वीरों को लुटेरा कहा जाता है। हमारे वेद चरवाहों और किसानों के गीत कहे जाते हैं। क्या ऐसी इतिहास की पुस्तकों को इतिहास नाम दिया जा सकता है? क्या कोई विद्वान और निष्पक्ष इतिहासवेत्ता ऐसी इतिहास की पुस्तकों के लिए यह कह सकता है कि इनमें भारत के भूत जीवन का वास्तविक चित्र खिंचा रहता है?" (हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, XII 4-5)।

यह कैसी विडंबना है कि एक सदी बाद भी शिवप्रसाद गुप्त की चिंताएँ आधुनिक भारत में जिंदा हैं और परेशानी की वजह हैं। इन पर आज भी विमर्श हो रहा है और विशेष विचारधारा के लोग शिवप्रसाद गुप्त जैसे लोगों के सवालों को आज न सिर्फ खारिज करने की कोशिश करते हैं,, बल्कि ऐसे सवालों को दकियानूसी भी बताते हैं। बहरहाल, इतिहास का यह सवाल अगर आज भी जिंदा है तो इसकी वजह है कि इसे लेकर स्वाधीनता आंदोलन के दौरान लोकवृत्त में इतिहास को लेकर भारतीय मूल्य गढ़े गए। शिक्षा का सवाल भी इस दौर में उठा और यह भी मूल्य स्वीकृत हुआ कि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता हिंदू सभ्यता रही है। गांधी तो स्वयं को हिंदू बताने से कभी नहीं हिचके। महामना मदन मोहन मालवीय ने अपनी तपस्या से काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की और उसमें हिंदुत्व की श्रेष्ठता का ध्यान रखा। स्वाधीनता सेनानी बार-बार डी.ओ. ब्राउन के उस लेख के अंश को उद्धृत करते दिखते हैं, जिसे उन्होंने 20 फरवरी, 1884 के 'डेली ट्रिब्यून' में लिखा था। इस लेख में उन्होंने लिखा—"यदि हम पक्षपात रहित होकर भलीभाँति परीक्षा करें, तो हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं" (ब्राउन,1894)। भारतेंदु हरिश्चंद्र की मशहूर रचना 'भारत दुर्दशा' का केंद्रीय तत्त्व ब्राउन का यह विचार ही माना जाता है जो बाद में स्वाधीनता आंदोलन में भी स्वीकार्य हुआ। दुर्भाग्यवश स्वाधीनता आंदोलन के दौरान लोकवृत्त में इस आधार पर भारतीयता के जो मूल्य उभरे और स्वीकार्य हुए, आज उन पर ही सवाल उठाया जाने लगा है।

निष्कर्ष

हिंदी के दिवंगत पत्रकार और कवि विष्णु खरे का मानना था कि स्वाधीनता आंदोलन की शख्सियतें अपनी तरह की डायनासोर थीं। उनका व्यक्तित्व बहुत विराट था। चाहे वे साहित्य में सक्रिय हों या पत्रकारिता में, राजनीति में हों या समाज सेवा में, सब अपनी तरह के डायनासोर थे, जिनके कद के आगे कोई नहीं टिकता था। यही वजह है कि उन्होंने राजनीति, पत्रकारिता, साहित्य और समाजकर्म में नए-नए मूल्य गढ़े। उन मूल्यों के सहारे उन्होंने स्वाधीनता संग्राम को ऊँचाई तो दी ही, भावी भारत के लिए भी नए-नए मूल्य गढ़े। ये मूल्य सार्वजनिक विमर्श की न सिर्फ संपत्ति बने, बल्कि भावी समाज की सफलता-असफलता के मानक भी बने। स्त्री शिक्षा, भारतीयता का बोध और इसके सहारे विकसित राष्ट्रवाद के साथ ही अछूतोद्धार और किसानों की समस्या आदि को लेकर जो मानक स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गढ़े गए, उनमें बदलाव नहीं हुआ, सिवाय हिंदुत्व और भारतीयता की अवधारणा को छोड़कर। यह बात और है कि हिंदुत्व और भारतीयता की अवधारणा कुछ खास विचारधारा से प्रभावित लोगों पर ही ज्यादा असरदार है, अन्यथा देश की ज्यादातर जनता इन्हीं मूल्यों के सहारे अपने दैनंदिन जीवन को गढ़ती है और उनके जरिये आगे बढ़ती है। इन मूल्यों से विचलन सार्वजनिक जीवन को ही नहीं, निजी जीवन को विचलित करता है। यह संयोग ही है कि गांधीजी रामराज्य की बात करते थे और हमारे इतिहास नायक राम ने भी अपने आचरण और अपनी मर्यादा को लेकर गंभीर मानक स्थापित किए। कुछ उन्हीं के अंदाज में हमारे स्वाधीनता आंदोलन ने भी लोकवृत्त के मूल्यों को गढ़ा है। उन्हीं मूल्यों के जरिये आज की पत्रकारिता, साहित्य, राजनीति, अर्थनीति, समाजकर्म और निजी आचरण को परखा जाता है। लोकवृत्त के मूल्यों की विशेषता उनकी सार्वजनिकता होती है। सार्वजनिकता के निकष पर ये मूल्य कमजोर हुए तो इनकी सफलता पर सवाल उठते हैं, लेकिन इन मूल्यों की ताकत और महत्ता ही है कि सवा सदी बीतने के बाद भी ये मूल्य अब भी कमजोर नहीं पड़े हैं। कह सकते हैं कि हमारा स्वाधीनता संग्राम सिर्फ इसलिए महान नहीं है कि इसने हमें सदियों की गुलामी से मुक्ति दिलाई, बल्कि एक बेहतर और सबके हितों का ध्यान रखने वाले सार्वजनिक मूल्यों को भी गढ़ा है। इनके सहारे भारत और भारतीयता लगातार आगे बढ़ रहे हैं।

संदर्भ

आर्सिनी, एफ. (2011). *हिंदी का लोकवृत्त*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

चटर्जी, पी. (1993). द *नेशन एंड इट्स फ्रेगमेंट्स : कोलिनिअल एंड पोस्टकोलोनिअल हिस्टरीज*. न्यू जर्सी : प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस.

चतुर्वेदी, यू. (2008). राष्ट्रवाद बनाम महाराष्ट्रवाद. गहरवार. *वर्डप्रेस* https://gaharvar.wordpress.com/2008/11/10/ राष्ट्र-वाद-बनाम-महाराष्टय/ से पुन:प्राप्त.

जे, हेबरमास. (2005). द *पब्लिक स्फीयर*. लंदन : प्लूटो प्रेस.

धर्मपाल. (1994). *भारत का स्वधर्म*. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ब्राउन, डी.ओ. (1894, फरवरी 20). *डेली ट्रिब्यून*.

मार्क्स, के. (1968). द *फर्स्ट इंडियन वार ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस*. मास्को : प्रोग्रेस पब्लिशर्स.

मिश्र, के. बी. (2019). व्यक्तिगत बातचीत.

मेहता, एल. (1926). *माधुरी*, जून अंक.

लोहिया, आर. (1955). *इतिहास चक्र*. इलाहाबाद : लहर प्रकाशन.

सावरकर, वी.डी. (2020). *1857 का स्वातंत्र्य समर*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

शास्त्री, सी. (1916). हिंदी सम्मेलन पत्रिका.

होहेनडाल, पी.यू. (1982). *इंस्टीट्यूशन ऑफ क्रिटिसिज्म*. इथाका : कोर्नेल युनिवर्सिटी प्रेस.

हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका (1923).

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 78-83, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता आंदोलन और उर्दू पत्रकारिता

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1] और डॉ. मु. अफसर अली राईनी[2]

सारांश

आज भारत जब अपनी आजादी की 75वीं वर्षगाँठ मना रहा है, उसी समय देश में उर्दू पत्रकारिता की 200वीं वर्षगाँठ मनाने की तैयारियाँ भी प्रारंभ हो चुकी हैं। आजादी के अमृत महोत्सव के दौरान अनेक प्रकार के कार्यक्रमों के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन के अनेकानेक पक्षों का स्मरण और विश्लेषण किया जा रहा है। इस ऐतिहासिक अवसर पर विभिन्न भाषाओं के समाचार पत्रों की भूमिका का अध्ययन भी अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। इस प्रकार के अध्ययन देशभर में हिंदी, अँग्रेजी, बांग्ला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में हो रहे हैं। इस दृष्टि से उर्दू पत्रकारिता का अध्ययन भी आवश्यक है। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि 'दिल्ली उर्दू अखबार' के संपादक मौलवी मोहम्मद बाकर स्वतंत्रता संग्राम में शहीद होने वाले पहले पत्रकार थे। उसके बाद जैसे-जैसे उर्दू पत्रकारिता का विकास हुआ, वैसे-वैसे इससे जुड़े अनेक पत्रकारों ने आजादी के आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और इस कारण अँग्रेज सरकार की यातनाओं को सहा। हालाँकि देश में एक वर्ग उर्दू पत्रकारिता को देश विभाजन से भी जोड़ता है, परंतु यह भी हकीकत है कि उर्दू में उम्दा किस्म का देशभक्ति पूर्ण साहित्य रचा गया। उस समय देश के अधिकतर स्कूलों में शिक्षण का माध्यम उर्दू ही थी, इसलिए अधिसंख्य आबादी इसी जबान में पढ़ती-लिखती थी। सरदार भगत सिंह सहित देश के अनेक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी उर्दू में भी लिखते थे। मुंशी प्रेमचंद मूलरूप से उर्दू के ही लेखक थे। इसलिए उर्दू के समाचार पत्रों की पाठक संख्या अच्छी-खासी थी। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से उर्दू पत्रकारिता के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। उर्दू पत्रकारिता ने सिर्फ 'इनकलाब जिंदाबाद' का अमर नारा ही नहीं दिया, बल्कि अनेक लेखकों और पत्रकारों की कुर्बानी भी दी। बहादुर शाह जफर से लेकर हसरत मोहानी और मौलाना आजाद की जिन्दगी के अनेक साल जेलों में गुजरे। ज्यादातर उर्दू पत्रों और पत्रकारों के यही तेवर रहे। मौलवी मोहम्मद बाकर को सरेआम गोली मारी गई। उन सभी पत्रकारों को अँग्रेजी जुल्म का सामना करना पड़ा, जिन्होंने आजादी की तबलीग की।

संकेत शब्द : तहरीक-ए-आजादी, उर्दू सहाफत, दिल्ली उर्दू अखबार, मौलवी मोहम्मद बाकर, आजादी का अमृत महोत्सव

प्रस्तावना

उर्दू जबान को परवान चढ़ाने में हिंदुस्तान की कई भाषाओं, बोलियों और संस्कृतियों का योगदान रहा है। अमीर खुसरो ने इसे 'हिंदवी' कहा, जबकि दक्षिण में इसे 'दक्किनी' कहा गया। हिंदुस्तान के उदार माहौल ने सभी जबानों को फलने-फूलने का भरपूर मौका दिया। उसी माहौल में उर्दू भी पनपी। आजादी के आंदोलन में अन्य भारतीय भाषाओं की तरह उर्दू ने भी सशक्त भूमिका निभाई। उस दौर में उर्दू समाचार पत्रों का प्रकाशन देश के लगभग हर बड़े-छोटे शहरों से हो रहा था। अँग्रेजी हुकूमत की तमाम बंदिशों के बावजूद उर्दू पत्रकारिता ने कभी समझौता नहीं किया। 'जाम-ए-जहाँनुमा' से शुरू हुआ यह कारवाँ रफ्ता-रफ्ता बढ़ता गया। मौलवी मोहम्मद बाकर की निर्मम हत्या के बावजूद उर्दू सहाफत में हसरत मोहानी, मौलाना आजाद, मोहम्मद अली जौहर, जफर अली खान जैसे अनेक पत्रकार आगे आए और तहरीक-ए-आजादी में सक्रिय योगदान दिया।

उर्दू सहाफत का मुख्तसर जायजा

वर्ष 2000 में प्रकाशित अपनी दो किताबों 'उर्दू सहाफत : 1901 से 1947 एक मुख्तसर जायजा' और 'उर्दू सहाफत : 1947 से 2000 एक मुख्तसर जायजा' में उर्दू पत्रकारिता के बड़े जानकार असद रजा ने उर्दू पत्रकारिता के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन किया है। अपनी पहली पुस्तक में उन्होंने उर्दू सहाफत और तहरीक-ए-आजादी, उर्दू सहाफत और तहरीक-ए-खिलाफत, 1909 से लेकर 1947 तक के मंजर-ए-आम पर प्रकाशित लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का जिक्र किया है। पुस्तक में उर्दू के अहम पत्रकारों जैसे मुंशी महबूब आलम, लाला लाजपत राय, मौलाना मुहम्मद अली जौहर, सैयद सुलेमान नदवी, खुशहाल चंद, मौलाना आजाद आदि का भी विस्तार से जिक्र है। दूसरी पुस्तक में प्रथम प्रेस कमीशन की रिपोर्ट, आरएनआई की वार्षिक रिपोर्ट के साथ विभिन्न प्रदेशों से प्रकाशित उर्दू पत्रों पर गंभीर बहस की गई है (रजा, 2000)।

'उर्दू-ए-मोअल्ला' के माध्यम से मौलाना हसरत मोहानी ने आजादी के आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे ताउम्र अँग्रेजों की नीतियों का विरोध करते रहे। 'उर्दू सहाफत और हसरत मोहानी' पुस्तक में डॉ. शरीफुद्दीन अहमद ने मौलाना की पत्रकारिता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। चूँकि यह पुस्तक पूरी तरह हसरत मोहानी की पत्रकारिता पर केंद्रित है इसलिए पुस्तक में मौलाना की पत्रकारिता के तमाम पक्षों का बारीकी से अध्ययन किया गया है (मोहानी, 1911)। इसी प्रकार डॉ. शफी अय्यूब ने अपनी किताब 'तहरीके आजादी और अल-हिलाल' में मौलाना आजाद द्वारा संपादित पत्रिका 'अल-हिलाल' का बारीकी से अध्ययन किया है। 'अल-हिलाल' को उर्दू पत्रकारिता का श्रेष्ठ पत्र माना जाता है। साप्ताहिक 'अल-हिलाल' ने देशवासियों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ाने के लिए जिस प्रकार की सामग्री पेश की, वैसा उदाहरण किसी अन्य उर्दू पत्र में कम ही देखने को मिला। 'अल-हिलाल' ने लोगों की समझ को विकसित

[1]पाठ्यक्रम निदेशक, उर्दू पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली, ईमेल : drpk.iimc@gmail. com
[2]शिक्षण एवं शैक्षणिक सहयोगी, उर्दू पत्रकारिता विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली, ईमेल : afsarmcj@gmail.com

करने के महत्त्वपूर्ण कार्य को अंजाम दिया।'अल-हिलाल' एक नए तर्ज का समाचार-पत्र था, जिसमें पाठ्य सामग्री के साथ-साथ उसकी भाषा और कंपोजिंग एवं डिजाइन का विशेष खयाल रखा जाता था (अय्यूब, 1999)। फरीदा अनवर ने अपने शोध 'मगरिबी बंगाल में उर्दू सहाफत' (शोध गंगा पर उपलब्ध है) में पश्चिम बंगाल की उर्दू पत्रकारिता पर विस्तार से चर्चा की है। पश्चिम बंगाल अनेक भाषाओं की पत्रकारिता की जननी रहा है। यहाँ की उर्दू पत्रकारिता के अध्ययन के लिए यह शोध किसी भी अध्येता के लिए एक संदर्भ ग्रन्थ की हैसियत रखता है (अनवर, 2006)।

अँग्रेज सरकार का रवैया

डॉ. हुमायूँ अशरफ ने अपनी किताब 'उर्दू सहाफत मसाइल-ओ-इमकानात' में आजादी से पूर्व उर्दू पत्रकारिता के साथ अँग्रेज सरकार के रवैये का जिक्र किया है। विभिन्न आलेखों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि उर्दू पत्रों की गुणवत्ता और प्रसार में उस वक्त क्या बदलाव दृष्टिगत हुए (अशरफ, 2018)। 'कौमी महाज-ए-आजादी और यूपी के मुसलमान सहाफी' पुस्तक में लेखिका आबिदा समीउद्दीन ने उत्तर प्रदेश के मुस्लिम पत्रकारों की भूमिका का अध्ययन किया है। पुस्तक में तिलिस्म-ए-लखनऊ, साइंटिफिक सोसाइटी अलीगढ़, आगरा अखबार, अवध पंच, कैसर-उल-अखबार, शहनए-हिंद, असर-ए-जदीद, उर्दू-ए-मोअल्ला मुस्लिम गजट आदि पर विस्तार से लिखा गया है। इसके अलावा महत्त्वपूर्ण पत्रकारों जैसे सर सैयद अहमद खान, मुंशी सज्जाद हुसैन, हसरत मोहानी और मौलवी मजीद हुसैन आदि पर विस्तृत सामग्री इकट्ठा की गई है (समीउद्दीन, 2007)। असगर अली इंजीनियर की किताब 'दे टू फौट फॉर इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल' में आबीदा समीउद्दीन ने आजादी के आंदोलन में उर्दू पत्रकारिता के योगदान पर विस्तार से बात की है। गुरबचन चंदन ने अपनी किताब 'जामे जहाँ नुमा उर्दू सहाफत की इब्तिदा' में तमाम प्रामाणिक स्रोतों के साथ बताया है कि 'जामे जहाँ नुमा' उर्दू भाषा का पहला पत्र है। अखबार की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए अखबार से जुड़े हरीहर दत्त और सदासुख लाल के बारे में उन्होंने विस्तृत जानकारी दी है (चंदन, 1992)।

पी.के. रबिन्द्रनाथ की पुस्तक 'इंडियन रिजनल जनर्लिज्म' में क्षेत्रीय पत्रकारिता के विकास और योगदान को रेखांकित करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन में इसकी भूमिका पर विस्तार से बात की गई है (रबिन्द्रनाथ 2005)। मासूम मुरादाबादी की पुस्तक 'उर्दू सहाफत और जंग-ए-आजादी 1857' में उर्दू पत्रकारिता को विभिन्न कालखंडों में बाँटकर अध्ययन किया गया है। उन्होंने पहली जंग-ए-आजादी में उर्दू पत्रकारिता के योगदान और भूमिका का विस्तृत चित्रण किया है। जंग-ए-आजादी की इस तहरीक में उर्दू पत्रकारों को अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया गया, कइयों को शहीद किया गया, संपत्ति और प्रेस जब्त किए गए। कई बड़े पत्रकारों को वर्षों जेल में गुजारने पड़े। इन बातों का गंभीर अध्ययन पुस्तक में शामिल है (मुरादाबादी, 2008)। 'उर्दू सहाफत और तहरीक-ए-आजादी' पुस्तक में डॉ. समी अहमद ने उर्दू पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श किया है। भारत में पत्रकारिता, उर्दू पत्रकारिता का आगाज, उर्दू के प्रमुख पत्रों की जानकारी, उर्दू पत्रकारिता की आजादी के आंदोलन में भूमिका के साथ-साथ नामवर उर्दू पत्रकारों का भी विस्तृत जिक्र इस पुस्तक में है (अहमद, 2009)। 'उर्दू सहाफत का सफर' में जी. डी. चंदन का शाहकार है। इस पुस्तक को उर्दू पत्रकारिता का विश्वकोश कहा जाता है। पुस्तक में उर्दू पत्रकारिता का प्रारंभ, मौलवी मोहम्मद बाकर का योगदान, उनको शहीद करने के कारण, अँग्रेजों का उर्दू पत्रकारिता के प्रति बैर आदि विस्तृत जिक्र इस पुस्तक में किया गया है (चंदन जी.डी., 2007)।

शोध प्रविधि

चूँकि प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों पर आधारित है, इसलिए द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग करते हुए सामग्री का विश्लेषण किया गया है। इस संबंध में सामग्री विभिन्न शोध प्रबंधों, पुस्तकों आदि स्रोतों से एकत्र की गई है।

उर्दू पत्रकारिता की शुरुआत

भारत में पत्रकारिता की शुरुआत वर्ष 1780 में जेम्स अगस्टस हिक्की द्वारा 'हिक्की गजट' के प्रकाशन से हुई। यह पत्र अधिक दिनों तक तो नहीं चल सका, मगर इसने अन्य पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त किया (कुमार, 2013)। उर्दू भाषा का पहला अखबार 'जाम-ए-जहाँ-नुमा' था, जिसकी स्थापना हरिहर दत्त ने 1822 में कलकत्ता से की थी। वे बंगाली साप्ताहिक 'संबाद कौमुदी' के संस्थापकों में से एक थे। तीन पेज के इस साप्ताहिक पत्र के संपादक सदा सुखलाल थे। अँग्रेजी और बंगाली के बाद यह भारत में तीसरा भाषाई समाचार पत्र था। यह 1888 तक प्रकाशित होता रहा। उर्दू का दूसरा अखबार मुंशी हरसुख राय द्वारा वर्ष 1850 में शुरू किया गया (अहमद, 2009)। 'इनकलाब जिंदाबाद' का उद्घोष उर्दू पत्रकारिता की ही देन है। मौलाना हसरत मोहानी द्वारा दिए गए इस नारे ने स्वतंत्रता आंदोलन को परवान चढ़ाने में बड़ी भूमिका निभाई। शहीद-ए-आजम भगत सिंह ने इस नारे का खूब इस्तेमाल किया और इसे जन-जन तक पहुँचाया। स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेने वाले उर्दू पत्रकारों में मौलाना आजाद, मौलाना मोहम्मद अली जौहर, मौलाना जफर अली खान और रणबीर के नाम अहम हैं। राजा राम मोहन राय ने 1822 में 'मिरात-उल-अखबार' के माध्यम से अँग्रेज सरकार की नीतियों, खासतौर पर समाचार-पत्रों पर सरकारी पाबंदी, का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने प्रेस आर्डिनेंस के खिलाफ प्रीव्यू कौंसिल में अपील की। अपील रद्द होने की सूरत में बतौर अहतिजाज अपना अखबार बंद कर दिया (रजा, 2000)। वर्ष 1936 में मौलवी मोहम्मद बाकर ने दिल्ली से 'देहली अखबार' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाद में इसका नाम बदल कर 'देहली उर्दू अखबार' कर दिया गया। कश्मीरी दरवाजे के अन्दर समाचार-पत्र का दफ्तर था। इस समाचार-पत्र की आजादी के आंदोलन को रफ्तार देने में बड़ी भूमिका रही। इस पत्र के बारे में उस्ताद जौक कहते हैं—"इस इमारत की सबसे कीमती चीज पुस्तकालय है। 1857 की जंग-ए-आजादी के पहले दिन जो विस्तृत रिपोर्ट मौलवी मोहम्मद बाकर ने अपने खास रिपोर्टर के द्वारा प्रकाशित की थी, वैसी मुकम्मल रिपोर्ट हिंदुस्तान के किसी दूसरे अखबार में प्रकाशित नहीं हुई थी" (अशरफ, 2018)।

'देहली उर्दू अखबार' में 'साहब कलाँ' के नाम से छपने वाली सामग्री में अधिकतर ईस्ट इंडिया कंपनी से जुड़े विषय ही हुआ करते थे। दैनिक 'जदीद खबर' के संपादक मासूम मुरादाबादी के

मुताबिक—"साहिब-ए-तर्ज अदीब (लेखक या कवि के लिखने का निराला अंदाज) मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद के वालिद मौलवी बाकर ने देहली से 1837 में 'दिल्ली उर्दू अखबार' जारी किया, जो उर्दू का एक मुकम्मल साप्ताहिक था। इस अखबार को इसलिए ऐतिहासिक अहमियत हासिल है कि ये अपनी सियासी खबरों और अँग्रेज हुकूमत पर सख्त तनकीद के लिए मशहूर था। 'दिल्ली उर्दू अखबार' अपने दौर में तकरीबन तमाम हिंदुस्तान के अखबारात में बुलंद था। मजामीन और खबरों के ऐतबार से इससे बेहतर कोई और अखबार नहीं था। जंग-ए-आजादी 1857 में मौलवी मुहम्मद बाकर को अँग्रेजों ने शहीद कर दिया। मौलवी मुहम्मद बाकर मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद के वालिद थे, और इन्हें जंग-ए-आजादी का पहला शहीद पत्रकार कहा जाता है। 'दिल्ली उर्दू अखबार' में गालिब, जौक और मोमिन की साहित्यिक रचनाओं का भी प्रकाशन होता था" (मुरादाबादी, 2008)।

जंग-ए-आजादी की हिमायत

'सैयद-उल-अखबार' (1837) सर सैयद अहमद खान के भाई सैयद मुहम्मद खान द्वारा प्रकाशित किया गया। इस साप्ताहिक पत्र के संपादक मौलवी अब्दुल गफूर थे। इस समाचार-पत्र में कानूनी विषयों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था। उस वक्त कानूनी विषयों पर बहुत कम सामग्री का प्रकाशन होता था, इसलिए इस पत्र में कानून से जुड़े लोगों या यूँ कहें कि वकीलों की खासी दिलचस्पी होती थी। 'सादिक-उल-अखबार' (1844) के संपादक मौलवी जमीलुद्दीन थे। यह पत्र जंग-ए-आजादी की हिमायत के साथ-साथ अँग्रेजों के कत्ल की भी बात करता था। आखिरी मुगल शहंशाह बहादुर शाह जफर के खिलाफ मुकदमे की सुनवाई में भी इस अखबार का जिक्र किया गया था। इस अखबार के संपादक मौलवी जमीदुद्दीन को बाद में तीन साल की सजा मिली और उनकी संपत्ति भी जब्त कर ली गई। कलकत्ता के उर्दू समाचार-पत्र 'गुलशन-ए-नौ बहार' (1851) को प्रेस एक्ट के उल्लंघन और बागियाना सामग्री प्रकाशित करने के जुर्म में बंद कर दिया गया था। इस अखबार की प्रेस को भी जब्त कर लिया गया था। इस अखबार ने खुलकर अवध के नवाब को हटाये जाने, उनको कैद और अवध रियासत को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल किए जाने के खिलाफ लिखा था। इस पत्र के संपादक अब्दुल कादिर थे। वैसे तो यह अखबार फारसी में था, मगर इसमें उर्दू के मजामीन भी प्रकशित होते थे (अशरफ, 2018)।

अवध अखबार (1859) का प्रकाशन लखनऊ से हुआ। इसके संपादक मुंशी नवल किशोर थे। पत्र के संपादकीय विभाग से उस दौर के प्रमुख लेखक जुड़े थे, जिनमें हिंदू-मुस्लिम दोनों जुड़े थे। इनमें मौलाना अब्दुल हलीम शरर, पंडित रतन नाथ सरशार, यागानाह चंगेजी, शौकत थानवी, मिर्जा अस्करी, मौलाना जालिब देहलवी, अमजद अली अश्हरी और प्यारे लाल शाकिर के नाम प्रमुख हैं। इस पत्र में अँग्रेजी अफसरों के कार्यों की भरपूर आलोचना होती थी। इसके अलावा आजादी की तहरीक को आगे बढ़ाने और इसे स्थिरता देने में लखनऊ के जिन समाचार-पत्रों की प्रमुख भूमिका थी, उनमें 'तिलिस्म लखनऊ' (1856), 'सहर सामरी' (1856) और 'अवध पंच' (1877) के नाम प्रमुख हैं (अहमद, 2009)। आगरा से मुकुंद लाल (1859) ने मासिक पत्रिका का संपादन किया। इस पत्र का नाम 'तारीख-ए-बगावत-ए-हिंद' (1859) था। यह पत्र मुकम्मल आजादी और बगावत की बात करता था। इसने 1860 के अंक में कानपुर की जंग-ए-आजादी की विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की और नाना साहब के ऐतिहासिक ऐलान को उनकी तस्वीर के साथ जगह दी।

जबरन धर्म परिवर्तन का विरोध

मुंशी अयोध्या प्रसाद ने 1860 में अजमेर से साप्ताहिक 'खैर-ए-खुदा-ए-खल्क' का प्रकाशन किया। इस पत्र ने अँग्रेजों के खिलाफ मजबूती से मोर्चा सँभाला। जब देश को हथियारों से महरूम किया गया तो मुंशी अयोध्या प्रसाद ने इसके खिलाफ लिखा और अँग्रेज मिशनरीज की तरफ से लोगों के जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन का भी मुद्दा उठाया। हुकूमत ने मुंशी अयोध्या प्रसाद पर मुकदमा चलाया, कैद हुई और अखबार हमेशा के लिए बंद हो गया। सैयद जहीरुद्दीन तूर ने मेरठ से 1861 में 'जलवा-ए-तूर' का प्रकाशन किया। आजादी की इस लड़ाई में अँग्रेजों ने उनके वालिद को गोली मार दी। मुंशी महबूब आलम ने लाहौर से 'पैसा' (1778) का संपादन किया। दूसरे अखबारों की तरह इसका मकसद भी तहरीक-ए-आजादी की हिमायत और विदेशी उत्पादों का बायकाट करना रहा। पंडित मैलाराम वफा ने 'वीर भारत' के माध्यम से आजादी के आंदोलन को काफी सशक्त किया। वह अपने पत्र में बगावती मजामीन, कवितायें प्रकाशित करते थे, जिसकी वजह से उन्हें कई बार जेल हुई। इस तरह मौलाना मुहम्मद इस्माइल अलीगढ़ी, ख्वाजा युसूफ अली (आगरा, 1868) और मोहम्मद शरीफ ने 'मंसूर-ए-मुहम्मदी' (1882) के माध्यम से आजादी के आंदोलन को बरकरार रखने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई (अहमद, 2007)।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, सियासी रहनुमा और उर्दू के मशहूर शायर और पत्रकार मौलाना हसरत मोहानी की पैदाईश 1775 में उत्तर प्रदेश के एक कस्बे मोहान में हुई। इसी वजह से वे अपने नाम के आगे 'मोहानी' लिखते थे। हसरत मोहानी अपने पत्र 'उर्दू-ए-मोअल्ला' (1903) के द्वारा अँग्रेजी हुकूमत का तख्ता पलटने और स्वदेशी का प्रचार करते रहे। भारत के गफलत पसंद लोगों को पराधीनता से निजात दिलाने और अँग्रेजों के जुल्म-ओ-सितम से आजाद कराने में हसरत मोहानी और उनके रिसाले 'उर्दू-ए-मोअल्ला' ने बहुत अहम रोल अदा किया। हसरत मोहानी ने अपने रिसाले के द्वारा हुकूमत की बेजा चापलूसी को बेनकाब किया और यह काम उस दौर में किया जब अँग्रेजों के खिलाफ कुछ बोलना तक मुहाल था। अँग्रेजों और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ कोई बात, कोई इशारा भी बगावती क्रिया समझी जाती थी और सजा मिलती थी। उस दौर में हसरत मोहानी की बेबाक सहाफत ने जनजागरण में भरपूर योगदान दिया (रजा, 2000)।

19वीं सदी की उर्दू पत्रकारिता और तहरीक-ए-आजादी

उर्दू पत्रकारिता ने 19वीं सदी में आजादी के प्रति लोगों के रुझान को काफी हद तक बदला। पहली जंग-ए-आजादी में 'दिल्ली उर्दू अखबार' सहित दूसरे अखबारों ने अँग्रेजों के खिलाफ भारतीयों को लामबंद करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन दुर्भाग्यवश ये तहरीक सफल नहीं हो सकी। 20वीं सदी के आधे तक यानी 1901 से 1947 तक अधिकतर

उर्दू समाचार-पत्र आजादी के आंदोलन को नई दिशा देने में लगे रहे। मौलाना जफर अली खान का 'दैनिक जमींदार' (1903), मौलाना हसरत मोहनी की पत्रिका 'उर्दू-ए-मोअल्ला' (1903), बाबू दीनानाथ का 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' (1904), शांति नारायण भटनागर का साप्ताहिक 'स्वराज्य' (1907), मौलाना आजाद का 'अल-हिलाल' (1912) और 'अल-बलाग' (1915), मौलाना मुहम्मद अली जौहर का 'दैनिक हमदर्द' (1912), मौलाना अब्दुर रज्जाक मलीहाबादी का 'दैनिक हिंद' (1929), लाला लाजपत राय का 'वंदेमातरम्', महाशय कृष्ण का 'प्रताप', मौलाना मजीद का 'मदीना', स्वामी प्रकाश आनंद का 'दैनिक भीष्म' एवं 'वीर भारत' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी इनकलाबी और वतनपरस्त सामग्री की बदौलत भारतीयों के दिलों में विशेष स्थान बनाया और लोगों को आजादी के आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। मौलाना जफर अली खान का दैनिक 'जमींदार' (1903) पहला समाचार-पत्र था, जिसने अवाम के अन्दर खुद ऐतमादी कौमी, कौमी बेदारी और अँग्रेज दुश्मनी के तत्त्वों को उभारा। इस पत्र के संपादक मौलाना जफर अली खान एक बेबाक पत्रकार, इनकलाबी शायर और ओजस्वी वक्ता थे। जब गांधीजी के नेतृव में तहरीक-ए-आजादी की गति तेज हुई तो गिरफ्तारियों का दौर चल पड़ा। मौलाना को पाँच साल सजा हुई। इतनी दिक्कतों के बाद भी मौलाना अपने इरादे से नहीं भटके। आर्थिक कठिनाइयों के बीच 'जमींदार' 1927 में बंद हो गया।

हर संपादक को दस साल की सजा

बाबू दीनानाथ के साप्ताहिक हिंदुस्तान (1904) के तेवर भी वही थे। यह पत्र भी अग्रेजों की मुखालफत में आगे रहा। शांति नारायण भटनागर का साप्ताहिक 'स्वराज्य' (1907) इलाहाबाद से प्रकाशित होता था। इसका हर अंक बगावत को और हवा देता था। इस पत्र के साथ महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि इसके प्रत्येक संपादक को कम से कम 10 वर्ष की सजा हुई। 'स्वराज्य' के संपादक बनने की पहली शर्त थी कि आरामदेह जिन्दगी पर जेल की जिन्दगी को वरीयता देनी होगी। मौलाना आजाद का 'अल-हिलाल' 13 जुलाई, 1992 से प्रकाशित हुआ। इस साप्ताहिक पत्र के तेवर वही रहे। 'अल-हिलाल' अँग्रेजों की आँखों को चुभने लगा। वह अँग्रेज नीतियों का खुलकर विरोध करने लगे। पत्र का लब-ओ-लहजा दूसरे पत्रों से सख्त था। 8 सितंबर, 1912 को मौलाना से 2000 रुपये की जमानत ली गई। मौलाना की लेखनी में कोई बदलाव न देख 16 नवंबर, 1912 को 10,000 रुपये की जमानत माँगी गई। मौलाना इतनी बड़ी रकम देने में असमर्थ थे, इसलिए उनकी प्रेस को जब्त कर लिया गया। मौलाना ने 1915 में एक दूसरे साप्ताहिक पत्र 'अल-बलाग' का प्रकाशन किया। इस पत्र में भी उसी तरह की सामग्री को जगह दी जाने लगी। लेकिन इस बार पत्र और प्रेस को बंद करने के बजाय मौलाना को ही नजरबंद कर दिया गया (फरियाद, 2017)। मौलाना मजीद के साप्ताहिक पत्र 'मदीना' ने भी 20वीं सदी की दूसरी दहाई में हिंदुस्तानियों को तहरीक-ए-आजादी में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। पहला विश्वयुद्ध 28 जुलाई, 1914 को शुरू हुआ जो 11 नवंबर, 1918 को समाप्त हुआ। अँग्रेजी हुकूमत ने हिंदुस्तान को भी इस लड़ाई में झोंक दिया। जिसका विरोध 'जमींदार', 'हमदर्द' और दूसरे अखबारों ने किया। 'जमीदार' के बंद होने पर मुरादाबाद से प्रकाशित-पत्र 'मंजर' ने इस तरह से अफसोस प्रकट किया था—"देश जिस तरह से ये अफसोसनाक खबर सुन चुका है कि 13 जनवरी,1914 को 'जमींदार' प्रेस पंजाब सरकार के हुक्म से जब्त कर लिया गया और उसकी चार मशीनें, एक इंजन और कुल सामान सरकारी हिफाजत में ले लिया गया है और इसकी पिछली दो हजार वाली जमानत की तरह सितंबर की दूसरी जमानत 10,000/दस हजार भी जब्त कर ली गई है, जिससे प्रेस को तकरीबन 30/35 हजार का नुकसान हुआ है। साथ ही जमींदार की जिंदगी का अंत भी हुआ" (रजा, 2000)।

'तहरीक' लाहौर से, 'पैगाम' कलकत्ता से, 'केसरी' लाहौर से, 'तनवीर' अम्बाला से, 'हमदम' लखनऊ से और 'अफगान' पेशावर से प्रकशित हुए। ये 20वीं सदी में तीसरी दहाई के प्रमुख उर्दू पत्र रहे, जिसने अँग्रेजी नीतियों का खुलकर विरोध किया एवं आवाम को जंग-ए-आजादी मुहिम से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। दूसरा विश्वयुद्ध 1939 से प्रारंभ हुआ। उर्दू पत्रकारिता का तेवर उसी तरह बरकरार रहा। दूसरे विश्वयुद्ध की वजह से अँग्रेजों को घेरने का यह सुनहरा मौका था, जिसे उर्दू पत्रकारों ने जाने नहीं दिया। इस दहाई में बंबई से 'इनकलाब' दैनिक, पटना से 'अक्दाम', 'नकीब', 'राजगीर', लाहौर से 'एहसान', कलकत्ता से 'अंजाम' जैसे प्रमुख पत्रों का प्रकाशन हुआ। बंबई से प्रकाशित 'इनकलाब' वर्तमान में भी जारी है। 'इनकलाब' का शुमार देश के सर्वाधिक प्रामाणिक उर्दू पत्र के रूप में होता है। इस कालखंड में उर्दू समाचार पत्रों की निगरानी बदस्तूर जारी रही है। दूसरा विश्वयुद्ध 1945 में समाप्त हुआ। अमेरिकी गठबंधन कामयाब हुआ, जापान की हार हुई। इसी दौर में लाहौर से 'जय हिंद' (1941) का प्रकाशन हुआ। दिल्ली से 1942 में 'जंग' का प्रकाशन शुरू हुआ। 'नवा-ए-वक्त' (1944) का प्रकाशन लाहौर से प्रारंभ हुआ। 1945 में काँग्रेस पार्टी ने लखनऊ से 'कौमी आवाज' का प्रकाशन किया।

उर्दू सहाफत और भारत विभाजन

उर्दू पत्रकारिता के इस इतिहास से लगता है कि देश की आजादी में उर्दू मीडिया ने अहम भूमिका निभाई। क्या वाकई ऐसा है? जिस प्रकार आजादी के आंदोलन में अँग्रेजी मीडिया पर बहुत से सवाल हैं उसी प्रकार उर्दू मीडिया पर भी कुछ सवाल हैं। इसमें सबसे बड़ा सवाल ये है कि भारत विभाजन की माँग पर अड़े लोगों को जितना समर्थन उर्दू मीडिया से मिला उतना अन्य भारतीय भाषाई मीडिया से नहीं मिला। 1947 के आते-आते लगभग तमाम समाचार-पत्रों ने अपनी एक राजनैतिक लाइन तय कर ली थी। कुछ समाचार-पत्र खुलकर अँग्रेजों की खुशामद करते थे, जबकि अधिकांश अँग्रेज मुखालिफ थे। कुछ पत्र खुलकर भारत विभाजन की बात करते थे और कुछ इसका सख्त विरोध। उर्दू समाचार-पत्र 'जंग' का प्रकाशन 1944 में नई दिल्ली से मीर खलील-उर-रहमान के द्वारा किया गया। 'जंग' ने भी कुछ दूसरे उर्दू पत्रों की तरह 'टू नेशन थ्योरी' का समर्थन किया। दिल्ली से प्रकाशित उर्दू पत्रों में 'अंजाम', 'जंग', 'मंसूर' और लाहौर से प्रकाशित पत्रों में 'इनकलाब', 'नवा-ए-वक्त' तथा कलकत्ता से प्रकाशित समाचार-पत्र 'असर-ए-जदीद' का रुझान मुस्लिम लीग की तरफ था। दिल्ली से छपने वाले 'जंग' और 'अंजाम' का प्रकाशन बँटवारे के बाद कराची से होने लगा। "भारत विभाजन के वक्त देश में कुल 415 उर्दू अखबार थे, जिनमें दैनिक, साप्ताहिक पाक्षिक और मासिक सभी शामिल हैं। विभाजन के बाद इनमें से 70 अखबारों के मालिक पाकिस्तान

चले गए और 345 भारत में ही रहे" (चटर्जी, 2011)। 1935 तक उर्दू मीडिया का बहुत बड़ा वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन के साथ था, लेकिन मार्च 1940 में जब मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना ने द्विराष्ट्र सिद्धांत के नाम पर पाकिस्तान की माँग का प्रस्ताव लाहौर में पास किया तो उसके बाद उर्दू मीडिया का एक वर्ग साफतौर से पाकिस्तान की माँग के पक्ष में खड़ा नजर आया। हालाँकि उस समय भी उर्दू मीडिया के एक वर्ग ने इस माँग का सख्त विरोध किया था और देश विभाजन के बजाय मुसलमानों के बेहतर प्रतिनिधित्व और उन्हें अधिक सुविधाएँ देने की बात की थी। इसके अलावा जब अविभाजित पंजाब में कंपोजिट कल्चर के पक्ष में और देश विभाजन के विरुद्ध आंदोलन हुए तो उर्दू मीडिया का राष्ट्रभक्त वर्ग इन आंदोलनों के साथ था, परंतु धीरे-धीरे उर्दू मीडिया का एक वर्ग मुस्लिम लीग की आवाज बनता गया और अंतत: देश का बँटवारा हो गया। भारत विभाजन में, खास तौर से वर्ष 1940 से 1947 तक, उर्दू मीडिया की भूमिका पर और अधिक शोध की आवश्यकता है ताकि देश की नई पीढ़ी हकीकत से वाकिफ हो सके।

निष्कर्ष

भारत की आजादी में सभी मत-पंथों के लोगों नें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। अनगिनत लोगों ने अपनी जान कुर्बान की, दर-ब-दर हुए और कइयों को कालापानी की कठोर सजा हुई। स्वतंत्रता आंदोलन में उर्दू सहाफत ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, जिसके कारण अनेक लेखकों और पत्रकारों का बलिदान हुआ। बहादुर शाह जफर से लेकर हसरत मोहानी और मौलाना आजाद की बेशकीमती जिंदगी जेलों में गुजरीं। देश के सभी भागों से निकलने वाले वाले उर्दू पत्रों और पत्रकारों के यही तेवर रहे। मौलवी मोहम्मद बाकर को सरेआम गोली मारी गई। उन सभी पत्रकारों को अँग्रेजी जुल्म का सामना करना पड़ा, जिन्होंने आजादी की तबलीग की। तहरीक-ए-आजादी की यह दास्तान पौने दो सौ सालों की है। पत्रकारों की इतनी कुर्बानियाँ शायद ही किसी और भाषा के पत्रकारों को झेलनी पड़ी हों। अधिकतर पत्रों की प्रेस जब्त की गई या इतना अधिक जुर्माना लगा दिया गया कि अखबार वैसे ही बंद हो जाए। इन सबसे भी जब बात नहीं बनी तो पत्रकारों को जेलों में डाल दिया गया। उस वक्त अँग्रेजी सत्ता से मुखालफत का अर्थ ही था जीवन को संकट में डालना। इस संबंध में मौलाना आजाद लिखते हैं—"बिना किसी शक के मैंने प्रेस खोला और यकीनन मैंने एक पत्रिका का संपादन किया, लेकिन यह सिर्फ इसलिए कि इजहार-ओ-खयाल और तब्लीग-ए-मकसद का इससे बेहतर और त्वरित कार्रवाई का कोई और जरिया नहीं था। मेरे पास इतनी दौलत नहीं थी कि मैं मुफ्त छाप कर बाँटता। मेरे तमाम कामों की बुनियाद उपदेश है न कि व्यापार। मेरे समाचार लेखन को तुम समाचार लेखन न करार दो, क्योंकि मैंने इसे ऐसे ही अख्तियार किया, यह हिंदुस्तान के समाचार लेखन और मुद्रित प्रकाशन के लिए बेहतर हुआ। इससे तरक्की की एक बिलकुल नई राह निकाली"(फरियाद, 2017)।

मौलाना आजाद की पत्रकारिता तो एक दस्तावेज है ही, इस दौर के दूसरे पत्रकारों ने भी मुल्क की आजादी की खातिर जान की बाजी लगा दी। मौलाना जफर अली खान, मौलाना मोहम्मद अली जौहर, हसरत मोहानी, लाला खुशहाल चंद, महाशय कृष्ण, लाला देशबंधु गुप्ता ने लोगों को जागरूक करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने लोगों के दिलों में आजादी की शमा रोशन की। मौलाना उस्मान उर्दू पत्रकारिता के जंग-ए-आजादी तहरीक में रोल को इस तरह याद करते हैं—"आजादी की आग को रोशन करने के लिए उर्दू समाचार-पत्रों ने जो सेवाएँ दीं, उसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बहुत से समाचार-पत्रों ने एक बार नहीं, बल्कि छह-छह बार जमानतें जब्त करवाईं और अपने संपादकों, कालमनिगारों और विश्लेषकों के लिए जेल के दरवाजे खोले। मौलाना मोहम्मद अली जौहर के समाचार-पत्र 'हमदर्द' की फाइल गवाह है कि वह अँग्रेजों के सीने में कील बनकर चुभता रहा। समाचार-पत्र 'जमीदार' ने जेलों को अपना स्थायी ठिकाना बना लिया और उसके संपादकों को सालों तक जेल की अँधेरी कोठरी में रखा जाता। उर्दू समाचार-पत्रों के गैर-मुस्लिम संपादक भी इस तहरीक की भेंट चढ़े, क्योंकि जंग-ए-आजादी में इनका किरदार बुलंद रहा और अधिकाधिक कुर्बानियाँ पेश कीं" (अहमद, 2007)।

चर्चित उर्दू पत्रकार जमनादास अख्तर लिखते हैं—"आजादी के आंदोलन में उर्दू समाचार-पत्रों ने जो ऐतिहासिक भूमिका निभाई उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। मौलवी मोहम्मद बाकर संपादक,'उर्दू अखबार' ने 1857 में बेखौफ पत्रकार की हैसियत से हिस्सा लिया और हथियार डालने के बजाय बलिदान देना स्वीकार किया। मौलाना जफर अली खान ने कई बार जेल की यात्रा की। कुल मिलाकर इनकी तीस लाख रुपये की जमानातें जब्त हो गईं। मौलाना आजाद ने 'अल-हिलाल' के संपादक की हैसियत से अपने आपको इनकलाबी पत्रकार साबित किया। कई बार जेल की यात्रा की और काँग्रेस पार्टी की अध्यक्षता भी की। मौलाना हसरत मोहानी पत्रकार होने के साथ जंग-ए-आजादी तहरीक में आगे-आगे रहे। मौलाना मोहम्मद अली निडर पत्रकार थे और जंग-ए-आजादी के मुजाहिद भी, उन्होंने काँग्रेस की अध्यक्षता भी की। पंडित किशन चंद मोहन उस वक्त के पश्चिमी पंजाब के पहले पत्रकार थे, जिन्होंने 'दैनिक शांति' रावलपिंडी से प्रकाशित किया। खिलाफत तहरीक में गिरफ्तार हुए और उनका प्रेस जब्त कर लिया गया। पंडित मैलाराम वफा ने दैनिक 'वीर भारत' में संपादक की हैसियत से पहले पृष्ठ पर पराये फिरंगी के विषय से अपना बागियाना कलाम प्रकाशित किया और गिरफ्तार हुए, फिर जमानत दी और बाहर आए। ये सिलसिला चलता रहा। रणवीर इनकलाब पसंद थे, उन्हें पंजाब के गवर्नर पर गोली चलाने की साजिश के इलजाम में गिरफ्तार किया गया था। वह आखिरी दम तक 'मिलाप' के संपादक रहे" (अहमद, 2009)।

कुल-मिलाकर उर्दू पत्रकारिता और उर्दू पत्रकारों ने आजादी के आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। चूँकि उस वक्त समाचार-पत्रों का प्रसार बहुत नहीं था, मगर उसके पढ़ने वाले अधिक थे। मात्र सैकड़ों में छपने वाले अखबारों की प्रतियाँ और प्रेस जब्त कर लिए जाते थे। इससे अंदाजा होता है कि इन पत्रों की पहुँच कहाँ तक थी। तमाम सरकारी और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद पत्रकारों का हौसला कम नहीं होता था। वर्षों जेल की अँधेरी कोठरी में रहने के बाद निकलते थे तो उनका वही अंदाज होता था। यह इस बात का सबूत है कि आजादी के आंदोलन को एक दिशा देने में उर्दू पत्रकारों और उर्दू पत्रकारिता का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

संदर्भ

अय्यूब, एस. (1999). *तहरीके आजादी और अल-हिलाल*.

आहूजा, बी. एन. (1996). *हिस्ट्री ऑफ इंडियन प्रेस : ग्रोथ ऑफ न्यूज पेपर्स इन इंडिया*. दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशंस.

अशरफ, ह. (2018). *उर्दू सहाफत मसाएल और इमकनात*. दिल्ली : एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस.

अनवर, ए. (2006). *मगरीबी बंगाल में उर्दू सहाफत* (पी.एच डी. शोध, कलकत्ता विश्वविद्यालय). शोध गंगा.

इंजीनियर, ए. ए. (2005). *दे टू फॉट फॉर इंडियाज फ्रीडम : द रोल ऑफ माइनॉरिटीज*. गुडगाँव : होप इंडिया पब्लिकेशंस.

चटर्जी, एम. (2011). *हिस्ट्री ऑफ उर्दू जर्नलिज्म इन इंडिया*. https://akhbarurdu.com/news_u/history_of_urdu_15102011.html से पुन:प्राप्त

चंदन, जी. डी. (1986). *उर्दू सहाफत पर एक नजर*. दिल्ली : दिल्ली उर्दू अकादमी.

चंदन, जी.डी. (1992). *जाम-ए-जहाँनुमा : उर्दू सहाफत की इब्तेदा*. दिल्ली: मकतबे जामिया.

मोहानी, ह. (1911). *उर्दू-ए-मोअल्ला*. अलीगढ़ : उर्दू प्रेस अलीगढ़.

रबिन्द्रनाथ, पी.के. (2005). *इंडियन रीजनल जर्नलिजम*. दिल्ली : ऑथर्स प्रेस.

समीउद्दीन, आ. (2007). *कौमी महाज-ए-आजादी और उत्तर प्रदेश के मुसलमान*. दिल्ली : इंस्टीट्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज.

रजा, अ. (2000). *उर्दू सहाफत*. दिल्ली : कौमी कौंसिल बरा-ए-फरोग-ए-उर्दू जबान.

इकरामुद्दीन, म. (2014). *उर्दू मीडिया*. दिल्ली : कौमी कौंसिल बरा-ए-फरोग-ए-उर्दू जबान.

खान,अ. (2019). *आवामी तरसील* : उसूल व नजरयात. दिल्ली : अर्शिया प्रकाशन.

मुरादाबादी, मु. (2008). *उर्दू सहाफत और जंग-ए-आजादी 1857*. दिल्ली : खबरदार प्रकाशन.

फरियाद, मो. (2017). *मौलाना आजाद ब-हैसियत-ए-सहाफी*. दिल्ली : एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस.

अहमद, समी. (2009). *उर्दू सहाफत और तहरीक-ए-आजादी*. दिल्ली : मॉडर्न पब्लिशिंग हाउस.

https://www.files.ethz.ch/isn/102250/68.pdf

https://www.thenews.com.pk/print/355071-pakistan-movement-and-role-of-muslim-press से पुन:प्राप्त

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 84-86, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और सिनेमा

डॉ. सोनाली नरगुंदे[1] और डॉ. लखन रघुवंशी[2]

सारांश

भारत में सिनेमा का आगमन स्वतंत्रता संग्राम के शुरुआती दौर में हो चुका था और तब यह माध्यम भी भारतीयों के लिए उतना ही नया था जितना कि स्वतंत्रता शब्द का अर्थ। जिस तरह भारतवासी स्वतंत्रता के अर्थ और उसके महत्त्व को समझने का प्रयत्न कर रहे थे, ठीक उसी प्रकार फिल्म निर्माता एवं निर्देशक भी इस नए माध्यम को समझने की कोशिश कर रहे थे। लुमियर ब्रदर्स की शैली के बाद सिनेमा की भाषा के विकास में कई निर्देशकों ने अपना योगदान दिया और यह माध्यम शुरुआती दौर में ही अन्य माध्यमों की तुलना में अधिक प्रभावी साबित हुआ। यही कारण रहा कि अपने शुरुआती दौर में ही सिनेमा माध्यम का उपयोग विश्व के कई देशों में 'प्रोपेगेंडा' के लिए किया जाने लगा। भारत में शुरुआती दौर की फिल्मों में स्वतंत्रता का भाव प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, लेकिन फिल्म निर्माण की भावना के पीछे स्वदेशी भाव है और अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशकों ने स्वतंत्रता सैनानियों के विचारों को ही आधार बनाया है। यही नहीं, शुरुआती दौर की भारतीय फिल्मों ने रूढ़िवादिता को तोड़ते हुए एक भावी स्वतंत्र देश की कल्पना को साकार करने में भी महती भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता संग्राम और सिनेमा एक ही समय में विकसित हो रहे थे और दोनों की यात्रा समानांतर है। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और सिनेमा पर उसके प्रभाव की चर्चा करता है।

संकेत शब्द : भारतीय सिनेमा, स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन,

प्रस्तावना

विश्व में सिनेमा का आगमन वर्ष 1885 में हुआ। सिनेमेटोग्राफ के जन्मदाता लुमियर ब्रदर्स की लघु फिल्मों का प्रदर्शन सर्वप्रथम 28, दिसम्बर 1895 को पेरिस में किया गया। इस प्रदर्शन के कुछ माह बाद ही वर्ष 1896 में भारत में पहली बार लुमियर ब्रदर्स की लघु फिल्में दिखाई गई। सिनेमा के इस पहले प्रदर्शन ने जहाँ एक ओर आम दर्शकों को अभिभूत कर दिया, वहीं दूसरी ओर कलाकारों को फिल्म निर्माण के लिए प्रेरित भी किया। दादासाहब फालके से पूर्व कई फिल्म निर्माताओं ने निजी तौर पर फिल्मों का निर्माण किया। हीरालाल सेन एवं हरिश्चंद्र सखाराम भाटवडेकर इनमें से प्रमुख हैं। जिनकी लघु फिल्मों को भारत की सर्वप्रथम वृत्तचित्र फिल्मों की श्रेणी में रखा जा सकता है। भारत में फिल्म निर्माण की भावना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से भी उतनी ही जुड़ी हुई थी जितनी की भारतीय संस्कृति से। दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देने वाले इस अभूतपूर्व माध्यम ने एक अवसर दिया भारतीय कलाकारों को अपनी संस्कृति को सिनेमा के माध्यम से जीवंत कर देने का। यही कारण रहा कि दादासाहब फालके से लेकर बाबुराव पेंटर जैसे चित्रकारों ने भी फिल्म निर्माण पर ध्यान दिया। भारत की पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' 3 मई, 1913 को प्रदर्शित हुई। जिसका निर्देशन दादासाहब फालके ने किया था। फालके एक स्वदेशी फिल्म का निर्माण करना चाहते थे और सिनेमा की भाषा में पौराणिक कथाओं को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। फालके बतौर सहायक राजा रवि वर्मा के साथ काम कर चुके थे और कला की गंभीर समझ रखते थे। सिनेमा की तकनीक को फालके ने प्रयोग के माध्यम से ही सीखा। जैसा कि उनकी फिल्म के शीर्षक से ही समझा जा सकता है। फालके की पहली फिल्म थी 'मटर के पौधे का विकास'। यह फिल्म सिनेमा तकनीक को समझने के लिए एक प्रयोग के रूप में बनाई गई थी।

'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' (1906) से प्रेरित फालके ने अपनी पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' के लिए एक ऐसे विषय को चुना, जो न सिर्फ पौराणिक महत्त्व का था, अपितु समसामयिक भी था। शुरुआती दौर की अधिकांश भारतीय फिल्में महाभारत एवं रामायण के विभिन्न प्रसंगों पर ही आधारित हैं और अधर्म पर धर्म की जीत का संदेश देती हैं। यह विदित है कि राजा राममोहन रॉय, स्वामी दयानंद सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले जैसे कई समाज सुधारक हुए और उनका उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों का अंत करना था और भारतीय निर्देशकों ने पौराणिक कथाओं को ही इसका आधार बनाया। पौराणिक कथाओं के नकारात्मक पात्र जैसे कंस, रावण जहाँ बुराइयों के प्रतीक थे वहीं राम और कृष्ण अच्छाइयों के प्रतीक के रूप में थे। भारतीय निर्देशकों ने बहुत ही कलात्मक रूप से प्रतीकात्मक फिल्में बनाई और अपने स्तर पर समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और अँग्रेजी शासन के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से अपनी असहमति जताई। महात्मा गांधी 'भगवद् गीता' से प्रभावित थे एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उन्होंने सत्य, अहिंसा एवं शांति को ही अपना हथियार बनाया। भारतीय फिल्म निर्देशक समाज सुधारकों एवं आंदोलनकारियों के विचारों से प्रभावित थे और अपनी फिल्मों में अप्रत्यक्ष रूप से उनकी विचारधाराओं का समर्थन भी करते थे।

एक समय ऐसा भी आया जब अपनी फिल्मों के माध्यम से कई भारतीय निर्देशकों को विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई और उन्हें अन्य देशों से फिल्म निर्माण के प्रस्ताव भी प्राप्त हुए, लेकिन देशप्रेम के चलते उन्होंने सभी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और आजीवन भारत में ही फिल्में बनाते रहे। स्वयं दादासाहब फालके भी उन निर्देशकों में से एक हैं, जिन्होंने यह कहकर कि मैं आजीवन भारत में ही फिल्म निर्माण करुँगा, जिससे कि यह एक उद्योग के रूप में विकसित हो सके, निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। लेकिन फिल्म निर्माण अन्य कलाओं से भिन्न था और उसकी अलग तरह की समस्याएँ थी। सिनेमा शुरुआत से ही एक महँगा माध्यम तो था ही, साथ ही फिल्म निर्माण के लिए तकनीकी

[1]विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर. ईमेल : sonalee.nargunde@gmail.com
[2]सहायक प्राध्यापक, मणिपाल युनिवर्सिटी, जयपुर. ईमेल : lakhan.raghuvanshi@jaipur.manipal.edu

ज्ञान की भी आवश्यकता थी। इसीलिए फिल्म निर्माण गतिविधियाँ कुछ शहरों तक ही सीमित रहीं। उक्त अनिवार्यताओं के चलते सिनेमा कभी भी तात्कालीन सरकार से सीधे तौर पर मुखर नहीं हो पाया, लेकिन समाज सुधार के संदेशों को उसने अपनी कथाओं का आधार बनाया। फालके द्वारा निर्देशित 'लंका दहन' (1917) और 'कालिया मर्दन' (1919) सिर्फ पौराणिक कथाएँ नहीं हैं, अपितु प्रतीकात्मक रूप से ब्रिटिश सरकार को अधर्म के रूप में प्रदर्शित करती हैं। इस दौर में मुख्यत: दो तरह की फिल्मों का निर्माण हो रहा था। पहली पौराणिक कथाओं पर आधारित फिल्में और दूसरी ऐतिहासिक महत्त्व की फिल्में, जो भारत के गौरवशाली इतिहास को दिखाती थीं। वर्ष 1918 की शुरुआत में ही ब्रिटिश सरकार को सिनेमा माध्यम की पहुँच और प्रभाव का आभास हो गया था और इसीलिए उन्होंने ब्रिटिश सेंसरशिप (1912) की तरह भारत में इंडियन सिनेमेटोग्राफ एक्ट (1918) लागू किया, जिसमें सिनेमाघरों के लाइसेंस तथा फिल्मों के सेंसर की व्यवस्था थी। इन सब प्रतिबंधों और कठोर नियमों के बीच भी सिनेमा ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की नींव को मजबूत करने में अपनी भूमिका निभाई।

सिनेमा एवं सामाजिक सुधार

स्वतंत्रता प्राप्ति का पथ दुर्गम था। इसमें कई प्रकार की बाधाएँ थीं और ये बाधाएँ भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर व्याप्त थीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक था कि आंतरिक बाधाओं से मुक्त होकर प्रत्येक भारतीय इस आंदोलन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करे। यही कारण रहा कि राजा राममोहन रॉय ने स्वतंत्रता की तुलना में सामाजिक सुधार पर अधिक ध्यान दिया। उन्होंने अपने समाचार पत्रों के माध्यम से सती प्रथा, बाल विवाह और जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाई। सिनेमा में भी पौराणिक कथाओं के बाद एक दौर आया जब निर्देशकों ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों पर फिल्में बनाई। कई बार निर्देशकों को सामाजिक विरोध और फिल्मों के सामूहिक बहिष्कार का भी सामना करना पड़ा, लेकिन सामाजिक सुधार के लिए वे फिल्में बनाते रहे। महात्मा गांधी और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे कई नेताओं ने सिनेमा माध्यम को एक गंभीर माध्यम के रूप में नहीं स्वीकारा। लेकिन जब कभी भी कोई ऐसी फिल्म प्रदर्शित हुई, जिसने सामाजिक सुधार को अपना विषय बनाया तो खुलकर उस फिल्म की सराहना भी की। "यदि एक फिल्म इस अभिशाप (छुआछूत) को दूर करने में इतनी सहायक हो सकती है तो यह कहा जा सकता है कि भारत को स्वराज दिलाने में भी यह सहायक हो सकती है, क्योंकि छुआछूत स्वतंत्रता प्राप्ति के रास्ते में एक मुख्य बाधा है।" (शर्मा, 2005) सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह बात चंदूलाल शाह की फिल्म 'अछूत' (1940) के प्रदर्शन के दौरान कही थी।

छुआछूत एकमात्र समस्या नहीं थी, अपितु कई और भी सामाजिक समस्याएँ थीं, जिनके उन्मूलन के बिना स्वतंत्रता प्राप्ति के विषय में सोचा भी नहीं जा सकता था। इनमें से एक मुख्य समस्या थी महिलाओं को आंदोलन में अपना योगदान देने के लिए प्रेरित करना। लेकिन महिलाओं को आंदोलन का हिस्सा बनाने के लिए आवश्यक था कि उन्हें घर के उत्तरदायित्व से बाहर लाना और देश के स्तर पर उनके उत्तरदायित्व को निर्धारित करना और यह कार्य महात्मा गांधी ने किया। वर्ष 1930 की दांडी यात्रा हो अथवा 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन, गांधीजी ने महिलाओं को भी आंदोलन से जोड़ा। भारतीय निर्देशकों ने भी पौराणिक कथाओं के स्त्री चरित्रों के साथ ही महिला समस्याओं पर आधारित फिल्मों का निर्माण किया। मदान की 'इंदिरा' (1929) और इंपीरियल फिल्म्स की 'इंदिरा बी.ए.' में महिलाओं की समस्याओं से रूबरू कराया गया। नवल गांधी निर्देशित 'देवदासी' (1930) में प्राचीन कुप्रथा को प्रदर्शित किया गया, जिसके अंतर्गत सुंदर स्त्रियों को मंदिरों और मठों में सौंप दिया जाता था। इसी वर्ष कृष्णा कंपनी ने के. एम. मुंशी के उपन्यास पर आधारित 'अपराधी कौन' (Whose Fault) का निर्माण किया, जिसमें विधवा महिला और उसके प्रति समाज की असंवेदनशीलता को दिखाया गया। समाज सुधार के विषयों पर फिल्म बनाने वाले निर्देशकों में व्ही. शांताराम अग्रणी निर्देशक कहे जा सकते हैं। शांताराम ने 'दुनिया न माने' (1937) बनाई, जो बेमेल विवाह की समस्या पर आधारित थी। शांताराम निर्देशित आदमी (1939) एक और महत्त्वपूर्ण फिल्म है। यह फिल्म वेश्याओं को समाज से जोड़ने का एक प्रयास था। फिल्म का नायक, जो एक पुलिसकर्मी है, एक वेश्या के प्रेम में पड़ जाता है और उसे बचाने के प्रयास करता है। न्यू थियेटर्स की हेमचंद्र निर्देशित 'अनाथ आश्रम' (1937) विधवा पुनर्विवाह की हिमायत करती है।

इस दशक में महिला समस्याओं के अतिरिक्त समाज सुधार के अन्य विषयों पर भी फिल्मों का निर्माण हुआ। पूना की फिल्म कंपनी युनाइटेड पिक्चर्स सिंडिकेट ने एन.डी. सरपोतदार के निर्देशन में 'दो अछूत' (1925) बनाई, जिसमें छुआछूत जैसी बुराइयों पर गांधी के विचारों को दिखाया गया। शारदा फिल्म कंपनी ने 'बाजीराव मस्तानी' फिल्म का प्रदर्शन किया, जो हिंदू-मुस्लिम एकता की बात करती थी। सामाजिक महत्त्व की अन्य फिल्मों में बाबुराव पेंटर निर्देशित 'सावकारी पाश' (1925) एक महत्त्वपूर्ण फिल्म है। इस फिल्म की पटकथा सुप्रसिद्ध उपन्यासकार नारायण हरी आप्टे ने लिखी थी। इस फिल्म में साहूकारों द्वारा किसानों के शोषण को बहुत ही सजीवता के साथ दिखाया गया था। इस फिल्म को भारत की पहली यथार्थवादी फिल्म भी कहा जाता है, जो बाद में एक सिनेमा आंदोलन में बदल गया। इंदुलाल की 'यंग इंडिया' (1929) में नवयुवकों को विकास के लिए आगे आने तथा सामाजिक भेदभाव खत्म करने की प्रेरणा दी गई। अजंता मूवीटोन निर्मित एवं मोहन भावनानी निर्देशित 'मजदूर' (1934) में पूँजी और श्रम की समस्या को दिखाया गया। इसकी कहानी हिंदी के उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने लिखी थी।

अशोक कुमार अभिनित फिल्म 'अछूत कन्या' (1936) को दर्शकों ने काफी सराहा। फ्रैंज ऑस्टीन निर्देशित यह फिल्म एक उच्चजातीय लड़के और हरिजन लड़की की प्रेम कहानी है। मास्टर विनायक निर्देशित 'ब्रांडी की बोतल' (1939) में शराब के दूरगामी प्रभावों पर कटाक्ष किया गया। सामाजिक महत्त्व की फिल्मों में महबूब खान ने 'औरत' (1940) और 'रोटी' (1942) जैसी फिल्में बनाई। 'औरत' एक किसान औरत की कहानी है, जो पति के चले जाने के बाद कठिनाई से अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है। वहीं 'रोटी' भूख की सच्चाई को प्रदर्शित करती है। गोर्की के उपन्यास 'लोअर डेप्थस' पर आधारित चेतन आनंद की 'नीचा नगर' (1946) भी एक महत्त्वपूर्ण फिल्म है, जिसमें अमीर वर्ग और गरीब वर्ग की जीवन शैली और उसके विरोधाभास को चित्रित किया गया है। ख्वाजा अहमद अब्बास की 'धरती के लाल' (1946) अकाल और युद्ध की विभीषिका को प्रदर्शित करती है। विश्व प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक सत्यजीत रे के अनुसार 'धरती के लाल' भारतीय सिनेमा के इतिहास में मील का पत्थर है, जहाँ सामाजिक स्थिति को बहुत ही गंभीरता और संवेदनशीलता के साथ दिखाया गया है। 1917 की सामाजिक क्रांति ने कलाकारों में भी एक नई चेतना को जगाया। प्रगतिशील लेखक संघ एवं

इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसिएशन (इप्टा) इसी का परिणाम थे। बिमल रॉय, कृष्ण चंदर, ख्वाजा अहमद अब्बास आदि कलाकार इप्टा के ही हिस्से थे, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सामाजिक महत्त्व की फिल्मों का निर्माण किया। इन फिल्मकारों और कलाकारों ने लगातार विकासशील देश की समस्याएँ और उनके समाधान पर फिल्में बनाई। बिमल रॉय की 'दो बीघा जमीन' और 'सुजाता' ऐसी ही फिल्में हैं।

सिनेमा एवं सेंसरशिप

समाचार पत्रों एवं अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों की तरह ही ब्रिटिश सरकार ने फिल्मों पर भी कई प्रकार से प्रतिबंध लगाए। शुरुआती दौर में फिल्म सेंसरशिप का मुख्य उद्देश्य फिल्मों को अभिव्यक्ति का साधन बनने से रोकना था। इन नियमों के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कुछ भी कहने और प्रदर्शित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। फिल्मों में आजादी की माँग तो दूर, सरकारी कर्मचारियों की निंदा तक नहीं की जा सकती थी। नियम 37 में तो स्पष्ट कहा गया था कि 'भारत संबंधी ऐसे तमाम विषय फिल्मांकन के लिए अनुपयुक्त हैं, जिनमें ब्रिटिश या हिंदुस्तानी अफसर घृणास्पद दृष्टि से दिखाए जाएँ या देसी रियासतों की ओर से विद्रोह की झलक दिखाने की कोशिश हो, या साम्राज्य में ब्रिटिश प्रतिष्ठा की बदनामी हो।'(भार्गव, 2013) सेंसरशिप के कठोर नियमों के बाद भी कई फिल्म निर्देशकों ने ऐसी फिल्मों का निर्माण किया, जिनमें स्वतंत्रता एवं जागरूकता के पहलुओं को प्रदर्शित किया। कोहिनूर फिल्म कंपनी की फिल्म 'भक्त विदुर' (1921) में महाभारत की कथा के बहाने उस समय के राजनीतिक मुद्दों को सीधे तौर पर दिखाया गया। रॉलेट एक्ट का भी इसमें विरोध किया गया। परिणामस्वरूप फिल्म को सेंसरबोर्ड ने बड़ी कठिनाई से पास किया। भाल जी. पेंढारकर ने वर्ष 1926 में वंदेमातरम् फिल्म कंपनी की स्थापना की और 'वंदेमातरम् आश्रम' (1926) फिल्म का निर्माण किया, जिसमें ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के दोषों को उजागर किया गया और भारतीय शिक्षा पद्धति पर जोर दिया गया। सेंसर बोर्ड ने फिल्म को प्रतिबंधित कर दिया। इसी प्रकार प्रभात फिल्म कंपनी की शिवाजी के जीवन पर आधारित फिल्म 'स्वराज तोरण' (1930) को भी प्रतिबंधित कर दिया। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को 'स्वराज' शब्द से आपत्ति थी, जो गांधीजी के स्वराज से जुड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप निर्देशक को फिल्म का नाम बदलना पड़ा और बाद में इसे 'उदयकाल' नाम से प्रदर्शित किया गया। सोलहवीं शताब्दी के महान संत एकनाथ के जीवन पर आधारित फिल्म 'धर्मात्मा' (1935) भी सेंसरशिप से पास नहीं हो पाई थी। छुआछूत पर आधारित इस फिल्म का नाम 'महात्मा' था और इस फिल्म में महात्मा गांधी की छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। सेंसरबोर्ड ने फिल्म का नाम 'महात्मा' से बदलकर 'धर्मात्मा' कर उसे प्रदर्शित करने की अनुमति दी। कई फिल्मों में अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन किया और ये गीत आंदोलनों के नारे में बदल गए। 'दूर हटो ऐ दुनिया वालो, हिंदुस्तान हमारा है' और 'इनकलाब जिंदाबाद' आदि इसके उदाहरण हैं।

निष्कर्ष

सिनेमा माध्यम अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक महँगा माध्यम था और लगातार फिल्में बनाते रहने के लिए निर्देशकों को पूँजी की भी आवश्यकता थी, इसलिए भारतीय निर्देशकों ने शुरुआती दौर में प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के विरोध में फिल्मों का निर्माण नहीं किया, अपितु वे अपनी कला और संस्कृति से प्रेरित फिल्में बनाते रहे। दूसरे दौर में भारतीय निर्देशकों ने सामाजिक सुधार को ध्यान में रखकर फिल्में बनाई। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से सिने निर्माता अनभिज्ञ नहीं थे। यह कहा जा सकता है कि अपनी सीमाओं में रहकर फिल्में बनाना निर्देशकों के लिए सत्याग्रह करने जैसा ही था, जहाँ उनकी फिल्में राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने का आग्रह करती दिखती थीं। कुछ फिल्में यह आग्रह सीधे तौर पर जबकि कुछ फिल्में अप्रत्यक्ष रूप से करती थीं। सिर्फ निर्माता ही नहीं, अपितु देश के सत्याग्रही भी माध्यम के महत्त्व से अवगत थे। महात्मा गांधी स्वतंत्र देश की कल्पना रामराज्य से करते थे। विजय भट्ट ने 'रामराज्य' (1943) फिल्म का निर्माण किया और यह एकमात्र फिल्म थी, जिसे गांधीजी ने देखा था। सिनेमा ने ही एक भावी देश की तस्वीर को जनता को दिखाया और वर्ष 1947 में अथक प्रयासों के बाद जब देश स्वतंत्र हुआ तो विभाजन के दर्द में सिनेमा ने ही ढाँढ़स भी बँधाया। विभाजन से क्षति सिनेमा को भी हुई। कई कलाकारों को पाकिस्तान जाना पड़ा तो कई बंबई रह गए। यह विदित हो कि विभाजन से पूर्व लाहौर तथा बंबई फिल्म निर्माण के केंद्र हुआ करते थे। नवनिर्मित देश के राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री भी सिनेमा के महत्त्व को समझते थे। भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि भारतीय फिल्मकारों को हमारे दैनिक जीवन और सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं पर आधारित फिल्मों का निर्माण करना चाहिए। हालाँकि नेहरू का मानना था कि नवनिर्मित देश की प्राथमिकता सिनेमा को उद्योग का दर्जा देने की नहीं है, अपितु देश का समग्र विकास पहली प्राथमिकता है, लेकिन इस दौर तक सिनेमा माध्यम परिपक्व हो चुका था। राष्ट्रीय आंदोलन की वह मशाल स्वतंत्रता के बाद भी जलती रही और 'कल्पना' (1948), 'बरसात' (1949), 'आवारा' (1951) जैसी कई फिल्में बनीं, जिन्होंने स्वतंत्र राष्ट्र की समस्याओं को देश के सामने रखा।

संदर्भ

शर्मा, एम. (2005). *नेशनल मूवमेंट एंड करंट्स ऑफ सोशल रिफार्म इन हिंदी सिनेमा* :1931-1947. इंडियन हिस्ट्री काँग्रेस.

गर्ग, बी.डी. (1996). *सो मैनी सिनेमाज-द मोशन पिक्चर्स इन इंडिया*. मुंबई : एमिनेंस डिजाइंस.

वासुदेवन, एस. आर. (2009) *मेकिंग मीनिंग इन इंडियन सिनेमा*. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन.

छाबरिया, एस. (2021). *लाइटिंग एशिया : इंडियन साइलेंट सिनेमा 1912-1934*. नेशनल आर्काइव ऑफ इंडिया. पुणे.

भार्गव, ए. (2013). *हिंदी सिनेमा सदी का सफर*. जयपुर : सिने साहित्य प्रकाशन.

चड्ढा, एम. (1990). *हिंदी सिनेमा का इतिहास*. नई दिल्ली : सचिन प्रकाशन.

श्रीवास्तव, एस. (2014). *समय, सिनेमा और इतिहास*. नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.

शशिधरन, टी. (2014). *सिनेमा के चार अध्याय*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सिन्हा, पी. (2009). *भारतीय सिनेमा एक अनंत यात्रा*. नई दिल्ली : श्री नटराज प्रकाशन.

तामक्रर, एस. (1994). *भारतीय फिल्म वार्षिकी 94*. भोपाल : मध्य प्रदेश फिल्म विकास निगम.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 87-95, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

हिंदी सिनेमा के देशभक्ति एवं प्रेरणास्पद गीतों का अध्ययन

डॉ. राजीव श्रीवास्तव[1]

सारांश

देश और अपनी मातृभूमि से प्रेम और उसकी भक्ति में अपना सर्वस्व न्योछावर करने का संकल्प लिए भारतीय सिने गीत-संगीत की एक वृहद् परंपरा है, जो वर्तमान में भी गतिशील है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय हिंदी सिनेमा में देशभक्ति गीतों की बहुलता रही है और इस संबंध में प्रायः लोग अवगत भी हैं, परंतु स्वाधीनता संग्राम की समयावधि में हिंदी सिने गीतों की भूमिका तथा स्वतंत्रता आंदोलन में प्रेरणा पुंज के रूप में सिने गीत-संगीत के योगदान पर अभी तक अधिक अध्ययन, शोध अथवा विमर्श नहीं किया गया है। देश और समाज से सम्बद्ध सिने गीतों के नौ दशक (1931-2020) की सुरीली यात्रा पर आधारित यह शोध आलेख दशकवार 'सिने देशभक्ति गीत एवं प्रेरक गान' के साथ ही इसके इतिहास, परंपरा, सरोकार एवं उपलब्धियों को भी अपने में संजोए हुए है।

संकेत शब्द : हिंदी सिनेमा, स्वाधीनता संग्राम, देशभक्ति गीत, सवाक फिल्में, प्रेरक गान

प्रस्तावना

विश्वभर में संप्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम सिनेमा ही है। विज्ञान और तकनीक का विकास ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, यह माध्यम सहज रूप से और भी प्रभावी बनता गया। वर्ष 1931 में जब भारत की प्रथम बोलती-गाती फिल्म 'आलम आरा' प्रदर्शित हुई थी तब मात्र मूक फिल्मों को ही कंठ नहीं मिला था बल्कि उस समय इसने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के व्योम को एक विस्तृत आयाम भी प्रदान किया था। गीत-संगीत पुरातन काल से ही भारतीय समाज का एक परंपरागत अभिन्न अंग रहा है। विभिन्न प्रकार के पर्व, त्योहार, उत्सव तथा प्रयोजन गीतों के साथ ही मुखर हो कर संपूर्णता को प्राप्त होते हैं। सिनेमा का बतियाता हुआ संस्करण अपने अस्तित्व में आते ही समाज से तत्काल प्रभाव से जुड़ गया। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से जो संदेश अथवा विचार नगर, गाँव तक अपनी धीमी गति से पहुँच पाते थे, वे फिल्मों के माध्यम से द्रुत गति से अतिशीघ्र ही अत्यंत प्रभावी रूप से पहुँचने लगे। इसी अवधि में संचार के अन्य माध्यमों में 'रेडियो' की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी, पर चूँकि इस पर तब तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण था, फलस्वरूप भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए यह किसी भी स्तर पर सहायक नहीं था। हिंदी फिल्मों में पार्श्वगायन की नींव भी तब ही पड़ी थी। हिंदी में फिल्म 'धूप छाँव' (1935) अर्थात् 'भाग्य चक्र' से पार्श्वगायन पद्धति का श्रीगणेश हुआ था। इस फिल्म में पारुल घोष, सुप्रोवा सरकार, हरिमति द्वारा गाया गया समूह गान 'मैं खुश होना चाहूँ, खुश हो न सकूँ' भारतीय सिनेमा का प्रथम पार्श्व गीत है। इस पद्धति के अस्तित्व में आने से गीतों की गुणवत्ता एवं इसकी प्रभावी प्रस्तुति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। दृश्य के साथ गीत-संगीत की इसी गुणवत्ता ने सिनेमा को भारत के विभिन्न प्रांतों में रह रहे भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय बना दिया (गुप्ता, 2000)। तब स्वतंत्रता आंदोलन अपने उत्कर्ष पर था। इस संघर्ष को सार्थक गति एवं दिशा प्रदान करने में फिल्मी गीतों की भूमिका के महत्त्व को तब निर्माताओं और निर्देशकों ने अन्तःकरण से अनुभूत किया। तत्कालीन अँग्रेज सरकार की दमनपूर्ण नीतियों के कारण प्रत्यक्ष रूप से फिल्मों में देशभक्ति युक्त दृश्य प्रस्तुत करना तब सम्भव नहीं था पर कथानक की आवशकता को कारण बताकर देशभक्त निर्माता-निर्देशकों ने परोक्ष रूप से ऐसे गीतों और दृश्यों को अपनी फिल्मों में स्थान दिया, जो मातृभूमि की प्रशस्ति तथा राष्ट्रभक्ति को किसी-न-किसी रूप में पोषित एवं पल्लवित करते थे। हिंदी सिनेमा तब अपने शैशव काल में था और अपने उस बालपन में ही उसने एक परिपक्व अभिभावक के कर्तव्य का सफलतापूर्वक निर्वाह करना प्रारंभ कर दिया था।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख केदार शर्मा, सुरैया, देव आनंद, मजरूह सुल्तानपुरी, हसरत जयपुरी, मन्ना डे, लता मंगेशकर, नीरज, नौशाद, खय्याम, डॉ. पृथ्वी मधोक, राहुल देव बर्मन, इरा रोशन, राजेश रोशन, सरल मुकेश, शमशाद बेगम, सितारा देवी, पं. रविशंकर, तलत महमूद, आशा भोंसले, महेंद्र कपूर, अरविंद कुमार, कल्याणजी-आनंदजी, अमीन सायानी, रवि, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, इंदीवर, गुलशन बावरा, सोनिक-ओमी, योगेश, जे. ओमप्रकाश, कमलेश्वर, जगजीत सिंह, कमल बारोट, उषा खन्ना, मनहर उधास, शैली शैलेंद, नितिन मुकेश, उदित नारायण, कुमार शानू, वीजू शाह, स्वानंद किरकिरे, साधना सरगम, आनंद-मिलिंद, प्रेम धवन, मनोज कुमार, अमिताभ बच्चन, रवींद्र जैन, वहीदा रहमान, आशा पारिख, श्याम बेनेगल, यश चोपड़ा, श्रेया घोषाल, मोनाली ठाकुर जैसे प्रमुख सिने व्यक्तित्वों से शोधकर्ता के प्रत्यक्ष साक्षात्कार पर आधारित है। ये साक्षात्कार अथवा भेंट एवं वार्ताएँ वर्ष 1991 से 2010 के मध्य हुईं। इसके अलावा 'फिल्म इंडिया', 'माधुरी' और 'फिल्मफेयर' पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ लेखों, फिल्म प्रचार पुस्तिकाओं, बुकलेट, पोस्टर, राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय, पुणे से भी तथ्य जुटाए गए हैं। फिल्मी रेकार्ड संग्रहकर्ता सुमन चौरसिया, विनोद संथोलिया और कमल बेरीवाला के पास मौजूद सामग्री का भी उपयोग किया गया है।

हिंदी सिनेमा में देशभक्ति एवं प्रेरणास्पद गीत

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् देशभक्ति युक्त सिनेमा गीतों की

[1]वरिष्ठ लेखक, अध्येता, व्याख्याता, सिने इतिहासवेत्ता, कवि-गीतकार एवं फिल्म निर्देशक, दिल्ली. ईमेल : rajeevrsvpshrivastav@gmail.com

लंबी सूची है, जिसमें आज भी नित नए गीतों का समावेश हो रहा है। स्वाधीनता संग्राम तथा स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी सिने गीत-संगीत की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, जिस पर आवश्यक शोध एवं अध्ययन न होने के कारण इसका विधिवत लेखन एवं इस पर सुचारु विमर्श नहीं किया जा सका। सिने गीत-संगीत का अस्तित्व भारत की प्रथम सवाक फिल्म 'आलम आरा' (1931) से प्रारंभ हो चुका था। अर्देशिर एम. ईरानी निर्देशित यह फिल्म उस समय की बंबई अर्थात् आज की मुंबई के 'मैजिस्टिक' सिनेमा हॉल में 14 मार्च, 1931 को प्रदर्शित हुई थी और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति का दिवस 15 अगस्त, 1947 है। इन दोनों तिथियों के आधार पर हिंदुस्तानी सिनेमा के सापेक्ष जब हम स्वतंत्रता आंदोलन और स्वाधीनता संग्राम की अवधि की गणना करते हैं तो यह समयावधि 16 वर्ष 5 माह और 01 दिन होती है। भारतीय सिने गीतों का यह डेढ़ दशक का कालखंड वही समय है, जब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अपने स्वाधीनता आंदोलन की संगत में चरम पर था। गाँधी का 'भारत छोड़ो आंदोलन' अखंड भारत में 1942 में नव जागरण का एक अभूतपूर्व आंदोलन था। इसके पूर्व 'नमक सत्याग्रह', 'सविनय अवज्ञा आंदोलन', 'असहयोग आंदोलन' और स्वच्छता अभियान एवं छुआछूत और विदेशी वस्त्रों, वस्तुओं का विरोध कर खादी को अपनाने एवं उसके प्रचार-प्रसार हेतु किए गए आंदोलनों तथा जन-जागरण अभियान की छवि तब के सिने गीतों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई है।

प्रथम दशक का राष्ट्र प्रेम एवं जागरण सिने गान (1931-1940)

हिंदी सिने गीत-संगीत के माध्यम से भारत की प्रशस्ति, भक्ति तथा चिंता में जिस प्रथम गीत का फिल्म संगीत के इतिहास में उल्लेख मिलता है, वह होमी वाडिया निर्देशित 'हिंद केसरी' (1935) के लिए जोसेफ डेविड का लिखा और मास्टर मोहम्मद का संगीतबद्ध किया गीत 'तुम बिन अब कौन सम्हाले ओ राम नाम वाले, भारत की पतवार' था। इस गीत में ईश्वर से याचना एवं प्रार्थना के भाव में भारत का उद्धार करने का निवेदन किया गया। इसी क्रम में वी. शांताराम निर्देशित 'दुनिया न माने' (1937) एक महत्त्वपूर्ण फिल्म के रूप में सामने आई। मुंशी अजीज के लिखे और केशवराव भोले के संगीतबद्ध किए इस फिल्म के दो गीत 'भारत शोभा में है सबसे आला' एवं 'अहा भारत प्यारा है वो जग से न्यारा है' वासंती के स्वर में तब स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में एक प्रेरक गीत के रूप में प्रभावी ढंग से मुखर हुआ था। चित्रपट पर उन दिनों देशभक्ति युक्त ऐसे गीत देशवासियों, विशेष रूप से युवाओं में एक विशिष्ट प्रकार की उमंग, उत्साह एवं उल्लास का संचार उत्पन्न किया करते थे। परिणामस्वरूप राष्ट्र के प्रति स्वयं के कर्तव्य बोध से प्रेरित वे सभी स्वतंत्रता आंदोलन के वाहक बन जाते। समय के उस काल खंड में अधिकांशतः पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक फिल्मों का ही निर्माण हुआ करता था। 'दुनिया न माने' एक सामाजिक फिल्म थी, जिसके कारण जन सामान्य सर्वथा नवीन कथानक के प्रति सहज रूप से आकर्षित होता था। भारत देश का मानवीयकरण करते हुए तब फिल्म 'जवाहिर-ए-हिंद' (1937) में एक गीत 'पुत्रों की आनंदी देख कर भारत माता हंसती है' आया था। मुंशी आशिक रचित और शांति कुमार देसाई का स्वरबद्ध किया यह गीत भारत को माता मान कर तथा राष्ट्र के समस्त नागरिकों को पुत्रवत मानते हुए उसके प्रसन्न भाव की एक सशक्त प्रस्तुति थी। भारत माता का गुणगान करता हुआ एक गीत उसी दशक में फिल्म 'कर्मवीर' (1938) में था जिसके बोल थे—'सारे देशों से है न्यारी, प्यारी भारत माता हमारी'। इसी वर्ष 'मिस्टर एक्स' (1938) में भी एक प्रेरक गान था-'भारत माँ पे देंगी प्रान, जाने न देंगी आन बान'। अनिल बिस्वास के संगीत निर्देशन में वजाहत मिर्जा का लिखा और माया बनर्जी का गाया 'जहाँ तू है वहीं मेरा वतन है' का समर्पित भाव लिए यह गीत फिल्म 'वतन' (1938) का एक रूपक अलंकार में सुशोभित प्यारा-सा गान था। स्वतंत्रता आंदोलन का यह वह दौर था, जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश के प्रत्येक भू-भाग में क्रान्ति की अलख जग चुकी थी। चरखे और खादी के साथ ही स्वदेशी वस्तुओं के प्रति जन-जागरण अभियान भी अपने चरम पर था। खादी को ही लक्ष्य करते हुए फिल्म 'पंजाब मेल' (1939) का गीत 'इस खादी में देश आजादी' तब अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था। इसी फिल्म का एक अन्य गीत श्री कृष्ण को केंद्र में रखकर प्रार्थना के भाव में प्रस्तुत किया गया था-'कैद में आए नंद दुलारे, दुलारे भारत के रखवारे'। देशवासियों को जाग्रत करता फिल्म 'वतन के लिए' (1939) का उद्बोधन गीत 'भारत के रहने वालों, कुछ होश तो सम्हालो' भी इन्हीं दिनों एक प्रेरक गान बनकर सामने आया था (श्रीवास्तव, 2020)।

1940 का वर्ष राष्ट्र जागरण, स्वदेशी चेतना, प्रेरक तत्त्व, देशभक्ति, आह्वान गान तथा मातृभूमि वंदन जैसे भावों को प्रदर्शित करता हुआ सिने गीतों के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। दीनानाथ मधोक का लिखा और खेमचंद्र प्रकाश का संगीतबद्ध किया एक ऐसा ही गीत ईश्वरलाल के स्वर में फिल्म 'आज का हिंदुस्तान' (1940) के लिए 'चरखा चलाओ बहनों, कातो ये कच्चे धागे' स्वदेशी जागरण का प्रेरक गीत था। आह्वान का स्वर लिए एक अन्य गीत फिल्म 'आजादी-ए-वतन' (1940) में कुछ ऐसे बोल लिए हुए था—'सर करो वतन पे कुरबान, मुलक के सारे नौजवान'। इसी फिल्म में एक गीत 'वतन छुड़ायो, साकों रुलायो, असी परदेसी तुसी देसाँ दे' पंजाबी भाषा में देशप्रेम का एक भावपूर्ण गान था। विद्यार्थियों के अंदर स्वतंत्रता संग्राम की अलख जगाता एक मुखर गान 'देश के कारण खेलें खेल, मदरसा अपना बनेगा जेल'। फिल्म 'अफलातून औरत' (1940) के इस गीत के रचयिता थे मुंशी अजीज 'नागपुरी' और संगीतकार थे दामोदर शर्मा। राम दरयानी निर्देशित 'हिंदुस्तान हमारा' (1940) में देशप्रेम को समर्पित तीन गीत थे-'हिंदुस्तां के हम हैं हिंदुस्ताँ हमारा', 'चरखा चल के काम बनाए, चरखा आए गरीबी जाए' और 'भारत माता नीर बहाए, बेबस बन्दी खड़ी चिल्लाए'। यही वो समय था जब भारत अपनी स्वतंत्रता के प्रति अति गंभीर हो चुका था। भिन्न-भिन्न फिल्मों में कथानक के अनुरूप राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव लिए ढेरों गीत मुखर हो रहे थे। फिल्म 'जय स्वदेश' (1940) में माधुलाल दामोदर मास्टर के संगीत में 'भारत पर काले बादल छाए रहेंगे कब तक' जहाँ एक ओर जन-जन की व्यग्रता का स्वर था वहीं 'जय स्वदेश, जय जय स्वदेश, हम भारत के गुण गाएँगे' जनमानस के समर्पित राष्ट्र प्रेम का उद्घोष था। आक्रोश मिश्रित एक आह्वान गीत 'वीरों, वीरों, हो जाओ कुरबान, अपनी इज्जत गैरत का हम लें दुश्मन से बदला' फिल्म 'जंग-ए-आजादी' (1940) का वीर रस से परिपूर्ण एक शौर्य गान था। सरदार बीर सिंह रचित और संगीतबद्ध किए गीत 'हमें जेल की चक्की प्यारी है, भारत भूमि के प्रेम में', 'हमें मिले वीर सरदार, जिनके हम ताबेदार हैं' तथा 'चरखा आजादी लाएगा, हमें स्वतंत्र बनाएगा' फिल्म 'तूफान'

(1940) के अत्यंत ही ओजपूर्ण गाने थे। ऐसा ही ओजपूर्ण आह्वान गीत 'हिंदमाता की तुम्ही संतान हो, नौजवानों तुम वतन की शान हो' शीला के स्वर में खान मस्ताना के संगीत में फिल्म 'वसीयत' (1940) में था। हर नगर-नगर, गाँव-गाँव, गली-गली इन गीतों की धूम मची थी। घर, विद्यालय और राह चलते पथिक सभी देशभक्ति के गीतों से ओतप्रोत हो चुके थे। अखंड भारत के हर कोने में स्वतंत्रता का बिगुल बज उठा था, पर जिस एक समूह गान ने हिंदुस्तान की धरती पर भूचाल उत्पन्न कर दिया था, वह आज भी देशप्रेम से परिपूर्ण एक कालजयी गान के रूप में स्मरण किया जाता है। लीला चिटनिस और अशोक कुमार अभिनीत बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'बंधन' (1940) के लिए कवि प्रदीप की रचना 'चल चल रे नौजवान' की सशक्त प्रस्तुति ने समस्त भारतवासियों को चलायमान बना दिया था। इस समूह गान में मुख्य स्वर फिल्म के नायक अशोक कुमार और नायिका लीला चिटनिस का था तथा फिल्म में यह गीत तीन भाग में फिल्माया गया था। महात्मा गांधी के स्वच्छता अभियान को फिल्म 'गीता' (1940) के एक समूह गान 'दूर करो, दूर करो, कचरा दूर करो, घर का कचरा, मन का कचरा, दूर करो, दूर करो…' के द्वारा भौतिक साफ-सफाई के साथ-साथ मानव को अपने मन में निर्मलता, विचार में स्वच्छता एवं अपने कार्यों में स्पष्टता लाने का संदेश दिया गया है। यह गीत आज भी कितना प्रासंगिक है उसे वर्तमान समय में 'स्वच्छ भारत' अभियान के संदर्भ में सहज ही समझा जा सकता है। साफ-सफाई का संदेश लिए यह गीत आज भी अपने भीतर निहित सामाजिक आह्वान को उसी तत्परता से प्रतिबिम्बित करता है। फिल्मों के माध्यम से जब इस प्रकार के उत्तम वचन समाज के मध्य बोले गए तो उससे लोगो में जागरूकता तो उत्पन्न हुई ही साथ ही समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का संकल्प भी जगा है (श्रीवास्तव, 2020)।

द्वितीय दशक के प्रेरक सिने गीत (1941-1950)

अमीय चक्रवर्ती निर्देशित बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'अनजान' (1941) में संगीतकार पन्नालाल घोष का स्वरबद्ध किया कवि प्रदीप का लिखा गीत 'खींचो कमान खींचो, ओ भारत माँ के नौजवान' नायक अशोक कुमार, सुरेश और रेवा की वाणी में अत्यंत सुंदर बन पड़ा था। देशभक्ति के रंग में रंगा यह समूह गान तब भारत के युवाओं के अधरों पर भी सजा था। इसी वर्ष तब की आधुनिक नारी के साहस को प्रतिबिम्बित करती वाडिया मुवीटोन की स्टंट फिल्म 'बंबईवाली' (1941) में माधुलाल मास्टर के संगीत में वाहिद कुरैशी का लिखा गीत 'भारत की नार अब जागी है, निकली है अब घर से' अपनी पृथक् पृष्ठभूमि होने के बाद भी समाज में महिला जागरण का एक प्रेरक गान बन कर सामने आया। स्वतंत्रता संग्राम में इस प्रकार के गीत समाज में नारी शक्ति के प्रेरक स्वर के रूप में अंकित हैं। पं. सुदर्शन का लिखा 'जीते देश हमारा, भारत है घर बार हमारा' मिनर्वा मुवीटोन की ऐतिहासिक फिल्म 'सिकंदर' (1941) का एक आशावादी गीत था तो दूसरी ओर सामाजिक फिल्म 'तुलसी' (1941) का गीत 'स्वर्ग है भारत देश हमारा' तथा 'दुनिया तुम्हारी है' (1942) का गीत 'सुंदर देश हमारा, भारत प्यारा, सारे जग से न्यारा' राष्ट्र का प्रशस्ति गान बनकर सामने आया। अभिनेता भगवान निर्देशित फिल्म 'सुखी जीवन' (1942) सी. रामचंद्र की संगीतकार के रूप में प्रथम फिल्म थी। इस फिल्म में उन्होंने राम चितलकर के नाम से संगीत दिया था, जिसमें राष्ट्र गौरव को प्रतिध्वनित करता गीत 'हिंदोस्ताँ हमारा, है हमको जाँ से प्यारा' उनकी एक सुंदर प्रस्तुति थी। इसी क्रम में स्वतंत्रता आंदोलन की लौ में लौ जगाते गीतों में फिल्म 'उल्टी गँगा' (1942) के दो गीत 'आजादी के वीरों बढ़े चलो' और 'ऐ आजादी के मतवालों' तथा शास्त्रीय संगीत प्रधान फिल्म 'वसंतसेना' (1942) में मास्टर कृष्ण राव के संगीत में ढला 'उठो चलो आगे बढ़ो, गाओ जय जय देश की' भी उल्लेखनीय हैं। 1942 के ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' आंदोलन ने तब देश के हर सपूत के मन में राष्ट्र स्वतंत्रता की अपूर्व अलख जगा दी थी। यह आंदोलन भारत में अँग्रेजों को देश छोड़कर चले जाने की अन्तिम चेतावनी थी। इसी आंदोलन के परिणामस्वरूप हिंदी सिने जगत् में भी आत्मविश्वास की एक अलग चेतना जाग्रत हुई, जिसने देशभक्ति की अभिव्यक्ति को एक असीम विस्तार प्रदान किया। फिल्म 'कोशिश' (1943) में जी.एम. दुर्रानी के स्वर में 'ऐ हिंद के सपूतों, जागो हुआ सवेरा' तथा फिल्म 'स्कूल मास्टर' (1943) में भरत व्यास द्वारा रचा 'हमारा प्यारा हिंदुस्तान, तू जननी, तू जन्मभूमि है' यों तो कोमल स्वर लिपि में थे, पर स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के संकल्प को और भी दृढ़ बनाने में सहज रूप से समर्थ सिद्ध हुए।

कालजयी परंपरा के क्रम में भारत की स्वतंत्रता के पूर्व सर्वाधिक लोकप्रिय ओजपूर्ण गीतों में फिल्म 'किस्मत' (1943) का गीत 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो, दूर हटो ऐ दुनिया वालो, हिंदुस्तान हमारा है' वास्तव में 'भारत छोड़ो' आंदोलन की ही एक सशक्त अभिव्यक्ति थी। इस समूह गान की अपार लोकप्रियता ने कवि प्रदीप को एक देशभक्त कवि के रूप में तो स्थापित किया ही, साथ ही पहले से ही स्थापित और प्रसिद्ध संगीतकार अनिल बिस्वास को भी तब जन-जन का प्यारा बना दिया। यह प्रथम अवसर था जब देशभक्ति से ओतप्रोत कोई सिने गीत विद्यालयों के साथ-साथ अन्य सामाजिक उत्सवों में भी संपूर्ण उत्साह और उमंग के संग गाया और बजाया गया। अहिंदी भाषी क्षेत्रों तथा निवासियों के मध्य भी यह गीत समान रूप से लोकप्रिय हुआ। इस गीत की अपार लोकप्रियता और ओजपूर्ण स्वर ने तब अँग्रेज शासकों के भी कान खड़े कर दिए थे। सरकारी और प्रशासनिक स्तर पर यह जानने के लिए जाँच की गई कि क्या इस गीत में अँग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह की बात कही गई है? इस संबंध में तब इस गीत के रचयिता कवि प्रदीप से भी पूछ-ताछ की गई थी। कवि प्रदीप को इस गीत की रचना करते समय इस प्रकार की कार्यवाही की आशंका थी, तभी उन्होंने बड़ी चतुराई से गीत में अँग्रेजों के विरुद्ध सीधे-सीधे एक शब्द का भी प्रयोग नहीं किया था। मुंबई में अपने निवास स्थान पर एक विशेष साक्षात्कार में कवि प्रदीप ने शोधकर्ता से उस घटना का विवरण बताते हुए जो तथ्य उद्घाटित किए थे वे अपने आप में अत्यंत रोचक तो थे ही, साथ ही वे एक कवि की दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और कल्पनाशीलता को भी सहज रूप से लक्षित करते हैं (प्रदीप, 1995)। 'दूर हटो ऐ दुनिया वालो' से तात्पर्य वास्तव में अँग्रेजों से ही था, जिसे हिंदुस्तान के जन-जन तो समझ गए, पर अपने आपको सर्वाधिक चतुर और बुद्धिमान समझने वाले अँग्रेज इसे नहीं समझ सके। इस गीत में प्रयुक्त एक पंक्ति में कहा गया है—'तुम न किसी के आगे झुकना जर्मन हो या जापानी'। तब विश्वयुद्ध के संदर्भ में इस पंक्ति को जर्मन और जापान का विरोध समझ कर अँग्रेज शासकों ने इस पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी, पर भारतवासियों ने तो इसे अँग्रेजों के विरुद्ध अपने क्रोध की अभिव्यक्ति

के लिए एक प्रेरणादायक आह्वान के रूप में ही आत्मसात् किया था। आज भी हिंदी सिने गीतों के इतिहास में यह देशभक्ति गीत एक अनुपम निधि के रूप में स्मरण किया जाता है। एक ऐसा प्रेरक गान, जिसमें शत्रु का नाम लिए बिना ही उसे केंद्र में रखकर लक्ष्य पर रखा गया था। आगे के वर्षों में भी हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भाव से परिपूर्ण गीतों की संख्या में उतरोत्तर वृद्धि होती गई। परस्पर सौहार्द, भाईचारे और प्रशस्ति का उद्घोष करता फिल्म भाई' (1944) का गीत 'हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में हैं भाई भाई', फिल्म 'पहले आप' (1944) में दीना नाथ मधोक द्वारा रचित 'हिंदोस्ताँ के हम हैं, हिंदोस्ताँ हमारा' नौशाद के संगीत में और फिल्म 'लेफ्टिनेंट' (1944) का गीत 'सब देशों से प्यारा, भारत देश हमारा' सहज रूप से प्रभावी रहा। 1945 के वर्ष में प्रदर्शित जिन फिल्मों में देशभक्ति के गीत थे उनमें 'हिंदोस्ताँ हमारा, हमको है जाँ से प्यारा' (बचपन), 'ऐ वतन, मेरे वतन, तुझपे मेरी जाँ निसार' (गुलामी), 'भारत देश हमारा प्यारा' (परिंदे), 'यह है हिंदुस्तान हमारा' (राहत), 'देश हमारा, सुंदर देश हमारा, स्वर्ग से सुंदर' (स्वर्ग से सुंदर देश हमारा), 'हिंदुस्तान की खातिर हम जान लड़ा देंगे' (विलेज गर्ल) और आर.सी. बोराल के संगीत में कवि रवींद्रनाथ टैगोर रचित मूल बांग्ला भाषा में रचित 'जन गण मन अधिनायक जय हे' सम्मलित हैं। 1946 के वर्ष में प्रदर्शित फिल्मों की सूची में कुल सात फिल्में देशप्रेम और उसके गौरव का गीत लिए हुए थीं। 'बाँटे न बँटेगा किसी के देश हमारा' (बच्चों का खेल), 'प्यारा देश हमारा है' (धोकेबाज), 'ये देश हमारा प्यारा, हिंदुस्तान जहाँ से न्यारा' (हमजोली), 'पैदा करेंगे इनकलाब बाजुओं के जोर पर' (जीवन छाया), 'आओ आजादी के गीत गाते चलें, एक सुनहरा संदेसा सुनाते चलें' (जीवन यात्रा), 'हम भारत को अपने जगा कर रहेंगे' (खुश नसीब) के साथ ही चित्रगुप्त की संगीतकार के रूप में प्रथम फिल्म 'लेडी रॉबिनहुड' (1946) का नारी जागरण गीत 'भारत की नारी जाग उठी, अब होगा देशोद्धार' भी सूचीबद्ध है (आनंद-मिलिंद, 2015)।

1947 का वर्ष भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति का वर्ष था। हिंदी सिनेमा में यह वर्ष मिश्रित भावों का वर्ष रहा। स्वतंत्रता के साथ ही यह वर्ष विभाजन की त्रासदी का भी साक्षी रहा है। परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त होने का हर्ष जहाँ एक ओर था वहीं अखंड भारत का खंड हो जाना एक विषाद का कारक था। इन सबके बाद भी राष्ट्रभक्ति का स्वर इस वर्ष भी सर्वोपरि रहा। दत्ता डावजेकर के संगीत में जी. एम. साजन, मुहम्मद रफी और सहयोगियों के स्वरों में फिल्म 'आपकी सेवा में' (1947) का गीत 'देश में संकट आया है, अब कुछ कर के दिखलाना है' ने अपरोक्ष रूप से विभाजन की त्रासदी को ही इंगित किया है। यही वह फिल्म है जिसमें गायिका लता मंगेशकर ने पहली बार 'पा लागूँ कर जोरी रे, शाम मोसे न खेलो होरी रे' गीत गाकर हिंदी सिनेमा में अपनी गायन यात्रा का श्री गणेश किया था (मंगेशकर, 2013)। हिंदी के प्रसिद्ध कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' का लिखा गीत 'आजाद हैं हम आज से, जेलों के ताले तोड़ दो' फिल्म 'अहिंसा' (1947) में सी. रामचंद्र के संगीत में भारत की स्वतंत्रता की अपूर्व प्रसन्नता का प्रेरक उद्घोष है। मातृभूमि के प्रति आभार ज्ञापित करता फिल्म 'गाँव' (1947) का गीत 'वतन की माटी हाथ में लेकर, माथे तिलक लगा ले' अपने समय का एक अत्यंत ही लोकप्रिय युगल गीत सिद्ध हुआ। दीना नाथ मधोक के लिखे इस गीत को खेमचंद प्रकाश के संगीत निर्देशन में मुकेश और गीता रॉय, जो आगे चल कर गीता दत्त के नाम से प्रसिद्ध हुईं, ने अत्यंत ही सुरीले रूप में प्रस्तुत किया है। पर, इन सबसे पृथक् फिल्म 'अमर आशा' (1947) के लिए बंकिम चंद्र चटर्जी रचित 'वंदे मातरम्, सुजलाम, सुफलाम' का अनुपम समायोजन स्वतंत्रता वर्ष का अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण उपहार रहा है। भारत माता के श्री चरणों में समर्पित यह 'प्रार्थना काव्य' ही स्वतंत्रता के पश्चात 'राष्ट्रीय गीत' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। अँग्रेजी शासन की अवधि में हिंदी सिने गीतों में प्रत्यक्ष रूप से जिन अँग्रेजों को सीधे-सीधे संबोधित करने से गीतकारों ने स्वयं को बचाए रखा था उसी अँग्रेज को स्वतंत्रता वरण करते ही मुक्त भाव से इंगित करते हुए जो प्रथम गीत अस्तित्व में आया था, वह 1947 के वर्ष में ही रच लिया गया था, पर फिल्म का प्रदर्शन अगले वर्ष ही सम्भव हो सका था। संगीतकार गुलाम हैदर विभाजन के बाद नव निर्मित 'पाकिस्तान' तो चले गए पर बॉम्बे टॉकीज की प्रस्तुति 'मजबूर' (1948) के गीत-संगीत की रिकॉर्डिंग का कार्य उन्होंने पूर्ण कर दिया था। इस फिल्म में नाजिम पानीपती के लिखे गीत 'अब डरने की कोई बात नहीं, अँग्रेजी छोरा चला गया, वो गोरा छोरा चला गया' को तब के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित युवा गायक मुकेश के संग उन दिनों की संघर्षरत नई गायिका लता मंगेशकर ने गाया था। लता का मुकेश के साथ गाया हुआ यह प्रथम युगल गीत था (मंगेशकर, 2013)। यह गीत उल्लास, उमंग और उत्साह के साथ उत्सव मनाने के प्रयोजन का एक सार्थक गीत सिद्ध हुआ। वर्तमान में भी यह युगल गीत स्वतंत्रता प्राप्ति के अपार हर्ष को अभिव्यक्त करता प्रथम सिने गीत के रूप में गाया और बजाया जाता है, जो वर्तमान में भी कालजयी गीतों का एक दुर्लभ मोती है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् तब मुम्बई में विजयोत्सव मनाने के लिए विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। इस अवसर के लिए प्रेम धवन ने एक विशेष गीत लिखा था जिसका मुखड़ा इस प्रकार था—'झूम झूम के नाचो आज, गाओ खुशी के गीत/आज किसी की हार हुई है आज किसी की जीत'। इस कार्यक्रम में मजरूह सुलतानपुरी भी थे। उन्हें ये मुखड़ा इतना भाया कि उन्होंने प्रेम धवन से अनुरोध करके उनके इस मुखड़े को फिल्म 'अन्दाज' के लिए उनके द्वारा लिखे जा रहे गीत में इसका उपयोग करने की आज्ञा माँगी। प्रेम ने सहज ही अपनी सहमति दे दी। महबूब प्रोडक्शंस की सामाजिक फिल्म 'अंदाज' (1949) में नई-नई मिली स्वतंत्रता की उमंग, विजय का उत्साह, कुछ नवीन कर जाने की चाह एवं अपनों से बिछड़ने का दर्द सभी कुछ इस एक गीत में ढलकर बड़े प्रभावी रूप से मुकेश के स्वर में उजागर हुआ है—'झूम-झूम के नाचो आज, गाओ खुशी के गीत, आज किसी की हार हुई है, आज किसी की जीत, गाओ खुशी के गीत' (सुलतानपुरी एवं धवन, 1996)।

तृतीय दशक के देश भक्ति एवं जनजागरण सिने गीत (1951-1960)

स्वतंत्रता प्राप्त होते ही भारतीय सिने गीत-संगीत में देशभक्ति गीतों के संदर्भ में जो शाब्दिक एवं वैचारिक परिवर्तन हुए, उनमें ऐतिहासिक दृष्टांत के साथ भारत के गौरव तथा वर्तमान में उसकी प्रगति, विकास एवं योजनाबद्ध कार्य प्रणाली को प्रमुखता से चित्रित किया जाने लगा। 'अब डरने की कोई बात नहीं' गीत ने वास्तव में भारतीय फिल्मकारों को निडर बना दिया था। 15 अगस्त, 1947 स्वतंत्रता दिवस के साथ ही 26 जनवरी, 1950 को जब भारत का संविधान अस्तित्व में आया, तब गणतंत्र दिवस भी देशप्रेम, भक्ति एवं गौरव के प्रतीक के रूप में स्थापित हो गया। इसी के साथ महात्मा गाँधी की जयंती 2 अक्टूबर भी राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया

जाने लगा, जिसमें देश के गौरव, प्रेम और भक्ति के गीतों का समावेश अनिवार्य रूप से आज तक किया जा रहा है। भारतीय सिनेमा और उसके गीत-संगीत की जब हम बात करते हैं, तब उसका तात्पर्य हिंदी सिनेमा ही होता है। राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर हिंदी सिनेमा का प्रभाव, विचार, विस्तार एवं विमर्श उसकी स्थापना से लेकर अब तक यह वर्तमान समय के साथ चलता हुआ नित नूतन आयाम गढ़ता जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1951 के वर्ष में पदार्पण करते हुए हिंदी सिने गीत-संगीत ने 1960 तक की अवधि के अपने दस वर्षों के एक दशक में देश के मान-सम्मान, शौर्य, प्रशंसा, गौरव, प्रेम, भक्ति, विकास, विस्तार तथा सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ अतीत का गौरव गान करते गीतों का नवीन संदर्भ सामने लेकर आया। इस वर्ष फिल्म 'आंदोलन' (1951) पन्ना लाल घोष के संगीत में बंकिम चंद्र चटर्जी की कालजयी कृति 'वंदे मातरम्, सुजलाम, सुफलाम' को सुधा मल्होत्रा, पारुल घोष, मन्ना डे और सैलेश कुमार के स्वरों में प्रस्तुत किया गया तो दूसरी ओर यही गान फिल्म 'आनंद मठ' (1951) में हेमंत कुमार के संगीत में लता मंगेशकर और स्वयं हेमंत कुमार के स्वरों में भी सुना गया। रचना जब कालजयी होती है तब वह बारंबार दोहरायी जाती है। स्वतंत्रता पूर्व के वर्षों में भी यह गान सिनेमा में रहकर देशवासियों को प्रेरणा प्रदान करता रहा है। हंसराज बहल के संगीत में ढला फिल्म 'राजपूत' (1951) के लिए भारत व्यास का लिखा युगल गीत 'जय जय वीर वसुंधरा, जय जय राजस्थान' तीन पृथक् भागों में मन्ना डे और मधुबाला झावेरी के स्वरों में अस्तित्व में आया, पर इस वर्ष जिस एक गीत ने भारतीय समाज और विशेष कर युवाओं के बनते-टूटते स्वप्न महल, वैचारिक मनोभावों तथा वर्तमान के संदर्भ में भविष्य को नियोजित करने वाली आशा-निराशा की वृत्ति को शब्द-स्वर देता हुआ जो गीत सामने आया था वह पल में ही देश की सीमा लाँघ कर संपूर्ण विश्व पर छा गया। शंकर-जयकिशन के संगीत में शैलेंद्र की लेखनी से रचा गया 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ' मुकेश की वाणी में वैश्विक व्योम पर जैसे एक पूरी पीढ़ी का प्रतिनिधि स्वर बन गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के तीन-चार वर्षों में आशा के आकाश पर टिमटिमाते तारों के प्रकाश का धूमिल होते जाना और गुने गए युवा स्वप्नों का बिखर जाना तथा सामाजिक ढाँचे की बनावट के दरकते जाने के मध्य भारतीय दर्शन को मुखर करती इस गीत की पंक्ति 'आबाद नहीं बरबाद सही गाता हूँ खुशी के गीत मगर जख्मों से भरा सीना है मेरा हँसती है मगर ये मस्त नजर' ढाँढ़स बँधाती जिस आशा की डोर का एक सिरा थाम कर खड़ी हुई थी, उसका दूसरा छोर पीढ़ी-दर-पीढ़ी की दीर्घ यात्रा करके भी आज भी नयनों से ओझल है। राजकपूर की फिल्म 'आवारा' (1951) का यह शीर्षक गीत देश और देशवासियों के संदर्भ में तब जो दृश्य-परिदृश्य रच गया था वह वर्तमान में भी अपने आपको दोहरा रहा है। तब तक नीचे के सुर में शांत एवं संयत भाव से गाने वाले मुकेश 'आवारा हूँ' को मुखर करते हुए ऊँचे स्वर पर आरूढ़ हो कर दीर्घ आलाप लेते हुए एक ही श्वास में जब 'दुनिया, दुनिया मैं तेरे तीर का या तकदीर का मारा हूँ?' में सामान्य जन के आक्रोश को स्वर देते हैं तो उनका यह नाद भारत देश के वासियों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि यह संसार भर के वासियों विशेष कर युवाओं का प्रतिनिधि स्वर बन गया। अपने इसी गुणधर्म के कारण ही यह गान भारतीय सिने गीत का प्रथम वैश्विक गीत बन गया, जो भारत की सीमा के पार विश्व भर में उन लोगों के मध्य भी लोकप्रिय हुआ जो हिंदी बोलते-समझते भी नहीं थे। शौर्य और वीरता के गीत तो फिर भी स्वतंत्र भारत में प्रत्येक काल खंड में रचते जाते रहे, जिसमें लच्छीराम के संगीत में तब रतनलाल जमारूद का लिखा 'ले लो वीर बहादुर ले लो, खून में डूबी तलवारें' फिल्म 'महारानी झाँसी' (1952) के लिए आशा भोंसले की वाणी में उल्लेखनीय रहा है (श्रीवास्तव, 2020)।

स्वतंत्र भारत में इस एकल गीत को नारी सशक्तीकरण का प्रथम प्रतीक माना जा सकता है। सामाजिक संदर्भ के विभिन्न भावों, आकांक्षाओं तथा नियति को निरूपित करते गीतों का भी तब एक पृथक् ही कथ्य और तथ्य हुआ करता था। फिल्म 'बूट पॉलिश' (1953) में शैलेंद्र का गीत 'नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है' शंकर-जयकिशन के संगीत में बाल सुलभ जिस मनोभाव को लिए सामने आया है, उसने दायित्वबोध तथा आने वाले कल का भविष्य सँवारने के लिए जिस ज्ञान और दर्शन का पुट अपने में समाकर उसे समाज के समक्ष परोसा था वह व्यवहार में यदि सही अर्थों में लाया गया होता तो देश अपना पुरातन गौरव अब तक पा चुका होता। भारत के अतीत के कथानक में समाए शौर्य, वीरता और गौरव की झाँकी दिखाता हुआ एक कालजयी गीत कवि प्रदीप के शब्द और स्वर में 'आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिंदुस्तान की, इस मिट्टी से तिलक करो ये धरती है बलिदान की, वंदे मातरम्' वर्तमान में भी एक प्रेरणा गीत के रूप में अजर-अमर है। फिल्म 'जागृति' (1954) के इस गीत के संगीतकार हेमन्त कुमार हैं पर यह गीत स्वयं प्रदीप का ही संगीतबद्ध किया हुआ था। इसी फिल्म का एक और गीत मुहम्मद रफी के स्वर में 'हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के इस देश को रखना मेरे बच्चों सम्हाल के' में निहित संदेश और चेतावनी का जो आग्रह भरा मर्म है उसे तो भारत को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए आने वाली प्रत्येक पीढ़ी को स्मरण रखना ही होगा। कवि प्रदीप का लिखा और उन्हीं के स्वर में ढला तथा मूल उनकी ही धुन में पिरोया फिल्म 'नास्तिक' (1954), जिसके संगीतकार सी. रामचंद्र हैं, का गीत 'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना बदल गया इन्सान, चाँद न बदला सूरज न बदला न बदला रे आसमान, कितना बदल गया इन्सान' तब के साथ-साथ वर्तमान में भी प्रासंगिक है। देश में होते नैतिक पतन और राष्ट्रीय चरित्र में आ रही गिरावट को लक्ष्य करता यह गान सौहार्द के मूल्यों को पुनः स्थापित करने के प्रति जिस प्रकार अपनी कटिबद्धता के प्रयोजन को लिए आज भी आगे बढ़ रहा है, वह प्रशंसनीय है। इसी दशक में एक ऐसा भी गीत रचा गया, जो देश की अधिकांश वेतन भोगी जनसंख्या का आज भी प्रतिनिधि गीत है (प्रदीप, 1995) । फिल्म 'पहली तारीख' (1954) के लिए सुधीर फड़के के संगीत में कमर जलालाबादी का लिखा और किशोर कुमार के अभिनय शैली में प्रस्तुत किया गया यह मनोरंजक गीत 'दिन है सुहाना आज पहली तारीख है, खुश है जमाना आज पहली तारीख है' रेडियो सिलोन (श्रीलंका) में तब से आज तक प्रत्येक माह की पहली तिथि को बजाया जाता है। देशभक्ति और उसके शौर्य, साहस तथा गौरव से भले ही इसका कोई सरोकार नहीं है, परंतु यह गीत उन गीतों में सम्मिलित है, जो देश की सामान्य से लेकर विशिष्ट जनता के मनोभावों को मुखर करता हुआ वर्तमान में भी लोकप्रिय है। इसी क्रम में स्व गौरव का भान कराता, स्व ऊर्जा का आह्वान करता तथा प्रेरणा के पुंज को विराट रूप देता एक और कालजयी गीत शब्द-सुर-स्वर की

उसी त्रिवेणी से उपज कर हमारे समक्ष प्रगट हुआ जिसने 1951 में 'आवारा हूँ' का वैश्विक नाद रचा था। शैलेंद्र-शंकर जयकिशन-मुकेश के सम्मिलित सम्मोहन ने राजकपूर निर्मित-निर्देशित-अभिनीत फिल्म 'श्री चार सौ बीस' (1955) के गीत 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' से जिस भारतीयता का परिदृश्य रचा वह आधुनिकता के संग अपने गौरवशाली अतीत को सँजोए उत्साह, उमंग, उल्लास के सानिध्य में भविष्य को सँवारने का संकल्प लिए एक ओजपूर्ण गान सिद्ध हुआ। ऐसे गीत वो धरोहर होते हैं जिससे आने वाली हर पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण करती है।

फिल्म '26 जनवरी' (1956) में राजेंद्र कृष्ण का गीत 'सोने की जहाँ धरती चाँदी का गगन है, वो मेरा वतन मेरा वतन मेरा वतन है' सी. रामचंद्र के संगीत में लता मंगेशकर ने गाया है। इसी क्रम में फिल्म 'हम पंछी एक डाल के' (1957) के लिए प्यारे लाल संतोषी' का लिखा और एन. दत्ता का संगीतबद्ध गीत 'मी हो मराठा, हूँ छूँ गुजराती, असी पंजाबी, सब हैं भारतवासी' को सुमन कल्याणपुर ने गाते हुए अनेकता में एकता का पाठ पढ़ाया है तो फिल्म 'नया दौर' (1957) में साहिर लुधियानवी के गीत 'ये देश है वीर जवानों का अलबेलों का मस्तानों का, इस देश का यारों क्या कहना, ये देश है दुनिया का गहना' को ओ. पी. नय्यर के संगीत में मुहम्मद रफी और एस. बलबीर के संयुक्त स्वरों में सुन कर आज भी देशप्रेम का भाव जाग्रत हो उठता है। देश के उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न सँजोए फिल्म 'फिर सुबह होगी' (1958) में साहिर की नज्म 'वो सुबह कभी तो आएगी' खय्याम के संगीत में मुकेश की धीर-गम्भीर भावपूर्ण वाणी में जिस आशा के पूर्ण होने की कल्पना के साकार होने का मनोरथ साधती है उसके वास्तव में पूर्ण होने की स्थिति कभी बन पाएगी, इसकी आशा तो दूर-दूर तक नहीं दिखती, पर यह गीत फिर भी समभाव, सहयोग, सहायता और सदाचार का जो कथ्य अपने भीतर लिए है वह सभी देशवासियों को आज भी सदकर्म के लिए प्रेरित तो करता ही है। राम राज्य की परिकल्पना लिए यदि एक आदर्श देश की कामना वास्तव में अस्तित्व में आ जाए तो मुकेश के स्वर में साहिर के शब्द निःसन्देह सार्थक हो जाएँगे। भारत के सामान्य व्यक्ति के चरित्र और उसकी वृत्ति को परिभाषित करता एक गीत शैलेंद्र ने फिल्म 'अनाड़ी' (1959) के लिए रचा था 'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी, सच है दुनियाँ वालों कि हम हैं अनाड़ी'। आज भी ग्रामीण क्षेत्र या किसी छोटे नगर में रहने वाले व्यक्तियों में निहित सरलता-निश्छलता को यह एक गीत राष्ट्रीय स्तर पर जिस प्रभावी रूप से उकेरता है उसे समझने-बूझने के लिए हम अपने आस-पास का ही उदाहरण लेकर इसे भली-भाँति परख सकते हैं। पूर्व की भाँति वर्तमान में भी यदि गाँव और छोटे नगर में पला-बढ़ा कोई स्त्री या पुरुष जब किसी महानगर में आता है तो वह वहाँ के लोगों की चाल-ढाल, उनके व्यवहार को देख-सुन कर अचंभे में पड़ जाता है। उसे अनुभूत होता है कि जिस प्रकार गाँव में सभी लोग एक-दूजे की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं, उसके विपरीत इन महानगरों में सभ्य और आधुनिक कहे जाने वाले लोग अवसर पाते ही किसी को भी ठगने में पारंगत हैं। किसी की सहायता तो दूर ये लोगों के साथ छल-कपट करने में कभी नहीं चूकते। जीवन की आपाधापी में ऐसे ही अनुभवों को शब्दों में पिरोकर जब कवि शैलेंद्र ने सामान्य भारतीयों के अनाड़ीपन को प्रस्तुत किया तो उसे उसी भोलेपन में मुकेश ने सरलता के साथ परोसकर इसे एक राष्ट्रीय स्वर बना दिया। देश के सामान्य युवाओं ने इस गीत में स्वयं को देखा और सचेत रहने का पाठ भी पढ़ा। ऐसे में देशवासियों के हित में यह गीत किसी देशप्रेम और भक्ति से रत्ती भर भी पीछे नहीं है। इसी प्रकार फिल्म 'धूल का फूल' (1959) में साहिर लुधियानवी का गीत 'तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इनसान की औलाद है इनसान बनेगा' भारत देश को आदर्श रूप में गढ़ने का जो स्वप्न बड़े-बूढ़ों ने देखा था, उसी की संकल्पना को प्रस्तुत करता एक सर्वकालिक गान है।

कवि प्रदीप का लिखा फिल्म 'पैगाम' (1959) का गीत 'इनसान का इनसान से हो भाईचारा, यही पैगाम हमारा' में निहित पैगाम किसी भी देश की आदर्श संरचना के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। सी. रामचंद्र के संगीत में मन्ना डे के स्वर में यह एक प्रभावी संदेशपरक गीत है। फिल्म 'हम हिंदुस्तानी' (1960) का सर्वकालिक गीत 'छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी, नए दौर में लिखेंगे हम मिल कर नई कहानी, हम हिंदुस्तानी' भारत के चहुंमुखी विकास-विस्तार को निरूपित करता इस दशक का सर्वश्रेष्ठ गीत है। उषा खन्ना के संगीत में प्रेम धवन के इस अनूठे गीत को मुकेश ने जो ओजपूर्ण स्वर प्रदान किया है, वह इसे कालजयी तो बना ही गया है, साथ ही भारत देश की महानता और यहाँ के नागरिकों के श्रम, समर्पण एवं संकल्प को भी रेखांकित कर गया है। मुकेश के ही ओजपूर्ण स्वर में देश के गौरव को वाणी देता गीत 'होठों पे सच्चाई रहती है, जहाँ दिल में सफाई रहती है, हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गँगा बहती है' की श्रेष्ठता का कोई विकल्प नहीं है। शैलेंद्र के शब्द, शंकर-जयकिशन का संगीत और मुकेश की वाणी ने इसे कालजयी बना दिया है। भारतीय दर्शन 'मेहमाँ जो हमारा होता है वो जान से प्यारा होता है, ज्यादा की नहीं लालच हमको थोड़े में गुजारा होता है' को इस प्रकार सरल-सहज रूप में प्रस्तुत कर देना किसी भारतीय ऋषि-महर्षि जैसी प्रकृति के व्यक्तित्व द्वारा ही संभव है। इसी त्रिमूर्ति ने इसी फिल्म में एक और गीत सृजित किया था 'आ अब लौट चलें, तुझको पुकारे देश तेरा'। देश की पुकार का एक अपना ही मर्म होता है। दैहिक, दैविक, भौतिक स्थितियों में देश को विभिन्न बिंबों, प्रतीक और उपमा के रूप में प्रयुक्त करने के अपने पृथक् ही अर्थ होते हैं। इन अर्थों में निहित कथ्य, तथ्य एवं प्रयोजन सदा कल्याणकारी और आनंददायक ही होते हैं, क्योंकि ये सकारात्मक भाव से उत्सर्जित होते हैं। इस गीत पर पृथक् से एक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है, पर यहाँ इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि देश की पुकार आत्मा-परमात्मा का संदर्भ लिए हुए भी हो सकती है। यह गीत मुकेश की वाणी पर सवार होकर अपने जिस गंतव्य को प्रस्थान करता है तो उसकी इस यात्रा में पथ पर लता के स्वर में जिस आलाप की संगत जुड़ती है, वह उस शक्ति का प्रतीक है, जो पुरुष और स्त्री के संसर्ग से सृष्टि में शक्ति एवं पौरुष का विधान रचकर सर्वोच्च सत्ता का सृजन करती है। स्थूल रूप में जो दिखता है वह सूक्ष्म दृष्टि से गूढ़ रहस्य का भेद खोल देती है। गहराई में उतर कर एकाग्रचित्त होकर इस गान का श्रवण करने पर अनंत आलोक में वह सब कुछ दर्शनीय होता है, जो अब तक दृष्टि से ओझल था (श्रीवास्तगव, 2020)।

चौथे दशक के सिने गौरव गीत (1961-1970)

'नन्हा मुन्ना राही हूँ देश का सिपाही हूँ बोलो मेरे संग जय हिंद जय

हिंद जय हिंद' में भारत की प्रशस्ति और प्रगति की जो छवि उकेरी गई है, उसने भारत के नागरिकों की जीवटता, उनके समर्पण और राष्ट्र निर्माण में उनकी प्रतिबद्धता को बाल स्वर में प्रस्तुत करके सभी का मन मोह लिया। नौशाद के संगीत में फिल्म 'सन ऑफ इंडिया' (1962) के लिए शकील बदायूँनी का लिखा और शांति माथुर का गाया यह गीत आज भी प्रेरणा देता है। राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राण न्योछावर कर देश के भविष्य को संरक्षित करने का आह्वान करता फिल्म 'हकीकत' (1964) का गीत 'कर चले हम फिदा जान-ओ-तन साथियों, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों' मदन मोहन के संगीत में मुहम्मद रफी के स्वर में आज भी देशवासियों को देश के लिए मर-मिटने को प्रेरित करता है। नौशाद के संगीत में मुहम्मद रफी के ही स्वर में शकील बदायूँनी का लिखा फिल्म 'लीडर' (1964) का एक स्मरणीय गीत 'अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं, सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं' में निहित देशप्रेम की भावना अनुकरणीय है। एक और गीत 'सिकंदर भी आए कलंदर भी आए, न कोई रहा है न कोई रहेगा, ये देश आजाद होकर रहेगा', जो गोवा की स्वतंत्रता के लिए मूलतः रचा गया था, पर उसमें भारत के गौरव का ही गुणगान करते हुए फिल्म 'जौहर महमूद इन गोवा' (1965) के लिए कल्याणजी-आनंदजी के संगीत में कमर जलालाबादी के शब्दों के साथ मुकेश ने अपने जिस ओजपूर्ण स्वर में प्रस्तुत किया है, वह किसी को भी रोमांचित करने को पर्याप्त है। प्रेम धवन के गीत और संगीत से सँवरी फिल्म 'शहीद' (1965) में रफी का गाया 'ऐ वतन ऐ वतन हमको तेरी कसम, तेरी राहों में जाँ तक लुटा जाएँगे, फूल क्या चीज है तेरे कदमों पे हम भेंट अपने सरों की चढ़ा जाएँगे' की प्रभावी अभिव्यक्ति के साथ ही मुकेश, महेंद्र कपूर, राजेंद्र मेहता के स्वरों में 'मेरा रंग दे बसंती चोला' की प्रस्तुति अनुपम है (धवन, 1996)। किसी देश के सौंदर्य का ओज उसके शृंगार में प्रयुक्त विभिन्न अव्यवों पर निर्भर करता है। फिल्म 'सिकंदर-ए-आजम' (1965) के लिए राजेंद्र कृष्ण का लिखा और हंसराज बहल के संगीत से शृंगारित गीत 'जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा वह भारत देश है मेरा' मुहम्मद रफी के स्वर में अपनी भव्यता-दिव्यता के संग भारत को जिस प्रकार सँवार गया है, वह अनुपम है।

मजरूह सुल्तानपुरी का लिखा और रोशन का संगीतबद्ध गीत 'उसको नहीं देखा हमने कभी पर इसकी जरूरत क्या होगी, माँ, ऐ माँ तेरी सूरत से अलग भगवान की सूरत क्या होगी' फिल्म 'दादी माँ' (1966) के लिए मन्ना डे और महेंद्र कपूर के संयुक्त स्वरों में जिस ईश्वर की छवि को उकेरने का उपक्रम करती है, वह हमारी धरती माँ पर विराजने वाली भारत माँ भी तो हो सकती है। भारत माँ का प्राकृतिक सौंदर्य उसके भीतर-बाहर समायी और बिखरी पड़ी अकूत संपदा से तो है ही साथ वह अपने ही संसाधनों से किस प्रकार शृंगारित है उसकी महिमा का गुणगान करता एक हृदयस्पर्शी गान मुकेश की ओजपूर्ण वाणी में फिल्म 'बूँद जो बन गई मोती' के लिए भरत व्यास ने रचा है, जिसे संगीत से सजाया है सतीश भाटिया ने। 'हरी हरी वसुंधरा पे नीला नीला ये गगन कि जिस पे बादलों की पालकी उड़ा रहा पवन, दिशाएँ देखो रंग भरी चमक रही उमंग भरी ये किसने फूल फूल पे किया शृंगार है, ये कौन चित्रकार है' गीत को श्रवण करना आज भी आत्मिक गौरव का बोध कराती है। भारत के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करता एक और मनभावन गीत 'नीले गगन के तले धरती का प्यार पाले, ऐसे ही जग में आती है सुबहें ऐसे ही शाम ढले' फिल्म 'हमराज' (1967) में रवि के संगीत में महेंद्र कपूर के स्वर में अपनी अद्भुत छटा के संग कालजयी बन पड़ा है। इसी फिल्म का एक अन्य गीत 'न मुँह छुपा के जियो और न सर झुका के जियो, गमों का दौर भी आए तो मुस्कुरा के जियो' महेंद्र कपूर के ही स्वर में देशवासियों को प्रसन्न जीवन का अनमोल मन्त्र दे गया है (कपूर, 1995)। भारत के दो लाल महात्मा गाँधी और लाल बहादुर शास्त्री की पुण्य स्मृति को समर्पित फिल्म 'परिवार' (1967) में गुलशन बावरा रचित और कल्याणजी-आनंदजी द्वारा संगीतबद्ध गीत 'आज है दो अक्टूबर का दिन आज का दिन है बड़ा महान आज के दिन दो फूल खिले हैं जिनसे महका हिंदुस्तान' की ख्याति आज भी जस-की-तस है। एक गीत जिसे 'जन गण मन' के पश्चात् भारत में राष्ट्रगान-सा ही सम्मान मिलता है और यह मान-सम्मान सरकार, शासन-प्रशासन द्वारा नहीं प्रदान किया गया है, बल्कि जन-जन ने इसे अपने नेह-स्नेह से यह आदर दिया है और जो सिने गीतों के इतिहास में अब तक की एक दुर्लभ उपलब्धि है, वह है, निर्माता-निर्देशक-लेखक-अभिनेता मनोज कुमार की फिल्म 'उपकार' (1967) के लिए गुलशन बावरा द्वारा लिखित, कल्याणजी-आनंदजी द्वारा संगीतबद्ध और महेंद्र कपूर द्वारा गाया गया गाना 'मेरे देश की धरती सोना उगले उगले हीरे मोती'। यह हर एक राष्ट्रीय पर्व की शोभा बढ़ाता है। गायक महेंद्र कपूर ने इस गीत की सशक्त प्रस्तुति में अपने गायन का जिस प्रकार से योगदान दिया है, वह किसी चमत्कार से कम नहीं है। महेंद्र कपूर की गायन प्रतिभा को और भी प्रभावी रूप से मुखर करती फिल्म 'पूरब और पश्चिम' (1970) के गीतों का भी कोई जोड़ नहीं है। इंदीवर का लिखा 'दुल्हन चली हाँ पहन चली तीन रंग की चोली' और 'है प्रीत जहाँ की रीत सदा मैं गीत वहाँ के गाता हूँ, भारत का रहने वाला हूँ भारत की बात सुनाता हूँ' अपने उदाहरण आप ही हैं। कल्याणजी-आनंदजी के संगीत में ये दोनों ही गीत कालजयी श्रेणी के हैं और देश के गौरव को विदेशों तक में प्रसारित-प्रचारित करने में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जो वर्तमान में भी गतिशील है (इंदीवर, 1994)।

कालजयी एवं आधुनिक सिने जागृति गीत (1971-2020)

शंकर-जयकिशन के संगीत में हसरत जयपुरी का लिखा गीत 'मेहनत हमारा जीवन मेहनत हमारा नारा मेहनत से जगमगा लो तकदीर का सितारा' फिल्म 'नादान' (1971) के लिए मुकेश ने गाया है। देश के नव निर्माण हेतु समय-समय पर जो आह्वान किए जाते रहे हैं, उस हेतु प्रेरणा स्वरूप यह गीत और इसी प्रकृति के अन्य गीत उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। मदन मोहन के संगीत में कैफी आजमी का लिखा 'हिंदुस्तान की कसम, न झुकेगा सर वतन का हर जवान की कसम' फिल्म 'हिंदुस्तान की कसम' (1973) के लिए मन्ना डे और रफी ने गाया है। यह गीत देश और उसके वीर जवानों की प्रशस्ति का सुंदर उदाहरण है। इस पूरे दशक में और बाद के वर्षों में भी देश के सरोकार से जुड़े गीतों का सृजन लगभग शून्य-सा ही रहा। समय के परिवर्तित होते स्वरूप तथा कथानक में मूलभूत बदलाव के कारण देशप्रेम, भक्ति, गौरव, आदर्श तथा मानवीय सरोकार जैसे विषयों से सिनेमा और इसके गीत-संगीत का संबंध धीमा होते-होते अन्ततः शिथिल हो गया। यदा-कदा किसी फिल्म में कभी कोई गीत सुनने को मिल गया, पर ऐसा संयोग भी दुर्लभ ही रहा। मनोज कुमार की फिल्म 'क्रांति' (1981) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित थी, जिस कारण इसमें

एक गीत महेंद्र कपूर के स्वर में 'अब के बरस तुझे धरती की रानी कर देंगे' देश और धरती को समर्पित है। इसी में एक गीत 'चना जोर गरम बाबू मैं लाया मजेदार चना जोर गरम' भी है जो संकेतों में स्वतंत्रता आंदोलन में प्रयुक्त होने वाले कृत्यों को इंगित कर गया है (मुकेश, 1995)। मनमोहन देसाई निर्मित-निर्देशत तथा अमिताभ बच्चन अभिनीत फिल्म 'देशप्रेमी' (1982) में आनंद बख्शी का लिखा, लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल द्वारा संगीत में ढाला और मुहम्मद रफी का गाया एक संदेशपरक गीत 'नफरत की लाठी तोड़ो, लालच का खंजर फेंको, इसके पीछे मत दौड़ो, तुम प्रेम के पंछी हो देशप्रेमियों, आपस में प्रेम करो देशप्रेमियों' आज भी प्रासंगिक है। इसी दशक में सुभाष घई की फिल्म 'कर्मा' (1986) में लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल के संगीत में आनंद बख्शी का लिखा 'हर करम अपना करेंगे ऐ वतन तेरे लिए, दिल दिया है जां भी देंगे ऐ वतन तेरे लिए' देशभक्ति गीत कविता कृष्णामूर्ति और मुहम्मद अजीज के स्वरों में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। उस समय के बच्चों और युवाओं में इस गीत ने धूम मचा रखी थी। इसी वर्ष देश का स्मरण करता एक अत्यंत ही भावपूर्ण गीत फिल्म 'नाम' (1986) में सुनने को मिला था। आनंद बख्शी का लिखा और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल का संगीतबद्ध किया पंकज उधास के स्वर में 'चिट्ठी आयी है वतन से चिट्ठी आयी है, बड़े दिनों के बाद हम बेवतनों को याद वतन की मिट्टी आई है' गीत ने सभी का विशेषकर उनका जो अपने घर-देश से विलग हो कर कहीं दूर डेरा डाले हुए थे। परदेस में रह रहे अप्रवासी भारतीयों को आज भी यह गीत भीतर तक कचोटता है। देशप्रेम होता ही ऐसा है जो परदेसियों को सदा रुलाता रहता है।

कई वर्षों के अंतराल के बाद फिल्म 'रोजा' (1992) में ए. आर. रहमान के संगीत में हरिहरन और ए.आर. रहमान के स्वरों में 'भारत हमको जान से प्यारा है, सबसे न्यारा गुलिस्ताँ हमारा है' एक अत्यंत प्यारा गीत आया जो देखते ही देखते लोकप्रियता के शीर्ष पर पहुँच गया। इसके पश्चात् कई वर्षों बाद सुभाष घई की एक अन्य फिल्म 'परदेस' (1997) में नदीम-श्रवण के संगीत में आनंद बख्शी का लिखा 'ये दुनियाँ एक दुल्हन, दुल्हन के माथे की बिन्दिया, आई लव माई इण्डिया' गीत आया, जिसे कविता कृष्णामूर्ति, हरिहरन, आदित्य नारायण और शंकर महादेवन ने स्वर दिया, अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। यह गीत तब सभी के अधरों पर सजा था और देशभक्ति गीतों की सूची में इसका भी नाम सम्मिलित है। इसी क्रम में फिल्म 'बॉर्डर' (1997) के दो गीत देश के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। अन्नु मलिक के संगीत में जावेद अख्तर का लिखा 'सँदेसे आते हैं हमें तड़पाते हैं कि घर कब आओगे' और 'मेरे दुश्मन मेरे भाई मेरे हमसाये मुझसे तुझसे हम दोनों से सुन ये पत्थर कुछ कहते हैं' क्रमशः दीर्घ अवधि के अलगाव की पीड़ा तथा युद्ध की विभीषिका में मृत्यु को प्राप्त सैनिकों की दारुण स्थिति को दर्शाया है जो अत्यंत ही हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। रूप कुमार राठौड़ और सोनू निगम के स्वरों में 'सँदेसे आते हैं' एवं हरिहरन के स्वर में 'मेरे दुश्मन' की प्रस्तुति भावविभोर करने वाली है। वर्ष 2002 में शहीद भगत सिंह पर दो फिल्में एक ही तिथि 7 जून, 2002 को प्रदर्शित हुई थी। वरिष्ठ अभिनेता धर्मेंद्र द्वारा प्रस्तुत '23 मार्च 1931 शहीद' तथा राजकुमार संतोषी निर्देशित एवं अजय देवगन अभिनीत 'द लिजेंड ऑफ भगत सिंह' के देशभक्ति गीतों ने सभी को आकर्षित किया। इन दोनों फिल्मों के संगीतकार क्रमशः आनंद राज आनंद और ए.आर. रहमान हैं। फिल्म 'दिल परदेसी हो गया' (2003) में सावन कुमार का लिखा, उषा खन्ना का संगीतबद्ध और सोनू निगम का गाया 'ओ शहीदों तुम पर सारे देश को अभिमान है' के साथ ही फिल्म 'जाल द ट्रैप' (2003) के लिए आनंद राज आनंद का लिखा, गाया और संगीतबद्ध गीत 'इण्डियन इंडियन…। जहाँ जाते हैं छा जाते हैं' ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पुनः दीर्घ अन्तराल के पश्चात् यश चोपड़ा की फिल्म 'वीर-जारा' (2004) में जावेद अख्तर का लिखा 'धरती सुनहरी अंबर नीला, हर मौसम रंगीला, ऐसा देस है मेरा', गीत भारत देश और उसकी परंपरा का गुणगान करता आया। मदन मोहन की पूर्व में ही सँजोकर रखी गई धुन पर सजाकर इसे लता मंगेशकर, उदित नारायण, गुरदास मान और पृथ्या मजूमदार ने गाया है। इसी वर्ष फिल्म 'लक्ष्य' (2004) में शंकर-एहसान-लॉय के संगीत में जावेद अख्तर का लिखा 'कंधों से मिलते हैं कंधे कदमों से कदम मिलते हैं, हम चलते हैं जब ऐसे तो दिल दुश्मन के हिलते हैं' ने भी धूम मचाई। इस गीत को शंकर महादेवन, सोनू निगम, हरिहरन, रूप कुमार राठौड़, कुणाल गाँजेवाला और विजय प्रकाश ने मिल कर गाया है। आमिर खान अभिनीत फिल्म 'मँगल पाण्डे द राइजिंग' (2005) का शौर्य गीत 'मंगल मंगल मंगल मंगल देखो देखो समय क्या दिखाए' कैलाश खेर एवं सुखविन्दर सिंह की ओजपूर्ण वाणी में जावेद अख्तर का शब्द लिए ए. आर. रहमान के संगीत में इस वर्ष सर्वाधिक मुखर होने वाला एक प्रखर आह्वान था जिसकी ऊष्मा आज भी जीवंत है (श्रीवास्तव, 2020)।

देश की ज्वलंत सामाजिक समस्या को इंगित करता फिल्म 'युवा' (2015) का समूह गान 'वंदे मातरम्…। मेरी माँ की तरफ आँख उठाई' द्वारा बलात्कार के संदर्भ में नारी सम्मान के विषय को भूपिन्दर सिंह 'मेघ' एवं हनीफ शेख के शब्दों और प्रवीण मनोज के संगीत के साथ सिद्धार्थ महादेवन, सुजता मजुमदार, हनीफ शेख और पूनम पांडे के सम्मिलित स्वरों में सुनना स्व चेतना के पुँज को सहज ही जागृत करता है। इसी क्रम में देश को संदर्भित यदि वर्तमान समय के सिने गीतों पर हम दृष्टिपात करें तो प्रमुख रूप से इसमें दो फिल्में उल्लेखनीय हैं। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के जीवन पर आधारित कंगना रनाउत अभिनीत एवं निर्देशित फिल्म 'मणिकर्णिका' (2019) में इतिहास और परंपरा का गठजोड़ इसके गीत-संगीत में भी झलकता है। भारत राष्ट्र के प्रति गौरव एवं सम्मान भाव का प्रदर्शन करता प्रसून जोशी का लिखा गीत 'देश से है प्यार तो हर पल ये कहना चाहिए, मैं रहूँ या न रहूँ भारत ये रहना चाहिए' राष्ट्र प्रेम में गूँथा एक प्यारा गान है। शंकर-एहसान-लॉय के संगीत में ढला यह गीत शंकर महादेवन के स्वर में अपनी शान्त प्रकृति में अनुपम बन पड़ा है। अजय देवगन द्वारा निर्मित-अभिनीत फिल्म 'तान्हाजी-द अन्संग वॉरीअर' (2020) के लिए अनिल वर्मा के गीत 'शंकरा रे शंकरा रे' को मेहुल व्यास ने अपने ही संगीत में स्वर दिया है। अजय-अतुल के संगीत में सुखविंदर सिंह और श्रेया घोषाल के युगल स्वरों में स्वानंद किरकिरे का लिखा 'त र र र होलिका जले शत्रु राख में मिले हमने जब जब शमशीरे तानी है माए भवानी' पारंपरिक ओज को प्रज्वलित करता एक प्रखर गीत है (किरकिरे, 2020)। वर्ष 2020 का सर्वथा अनूठा, प्रेरक एवं ओजपूर्ण गीत भी इसी फिल्म से है, जिसे सचेत टंडन और परंपरा ठाकुर ने अपने ही संगीत में साथ मिल कर गाया है। अनिल वर्मा का लिखा यह ऊर्जा से परिपूर्ण गान है— 'भवानी के वीरों उठा लो भुजा को, सत्याग्नि को मस्तक सजा लो, स्वाहा

हो शत्रु, प्रचंड मचा दो…। घमंड कर'। साहस और वीरता के पराक्रम को अपने भीतर समाया यह गीत विशुद्ध हिंदी का एक साहित्यिक आभूषण है।

वर्तमान समय में इस प्रकार के गीतों का शीर्ष लोकप्रियता का वरण करना एक शुभ एवं सुखद संदेश है। देश के प्रति आदर एवं सम्मान प्रदर्शित करते ये गीत कोरोना के कोप का भंजन करते हुए जिस प्रकार लोकप्रियता के शीर्ष पर आरूढ़ हैं, वह निःसंदेश भारत देश और उसके वासियों के राष्ट्रप्रेम को इंगित करता है। सिने गीत-संगीत के नौ दशक अर्थात् नब्बे वर्षों की इस दीर्घ एवं दुरूह यात्रा में वर्ष 1931 से लेकर वर्ष 2020 तक के देश से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से संबंध रखने वाले हिंदी सिने गीतों का यह इतिहास अभी आने वाले वर्षों में क्या नूतन दृश्य-परिदृश्य रचने वाला है, उसे भी काल के भाल पर अंकित होते देखने की प्रतीक्षा रहेगी।

निष्कर्ष

भारतीय सिने गीत-संगीत की नौ दशक की यात्रा में राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, भारत माता को समर्पित गीतों की एक लंबी श्रृंखला है। स्वतंत्रता पूर्व के जिन सिने राष्ट्रभक्ति के गीतों की सूचना बहुत कम उपलब्ध है उसका आँकलन, उसकी प्रस्तुति, उसके लेखन एवं विमर्श का मार्ग प्रस्तुत शोध पत्र ने प्रशस्त किया है। हिंदी सिने गीत-संगीत का समाज और राष्ट्र तथा मानवीय मूल्यों के प्रति जिस प्रतिबद्धता की अपेक्षा हम समय-समय पर करते रहे हैं उसका निर्वहन वह अपने अस्तित्व काल से ही करती चली आ रही है। वर्तमान समय में इस प्रकार के गीतों की रचना प्रक्रिया शिथिल अवश्य पड़ गई है, परंतु यह थमी नहीं है। नौवें दशक के उत्तरार्ध में निर्मित फिल्मों के कथानक, विषय वस्तु और गीतों में राष्ट्रप्रेम एवं सामाजिक उद्बोधन का प्रगटीकरण इसका प्रमाण है। सिनेमा संप्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम होने के कारण देशभक्ति गीतों का प्रचार-प्रसार तीव्र गति से हुआ। इन गीतों के जन-जन तक पहुँचने के साथ ही इसकी लोक भाषा की शब्दावली एवं आकर्षक-कर्णप्रिय संगीत की ओजपूर्ण तान ने जनमानस के कंठ-कंठ से समवेत स्वर में उत्साह-उमंग को मुखर कर दिया। सिने गीतों की इसी प्रकृति ने व्यक्ति-व्यक्ति को स्वाधीनता आंदोलन का वीर सैनिक और स्त्री-स्त्री को वीरांगना बना दिया। इस प्रकार के सिने गीतों का अपना एक सामाजिक सरोकार भी था, जिसके अंतर्गत इन गीतों में निहित कथ्य-तथ्य एवं संदेश परिवार-समाज में नैतिक मूल्यों के संवर्धन में उत्प्रेरक की भाँति कार्य करते हैं।

संदर्भ

आनंद-मिलिंद. (2015). *संगीतकार चित्रगुप्त के पुत्र*. शोधकर्ता से साक्षात्कार

इंदीवर. (1994). *गीतकार*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

कपूर, एम. (1995). *गायक*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

किरकिरे, एस. (2020). *गीतकार*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

गुप्ता, आर. (2000). *पंकज मलिक के नाती*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

धवन, पी. (1996). (गीतकार-संगीतकार). शोधकर्ता से साक्षात्कार.

प्रदीप (1995). *कवि-गीतकार*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

मुकेश, एन. (1995). *गायक*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

मंगेशकर, एल. (2013). *गायिका*. शोधकर्ता से साक्षात्कार

सुलतानपुरी, एम. (गीतकर) एवं धवन, पी. (गीतकार-संगीतकार). (1996). शोधकर्ता से साक्षात्कार

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 96-101, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वाधीनता संग्राम के दौरान प्रतिबंधित साहित्य का अध्ययन

डॉ. अंशु यादव[1]

सारांश

प्रतिबंधित साहित्य के माध्यम से पराधीन भारत का यथार्थ जनसाधारण के सम्मुख आया। विभिन्न रचनाकारों की प्रतिबंधित रचनाओं ने वैचारिक और सृजनात्मक स्तर पर तत्कालीन यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। उन साहित्यिक रचनाओं ने स्वाधीनता के भाव को निर्भीकता और साहस के साथ व्यक्त करते हुए युगांतरकारी भूमिका का निर्वाह किया। जनजागरण के राष्ट्रीय कार्यक्रम में रचनाकारों ने हर स्तर पर जनसाधारण को जाग्रत करने का प्रयास किया। औपनिवेशिक सत्ता के सख्त निर्देशों के बाद भी क्रांतिकारियों के अविस्मरणीय बलिदान को कविता, कहानी, उपन्यास और आत्मकथा आदि विभिन्न साहित्यिक रूपों में याद किया गया। साहित्य ने औपनिवेशिक सत्ता के दमनकारी और शोषणकारी रूप को भी उजागर किया। उस दौर का साहित्य राष्ट्रीय चेतना के प्रबल भावों से युक्त होने के कारण बार-बार प्रतिबंधित हुआ। इस संदर्भ में राष्ट्रनायकों और उनके समर्पण और बलिदान की अनगिनत कहानियों को जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने के दायित्व से बद्ध राष्ट्रचेता रचनाकारों के अविस्मरणीय प्रयास सदा के लिए अमर हो गए। 'चाँद' का फाँसी अंक, 'हिंदू पंच' का बलिदान अंक, मुनीश्वर दत्त अवस्थी की कहानियाँ, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की रचनाएँ और प्रेमचंद आदि साहित्यकारों की स्वाधीनता भाव से भरी विपुल रचनाओं के महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता। प्रेमचंद राष्ट्रीय आंदोलन की ही देन थे। स्वाधीनता की तीव्र चेतना के कारण उनके साहित्य को कई बार प्रतिबंध का सामना करना पड़ा। इस रूप में प्रतिबंधित साहित्य के महत्त्व और चुनौतियों को समझना अपने आप में तत्कालीन राष्ट्रीय परिदृश्य के महत्त्व और भूमिका का सम्मान करना है। साहित्य का जन आंदोलनकारी रूप किस प्रकार परिवर्तन की चेतना का सशक्त माध्यम बन सकता है, प्रतिबंधित साहित्य इसका जीवंत प्रमाण है। औपनिवेशिक साम्राज्य के शासनकाल में असंख्य परिमाण में ऐसी रचनाएँ सामने आईं, जिन्हें ब्रिटिश सत्ता ने तुरंत प्रतिबंधित कर दिया था। केवल संदेह मात्र से ही रचनाओं के प्रकाशन पर पाबंदी लगा दी गई थी। रचनाकारों ने कठिन जीवन स्थितियों का सामना करते हुए, अपने व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देते हुए, राष्ट्रहित में समर्पण और बलिदान का ऐसा साहित्य रचा, जिसने व्यापक स्तर पर जनसाधारण को आंदोलित किया। इस रूप में साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण अपने आप में साहित्य के गौरवशाली और परिवर्तनकामी रूप से परिचित होना है। प्रस्तुत शोध पत्र साहित्य के उन महत्त्वपूर्ण पक्षों को सामने लाता है, जिन्हें अँग्रेजों ने भयवश राष्ट्रीय चेतना के तीव्र विचारों के प्रसार के कारण प्रतिबंधित कर दिया था।

संकेत शब्द : प्रतिबंधित साहित्य, स्वाधीनता संग्राम, राष्ट्रीय चेतना, औपनिवेशिक सत्ता, पराधीनता, देशभक्ति, जन जागरण

प्रस्तावना

प्रतिबंधित साहित्य को राष्ट्रीय धरोहर के रूप में प्रस्तावित किया जाता है। भारत का क्रांतिकारी और गौरवशाली इतिहास आज भी हमारे बीच राष्ट्रीयता के भावों का संचार करता है। वास्तव में, राष्ट्रीय स्वाभिमान और गौरव भाव का जन्म अपने इतिहास, परंपरा, साहित्य और भाषा के आलोक में ही संभव है। इस धरोहर के क्रांतिकारी और परिवर्तनकामी स्वरूप पर बार-बार कुठाराघात किए गए। निर्भयता की बुनियाद पर खड़ी ये रचनाएँ स्वातंत्र्य भाव का तीव्र आह्वान करती हैं। रामप्रसाद बिस्मिल का क्रांतिकारी लेखन, भगत सिंह का संपूर्ण वैचारिक चिंतन, 'चाँद' का फाँसी अंक, वीर सावरकर की पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर', 'हिंदू पंच' का बलिदान अंक, देवनारायण द्विवेदी की 'देश की बात', लाला हरदयाल और उनकी पार्टी की क्रांतिकारी गतिविधियाँ तथा विदेशों में जब्त क्रांतिकारी रचनाएँ आदि भारतीय स्वाधीनता संघर्ष का जीवंत दस्तावेज हैं। ज्ञात-अज्ञात रचनाकारों द्वारा लिखी गई वीर क्रांतिकारियों के त्याग, समर्पण, साहस, पराक्रम, निष्ठा एवं बलिदान के उच्चतम भावों से युक्त ये रचनाएँ आज भी भारतीय जनमानस और युवाओं में राष्ट्र भाव का बीजारोपण करती हैं। इन राष्ट्रभक्त वीर सेनानियों का संपूर्ण जीवन दर्शन और व्यक्तित्व ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खुली चुनौती था। इनकी दृष्टि सर्वव्यापी थी। वे दूसरे देश के स्वतंत्रता संग्रामों का भारतीय संदर्भ एवं परिस्थितियों के अनुरूप उल्लेख करना और जनमानस में राष्ट्रीय गौरव भाव जगाना बखूबी जानते थे। इसलिए राष्ट्रीय चेतना के पनपने और विकसित होने के हर प्रयास को औपनिवेशिक सत्ता जन्म लेने से पहले ही नष्ट कर देना चाहती थी। उपनिवेशवादी इतिहास लेखन भारतीय चिंतन परंपरा और स्वाभिमान के भाव को पूर्णतः नष्ट कर देने का ही एक षड्यंत्र था। इस साजिश की अभिव्यक्ति मुनीश्वर दत्त अवस्थी की कहानियों में भी देखी जा सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र इतिहास और साहित्य के इन्हीं जीवंत, उज्ज्वल और गौरवशाली पक्षों को प्रस्तुत करता है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य तत्कालीन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान प्रतिबंधित साहित्य के क्रांतिकारी पक्ष के महत्व और स्वरूप से परिचित कराना है। साथ ही, औपनिवेशिक सत्ता के निरंकुश और अत्याचारी शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाने और जनजागरण के राष्ट्रीय अभियान को तीव्र और साकार करने में साहित्यकारों के साहसिक योगदान का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक पक्षों की तथ्यात्मक प्रस्तुति,

[1]सहायक प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. ईमेल : anshuyadav1981@gmail.com

तत्कालीन रचनाओं का उल्लेख, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों और भारतीय जनमानस एवं औपनिवेशिक सत्ता पर उसके प्रभावों के अध्ययन के लिए विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया गया है। मूल स्रोत के रूप में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित ये रचनाएँ राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। ये रचनाएँ अपने दौर के इतिहास की साक्षी हैं। इस दिशा में किए गए महत्त्वपूर्ण शोधकार्यों का भी सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग किया गया है, जैसे मदनलाल वर्मा 'क्रांत' द्वारा लिखित 'स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास'-भाग 1, 2, 3, चमन लाल की पुस्तक 'क्रांतिवीर भगत सिंह अभ्युदय और भविष्य', राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित रचनाएँ और राजेश कुमार परती द्वारा प्रतिबंधित रचनाओं पर किए गए शोध कार्य, 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' शीर्षक से नरेंद्र शुक्ल का शोधकार्य, स्वाधीनता आंदोलन पर आधारित अयोध्या सिंह और रामविलास शर्मा की पुस्तक आदि।

औपनिवेशिक सत्ता को खुली चुनौती

पराधीन भारत के यथार्थ को जनसाधारण के सम्मुख लाने और उसे मुक्ति की प्रबल चेतना जगाने के मार्ग पर अग्रसर करने का गंभीर दायित्व साहित्य ने निभाया है। ऐसे निर्भीक और साहसी प्रयत्नों ने औपनिवेशिक सत्ता को खुली चुनौती दी। परिणामस्वरूप स्वाधीनता आंदोलन के दौर का वह साहित्य सामने आया, जिसे साम्राज्यवादी शासकों ने प्रतिबंधित कर दिया था। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि अनेक साहित्यिक रूपों में उपलब्ध वह साहित्य आज धरोहर के रूप में हमारे पास सुरक्षित है। इसके आधार पर स्वाधीनता संघर्ष में साहित्यकारों के योगदान को समझने का प्रयास किया जा सकता है। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत और स्वाधीनता के भाव से युक्त इस साहित्य ने ब्रिटिश सत्ता के भीतर एक ऐसे भय का संचार किया कि इनके प्रकाशित होते ही अँग्रेजी सरकार ने उसे तुरंत प्रतिबंधित करने की कार्रवाई शुरू कर दी और फिर पुनः ऐसे प्रयास न हों, इसके लिए नियम भी बना दिए। ब्रिटिश शासन द्वारा निर्धारित प्रतिबंध के मानदंड कुछ इस प्रकार थे : पहला, सन् 1857 के आंदोलन के समर्थन में लिखी हुई कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकती। दूसरा, अँग्रेजी राज्य के दमन और शोषण के खिलाफ लिखा जाने वाला कोई भी लेख या रचना प्रकाशित नहीं हो सकते। तीसरा, दुनिया के किसी भी देश के स्वाधीनता आंदोलन के समर्थन में लिखा कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता। चौथा, रूसी क्रांति के बारे में कोई भी जानकारी देने वाली रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो सकतीं।" यह कार्यवाही सत्ताधारी वर्ग उनके विरुद्ध करता था जो उनके अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार और शासक वर्ग के विरुद्ध जनसाधारण को सचेत और जाग्रत करता था। वास्तव में, औपनिवेशिक सत्ता अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए उन तमाम गतिविधियों का दमन करना चाहती थी, जिनके द्वारा समाज में जागरण की लहर को रोका जा सके। इन प्रतिबंधों के बावजूद ब्रिटिश शासन की अत्याचारी नीतियों के खिलाफ विरोध का सिलसिला निर्बाध रूप से चलता रहा। साहित्य ने भारतीय जनमानस की चेतना के निर्माण में भूमिका अदा की।

साहित्यकारों की युगांतरकारी भूमिका

स्वाधीन भारत की आकांक्षा ने जनमानस को प्रत्येक स्तर पर प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया। जनजागरण के इस अभियान में साहित्यकारों ने युगांतरकारी भूमिका का निर्वाह किया। "आजादी की लड़ाई के दौरान जो साहित्य लिखा गया उसका उद्देश्य बड़ा स्पष्ट था। ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी कूटनीति के विरोध में संपूर्ण समाज और राष्ट्र को एकजुट कैसे किया जाए तथा किस प्रकार इस दुर्व्यवस्था से मुक्ति दिलायी जाए, यही उनका मंतव्य, उद्देश्य अथवा ध्येय था, इससे अतिरिक्त और कुछ नहीं" (वर्मा, 2006)। "राष्ट्रवादी विचारों से युक्त किसी भी पुस्तक के प्रति अँग्रेजों का रुख एकदम सख्त था। वे ऐसा कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते थे, जिसके कारण उनके साम्राज्यवादी हितों पर संकट आए। इसलिए देशभक्त रचनाकार नाम बदलकर लिख रहे थे। सूफी अंबाप्रसाद के लेख 'प्रभा' और 'चाँद' दोनों पत्रिकाओं में अज्ञात नाम से छपे। गेंदालाल दीक्षित पर जो लेख 'प्रभा' में छपा, वह फाँसी अंक में भी है। दिनेश शर्मा का कहना है कि 'चाँद' में यह लेख अज्ञात नाम से छपा है। मैंने इस अंक की जो प्रति देखी है, उसमें लेखक के नाम वाला पृष्ठ नष्ट हो गया है। बिस्मिल रचनावली में दिनेश शर्मा ने इस लेख के साथ उसके लेखक का नाम नहीं दिया। गेंदालाल दीक्षित के बारे में जैसी जानकारी उस लेख में है, उसे देखते ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, वह लेख बिस्मिल का है (शर्मा, 2003)।" यही कारण है कि आंदोलन को जनजागरण के मार्ग पर निर्बाध गति से अग्रसर करने के लिए रचनाकार अज्ञात नाम से भी लिखते रहे।

ऐसी अनगिनत रचनाएँ खोजी ही नहीं जा सकीं, जिन्हें अँग्रेजी सरकार ने नष्ट कर दिया था। "इस क्रांतिकारी साहित्य से ब्रिटिश सरकार इतना भयभीत थी कि उसने इसे एक बार नहीं अनेकों बार जब्त किया, लेकिन इसकी जादुई शक्ति ने जनता के सिर पर चढ़कर वह जुनून पैदा किया कि जिन अँग्रेजों के राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता था वे मात्र हिंदुस्तान से ही नहीं, अपितु अन्य राष्ट्रों से सत्ता सौंपकर चलते बने। आधुनिक हिंदी साहित्य को विशेष रूप से उन सभी क्रांतिकारियों का ऋणी होना चाहिए, जो कालकोठरी के घोर नरक में रहते हुए, ब्रिटिश हुक्मरानों की प्राणलेवा यातनाओं को सहते हुए, लाठी-गोली-चाबुक खाते हुए और फाँसी के फंदे तक जाते हुए—'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है'—जैसा लासानी गीत गाते हुए अमर हो गए" (वर्मा, 2006)। राष्ट्रीय भावना का यह प्रबल ज्वार आज भी हमारी जीवनीशक्ति का अन्यतम स्रोत है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम और हिंदी साहित्य का घनिष्ठ संबंध रहा है। पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े औपनिवेशिक भारत में दमन और दासता के विरुद्ध विरोध का स्वर लगातार प्रबल हो रहा था। हिंदी में स्वाधीनता की चेतना से युक्त साहित्य पर बड़े स्तर पर प्रतिबंध लगाए गए। "सर्वाधिक संख्या हिंदी पुस्तकों की थी, इसके पश्चात् उर्दू (126), फिर पंजाबी (114) तथा तीसरे स्थान पर मराठी (88) थी। जैसा कि स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से स्पष्ट है, सर्वाधिक उग्रता उत्तरी भारत में विशेषकर संयुक्त प्रांत, दिल्ली, बिहार और मध्य भारत में अनुभव की गई थी। बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु में भी पर्याप्त मात्रा में साहित्य लिखा गया, किंतु वहाँ प्रतिबंधित कम हुआ। यदि हिंदी और उर्दू को मिला दें तो यह संख्या 528 हो जाती है अर्थात् कुल संख्या (1049) के पचास प्रतिशत से भी अधिक" (परती, 1991)। देशभक्ति का ज्वार कविताओं में भी देखा जा सकता है, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। 'आजादी का बिगुल' शीर्षक पुस्तक से एक कविता है 'प्यारी स्वतंत्रता'—

"तुझको मेरा प्रणाम है प्यारी स्वतंत्रता,
तेरे लिए यह प्राण है प्यारी स्वतंत्रता।" (परती, 1991)

'आजादी का चिराग' शीर्षक से पुस्तक में संकलित कविता 'मस्ताना भगत सिंह' देश के क्रांतिकारियों को नमन करती है—

"आलम की एक शान था मस्ताना भगत सिंह,
हम बागी का अरमान था मस्ताना भगत सिंह"।

जनचेतना के संकल्प

एक और जनसाधारण राजनीतिक मुक्ति की आकांक्षा के लिए प्रयासरत था तो दूसरी और औपनिवेशिक सत्ता मुक्ति की आकांक्षा का दमन करने के लिए कटिबद्ध थी। परिणामस्वरूप सन्1857 का भारतीय स्वाधीनता संग्राम अँग्रेजी सत्ता के अत्याचारी शासन के विरुद्ध विस्फोट के रूप में सामने आया। देशव्यापी स्तर पर अँग्रेजों के विरुद्ध जन आक्रोश फूटा। ईस्ट इंडिया कंपनी को अनुमान भी नहीं था कि उसे इतने भीषण विरोध का सामना करना पड़ेगा। लेकिन आंदोलन के प्रति अँग्रेजी शासन ने दमनकारी स्वरूप अपनाया और उसे निर्दयता से कुचल दिया गया। फिर भी विद्रोह की अग्नि भीतर-ही-भीतर धधकती रही। इस आंदोलन के बाद शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकल कर ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया के हाथों में आ गई, किंतु शोषण का सिलसिला कंपनी शासन की तरह ही निरंतर चलता रहा। सन् 1860 के बाद हिंदुस्तान में राष्ट्रीय भावना के क्रमिक विकास को खुद प्रमुख ब्रिटिश शासकों ने स्वीकारा है। आगरा हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज विलियम एडवर्ड्स ने 1866 में लिखा, "भारत में राष्ट्रीयता की भावना पैदा हो गई है। हमें यह भी याद रखना होगा कि जैसे-जैसे भारत में डाक-तार के जरिये पत्र व्यवहार की और रेलवे के जरिये व्यक्तिगत भेंट-मुलाकात की सुविधाएँ बढ़ेंगी, लोग और भी ज्यादा संगठित हो जाएँगे तथा राष्ट्रीयता की भावना और विजयी होगी" (सिंह, 2006)। आंदोलन की भीषणता, व्यापकता और एकता ने औपनिवेशिक सत्ता को और अधिक सचेत कर दिया। किसी भी प्रकार की संदेहात्मक गतिविधि के प्रति कड़ी सख्ती बरती गई।

राष्ट्रभाव की प्रबल चेतना लोकगीतों में भी खुलकर अभिव्यक्त हुई है। मैथिली का एक लोकगीत इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसमें नायक की वीरता का वर्णन नहीं है, बल्कि जनचेतना और उसके संकल्प की अभिव्यक्ति है—

"गरजब हम मेघ जकाँ, बरिसब हम पानि जकाँ,
उड़ाय देब हम लंदन के हुंकार से" (चौहान एवं प्रसाद, 2007)

लेखकों-संपादकों को बरसों की जेल

वैचारिक और सर्जनात्मक स्तर पर बड़ी संख्या में ऐसी रचनाएँ अस्तित्व में आईं, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। सरकार के विरोध में लिखे गए संपादकीय के कारण जेम्स ऑगस्टस हिक्की के 'बंगाल गजट' को प्रतिबंधित कर दिया गया। गांधीजी के सहयोग और समर्थन में लिखी अनेक रचनाएँ प्रतिबंधित कर दी गईं। राकेश पांडे द्वारा 'ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित साहित्य' पुस्तक में विभिन्न भाषाओं में लिखी गई ऐसी ही रचनाओं का अध्ययन किया गया है। 'समरयात्रा' कहानी में प्रेमचंद ने लिखा है कि 'भय ही पराधीनता है, निर्भयता ही स्वराज है'। यह कथन राष्ट्र चेता क्रांतिकारियों का मूल मंत्र था। रामप्रसाद बिस्मिल की अनेक पुस्तकें और गीत स्वाधीनता के उद्घोष के कारण जब्त कर लिए गए। वीर सावरकर की क्रांतिकारी पुस्तक '1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' को प्रकाशन से पूर्व ही विदेश में जब्त कर लिया गया। इस पुस्तक के संबंध में गुप्तचर विभाग का विचार था कि यह सर्वाधिक आपत्तिजनक पुस्तक होगी और मिंटो आशा कर रहे थे कि वे उस पुस्तक का भारत में प्रवेश रोक सकेंगे" (मेहरोत्रा, 1997)। यही नहीं, 'अभ्युदय' पत्रिका का 8 मई, 1931 को प्रकाशित भगतसिंह पर आधारित विशेषांक ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया।

सन् 1929 से 1934 तक पाँच वर्षों में हिंदुस्तान की अनेक भाषाओं खासकर हिंदी, उर्दू, पंजाबी और अँग्रेजी के अखबारों, पत्रिकाओं, किताबों आदि में भगतसिंह और उनके क्रांतिकारी आंदोलनों से संबंधी इतनी सामग्री छपी कि उनमें से काफी प्रकाशनों पर ब्रिटिश सरकार ने पाबंदी लगाई और अनेक लेखकों-संपादकों को बरसों जेल की हवा खिलाई (लाल, 2012)। इस समय बड़े स्तर पर देश और समाज के लिए प्राण न्योछावर करने वाले क्रांतिवीरों के त्याग, समर्पण और बलिदान की गाथाएँ सामने आईं। कोलकाता से प्रकाशित हिंदू पंच का 'बलिदान अंक' और इलाहाबाद से प्रकाशित चांद पत्रिका का 'फाँसी अंक' ऐतिहासिक और क्रांतिकारी दस्तावेज के रूप में सामने आते हैं। "लेकिन फाँसी अंक ने जो इतिहास बनाया वह अपने आप में बेजोड़ है। इसे प्रकाशित होते ही जब्त कर लिया गया था और जिस किसी के पास उसकी एक भी प्रति पाई जाए, उसे इसी आरोप में जेल की हवा खानी पड़ सकती थी" (शास्त्री, 2002)। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा संपादित स्वदेश पत्रिका का 'विजय अंक' भी प्रतिबंधित कर दिया गया था। यही नहीं, सखाराम गणेश देउस्कर की बांग्ला पुस्तक 'देशेर कथा' और उसके हिंदी अनुवाद पर और देवनारायण द्विवेदी की पुस्तक 'देश की बात' पर भी प्रतिबंध लगाया गया। सन् 1909 में रघुनाथ भागवत की भारतीय राष्ट्रवाद पर आधारित पुस्तक 'वंदे मातरम्' और उसका दूसरा भाग दोनों प्रतिबंधित कर दी गईं। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी तारकनाथ दास ने विदेशों में रह रहे भारतीयों के बारे में कोलकाता की सरस्वती लाइब्रेरी से सन् 1931 में 'इंडिया इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स' पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसे जब्त कर लिया गया। हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन द्वारा 1925 में 4 पृष्ठों एक बुलेटिन 'दि रेवोल्यूशनरी' प्रकाशित किया गया था, जिसे जब्त कर लिया गया। लाला हरदयाल और उनकी गदर पार्टी से संबंधित बहुत सारा साहित्य भारत पहुँचने से पहले विदेशों में ही जब्त कर लिया गया। पैंफलेट, मुद्रित, अमुद्रित पुस्तकें, पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र आदि और शोध की अपार संभावनाओं को आमंत्रित करती ऐसी विपुल सामग्री राष्ट्रीय अभिलेखागार, ब्रिटिश म्यूजियम और इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन में मौजूद है।

साम्राज्यवादी सत्ता के शोषण के विरुद्ध राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि प्रत्येक स्तर पर विरोध की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। भारतेंदुयुगीन रचनाकार औपनिवेशिक सत्ता के शोषणकारी चरित्र को अपनी लेखनी के माध्यम से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सामने ला रहे थे—

"मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।" (गुप्ता, 2013)

प्रेमचंद : साहित्य को यथार्थ से जोड़ता कथाकार

दूसरी तरफ सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन भारतीय समाज

के रोगग्रस्त हिस्सों को दूर करने के लिए प्रयासरत थे। जिस समय प्रेमचंद ने साहित्य जगत् में प्रवेश किया, वह समय भारतीय इतिहास की दृष्टि से भयंकर उथल-पुथल का समय था। भारतीय समाज इस समय बदलाव के बड़े दौर से गुजर रहा था। राष्ट्रीय चेतना के तीव्र प्रसार के इस समय में अँग्रेजी शासकों की नीतियाँ स्वाधीनता की अग्नि को और अधिक भड़का रही थीं। सन् 1905 में बंगाल का धार्मिक विभाजन एक ऐसी ही घटना थी, जिसके कारण भारतीय समाज में असंतोष की ज्वाला और अधिक प्रचंड हो गई। काँग्रेस बंगाल विभाजन के प्रश्न पर गरम दल और नरम दल में विभक्त हो गई। इसी वर्ष सेडिशस मीटिंग एक्ट भी लागू हुआ और सरकारी दमन और भी तेज हो गया। इन्हीं परिस्थितियों में प्रेमचंद का आगमन होता है। प्रेमचंद ने उर्दू और हिंदी दोनों ही भाषाओं पर समान अधिकार से लिखा। प्रेमचंद 'जमाना' में 'रफ्तारे जमाना' नामक कॉलम लिखते थे, जिसमें देश में होने वाले परिवर्तनों की झलक प्रस्तुत होती थी।

प्रेमचंद ऐसे कथाकार थे, जिन्होंने अपने समय की धड़कनों को पहचाना और तद्युगीन यथार्थ को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाया। उनका साहित्य राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित था। उन्होंने साहित्य को कल्पना की दुनिया से बाहर निकालकर यथार्थ की कठोर जमीन पर खड़ा किया। यही कारण है कि तत्कालीन इतिहास उनकी रचनाओं में जीवंत रूप में अभिव्यक्ति पाता है। देश की स्वाधीनता का प्रश्न उनके साहित्य में सर्वोपरि मूल्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ है और इसकी परिधि में ही उनका समस्त लेखन कार्य हुआ। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद शौकिया नहीं आए थे। साहित्य के माध्यम से समाज तथा देश की सेवा का लक्ष्य ही उनकी रचनाधर्मिता की बुनियाद में है (मिश्र, 2012)। जनसाधारण का संघर्ष, दर्द, पीड़ा, स्वप्न सभी कुछ अपनी समग्रता में प्रेमचंद के यहाँ मौजूद है। प्रेमचंद ने साहित्य को देश के तत्कालीन यथार्थ से जोड़कर एक नई ऊर्जा का संचार किया। राष्ट्रीय चेतना के प्रबल आवेग में प्रेमचंद की रचनाएँ भी राष्ट्रीयता और देशप्रेम के भाव से ओतप्रोत थीं। वे हर तरह की असमानता और विषमता को खत्म करके एक बेहतर समाज का स्वप्न देख रहे थे। एक ऐसा समाज जो विदेशी शासन से मुक्ति के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्तर पर भी सशक्त हो और हर प्रकार की असमानता से मुक्त हो। प्रेमचंद के यहाँ स्वाधीनता अपने व्यापक अर्थों में है।

'सोजे वतन' और स्वाधीनता की चेतना

प्रेमचंद की रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर ब्रिटिश शासन के लिए भय का कारण बनता है। सन् 1908 में उर्दू में उनका कहानी संग्रह 'सोजे वतन' प्रकाशित हुआ। सरकारी नौकरी करते हुए भी स्वाधीनता की चेतना ने उनमें इतना साहस भर दिया था कि वह पूरी निर्भीकता के साथ देशप्रेम को दुनिया के सबसे अनमोल रतन के रूप में देख रहे थे। अँग्रेजी शासन के भय का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उसने 'सोजे वतन' को प्रकाशित होते ही तुरंत प्रतिबंधित कर दिया। इस संग्रह में पाँच कहानियाँ संकलित थीं, जो अपने महत्त्व में कई गुना ज्यादा साबित हुईं। 'सोजे वतन' की कहानियाँ देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' कहानी में प्रेमचंद ने लिखा है—"खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है" (आनंद, 1996)। 'शेख मखमूर' कहानी में शेख मसऊद द्वारा विदेशी आक्रांताओं की गुलामी से अपने देश को मुक्त करवाने के संघर्ष की ओजमयी अभिव्यक्ति है। तीसरी कहानी 'यह मेरी मातृभूमि है' में प्रेमचंद ने मुख्य पात्र धनपतराय के माध्यम से भारतीय सभ्यता, संस्कृति और चिंतन के आदर्श रूप को स्थापित किया है। 'सांसारिक प्रेम और देशप्रेम' कहानी की कथावस्तु देश और जाति पर अपने आपको को न्योछावर करने वाले इटली के स्वतंत्रता सेनानी मैजिनी की कहानी है।

सरकारी पद पर रहते हुए प्रेमचंद ने पराधीन भारत के शोषणकारी चरित्र के विरुद्ध राष्ट्रीय भावों का उत्पादन करने वाली कहानियाँ लिखीं। औपनिवेशिक सत्ता तुरंत सचेत हो गई। किसी तरह उन्हें यह भी पता चल गया कि नवाब राय के रूप में धनपतराय ही लिख रहे हैं। सरकार को राजद्रोह की झलक मिली और नवाब राय को हाजिर किया गया और कड़ी चेतावनी दी गई—"तुम्हारी कहानी में 'सिडीशन' भरा हुआ है। अपने भाग्य को बखानो कि अँग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज्य होता तो तुम्हारे दोनों हाथ काट लिए जाते, तुमने अँग्रेज सरकार की तौहीन की है" (बालिन, 1993)। धनपतराय को आदेश मिला कि संग्रह की सभी प्रतियाँ सरकार को दे दें और आगे बिना कलेक्टर के हुक्म के कुछ न लिखें। बिक्री के लिए छपी 'सोजे वतन' की एक हजार प्रतियों में से बची हुई सात सौ प्रतियाँ सरकार को दे दी गईं, जो बाद में जला दी गईं। पुस्तक को जला देने जैसी अभूतपूर्व घटना अपने आप में प्रदर्शित करती है कि नवाब राय के इस संग्रह ने उपनिवेशवादियों को कितना बेचैन कर दिया था। पुस्तक के प्रकाशक दयानारायण निगम को पाँच सौ रुपये नगद जुर्माना देना पड़ा। उनके लेखन पर पाबंदी लगा दी गई। प्रेमचंद राष्ट्रीय चेतना के मार्ग पर चल रहे थे। प्रतिबंध के बाद भी प्रेमचंद राष्ट्रीय भाव के आख्याता बने रहे और पूरी निर्भीकता और साहस के साथ लिखते रहे। लेकिन अब उन्होंने नवाब राय नाम से नहीं, बल्कि प्रेमचंद के नाम से लिखना शुरू कर दिया।

'सरस्वती' और 'हंस' पर जुर्माना

प्रतिबंध का सिलसिला यहीं नहीं थमा। अपने प्रबल राष्ट्रवादी विचारों के कारण प्रेमचंद का लेखन बार-बार औपनिवेशिक सत्ता के कोप का भाजन बना। साहित्य के साथ-साथ उनकी पत्रकारिता भी प्रतिबंध के घेरे में आई। कठिन परिस्थितियों के बाद भी सरस्वती प्रेस और प्रकाशन का कार्य निरंतर चल रहा था। दिनांक 10 मार्च, 1930 को 'हंस' का पहला अंक निकला। गांधीवादी विचारों के समर्थक प्रेमचंद ने 'हंस' की संपादकीय टिप्पणियों में गांधीजी के नमक सत्याग्रह का खुलकर समर्थन भी किया और प्रशंसा भी की और साम्राज्यवादी शासकों की अन्यायपूर्ण नीतियों का खुला विरोध किया। परिणामस्वरूप इसके बाद 24 जुलाई, 1930 को 'प्रेस ऑर्डिनेंस' के तहत सरस्वती प्रेस से 1000 रुपये की जमानत माँगी गई। अगस्त से अक्टूबर तक 'हंस' और प्रेस दोनों बंद रहे। नवंबर में जब जमानत का प्रतिबंध समाप्त हुआ तब सरस्वती प्रेस पुनः खुला और 'हंस' के प्रकाशन की तैयारियाँ भी शुरू हुईं, पर प्रेस पर संकट के बादल मँडराते रहे। अर्थाभाव की समस्या लगातार बनी रही। इस बीच प्रेमचंद ने 'जागरण' को भी अपने हाथ में ले लिया था। अगस्त 1932 में जमानत का आदेश वापस हुआ और 22 अगस्त को 'जागरण' का पहला अंक निकाला गया। इसके बाद फिर से 1 दिसंबर को 'जागरण' और सरस्वती प्रेस पर जमानत की गाज गिरी, पर जल्द ही खत्म भी हो गई। अंत में आर्थिक संकट से जूझते हुए प्रेमचंद ने प्रेस बेच देने पर विचार करना शुरू कर दिया।

यह समय राष्ट्रीय चेतना के तीव्र उभार का समय था। इस दौरान पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' का कहानी संग्रह 'चिनगारियाँ' प्रकाशित हुआ,

जिसमें स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि पर आधारित कहानयाँ संकलित थीं। प्रकाशित होते ही अँग्रेजी सरकार द्वारा इसे जब्त कर लिया गया। सन् 1931 में अँग्रेज सरकार ने बम कांड में शहीद मुनीश्वर दत्त अवस्थी द्वारा रचित कहानी संग्रह 'बागी की बेटी' को भी जब्त कर लिया था। इसमें संग्रहित कहानियाँ अपने समय का राजनीतिक दस्तावेज हैं। ये क्रांतिकारियों के जीवन की गाथाएँ हैं। इन कहानियों में मुनीश्वर दत्त ने भारत ही नहीं आयरलैंड और रूस जैसे देशों के मुक्ति संग्रामों का उल्लेख करते हुए औपनिवेशिक सत्ता के कुटिल व्यवहार और रणनीतियों को परत-दर-परत उघाड़ा है। राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, भाषा प्रत्येक स्तर पर पराधीन देश के मनोबल और आत्मसम्मान को खंडित करने के प्रयासों का खुलासा किया है। 'आश्रयदाता' कहानी का क्रांतिकारी देशभक्त इसी सच्चाई को उजागर करता है—"ओ पराधीनता के मुक्त वातावरण में जन्म लेने वाले आयरिश शेर! तुम्हें अपनी जाति का ज्ञान नहीं है। तुम साम्राज्य सत्ता के मदमाते, झूठे इंग्लैंडवासियों तथा उनके चरण सेवक कुलकलंक आयरिशों के लिखे हुए इतिहासों पर विश्वास करते हो। तुमने यूरोप विजयी ब्रामले को नहीं सुना, हापर्टन की कहानी नहीं सुनी। यह लोग कौन थे? आयरिश" (अवस्थी, 1968)।

स्वाधीनता आंदोलन की महागाथा

प्रतिबंध के बावजूद प्रेमचंद अप्रत्यक्ष रूप से अपनी रचनाओं में स्वतंत्रता संग्राम के मुख्य प्रश्नों और समस्याओं को अभिव्यक्त करते रहे। सन् 1932 में प्रेमचंद का कहानी संग्रह 'समरयात्रा तथा अन्य कहानियाँ' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में जेल, पत्नी से पति, शराब की दुकान, अनुभव, आहुति, होली का उपहार, मैकू, जुलूस तथा समर यात्रा आदि कहानियाँ संकलित थीं। इन कहानियों में स्वाधीनता संघर्ष की तीव्र और मुखर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। प्रेमचंद ने भारतीय जनता के देशभक्ति पूर्ण आंदोलनों में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए क्रांतिकारी कार्य में भाग लिया और उन्हें खूब प्रचारित किया। एक बार फिर लेखक ने खुले रूप में ब्रिटिश शासन के घृणास्पद तथ्यों का भंडाफोड़ किया। 'समर यात्रा' की कहानियों को निर्विवाद रूप से प्रेमचंद की कहानी कला के श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है। इस संग्रह में वे मातृभूमि को अनेक कष्टों से छुटकारा दिलाने के लिए स्वाधीनता प्राप्ति के अनमोल प्रयासों को दर्शाते हैं। यह संग्रह राजनैतिक विचारधारा और उसके निहितार्थों के उद्घाटन के लिए उन तथ्यों को प्रदर्शित करता है जिन्हें वे पहले से आंग्ल-भारतीय कानून के विरुद्ध जानते थे। प्रकाशित होते ही यह संग्रह भी जब्त हो गया। इस प्रकार दूसरी बार प्रेमचंद की रचनाएँ ब्रिटिश शासकों को नहीं भाई'' (बालिन, 1993)। ये कहानियाँ औपनिवेशिक सत्ता के अधीन भारतीय जनसंघर्ष का तीव्र आह्वान और चित्रण करती हैं। ब्रिटिश सरकार ने तुरंत इस संग्रह को प्रतिबंधित कर दिया। इन कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन की महागाथा है। इन कहानियों में साम्राज्यवादी शासक के अत्याचार और शोषण के विरुद्ध जनसाधारण के संघर्ष का प्रभावी चित्रण है। इन कहानियों में देशप्रेम, सांप्रदायिक एकता, सेवा-भाव, अछूतोद्धार, सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिष्कार आदि स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न प्रवृत्तियों को कहानी के रूप में प्रस्तुत करके गांधी चेतना तथा उनके संघर्ष को साकार कर दिया है (गोयनका, 2013)। वास्तव में, ये कहानियाँ भारतीय जनाकांक्षाओं की सचेत अभिव्यक्ति हैं।

साहित्य और महिलाओं की स्वाधीनता आंदोलन में सहभागिता

इन कहानियों की खासियत यह है कि इनमें स्त्रियों की स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय उपस्थिति और सहभागिता दर्ज हुई है। फिर चाहे शराब की दुकानों पर पिकेटिंग का प्रश्न हो या जलसे, जुलूस में शामिल होने का। वे सारे सुख-साधन और वैभव छोड़कर स्वराज के लिए प्रतिबद्ध नजर आई हैं। 'समर यात्रा' की 'नोहरी' अनुभव की 'देवी' और शराब की दुकान की 'मिसेज सक्सेना' आदि ऐसी ही सचेत और जागरूक महिलाओं का उदाहरण प्रस्तुत करतीं हैं। अनुभव कहानी की 'देवी' पति ज्ञानबाबू के मित्र की पत्नी को समझाते हुए कहती है कि उसके राष्ट्रभक्त पति को केवल इसलिए एक साल की सजा मिली, क्योंकि उन्होंने स्वयंसेवकों को शरबत पिलाने का महान कार्य किया था—"अच्छा बता तेरे प्रियतम क्यों जेल गए? इसीलिए तो कि स्वयंसेवकों का सत्कार किया था। स्वयंसेवक कौन हैं? यह हमारी सेना के वीर हैं, जो हमारी लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। स्वयंसेवकों के भी तो बाल-बच्चे होंगे, माँ-बाप होंगे, वह भी तो कोई कारोबार करते होंगे, पर देश की लड़ाई लड़ने के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। ऐसे वीरों का सत्कार करने के लिए जो आदमी जेल में डाल दिया जाए, उसकी स्त्री के दर्शनों से भी आत्मा पवित्र होती है। मैं तुझ पर एहसान नहीं कर रही हूँ, तू मुझ पर एहसान कर रही है" (प्रेमचंद, 2012)। गांधीजी के विचारों के अनुगामी, सत्य और अहिंसा को अपने रचनात्मक सरोकारों की मूलप्रेरणा मानने वाले प्रेमचंद ने जनांदोलन में महिलाओं की सक्रिय उपस्थिति और उनके परिवर्तनकामी स्वभाव के महत्त्व को समझा और स्थापित किया।

यही नहीं, ये महिलाएँ स्वाधीनता संग्राम में बढ़-चढ़कर सहयोग करना चाहती हैं और नारी सशक्तीकरण की मिसाल कायम करती हैं। पति के सरकारी मुलाजिम होने पर भी डरती नहीं हैं, डटकर सामने आती हैं। अनेक स्थानों पर स्त्री-पुरुष की सोई हुई चेतना को जगाती हैं। वह पुरुष की पथप्रदर्शक के रूप में भी सामने आई हैं। जैसे 'जुलूस' की 'मिट्ठनबाई' और 'समर यात्रा' की 'नोहरी'। सहसा 'नोहरी' ने चिल्लाकर कहा—"अब सब जने खड़े क्या पछता रहे हो? देख ली अपनी दुर्दशा या अभी कुछ बाकी है। आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा है आज हम इतने बेशरम हैं कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते। हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते, तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते! जब तक तुम गुलाम बने रहोगे, उनकी सेवा-टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा-चोकर मिलता रहेगा, लेकिन जिस दिन तुम ने कंधा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह मार खाते रहोगे?" (प्रेमचंद, 2012) वास्तव में, स्वाधीनता की चेतना मनुष्य को हर प्रकार के बंधन के विरुद्ध स्वयं खड़ा कर देती है। 'नोहरी' जनसाधारण की इसी चेतना को जाग्रत करती है।

प्रेमचंद द्वारा सिनेमा का रुख

संकट का सिलसिला यहीं खत्म नहीं हुआ। इसी समय प्रेमचंद ने फिल्म जगत् का भी रुख किया था, लेकिन स्वाधीनता संग्राम का महानायक मनोरंजन के नाम पर अपने राष्ट्रवादी विचारों को तिलांजलि न दे सका। यहाँ पर भी उन्हें प्रतिबंध का प्रकोप झेलना पड़ा। उन्होंने सामाजिक प्रश्नों पर केंद्रित 'मजदूर' (1934) फिल्म की पटकथा लिखी थी, जिसे देश में प्रतिबंधित कर दिया गया था। प्रेमचंद यहाँ भी अपने राष्ट्रवादी चिंतन से विमुख नहीं हुए और देश के सच्चे प्रहरी के रूप में सामने आए, लेकिन इसके बाद वे फिल्म जगत् से वापस लौट आए। प्रेमचंद ने फिल्मी दुनिया के अनुभवों से गुजरते हुए इसीलिए बेबाक टिप्पणी की थी—"सिनेमा जिनके हाथ में है, उन्हें आप कुपात्र कहें, मैं तो उन्हें उसी तरह व्यापारी

समझता हूँ जैसे कोई दूसरा व्यापारी और व्यापारी का काम जनरुचि का पथ प्रदर्शन करना नहीं, धन कमाना है।" प्रेमचंद ने अपनी लेखनी से कभी समझौता नहीं किया। उनकी रचनात्मकता का मुख्य केंद्र भारतीय समाज और उसका भीषण यथार्थ था और प्रेमचंद पराधीन भारत के उत्कट देशभक्त।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश का साहित्य अपने देश, समाज और तत्कालीन परिस्थितियों से अविच्छिन्न नहीं होता। इस रूप में स्वाधीनता की प्रबल चेतना से युक्त प्रतिबंधित साहित्य अपनी अविस्मरणीय भूमिका का स्वयं साक्षी है। इस दौर की रचनाएँ जन-जन में चेतना भर देने का सामर्थ्य रखती हैं। इन रचनाओं में तत्कालीन स्वाधीनता आंदोलन की समस्त गतिविधियां और कार्यनीतियाँ स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई हैं। हड़ताल, बहिष्कार, स्वदेशी के प्रति प्रतिबद्धता, सार्वजनिक प्रदर्शन, अहिंसक जुलूस, निहत्थी जनता पर निरंकुश आततायी अँग्रेजी सरकार के अत्याचार आदि। अपनी प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कारण ही इन्हें जब्त किया गया। साहित्य के इतिहास में चाहे प्रतिबंधित साहित्य को अपने महत्त्व के अनुरूप स्थान न मिला हो, लेकिन वह हमारी धरोहर है। साहित्यकारों ने औपनिवेशिक सत्ता के दमनकारी स्वरूप को जनसाधारण के सम्मुख रखा, जनता को इतिहास के उन गौरवशाली पक्षों से परिचित कराया, जिनको प्रकाश में लाना अपने आप में ऐतिहासिक दायित्वबोध का निर्वाह करना है।

संदर्भ

अवस्थी, एम.डी. (1968, संपादक). *बागी की बेटी*. वाराणसी : चौधरी एंड संस. पृष्ठ-59

आनंद, आर. (1996, संपादक). *प्रेमचंद रचनावली : खंड -11*, दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि. पृष्ठ-24

क्रांत, एम.वी. (2006). *स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास-भाग-1*. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन. पृष्ठ-176

गोयनका, के.के. (2013, संपादक). *प्रेमचंद*. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृष्ठ-68

चौहान, सी.एस. एवं मुरली, एम.पी. (2007, संपादक). *1857, इतिहास, कला, साहित्य*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-207

परती, आर. के. (1991, संपादक). *धरती की पुकार*. नई दिल्ली : राष्ट्रीय अभिलेखागार संग्रहालय. पृष्ठ-9

प्रेमचंद. (2012). *अनुभव-प्रेमचंद की जब्तशुदा कहानियाँ*. नई दिल्ली : हिंद पॉकेट बुक्स. पृष्ठ-81

प्रेमचंद. (2012). *समरयात्रा-प्रेमचंद की जब्तशुदा कहानियां*. नई दिल्ली : हिंद पॉकेट बुक्स. पृष्ठ-156

बालिन, वी. (1993). *कहानीकार प्रेमचंद*. दिल्ली : अप्रतिम प्रकाशन. पृष्ठ-42

मिश्र, एस. (2012, संपादक). *कहानीकार प्रेमचंद : रचना दृष्टि और रचना शिल्प*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ-20

मेहरोत्रा, एन.सी. (1997, संपादक). *वीर सावरकर : व्यक्ति एवं विचार*. नई दिल्ली : आत्माराम एंड संस. पृष्ठ-14

लाल, सी. (2012). *क्रांतिवीर भगतसिंह : अभ्युदय और भविष्य*. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ-9-10

सिंह, ए. (2006). *भारत का मुक्ति संग्राम*. दिल्ली : मैकमिलन इंडिया लिमिटेड. पृष्ठ-72

शर्मा, आर. (2003). *स्वाधीनता संग्राम, बदलते परिप्रेक्ष्य*. दिल्ली विश्वविद्यालय : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय. पृष्ठ-126

शास्त्री, सी. (2002, संपादक). *चाँद*. दिल्ली : सुधा आफसेट प्रेस. पृष्ठ-2

हरिश्चंद्र, बी. (2013). *भारत दुर्दशा*. दिल्ली : इंडियन पब्लिशिंग हाउस. पृष्ठ-55-56

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 102-105, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अर्द्धसत्य आख्यान : एक 'प्रोक्ति-विश्लेषण'

डॉ. जयप्रकाश सिंह[1]

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एक बहुआयामी परिघटना है। यह आर्थिक और राजनीतिक शोषण का प्रतिकार तो था ही, सांस्कृतिक सातत्य को बनाए रखने का अधिष्ठान भी था, परंतु यह समग्रता स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित आख्यानों में दिखती नहीं। मीडिया और अकादमिक जगत् ने पिछले सात दशकों में स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित कुछ एकांगी आख्यानों को प्रमुखता से आगे बढ़ाया है। इसके कारण, स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के संदर्भ में बनी समझ सीमित हो गई है। प्रारंभ में मीडिया ने इन एकांगी आख्यानों को आगे बढ़ाया, लेकिन बाद में वह खुद इन आख्यानों का शिकार हो गया। स्वतंत्रता के बाद इन सीमित आख्यानों के जरिये ही भारतीय मीडिया राजनीतिक और बौद्धिक गतिविधियों को वैधता प्रदान करता रहा। भारतीय मीडिया स्वतंत्रता संग्राम के आख्यानों के दबाव से बाहर आकर राजनीतिक और बौद्धिक गतिविधियों को समग्र भारतीय परिप्रेक्ष्य में आकलन कर सके, इसके लिए स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित एकांगी, सीमित और अर्द्धसत्य आख्यानों और उनकी सीमाओं की पहचान आवश्यक हो जाती है। अहिंसा और सत्याग्रह का प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर आसानी से महसूस किया जा सकता है, लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि संपूर्ण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अहिंसात्मक पथ पर एक-रेखीय ढंग से संचालित हुआ। समय-समय पर युवाओं द्वारा संचालित हिंसात्मक अभियान और सैन्य अभियानों का भी स्वतंत्रता आंदोलन पर प्रभाव अमिट है। इसी तरह, सार्वजनिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सार्वजनिक विमर्श में नए मूल्यों और शब्दावली का विकास स्वतंत्रता आंदोलन की समयावधि में हुआ। एक सीमित अंश में ऐसा हुआ भी, लेकिन यह मानना कि सभी सार्वजनिक मूल्य स्वतंत्रता-आंदोलन की समयावधि में ही गढ़े गए, एक भ्रम ही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विस्मृत हो चुके सार्वजनिक-मूल्यों को अभिव्यक्ति मिलती है। सत्य एवं अहिंसा का उपकरण हो या रामराज्य का लक्ष्य, यह भारत के सार्वजनिक विमर्श में नवीन तो नहीं कहे जा सकते। कुछ विशेषज्ञ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव का कारण मानते हैं, परंतु इस तथ्य की तरफ संकेत करने वाले भी पर्याप्त तथ्य उपलब्ध हैं कि पहले से ही उपस्थित भारतीय राष्ट्रवाद की भावना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में अभिव्यक्त हुई। अँग्रेजों द्वारा अपनाई जाने वाली 'फूट डालो राज करो' की नीति को केवल हिंदू-मुसलमान के संदर्भ में समझने की कोशिश की गई, जबकि सत्य यह है कि इस नीति का उपयोग हिंदुओं के आंतरिक विभाजन के लिए अधिक किया गया था। जाति-व्यवस्था की कृत्रिम और कठोर व्याख्याओं को 'फूट-डालो, राज करो' की नीति के प्ररिप्रेक्ष्य में देखने के पर्याप्त कारण हैं। दुर्भाग्य से, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास को एकपक्षीय दृष्टि से परिभाषित करने का चलन प्रारंभ हुआ। वैचारिक पूर्वाग्रह और अकादमिक-संचारीय आलस्य के कारण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित आख्यान धीरे-धीरे भारत के अकादमिक क्षेत्र और जनमानस में स्थापित हो गए। वर्तमान में जब संपूर्ण भारतवर्ष आजादी का अमृत-महोत्सव मना रहा है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित अर्द्धसत्य-आख्यानों की पहचान की जाए। इससे स्वतंत्रता के वास्तविक और प्रेरक कारकों की पहचान हो सकेगी। वास्तविक राष्ट्रीय प्रेरणाओं की पहचान से ही राष्ट्र को सुरक्षा, समृद्धि और धर्म-संस्कृति के सातत्य का वास्तविक अमृत प्राप्त हो सकेगा और यह स्वतंत्रता के योद्धाओं को सच्ची श्रद्धांजलि भी होगी। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित आख्यानों में व्याप्त अर्द्धसत्यों की पहचान और उसके कारणों के रेखांकन की कोशिश है। अर्द्धसत्य आख्यानों का विश्लेषण इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि आख्यानों का महत्त्व केवल अकादमिक नहीं होता, इनके माध्यम से सत्ता-संरचना को वैधता देने का प्रयास भी किया जाता है। वर्तमान समय में जब भारत अपने स्व के अनुरूप तंत्र को खोजने का प्रयास कर रहा है, तब अर्द्धसत्य-आख्यानों के विश्लेषण का कार्य और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, अर्द्धसत्य आख्यान, संचार, निर्माणाधीन राष्ट्र, फूट डालो, राज करो, अहिंसात्मक आंदोलन

प्रस्तावना

"Who controls the past controls the future. Who controls the present controls the past"-George Orwell, in his famous Science Fiction '1984'

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रकृति और रणनीति अन्य देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों से पृथक् रही है। अहिंसा और सत्याग्रह, स्वदेशी और स्वावलम्बन केंद्रित प्रतिकार की रणनीति, पत्रकारिता का औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध व्यापक उपयोग, सुदूरस्थ सामान्य नागरिकों की सहभागिता, स्वतंत्रता आंदोलन को सभ्यतागत संघर्ष के रूप में परिभाषित करने के प्रयास, स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश का विभाजन जैसे कारक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को विशिष्ट बनाते हैं। दुर्भाग्य से, इन विशिष्टताओं को समावेशित करते हुए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक समग्र और संतुलित आख्यान बनाने के बजाय इसे एक-रेखीय और एक-पक्षीय ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की गई। ये परिभाषाएँ अब भी प्रचलन में हैं और भारतीय अतीत तथा भविष्य को प्रभावित कर रही हैं। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित आख्यान में अर्द्धसत्य की व्याप्ति भारत को औपनिवेशिक दृष्टि से परिभाषित करने की परिघटना से जुड़ी हुई है। स्वतंत्रता आंदोलन के कई आयामों पर सायास विमर्श नहीं किया गया, इस कारण कई मिथकों का जन्म हुआ (गुप्ता, 2020)। इसका संबंध अपनी सुविधा के

[1]सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : jpsh.pol@gmail.com

अनुसार शक्ति-संरचना को बनाए रखने से था, क्योंकि आख्यानों का संबंध ज्ञान-संरचना और शक्ति संरचना दोनों से है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को पूर्णतः अहिंसात्मक मानने का अर्द्धसत्य हो या 'फूट-डालो राजनीति करो' की नीति का उपयोग केवल हिंदू-मुस्लिम संदर्भो में किया जाना हो, इसका संबंध तथ्यात्मक-ज्ञानात्मक अन्वेषण की सीमा से ही जुड़ा हुआ नहीं है। इसका उद्देश्य सत्ता व्यवस्था और शक्ति-संरचना के पोषण से भी है। सत्ताओं ने स्वयं को वैधता प्रदान करने के लिए इस तरह के अर्द्धसत्य आख्यानों का पोषण किया। अब नए तथ्य इन आख्यानों की सीमाओं की तरफ संकेत कर रहे हैं, इसलिए इन आख्यानों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

शोध-प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में प्रोक्ति-विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है। इस पद्धति में पहले से स्थापित आख्यानों को नए तथ्यों के आलोक में विश्लेषण करने की कोशिश की जाती है और इस तथ्य की पड़ताल करने की कोशिश की जाती है कि प्रचलित आख्यानों ने किस तरह की सत्ता और सांस्कृतिक-संरचना को पोषित किया।

अहिंसात्मक आंदोलन

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के बारे में सर्वाधिक प्रचलित अवधारणा यह है कि रणनीति और प्रकृति से यह अहिंसात्मक था। संभवतः महात्मा गांधी द्वारा संचालित तीन प्रमुख आंदोलनों असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन के कारण यह धारणा बनी। महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के ध्येय वाक्य तथा सत्याग्रह और स्वदेशी जैसे कार्यक्रमों के कारण संदेश गया कि पूरा का पूरा स्वतंत्रता आंदोलन अहिंसात्मक है। निश्चित रूप से गांधीनीत अहिंसात्मक आंदोलनों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध धरातलीय प्रतिरोध को जन्म दिया और इससे स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायता मिली, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति में सबसे निर्णायक तत्त्व दीर्घ काल तक चला द्वितीय विश्वयुद्ध था, जिसके कारण यूरोप और एशिया में भारी तबाही मची और विशेषकर साम्राज्यवादी ताकतों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। मित्र और धुरी राष्ट्रों के बीच चले इस युद्ध में 8 करोड़ लोगों की जान गई, जो तत्कालीन विश्व जनसंख्या का 4 प्रतिशत था (चेलानी, 2019)।

इसके अतिरिक्त सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज की भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। राजनीतिक कारणों से भले ही स्वतंत्रता आंदोलन में सुभाषचंद्र बोस की भूमिका को रेखांकित नहीं किया गया, लेकिन उपलब्ध साक्ष्य और तथ्य स्वतंत्रता आंदोलन में उनके अमिट प्रभाव को स्वीकृति प्रदान करते हैं। सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज भले ही सैन्य रूप से ब्रिटिश औपनिवेशिक सेना, जिसमें बड़ी संख्या में भारतीय थे, के लिए चुनौती नहीं बन सकी, लेकिन आजाद हिंद फौज के कैदियों पर मुकदमे चलाए जाने के विरोध में हुए सैन्य विद्रोह ने ब्रिटेन के अपने शासन को बनाए रखने के विश्वास को पूरी तरह से झकझोर कर रख दिया, और उन्होंने जल्दी में भारत छोड़ने का निर्णय लिया (चेलानी, 2019)।

डॉ. भीमराव आंबेडकर तो बहुत स्पष्टता के साथ यह स्वीकार करते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति में सर्वाधिक योगदान सुभाषचंद्र बोस और आजाद हिंद फौज का रहा है। 'बीबीसी' को फरवरी 1955 में दिए गए एक साक्षात्कार में डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि उनकी दृष्टि में दो कारणों से ब्रिटेन की लेबर पार्टी को भारत छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। वे साक्षात्कार में कहते हैं—"सुभाषचंद्र बोस द्वारा खड़ी की गई आजाद हिंद फौज स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रमुख कारण है।" 1946 में सैन्य विद्रोह की तरफ संकेत करते हुए वह कहते हैं कि ब्रिटिश इस देश पर इस दृढ विश्वास के साथ शासन कर रहे थे कि इस देश में कुछ भी हो जाए, राजनेता कुछ भी कर लें, लेकिन वह सैनिकों की निष्ठा को नहीं बदल सकते। यही वह विश्वास था, जिसके सहारे वह अपना प्रशासन चला रहे थे, यह विश्वास पूरी तरह बिखर गया। उन्होंने पाया कि सैनिक एक गुट बनाने के बहकावे में आ सकते हैं, वह एक ऐसी बटालियन बना सकते हैं जो अँग्रेजों को खदेड़ने के लिए काम कर सकती है (धर, 2018)।

आजाद हिंद फौज की तरह ही क्रांतिकारियों की भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। विशेषकर 1923 में स्थापित हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन ने बहुत व्यवस्थित और रणनीतिक तरीके से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने की कोशिश की। 1928 में इस संगठन का नाम बदलकर हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन कर दिया गया। इस संगठन के विचार और रणनीति को 'द रिवोल्यूशनरी' नामक दस्तावेज के जरिये समझा जा सकता है। चार पृष्ठ के इस दस्तावेज को राम प्रसाद बिस्मिल ने एक कूटनाम से लिखा था। इसमें भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस से इतर एक हिंसात्मक तरीके से स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने का खाका खींचा गया। चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में इस संगठन ने भारतीय युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया। इसी संगठन से संबंधित बटुकेश्वर दत्त और भगत सिंह के बलिदान ने भारतीय युवाओं को विदेशी शासन के विरुद्ध नए सिरे से प्रेरित किया।

दुर्भाग्यवश भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से सैन्य और क्रांतिकारी प्रयासों को उनके महत्त्व के अनुपात में बहुत सीमित स्थान दिया गया। कहीं-कहीं स्वतंत्रता प्राप्ति की इन दोनों धाराओं को नकारात्मक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई। आनुपातिक संतुलन के इस अभाव के कारण भारतीय स्वतंतत्रा का इतिहास तो विकृत हुआ ही, स्वतंत्रता के बाद भारतीय विदेश नीति और रक्षा-नीति भी बुरी तरह से प्रभावित हुई। यदि 1947 के बाद भारत सक्रियता और दूरगामी दृष्टि के साथ अपने सीमांत क्षेत्रों के बारे में विचार करता तो कश्मीर और हिमालयी सीमा की समस्याओं से बचा जा सकता था। अक्तूबर 1949 तक चीन गंभीर अस्थिरता का शिकार था, ऐसे में भारत के पास हिमालय सीमाओं को नियंत्रित करने का पर्याप्त समय और स्थान था। लेकिन इस हानिकारक मिथक से जुड़े होने के कारण भारत का एक शांति प्रिय देश के रूप में उभार हुआ, जो यह मानता था कि शांति की तलाश से शांति मिल सकती है। देश ने इस बात को दरकिनार किया कि क्षमताओं के विकास से ही शांति की रक्षा हो सकती है (चेलानी, 2019)। इसके कारण स्वतंत्र भारत में रणनीतिक-संस्कृति का विकास नहीं हो सका (तन्हम, 1992)।

निर्माणाधीन राष्ट्र (अ नेशन इन मेकिंग)

औपनिवेशिक शासन काल में भारतीय राष्ट्र को दो तरीके से परिभाषित करने की कोशिश की गई। देश-कालबोध की दो परस्पर विरोधी

मानसिकताएँ भारतीय राष्ट्र को अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश कर रही थीं। एक के अनुसार भारत की कोई मौलिक पहचान नहीं रही है। इस देश की अपनी कोई विशिष्टता नहीं रही है। इसकी खूबियों और खामियों को बाहरी आक्रांताओं ने गढ़ा है। सबसे पहले इस मानसिकता को व्यवस्थित तरीके से अभिव्यक्ति सुरेन्द्र नाथ बनर्जी की किताब 'अ नेशन इन मेकिंग' में मिली। उनकी पुस्तक का यह शीर्षक इस तथ्य की तरफ संकेत करता है कि औपनिवेशिक शासन काल में भारत एक राष्ट्र के रूप में पहली बार अस्तित्व में आया। इससे पहले यह भू-भाग एक बिखरा हुआ राष्ट्र था। इसी मानसिकता और देश-कालबोध की अभिव्यक्त करते फिराक गोरखपुरी ने कभी कहा था—

सर-जमीन-ए-हिंद पर अक्वाम-ए-आलम के फिराक
काफिले बसते गए, हिंदोस्ताँ बसता गया।

बाद में कुछ अन्य लोगों ने इस मानसिकता को गंगा-जमुनी तहजीब के रूप में परिभाषित कर दिया। यह मानसिकता एक राष्ट्र के रूप में भारत के अस्तित्व को हालिया घटनाक्रम मानती है और कुछ के अनुसार तो राष्ट्र बनने की प्रक्रिया अभी चल ही रही है। दूसरी मानसिकता के अनुसार भारत की प्रारंभ से ही एक मौलिक पहचान और संस्कृति रही है। सांस्कृतिक आधार पर भारत हमेशा से ही एक राष्ट्र रहा है। इस मानसिकता का देश कालबोध पुण्यभूमि की संकल्पना और चतुर्युगी कालगणना से निकला है। यह मानसिकता भारत की मूल और मौलिक संस्कृति को हिंदुत्व के नाम से परिभाषित करती है और इसके अस्तित्व को सनातन मानती है। अरब-तुर्क-मुगल आक्रमणकारियों से भारतीयों के निरंतर संघर्ष के पीछे सनातन धार्मिक पहचान और प्रेरणा थी। इसी तरह, औपनिवेशिक शासन का पहली बार प्रबल विरोध करने वाले सन्न्यासी आंदोलन के पीछे भी सनातन धार्मिक पहचान और प्रेरणाएँ थी। वंदेमातरम की अभिव्यक्ति हो या अन्य विषय, सभी राष्ट्रीय और सभ्यतागत मूल्यों से प्रेरित थे। यह सभी संघर्ष इस तथ्य से प्रेरित हैं कि एक राष्ट्र के रूप में भारत अनादि काल से अस्तित्व में रहा है। भारत एक सनातन राष्ट्र है (मुरारी, 2015)।

दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भारत को अद्वितीय विशिष्टताओं वाला प्राचीन सांस्कृतिक राष्ट्र मानने के बजाय गंगा-जमुनी तहजीब वाले मिश्रित राष्ट्र के रूप में परिभाषित किया गया और इसे सांस्थानिक स्तर पर न केवल स्वीकार किया गया, बल्कि उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया गया। इसके कारण भारत में पंथनिरपेक्षता की एक विकृत अवधारणा ने जन्म लिया। जिसमें बहुसंख्यक समाज के हिस्से में केवल दायित्व आए और अल्पसंख्यक समाज के हिस्से में केवल अधिकार। अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार देने और उसे वैधता देने की प्रवृत्ति के कारण यहाँ के अल्पसंख्यकों के समाज में सम्मिलित होने में अवरोध पैदा हुए और राष्ट्रीय एकीकरण की गति मंद हुई और राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष अब भी गंभीर चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

ओशो रजनीश भारत के सनातन अस्तित्व को दार्शनिक धरातल पर परिभाषित करते हुए कहते हैं—"भारत एक सनातन यात्रा है, एक अमृतपथ है, जो अनंत से अनंत तक फैला हुआ है। इसलिए हमने कभी भारत का इतिहास नहीं लिखा। इतिहास भी कोई लिखने की बात है। साधारण-सी दो कौड़ी की रोजमर्रा की घटनाओं का नाम इतिहास है। जो आज तूफान की तरह उठती हैं और कल जिनका कोई निशान भी नहीं रह जाता। इतिहास तो धूल का बवंडर है। भारत ने इतिहास नहीं लिखा। भारत ने तो केवल उस चिरंतन की ही साधना की है, वैसे ही जैसे चकोर चांद को एक-टक बिना पलक झपके देखता रहता है। मैं भी उस अनंत यात्रा का छोटा-मोटा यात्री हूँ। चाहता था कि जो भूल गए हैं, उन्हें याद दिला दूँ, जो सो गए हैं उन्हें जगा दूँ और भारत अपनी आंतरिक गरिमा और गौरव को, अपनी हिमाच्छादित ऊँचाईयों को पुनः पा ले, क्योंकि भारत के भाग्य के साथ पूरी मनुष्यता का भाग्य जुड़ा हुआ है" (ओशो, 2011)। औपनिवेशिक शासन के पूर्व एक राष्ट्र के रूप में भारत के अस्तित्व को नकारना तथ्यात्मक रूप से सही नहीं माना जा सकता है। एक पुण्यभूमि और तीर्थ क्षेत्र के रूप में भारत का अस्तित्व सदियों से बना हुआ है (इक, 2013)। एक राष्ट्र के रूप में भारत के अस्तित्व को नकारने के प्रयासों से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रेरणाओं को समझने में निरंतर गलतियाँ हो रही हैं। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को समझने के लिए एक प्राचीन राष्ट्र के रूप में भारत की स्वीकृति आवश्यक हो जाती है।

फूट-डालो राज-करो

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की परिणति भारत की स्वतंत्र और भारत-विभाजन के रूप में हुई। भारत-विभाजन के लिए अँग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति को उत्तरदायी बताया जाता है। यह सही है कि अँग्रेजों ने भारत में विभाजन और शासन की नीति का उपयोग किया, परंतु प्रचलित धारणा के विपरीत इस नीति का उपयोग हिंदू-मुस्लिम संदर्भों से अधिक हिंदू-हिंदू विभाजन के संदर्भ में अधिक किया गया। विश्व दृष्टि और जीवन दृष्टि में तीखे मतभेद होने के कारण मुस्लिम आक्रांताओं के पहले आक्रमण के समय से ही हिंदू और मुस्लिमों में तीखे मतभेद रहे। पांथिक संदर्भों में सभी को समान मानने के भारतीय स्वभाव के कारण मध्यमार्ग की कुछ धाराएँ भी निकलीं, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय और मुस्लिम मूल्यों के बीच गहरे अंतर होने के कारण हिंदू-मुस्लिमों के बीच सदैव ही सांप्रदायिक संघर्ष की स्थिति बनी रही। हिंदू और मुस्लिम के लिए पृथक् निर्वाचन जैसी कई नीतियां थीं, जिसके कारण हिंदू और मुस्लिम के बीच हिंसा बढ़ी, लेकिन भारत की सांप्रदायिक समस्या को समझने के लिए हमें एक गहरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता होगी और वह यूरोपीय प्रभाव से प्रारंभ नहीं होता (वर्गीज, 2013)।

ब्रिटिश शासकों ने केवल हिंदू और मुस्लिम लोगों के बीच विभाजन ही नहीं किया, बल्कि जाति-व्यवस्था को भी अंतिम स्वरूप दिया। "हमारे यहाँ जाति थी, लेकिन जाति-व्यवस्था नहीं थी। ब्रिटिश लोगों ने हमें इस तरह से हमारे देश और हमारे लोगों को संहिताबद्ध, वर्गीकृत और समूहीकृत किया कि तब से हम उनकी दृष्टि से ही स्वयं को परिभाषित करने लगे" (थरूर, 2017)। ब्रिटिश काल में एक वृहद्, जटिल और क्षेत्रीय विविधता वाली आस्था और सामाजिक पहचान की व्यवस्था को इस स्तर तक सरलीकृत कर दिया गया कि जिसका विश्व में अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता। एकदम नवीन श्रेणियां और पदानुक्रम सृजित किए गए, असंगत अथवा असमान अंशों को एक-दूसरे के साथ मिला दिया गया, नई सीमाएँ गढ़ी गईं और लचीली सीमाओं को कठोर बनाया गया। इसके परिणामस्वरूप अगली शताब्दी के प्रथम चतुर्थांस में वर्गीकरण की यह व्यवस्था न केवल एकदम कठोर बन गई, बल्कि नई सृजित श्रेणियों को वास्तविक अधिकारों

से भी संबद्ध कर दिया गया। पंथ आधारित निर्वाचन और जाति-आधारित आरक्षण ने स्वतंत्र भारत में अनियत श्रेणियों को कठोर बना दिया (चक्रवर्ती, 2019)।

यह तथ्य हाल ही में प्रकाश में आया है कि आर्य-आक्रमण सिद्धांत भारत पर अपने आक्रमण को वैध साबित करने के लिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और विद्धानों की एक मनगढंत कहानी है। अब ऐसे ही तथ्य जाति-व्यवस्था के संदर्भ में भी उभरकर सामने आ रहे हैं। भेदभाव का आविष्कार करने और विषमांगी तथा गैर-पदानुक्रम वाले भारतीय समाज को यूरोप के सामंतवादी-बुर्जुआ फ्रेमवर्क में देखने के पीछे ब्रिटिश शासकों के अपने निहित स्वार्थ थे (वैद्यनाथ, 2008)। जाति-व्यवस्था का दृढ़ीकरण और उसकी सांस्थानिक स्वीकृति ने भारतीय समाज-व्यवस्था को सदैव के लिए बदल दिया। इसके कारण भारतीय समाज में जाति एक कठोर व्यवस्था के रूप में स्थापित हो गई और आंतरिक संघर्षों का स्थायी कारण बन गई।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-आलेख में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अर्द्धसत्य पर आधारित तीन आख्यानों का प्रोक्ति-विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि अहिंसात्मक आंदोलन, निर्माणाधीन राष्ट्र और फूट डालो, राज करो की संकल्पनाएँ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के संपूर्ण सत्य को अभिव्यक्त नहीं करतीं। ये स्थापित और प्रचलित संकल्पनाएँ न केवल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास को एकांगी और विकृत बनाती हैं, बल्कि स्वाधीन भारत को नीतिगत स्तर पर बुरी तरह प्रभावित कर रही हैं। स्वाधीनता के बाद यदि भारत में रणनीतिक संस्कृति का विकास नहीं हो सका और रक्षा अधो-संरचना तथा तकनीक के प्रति उदासीन दृष्टिकोण अपनाया गया तो इसकी जड़ें भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को पूरी तरह अहिंसात्मक मानने की संकल्पना मे खोजी जा सकती हैं। इसी तरह यदि तुष्टीकरण की नीति के कारण राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया अब भी बाधित हो रही है तो इसके कारण निर्माणाधीन राष्ट्र की संकल्पना में ढूँढ़े जा सकते हैं। जाति-व्यवस्था की कठोर व्याख्या के कारण न केवल भारतीय समाज से समरसता की भावना विलुप्त हो गई है, बल्कि एक ऐसी 'फॉल्ट लाइन' भी तैयार हो गई है, जिसका उपयोग प्रतिस्पर्धी राष्ट्र भारत में अराजकता और अव्यवस्था फैलाने के लिए कर रहे हैं। इस कारण, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अर्द्धसत्य आख्यानों का नए तथ्यों के आलोक को पुनः विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अर्द्धसत्य आख्यान भारतीय अतीत और भविष्य पर ग्रहण की तरह हैं। इन आख्यानों से मुक्त होकर ही भारत की वास्तविक पहचान से परिचित हुआ जा सकता है और भविष्य के लिए आवश्यक प्रेरणाएँ भी अर्जित की सकती हैं। भारतीय मीडिया स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन से संबंधित इन अर्द्धसत्य आख्यानों के गहरे दबाव में कार्य-करती रही है और सत्ता-संरचनाओं की वैधता का आकलन इन आख्यानों के आधार पर करती रही है। अब जब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि इन आख्यानों की अपनी सीमाएँ हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय मीडिया, स्वतंत्रता आंदोलन को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखे और उसके आधार पर सत्ता-संरचना की वैधता के आकलन के लिए समग्र उपकरणों का विकास करे।

संदर्भ

इक, डी. एल. (2013). *इण्डिया अ सैक्रेड जियोग्राफी*. न्यूयॉर्क : हारमोनी पब्लिकेशन.

गुप्ता, ए. के. (2020). द *मिथ एन्ड रियलिटी : द स्ट्रगल फॉर फ्रीडम इन इंडिया* 1945-1947. नई दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स.

चक्रवर्ती, एस. (19 जून, 2019). हाउ द ब्रिटिश रिशेप्ड इण्डियाज कास्ट सिस्टम. *बीबीसी*. https://www.bbc.com/news/world-asia-india-48619734 से पुन:प्राप्त.

चेलानी, बी. (फरवरी 03, 2029). द नॉन वाइलेंस मिथ इण्डियाज फाउंडिंग स्टोरी बस्टोस् अपॉन इट अ क्वक्सोटिक नेशनल फिलॉसफी एण्ड एनड्युरिंग कॉस्टस्. *टाइम्स ऑफ इण्डिया*. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/toi-edit-page/the-non-violence-myth-indias-founding-story-bestows-upon-it-a-quixotic-national-philosophy-and-enduring-costs/ से पुन:प्राप्त.

तन्हाम, जे. के. (2012). इण्डियन स्ट्रेटेजिक थॉट-एन इन्टरप्रिटेटिव एस्से. *आरएएनडी कॉरपोरेशन*. https://www.rand.orgpubs/reports/R4207.html से पुन:प्राप्त.

थरूर, एस. (5 जनवरी, 2017). ब्रिटिश परफेक्ट्ड कास्ट सिस्टम इन इण्डिया. *टाइम्स ऑफ इंडिया*. https://timesofindia.indiatimes.com/city/ahmedabad/british-perfected-caste-system-in-india/articleshow/56341540.cms से पुन:प्राप्त.

धर, ए. (अक्तूबर, 2021), बोस, नॉट गांधी, एन्ड्ड ब्रिटिश रूल इन इंडिया: आंबेडकर. *स्वराज्य*. https://swarajyamag.com/politics/bose-not-gandhi-ended-british-rule-in-india-ambedkar से पुन:प्राप्त.

मुरारी, एम. (2015). *भारत एक सनातन राष्ट्र*. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.

रजनीश, ओ. (2011). *भारत एक सनातन यात्रा*. नई दिल्ली : फ्यूजनबुक्स, पृष्ठ.01.

वर्गीज, ए. (अगस्त 13, 2018). ब्रिटिश रूल एंड हिंदू-मुस्लिम रायट्स इन इंडिया: अ रिअसेसमेन्ट. *बेरक्ले सेंटर*. https:berkleycenter.georgetown.edu/responses/british-rule-and-hindu-muslim-riots-in-india-a-reassessment से 5 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

वैद्यनाथ, आर. (26 फरवरी, 2008). कास्ट डिस्क्रिमिनेशन इज ब्रिटिश इंटरवेंशन. बिगर देन स्टीम इंजन. *डीएनए*. https://www.dnaindia.com/business/column-caste-discrimination-a-british-invention-bigger-than-steam-engine-1152940 से 6 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 106-111, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता और आजादी की लड़ाई

अमित राजपूत[1]

सारांश

गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता का दौर आजादी की लड़ाई का दौर ही था। ऐसे में, आजादी की लड़ाई से उनकी पत्रकारिता सीधे तौर पर प्रभावित थी और उनकी पत्रकारिता से आजादी की लड़ाई। इसके लिए व्यवहारगत रूप से गणेश शंकर विद्यार्थी को पत्रकारिता के साथ एक्टिविज्म को भी शामिल करना पड़ा। गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा चंद्रशेखर आजाद और सरदार भगत सिंह जैसे आजादी की लड़ाई के प्रमुख नायकों को अपने अखबार 'प्रताप' का संवाददाता बनाना इस बात को स्पष्ट प्रमाणित करता है कि गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता और आजादी की लड़ाई का परस्पर संबंध है। प्रस्तुत पत्र गणेश शंकर विद्यार्थी के पत्रकारिता में रुझान, आगमन और इसकी शुरुआत की सूचना देता है और उनका विश्लेषण प्रस्तुत करता है। गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता का सबसे रेखांकित हिस्सा उनके समाचार-पत्र 'प्रताप' के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए इसकी शुरुआत और विशिष्ट सरोकारों का जिक्र भी इस पत्र में किया गया है। चूँकि गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता का दौर भारत में अँग्रेजों के उपनिवेश का दौर था और वह भारत को अँग्रेजी दासता से मुक्त कराने की लड़ाई का दौर था, इसलिए आजादी की लड़ाई में गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता की भूमिका का वर्णन किया गया है, जिसमें राष्ट्रीयता, किसानों के सरोकार और सबसे प्रमुख आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता की एक हथियार के रूप में भूमिका प्रमुख है।

संकेत शब्द : एक्टिविज्म, आजादी की लड़ाई, प्रताप, क्षेत्रीयता, राष्ट्रीयता, किसान आंदोलन

प्रस्तावना

आजादी की लड़ाई के दौर में बहुतायत अखबार अँग्रेजों के खिलाफ कुछ भी लिखने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। उन्हें ऐसा करने पर अँग्रेजों द्वारा दिए जाने वाले कठोर दंड और प्रतिबंधों का भय था। किंतु इसके बरक्स गणेश शंकर विद्यार्थी ने आजादी की लड़ाई के दौर में अपनी निर्भीक पत्रकारिता का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया और तत्कालीन पाठक-वर्ग और समाज में अपनी तथा अपने समाचार-पत्र 'प्रताप' की विश्वसनीयता को अपेक्षाकृत मजबूत किया। विद्यार्थी जी के प्रति समाज के इस अमिट विश्वास और अपेक्षाओं ने उन्हें और उनके अखबार दोनों को ऐसा ही करते रहने के लिए न केवल बल प्रदान किया, अपितु उत्प्रेरित भी किया। इससे 'प्रताप' समेत गणेश शंकर विद्यार्थी ने आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता का देश के सामने एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। एक पत्रकार को 'एक्टिविस्ट' नहीं होना चाहिए या पत्रकार को 'एक्टिविस्ट' की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए, ऐसी बातें अक्सर सुनने को मिलती हैं। पत्रकारिता करते हुए कोई मोड़ ऐसा जरूर आता है जब संपादक या कोई शुभचिंतक पत्रकार को ये पाठ पढ़ा देता है। यकीनन यह बात सच है कि पत्रकारिता में तटस्थता को कायम रखने के लिए एक पत्रकार को 'जर्नलिज्म' और 'एक्टिविज्म' के बीच थोड़ा तो भेद रखना ही चाहिए। हालाँकि इस पर बहस की तमाम गुंजाइश है, क्योंकि पत्रकारों का इस बिंदु पर मतैक्य नहीं है। यद्यपि 'एक्टिविज्म' राजनीतिक अथवा सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए किए गए जोरदार समूह-प्रचार को कहते हैं (ऑक्सफोर्ड शब्दकोश), तथापि आधुनिक भारत के इतिहास में गणेश शंकर विद्यार्थी ऐसे पत्रकार हुए हैं, जिनकी पूरी पत्रकारिता ही 'एक्टिविज्म' से भरी रही। इसके अलावा अगर देखें तो आजादी से पूर्व की लगभग पूरी पत्रकारिता एक तरह से 'एक्टिविज्म' की रही है। इसमें गणेश शंकर विद्यार्थी को श्रेष्ठ माना गया, शायद इसीलिए इन्हें पत्रकार शिरोमणि और अंतर्वेद प्रवर जैसे उपनामों से संबोधित किया गया है। गणेश शंकर विद्यार्थी एक जिंदादिल शख्सियत के तौर पर जाने जाते हैं (राजपूत, 2019)। इसी का प्रभाव था कि इनकी पत्रकारिता भी जीवंत रही। गणेश जी बुद्धिजीवी थे। उनकी शख्सियत को पत्रकारिता के खाने में देखा जाए तो इसमें वे अपनी जबरदस्त मिसाल रखते हैं। गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता के साथ-साथ उनकी देशभक्ति और सेकुलर विचारधारा की आज भी कसम खाई जा सकती है। हिंदू-मुस्लिम एकता के जबरदस्त हामी तथा राष्ट्रवाद और देशभक्ति के आस्थावान अनुयायी गणेश जी ने पत्रकारिता को नए आयाम और नियमों से परिचित कराया। अखबारनवीसी का नाता अदब से जोड़ा। इन्हीं की बदौलत गुलामी से निजात दिलाने के लिए नौजवानों ने अपने अखबारों और पत्रिकाओं से क्रांति पैदा की (तिलक, 2013)।

क्रांतिकारियों के संरक्षक

भारत का राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ देश के जनगण की एक साझा लड़ाई थी। इस व्यापक संघर्ष में समाज के प्रत्येक वर्ग, समुदाय, धर्म और लिंग के लोग उपनिवेशवादी शोषण का मुखर विरोध करने के लिए आगे आए। आजादी के इस महासमर में अनेक दलों—काँग्रेस, सोशलिस्ट, क्रांतिकारी और इनसे संबद्ध संगठनों ने अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार योगदान दिया, जिसकी ऐतिहासिक परिणति 15 अगस्त, 1947 को स्वाधीनता के रूप में हुई (सिंह, 1990)। प्रकट रूप से राष्ट्रीय आंदोलन की दो सशक्त धाराएँ थीं—एक, काँग्रेस और दूसरी, क्रांतिकारी। राष्ट्रीय आंदोलन में शुरू से लेकर अंत तक क्रांतिकारी आंदोलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है (सिंह, 1990), जिसके गणेश शंकर विद्यार्थी प्रमुखतम लोगों में माने गए और इसमें उनके अखबार 'प्रताप' की

[1]शोधार्थी एवं पत्रकार. ईमेल : amitrajpoot.ar@gmail.com

महती भूमिका रही। अपनी पत्रकारिता के माध्यम से देश की स्वाधीनता में गणेश शंकर विद्यार्थी ने हिंसक और अहिंसक दोनों कोटि के सेनानियों को समान रूप से सक्रिय सहायता दी। गांधीवादी होते हुए भी क्रांतिकारियों के प्रति उनका बड़ा स्नेह था। वे इन्हें सबसे अधिक त्यागशील तथा तपस्वी राजनैतिक कार्यकर्ता समझते थे (चतुर्वेदी, शर्मा एवं वर्मा, 1960)। वे स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के सहायक रहे। इसमें उन्होंने जहाँ एक ओर महात्मा गांधी सरीखे शीर्ष के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का सहयोग किया तो वहीं दूसरी ओर हुतात्मा चंद्रशेखर आजाद और शहीद भगत सिंह 'प्रताप' में छद्म नाम से ढाई साल तक पत्रकारिता करते रहे। गणेश शंकर विद्यार्थी उनके संपादक थे। 'प्रताप' बटुकेश्वर दत्त और राजकुमार सिंह का भी पनाहगार था। काकोरी षड्यंत्र कांड के मुकदमे की पैरवी में गणेश जी ने पूर्ण सहयोग किया। यह समझने में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए कि इसके अलावा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी सरदार भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, चंद्रशेखर आजाद और लाहिड़ी जी जैसे क्रांतिवीर देशभक्त युवकों को 'प्रताप' के दम पर क्रांति के कार्यों में मदद भी देते थे (राजपूत, 2019)।

महात्मा गांधी जब पहली बार कानपुर आए तो वे गणेशजी जी के 'प्रताप' प्रेस में रुके थे। बीस वर्ष कालापानी की सजा झेलने वाले क्रांतिकारी शिव वर्मा ने शहीद राम प्रसाद बिस्मिल की जेल से 'आत्मकथा' लाकर गुप्त रूप से गणेश जी को दी, जिसे उन्होंने बिस्मिल की शहादत के बाद प्रकाशित किया। दिलचस्प यह है कि ब्रिटिश सरकार उस दौरान इसके प्रकाशन से हैरान थी और अंत तक वह पता नहीं लगा सकी कि इसे किसने प्रकाशित किया (राजपूत, 2019)। इन घटनाओं से गणेश जी और उनके समाचार पत्र 'प्रताप' की महत्ता का पता चलता है। अतएव, गांधी से लेकर भगत सिंह सभी के सरोकारों में गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता हमें देखने को मलती है, जिसकी समरूप झलक आज के दौर में दिखना तो दूर उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह गणेश जी की पत्रकारिता की एक बानगी भर है, जबकि वास्तव में गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता के माध्यम से देशहित में किए गए उनके कार्यों की विविधताएँ इतनी हैं कि उनको लेखनी में अथवा बखान करके समेट पाना बड़ा मुश्किल है।

हिंदी खड़ी बोली के अभ्यासी

आज के दौर में हिंदी के जो अखबार खड़ी बोली में लिपिबद्ध कर प्रकाशित किए जा रहे हैं, उनसे समझ आता है कि यह भारत में गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों की ही बदौलत संभव हुआ है, जिन्होंने समाचार पत्रों में खड़ी बोली को अहमियत दी। हालाँकि जो अखबार आज हिंदी पत्रकारिता के नाम पर हिंदी खड़ी बोली में अनावश्यक ढंग से दूसरी भाषाओं को ठूँसकर भाषा की दुर्दशा में तुले हैं, उन्हें देखकर अफसोस भी होता है। गणेश शंकर विद्यार्थी ने हिंदी के विकास हेतु बहुत योगदान दिया है। वास्तव में वह हिंदी के विकास पथ के अद्भुत दूरद्रष्टा थे। सन् 1929 में गोरखपुर में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के 19वें अधिवेशन में गणेश जी ने जोर देकर कहा था कि हिंदी विश्व की भाषा बनेगी। आज हम यह साफ देख भी रहे हैं कि हिंदी बर्मिंघम पैलेस से लेकर ह्वाइट हाउस तक गर्व के साथ न सिर्फ विराजमान है, बल्कि इसे भरपूर स्नेह भी दिया जा रहा है।

गणेश जी का हिंदी खड़ी बोली से लगाव यों ही नहीं हुआ था। उनको सर्वप्रथम हिंदी लेखन के लिए प्रोत्साहित करने वाले 'भारत में अँग्रेजी राज' के लेखक कर्मवीर पंडित सुंदरलाल थे। पंडित जी ने ही उनका उपनाम 'विद्यार्थी' दिया था, जो सदैव के लिए गणेश जी के नाम के साथ संबद्ध हो गया (राजपूत, 2019)। पंडित सुंदरलाल ने गणेश जी को 'कर्मयोगी' में काम दिया और वहीं से उन्हें हिंदी के प्रति विशेष लगाव हुआ और खड़ी बोली की प्रेरणा मिली थी। इसके बाद जब गणेश जी का नाता हिंदी खड़ी बोली से हुआ तो उन्होंने उसका जमकर अभ्यास किया। जबकि आज के दौर में बिरले हिंदी पत्रकार ही मिलेंगे जो अपनी हिंदी पत्रकारिता के लिए बाकायदा हिंदी खड़ी बोली का अभ्यास भी करते हों। हालाँकि गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी खड़ी बोली के अभ्यास वाले हिंदी पत्रकार रहे हैं। पंडित सुंदरलाल जी ने लिखा है—"वह (कर्मयोगी) पत्र बहुत ही मार्के का और लोकप्रियता वाला था। जब वह पत्र निकलता था, गणेश शंकर विद्यार्थी, जो उन दिनों शायद विद्यार्थी ही थे, मेरे पास बहुत आया-जाया करते थे। हममें बड़ा प्रेम था। वह शुरू से ही होनहार थे। देशभक्ति की ज्वाला बड़े जोरों के साथ उनके हृदय में शुरू से ही धधकती थी। 'कर्मयोगी' के लिए उन्होंने बहुत कुछ लिखा भी है। मुझे इस चीज का गर्व के साथ स्मरण है कि स्वर्गीय गणेश जी ने हिंदी लिखना 'कर्मयोगी' के दफ्तर में बैठकर ही शुरू किया और सीखा। उनकी पत्रकारिता का वहीं से प्रारंभ होता है" (मिश्र, 1988)।

पत्रकारिता की दरबारी संस्कृति पर प्रहार

जब पत्रकार अपने पत्रकारिता के दायित्वों में खुद को शिथिल पाते हैं तो प्रायः लोग उसे दरबारी पत्रकारिता कह देते हैं। दीगर बात यह है कि सच में कुछ लोग दरबारी पत्रकारिता में लिप्त रहते हैं। दोनों ही मामलों में पहली बात संवेदनशील है जो समझनी चाहिए कि यदि पत्रकारिता जनता के सरोकारों से परे है या पत्रकार दफ्तर जाकर केवल की-बोर्ड ही पीटते रहते हैं अथवा पत्रकारिता के माध्यम से उनका ध्येय चापलूसी कर अधिक से अधिक धन ऐंठना है तो इसे भी दरबारी पत्रकारिता मान लिए जाने में कोई बुराई नहीं है, बल्कि यह उचित भी है। इसलिए पत्रकारिता के दायित्वों से विमुख होना ही दरबारी पत्रकारिता का द्योतक है। इस मामले में गणेश शंकर विद्यार्थी के एक लेख 'पत्रकारिता का दायित्व' की कुछ पंक्तियाँ हैं, जो आज के कथित पत्रकारों के रवैये और पत्रकारिता की दरबारी संस्कृति के लिए एकदम सटीक बैठ रहीं हैं—"संसार के अधिकांश समाचार पत्र पैसे कमाने, झूठ को सच और सच को झूठ करने में उतने ही लगे हुए हैं जितने कि संसार के बहुत से चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार पत्र धनी-मानी लोगों द्वारा संचालित होते हैं। हमें सच्चाई की भी लाज रखनी चाहिए। केवल अपनी मक्खन-रोटी के लिए दिन भर कई रंग बदलना ठीक नहीं है। इस देश में भी समाचार पत्रों का आधार धन हो रहा है और बड़ी वेदना के साथ कहना पड़ता है कि उनमें काम करने वाले बहुत से पत्रकार भी धन की अभ्यर्थना करते हैं। उनमें काम करने वाले पत्रकार केवल मशीन सदृश उसके पुर्जे बन जाएँगे" (राजपूत, 2019)।

गणेश शंकर विद्यार्थी : संक्षिप्त जीवन परिचय

26 अक्टूबर, 1890 को अपने ननिहाल इलाहाबाद के अतरसुइया मोहल्ले में जन्मे गणेश शंकर विद्यार्थी यों तो किसी खास मकसद के साथ

आगे नहीं बढ़ रहे थे, लेकिन जीवन जीने का होश औरों से अधिक था। इनकी चेतना का विकास इनकी माता गोमती देवी, जो धार्मिक विचारों वाली महिला थीं, के कारण अधिक हुआ था। शैशवावस्था तक शिशु गणेश की देखभाल इलाहाबाद के अतरसुइया में होती रही। इसके बाद इनके पिता बाबू जयनारायण गणेश शंकर के बड़े भाई शिवव्रत नारायण उर्फ शिव बाबा सहित उनको वापस अपने पैतृक गाँव जनपद फतेहपुर की खागा तहसील के कस्बा हथगाँव लेकर चले आए। यहीं पर बाबू जयनारायण के दोनों बेटों (शिव बाबा और गणेश) की प्रारंभिक शिक्षा होने लगी (मिश्र, 1988)। बाबू जयनारायण को बालक गणेश की बड़ी चिंता थी। वे आगे की प्रारंभिक शिक्षा के लिए उन्हें ग्वालियर लेकर चले गए और फिर बाकी की उनकी पढ़ाई ग्वालियर में ही हुई। सन् 1901 में जब गणेश जी 11 साल के थे, उनके पिताजी का स्थानांतरण मुंगावली से भेलसा हो गया। विद्यार्थी जी भी उनके साथ वहाँ पर कुछ दिन रहे। 1905 में विद्यार्थी जी ने अँग्रेजी विषय के साथ मिडिल पास किया। मिडिल में इन्होंने द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ी थी। मिडिल पास होने के बाद उनके पिताजी ने उनको उनके बड़े भाई शिवबाबा के पास, जो उन दिनों कानपुर में नौकरी करते थे, नौकरी के लिए भेज दिया। किंतु कानपुर में उनके बड़े भाई उन्हें पढ़ाना चाहते थे। अतः उनके लिए एंट्रेंस की किताबें खरीदकर पुनः पिताजी के पास एंट्रेंस परीक्षा की तैयारी के लिए भेज दिया (मिश्र, 1988)।

सन् 1903 में गणेश जी के पिताजी का तबादला भेलसा से फिर मुंगावली हो गया और गणेश जी वहीं रहकर परीक्षा की तैयारी करने लगे। उनकी परीक्षा का केंद्र कानपुर का क्राइस्ट चर्च कॉलेज था। सन् 1907 में वे द्वितीय श्रेणी में इंटर पास हो गए। एंट्रेंस पास करने के बाद सन् 1907 में विद्यार्थी जी कायस्थ पाठशाला कॉलेज, इलाहाबाद में भर्ती हो गए, किंतु वहाँ पर वे 7-8 महीने तक ही पढ़ पाए थे कि आर्थिक कठिनाइयों तथा गृहस्थी के झंझटों के कारण उन्हें पढ़ाई बीच में ही बंद करनी पड़ी। हालाँकि गणेश जी की आगे पढ़ने की बहुत इच्छा थी। वे किसी प्रकार भी पढ़ाई बंद नहीं करना चाहते थे, किंतु परिस्थितियों के सामने उनको झुकना ही पड़ा और नौकरी करनी पड़ी (मिश्र, 1988)। अतः नौकरी के लिए विद्यार्थी जी इलाहाबाद से लौटकर वापस अपने बड़े भाई शिव बाबा के पास कानपुर चले आए और करेंसी ऑफिस (जहाँ से रुपए-पैसे आदि सिक्के तथा नोट निकाले जाते हैं) में नौकरी शुरू कर दी। उस समय गणेश जी को 30 रुपये मासिक मिलते थे।

करेंसी ऑफिस में वे अपना काम बड़ी सफाई और परिश्रम से किया करते थे। अध्ययन के प्रति रुचि होने से वे अवकाश के क्षणों में पुस्तकें भी पढ़ते थे। उनके सद्व्यवहार के कारण ऑफिस के सभी लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे। विद्यार्थी जी ने करेंसी ऑफिस में 6 फरवरी,1908 को नौकरी करना प्रारंभ किया था और 26 नवंबर, 1909 को त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद कानपुर के पृथ्वीनाथ हाईस्कूल (अब पीपीएन डिग्री कॉलेज) में 1 दिसंबर, 1909 में 20 रुपये मासिक पर अध्यापक हो गए (मिश्र, 1988)। उन दिनों इलाहाबाद से निकलने वाले श्री सुंदरलाल जी के क्रांतिकारी पत्र 'कर्मयोगी' की बड़ी धूम थी। 'कर्मयोगी' बम विस्फोट-सा समझा जाता था। इसी 'कर्मयोगी' को गणेश जी पढ़ा करते थे और उसे कभी-कभी अपने साथ भी ले जाया करते थे। एक बार स्कूल में अवकाश के समय विद्यार्थी जी कक्षा में बैठे 'कर्मयोगी' पढ़ रहे थे। हेडमास्टर ने आकर देख लिया और कक्षा में पढ़ने पर आपत्ति की। इसी वजह से वाद-विवाद छिड़ गया और विद्यार्थी जी ने 5 सितंबर, 1910 को वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया (मिश्र, 1988)।

'प्रताप' की अवधारणा

संवेदनशील गणेश शंकर विद्यार्थी ने अब तक साहित्य के मर्म को समझ लिया था और उनके भीतर छिपी तमाम संवेदनाओं को भी। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मदन मोहन मालवीय और लोकमान्य तिलक के सान्निध्य ने इनका प्रताप इतना बढ़ा दिया था कि अब देश को भी इनके प्रताप के परिणाम में परिणत होने का इंतजार-सा था। शायद यही कारण रहा हो कि इन्होंने साहित्यिक पत्रिकाओं में मन न रमाकर तीखे और राजनीतिक तासीर वाले पत्र का संपादन करना सुनिश्चित किया। अपने निश्चय के मुताबिक गणेश शंकर विद्यार्थी ने नवंबर 1913 में ऐतिहासिक साप्ताहिक समाचार-पत्र 'प्रताप' का प्रकाशन आरंभ कर दिया। इसे उन्होंने अपने मित्र शिवनारायण मिश्र और नारायण प्रसाद अरोड़ा के सहयोग से निकाला था। हालाँकि कुछ दिनों बाद उनके सहयोगी नारायण प्रसाद अरोड़ा अलग हो गए, किंतु शिव नारायण मिश्र अंत तक सहयोग देते रहे (मिश्र, 1988)।

'प्रताप' हिंदी की राष्ट्रीय पत्रकारिता और गणेश शंकर विद्यार्थी के स्वतंत्रचेता पत्रकार मानस की प्रथम सार्थक अभियक्ति था। 'प्रताप' का पहला अंक 9 नवंबर, 1913 को निकला। टेबलायड से कुछ बड़ा आकार के 18 पृष्ठों के उस प्रथमांक के मुखपृष्ठ पर पूरे आयोजन के संकल्प के रूप में आचार्य द्विवेदी की ये पंक्तियाँ छपी थीं—"जिनको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है/वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है"। साथ ही 'प्रताप की नीति' शीर्षक से गणेश जी की लिखा हुआ पहला संपादकीय उसमें छपा था, जिसे आधी सदी तक मूल्यपरक हिंदी पत्रकारिता के अमूल्य अभिलेख का गौरव प्राप्त रहा (सलिल, 2011)। आचार्य द्विवेदी की उक्त पंक्तियाँ 'प्रताप' के प्रथमांक भर में नहीं छपीं। गणेश शंकर विद्यार्थी को अपने सिद्धांतों के अनुकूल अपने पत्र 'प्रताप' के लिए एक ध्येय वाक्य की आवश्यकता थी, जिसे विद्यार्थी जी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से लिखवाया था, जो कि 'प्रताप' के हर अंक में मास्ट-हेड पर छापा जाता था। यह जानना भी दिलचस्प है कि गणेश शंकर विद्यार्थी 'प्रताप' के लिए ध्येय वाक्य मैथिलीशरण गुप्त से लिखवाना चाह रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा भी, लेकिन उनके द्वारा लिखे गए ध्येय वाक्य में चार पंक्तियाँ होने के कारण गणेश जी ने 'प्रताप' के ध्येय वाक्य को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से लिखवाया था[1]। उन्हें अपने अखबार के शीर्ष पर केवल दो ही पंक्तियों के वाक्य की आवश्यकता और चाहत थी। गणेश शंकर विद्यार्थी 'प्रताप' के संपादक बिना किसी अनुभव के नहीं बने थे। उन्हें संपादन और लेखन का न सिर्फ पूर्व अनुभव था,, बल्कि उन्होंने 'प्रताप' के संपादन से पहले 'हितवार्ता', 'कर्मयोगी' और 'सरस्वती' आदि पत्रों के लिए लेख और टिप्पणियाँ आदि लिखी थीं (मिश्र, 1988)।

'प्रताप' का नामकरण

'प्रताप' के नामकरण के पीछे भी एक दिलचस्प किस्सा है। कानपुर

सहित पूरे सूबे में गणेश शंकर विद्यार्थी और उनके 'प्रताप' का परचम लहरा चुका था। गणेश जी के सजातीय लोगों में उनकी बुलंदियों को लेकर अति उत्साह था। प्रताप नारायण श्रीवास्तव अपने एक लेख में लिखते हैं—"मैं लगभग 10-11 वर्ष का बालक था, मैं अपने पिताजी के साथ सेठ बैजनाथ जुग्गीलाल के कॉपरगंज वाले मिल के अहाते में रहने वाले बाबू संपति राय के यहाँ किसी शुभ काम के निमंत्रण पर गया था। बिरादरी के जब सब लोग इकट्ठा हो गए, तब बाबू संपति राय ने सब आगत भाइयों के समक्ष एक दुबले-पतले चश्मा लगाए हुए व्यक्ति को उपस्थित करते हुए कहा—'आप लोगों को जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी बिरादरी के एक नवयुवक ने देशसेवा के एक कंटकाकीर्ण मार्ग को चुना है, इनका नाम श्री गणेश शंकर विद्यार्थी है और इन्होंने नौकरी को छोड़कर अखबारनवीसी का धंधा अपनी मर्जी से अपनाया है। अभी तक हमारी जाति पर यह लांछन था कि हम लोग अँग्रेजों के गुलाम हैं और हमारा कोई स्वतंत्र व्यवसाय नहीं है, केवल नौकरी करके पेट भरना है, परंतु गणेश जी ने इस कलंक को धो डाला है। हमारी जाति इनको पाकर धन्य हो गई है" (तिलक, 2013)।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव आगे बताते हैं—"मेरे पिता के मित्र बाबू शिवव्रत नारायण उर्फ शिव बाबा (गणेश जी के बड़े भाई) प्रायः रोज ही मेरे घर शाम को आया करते थे। वे मुझे बहुत प्यार करते थे और मैं भी उनसे बहुत हिल-मिल गया था। वे मुझे अपने निकट बैठा लेते और दुलारते हुए पीठ पर हाथ फेरा करते। मेरे पिता यदि कभी घुड़कते, तो वे मेरा पक्ष लेकर उन्हें डाँट भी देते थे। उनकी बैठक कई घंटों की होती थी और जब तक वे रहते, मुझे अपने पास से दूर नहीं करते थे। मेरे पिताजी को पढ़ना छोड़कर वहाँ मेरा बैठना सुहाता नहीं था, किंतु शिव बाबा के कारण कुछ कठोरता नहीं बरत पाते। शिव बाबा भी मुझको इतना प्यार करते थे कि मुझे देखने और बातें करने के लिए प्रायः रोज ही आने लगे। इसका भेद कई वर्षों बाद उनकी ही जुबान से मालूम हुआ कि उनके एकमात्र पुत्र का नाम भी 'प्रताप' था, जिसको गणेश शंकर विद्यार्थी बहुत प्यार करते थे, क्योंकि उस समय तक कोई संतान उनके घर में उत्पन्न नहीं हुई थी। मेरे गुरुदेव ने अपने साप्ताहिक पत्र का नाम उसी के नाम को अमर करने के लिए 'प्रताप' रखा था।" इस प्रकार, हमें मालूम होता है कि गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने भतीजे प्रताप के नाम पर अपने समाचार पत्र का नाम 'प्रताप' रखा था (तिलक, 2013)। गणेश शंकर विद्यार्थी की पुत्री विमला विद्यार्थी अपने पिता और उनके प्रिय 'प्रताप' के बारे में लिखती हैं—"लोग इस दुबले-पतले और साधनहीन युवक के साहस को देखकर हँसे और कहने लगे, पागल है। लेकिन दिन जाते देर न लगी। हँसने वाले लोग भौंचक्के रह गए। उनका 'प्रताप' चारों ओर फैलने लगा। सत्ताधारी काँपने लगे, उन्होंने अपने प्रहार शुरू किए। चेतावनियाँ दी गईं, जमानतें ली गईं। बुलावे आए, धमकियाँ दी गईं, तलाशियाँ हुई और जब्ती ने अपना काम किया। रोकथाम हुई, जेल की हवा खिलाई गई। उसने इन सब प्रहारों को हँसते हुए सहा, क्योंकि वह लड़ाई का पक्षपाती था। अपनी लड़ाई को अंतिम दिन तक जारी रखा" (तिलक, 2013)।

राष्ट्रीयता की भावना

मौजूदा वक्त में राष्ट्रवाद[2] बेहद प्रचलित शब्द है, जो मूलतः राष्ट्रीयता की भावना है, लेकिन आज देश में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता के भाव के समझने में गहरी भूल की जा रही है। आए दिन हम इस भूल के अनेकानेक प्रमाण पाते हैं। यदि इस भाव के अर्थ भलीभाँति समझ लिए गए होते, तो इस विषय में बहुत-सी अनर्गल और अस्पष्ट बातें सुनने में न आतीं (सलिल, 2011)। इसमें कोई दो राय नहीं है। कि किसी आदमी ने कितनी तरक्की की है, उसका पता हम उसकी राष्ट्रीयता की भावना और उसके राष्ट्रप्रेम के द्वारा ही लगा सकते हैं[3]। राष्ट्रीयता के संबंध में समय-समय पर गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी अपने विचार प्रकट किए थे। लेकिन विद्यार्थी जी के राष्ट्रप्रेम के क्षितिज को समझने की कोशिश करें तो राष्ट्रप्रेम के नाम पर उनमें संकीर्णता नहीं थी। उन्होंने राष्ट्रीयता को व्यापक अर्थों में समझा और समझाया था (मिश्र, 1988)। गणेश जी क्षेत्रीयता[4] की भावना से कोसों दूर थे। उनका विचार था कि राष्ट्रप्रेम आवश्यक है, किंतु यदि क्षेत्रीयता की भावना पनपने लगी तो यह संकुचित विचारधारा राष्ट्रवाद को ही समाप्त कर देगी। इसीलिए राष्ट्रीयता के बारे में वो स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं है। राष्ट्रीयता सामाजिक बंधनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की समाएँ हैं। प्राकृतिक विशेषता और विभिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती हैं और उसके निवासियों को एक विशेष बंधन, किसी अदृश्य के बंधन से बाँधती हैं। राष्ट्र पराधीनता के पालने में नहीं पलता। राष्ट्रीयता का भाव मानव उन्नति की एक सीढ़ी है। उसका उदय नितांत स्वाभाविक रीति से हुआ[5]। इसके अलावा भी समय-समय पर साप्ताहिक 'प्रताप' की संपादकीय टिप्पणियों में विद्यार्थी जी ने अपने राष्ट्रप्रेम को व्यक्त किया था। उनके दृष्टि पथ में विश्व इतिहास की एक झलक बराबर बनी रहती थी। अतः जिन भावनाओं, विचारों एवं कार्यों से समाज का अहित होता है, उससे वे देशवासियों को बराबर सावधान किया करते थे[6]।

किसानों का 'प्रताप'

किसान प्रकृति का सच्चा लाल है। संसार के उन थोड़े से व्यक्तियों में, जो संसार में खर्च करने के लिए पैदा नहीं हुए, परंतु जो संसार को खर्च करने के लिए अपने बाहुबल से पदार्थों को देने को पैदा हुए हैं, उन सबमें किसानों ही का सर्वश्रेष्ठ स्थान है (सलिल, 2011)। लेकिन यही किसान आजादी से पहले निरा बेबस और असहाय रहा। गणेश शंकर विद्यार्थी को किसानों की ये विवशता हमेशा अखरती थी। इसलिए गुलाम भारत में कई तरह के अत्याचारों के बोझ तले दबे और बेबस किसानों को सहारा देने और उनका प्रताप बढ़ाने में गणेश शंकर विद्यार्थी का समाचार-पत्र 'प्रताप' एक ऊँचा मकाम रखता रहा है, क्योंकि एक आंदोलनकर्ता के रूप में गणेश शंकर विद्यार्थी ने किसानों की जितनी मदद की थी उतनी ही उन्होंने एक पत्रकार के रूप में भी भूमिका निभाई थी (राजपूत, 2019)।

गणेश जी को किसी भी वाद अथवा विचारधारा का पूर्वाग्रह कभी नहीं रहा। वे जैसे विशुद्ध क्रांतिकारी थे, वैसे ही खालिस काँग्रेसी थे। तमाम अलग-अलग विचारधारा के लोगों के साथ उनका सरोकार था। प्रताप के कार्यालय में किसान आंदोलनों के लिए जिन कार्यकर्ताओं के बीज विद्यार्थी जी ने डाले थे, आजादी के बाद वे पल्लवित हो उठे थे। उन्हीं के कंधों पर बीते कल का भविष्य और आज की जिम्मेदारी थी। जब दफा 171 और दफा 180 की बेदखलियों के द्वारा जमीदार किसानों की जमीनें हड़प रहे थे, अनाप-शनाप रकमें नजरानों के रूप में जमीदार किसानों से ऐंठ

रहे थे और परती जमीन के पट्टे लिख रहे थे, तब विद्यार्थी जी के गृह जनपद की खागा तहसील में किसान आंदोलन सबसे तेज चला। आधुनिक भारत में किसान आंदोलन के संदर्भ में मत है कि जब किसानों का शोषण हद से बढ़ गया तब वे लोग अपनी प्रार्थना लेकर जागीरदारों के पास गए और वहाँ कोई सुनवाई न होने पर राजा, फिर ब्रिटिश रेजिडेंट और अंत में वायसरॉय के पास पहुँचने लगे, परंतु कोई संतोषजनक आश्वासन न मिलने पर किसानों ने संगठित होकर पंचायतों की स्थापना और शोषण के खिलाफ आंदोलन शुरू करने का निश्चय किया[7]। किसान आंदोलनों के चलते सन् 1953 तक खागा तहसील खून से लाल हो गई थी और जाति-धर्म की भावना त्यागकर गरीब, किसान व मजदूर एकजुट होकर अत्याचारों व शोषणों के विरुद्ध संघर्षरत थे (सिंह, 1979)।

किसानों की लाठी

गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' के द्वारा किसानों, मजदूरों एवं पीड़ित जनता की सेवा का ही व्रत लिया। उनके सामने मनुष्यता की कसौटी थी—"मनुष्य उसी समय तक मनुष्य है जब तक उसकी दृष्टि के सामने कोई ऐसा ऊँचा आदर्श है, जिसके लिए वह अपने प्राण तक न्योछावर कर सके। इसके लिए किसानों, मजदूरों और दरिद्र नारायण की सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है (सलिल, 1998)।" अब तक 'प्रताप' की ख्याति किसानों के हमदर्द अखबार के रूप में दूर-दूर तक फैल गई। किसान और अन्य जन गणेश जी को 'प्रताप बाबा' कहकर पुकारने लगे थे। इसलिए कहा जा सकता है कि 'प्रताप' पूर्णतः किसान आंदोलन का समर्थक अखबार था। उसने किसानों पर होने वाले हर अत्याचार का विरोध किया, विशेषकर तालुकदारों और जमींदारों के अत्याचारों का खुलकर विरोध किया[9]। गणेश जी की पुत्री विमला विद्यार्थी इस बारे में बताती हैं—"गणेश शंकर विद्यार्थी का मजदूर सभा में प्रायः जाना होता था। वे 'प्रताप' के दफ्तर में अक्सर रात 8-9 बजे तक या 10-11 बजे तक, जैसी जरूरत होती, रहते थे (तिलक, 2013)।" साल 1916 में काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में बतौर पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी की भी विशेष उपस्थिति रही। इस अधिवेशन में विद्यार्थी जी ने काँग्रेस का ध्यान किसानों की तरफ खींचने का प्रयास किया। उन्होंने एक पत्रकार की हैसियत से कहा—"जो संस्था किसानों और मजदूरों की सेवा से वंचित रहती है, वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती है (मिश्र, 1988)।" इतना ही नहीं, लखनऊ अधिवेशन के उपरांत जब गांधीजी कानपुर आए तो गणेश जी ने उनसे यहाँ के लोगों की राजनीतिक कार्यों के प्रति उदासीनता की चर्चा की। इस पर गांधीजी ने तत्कालीन नवयुवक कार्यकर्ताओं को उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया, उनमें डॉ. मुरारीलाल भी शामिल थे (मिश्र, 1988)। इस प्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी 'प्रताप' के माध्यम से किसानों की बात देश के सामने रखने लगे और देखते-देखते 'प्रताप' की हनक भी पूरे सूबे में जोर-शोर के साथ दिखने लगी।

किसानों के हित की पत्रकारिता

अवध में चलने वाले किसान आंदोलन की चरम परिणति 7 जनवरी, 1921 को मुंशीगंज गोलीकांड के रूप में हुई। जवाहरलाल नेहरू सई नदी के इस तट पर खड़े थे। दूसरे तट पर रेलवे लाइन और सड़क के मध्य सरपत पुंजों से थोड़ा हटकर नदी की लहरियादार रेती में सहस्रों किसान अपनी छातियों पर गोलियों की बौछार सह रहे थे। धाँय-धाँय बंदूकों की आवाजें हवा में गूँज रही थीं। थोड़ी देर में सई नदी का पानी लहूलुहान हो उठा। रेती में चमकते बालुका कण लाल हो उठे, दम तोड़ते सैकड़ों लोग एक बूँद पानी के लिए तड़पते रहे। इक्कों में लदी इन लाशों को जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं देखा था। उन्हीं के शब्दों में—"वापसी में मैंने चंद लाशें देखीं, जो एक ताँगे में इकट्ठा बेतरतीबी के साथ पड़ी हुई थीं। यह ताँगा बगैर घोड़े के मुंशीगंज पुल के पास खड़ा था।" तालुकदारों के अत्याचारों से पीड़ित अवध के किसानों का खून सई नदी की रेती में क्या बहा, पूरे देश में तहलका मच गया। मुंशीगंज गोलीकांड की 'जलियाँवाला बाग' से तुलना की जाने लगी। गणेश शंकर विद्यार्थी उन दिनों 'प्रताप' के संपादक थे। विद्यार्थी जी ने दैनिक 'प्रताप' के 13 जनवरी, 1921 के अंक में 'डायरशाही और ओडायरशाही' शीर्षक से एक संपादकीय प्रकाशित करके इस घटना का साहस और वीरता के साथ सामना किया। 'प्रताप' के उक्त संपादकीय में गणेश जी का आक्रोश चरम सीमा पार कर चुका था। उनकी लेखनी ने तत्काल नौकरशाही पर खुलकर अंगार बरसाए। तालुकदारों को कोसा और उन्हें हत्यारा कहकर संबोधित किया। दैनिक 'प्रताप' के इस ऐतिहासिक संपादकीय से पूरे देश में तहलका मच गया। अनेक पन्नों में इसकी प्रतिक्रिया हुई। मुंशीगंज गोलीकांड के विरोध में देशभर में अनेक जनसभाएँ हुईं। उस समय सभी संपादकों को एक नोटिस भेजा गया, जिसमें उन्हें अपने पत्र में क्षमायाचना करने के लिए कहा गया। उस समय क्षमायाचना करने वालों में 'इंडिपेंडेंट' के संपादक प्रमुख थे। जब यह नोटिस विद्यार्थी जी को मिली तो उन्होंने ऐसा करने से साफ इनकार करते हुए अदम्य साहस और निर्भीकता का परिचय दिया (तिलक, 2013)। इस कारण गणेश शंकर विद्यार्थी को 'असहयोग आचरण से गिरा हुआ' कहा जाता है। अवध किसान आंदोलन में ऐसी तमाम नीतियों को बहुत चालाकी से स्थापित किया गया था (कुशवाला, 2019), जिसका गणेश जी ने डटकर मुकाबला किया। उन्होंने किसानों के हित की पत्रकारिता का नायाब उदाहरण गढ़ दिया।

निष्कर्ष

पत्रकार का प्रगट स्वरूप प्रथमदृष्टया अथवा हमारे पूर्वाग्रह में ही एक 'एक्टिविस्ट' के रूप में हमें दिखाई देता है। वास्तव में, किसी पत्रकार की सिद्धि भी संभवतः तभी परिणत होती है, जब उसके पत्रकारीय जीवन में कोई ऐसा मोड़ आता है, जहाँ 'एक्टिविज्म' का लब्बोलुआब उसके साथ आकर जुड़ जाता है; अन्यथा, दूसरों को और स्वयं उस पत्रकार को भी अपनी पत्रकारिता कम-से-कम आज के दौर में केवल की-बोर्ड की प्लास्टिक को पीटने में ही बीतती है, जो उसे जीवन भर सालता रहता है। इस प्रकार, पत्रकारिता के क्षेत्र में 'एक्टिविज्म' को उसका अलंकार कहा जा सकता है या फिर प्राण भी कह देने में कोई हर्ज नहीं है। आधुनिक भारत में देश की आजादी की लड़ाई के दौर में गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता को 'एक्टिविज्म' का आधार-प्रमाण माना जा सकता है, जहाँ से आज की पत्रकार पीढ़ी बहुत कुछ सीख सकती है या उसे सीखना चाहिए। गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता में 'एक्टिविज्म' का पुट ऐसा है कि उसमें गजब का समन्वय देखने को मिलता है। इस कारण, गणेश शंकर विद्यार्थी अथवा उनकी पत्रकारिता को आप किसी एक विचारधारा के प्रवाह में नहीं देख सकते हैं। उनमें समाजवादी आधार तले अद्भुत वाममार्गी प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं, जो राष्ट्रवाद की प्रबल सिद्धि

की चेतना को परिपूर्ण करती हैं और उसे बलवती बनाती जाती हैं।

संदर्भ

कंसाइज ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी : 11वाँ संस्करण, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

कुशवाला, एस. सी. (2019). *अवध का किसान विद्रोह (1920 से 1922 ई.)*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

चतुर्वेदी, बी., शर्मा, जे. एवं वर्मा, पी. (सं.) ((1960). *अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी*. कालपी : गणेश स्मारक ग्रंथ.

तिलक (सं.) (2013). *युगपुरुष गणेश शंकर विद्यार्थी व्यक्तित्व और कृतित्व* : भाग-2. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

राजपूत, ए. (2019). *अंतर्वेद प्रवर : गणेश शंकर विद्यार्थी*. लखनऊ : लोकोदय प्रकाशन.

सिंह, आर. (1990). *भगत सिंह और स्वतंत्रता संग्राम*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशंस.

राजपूत, ए. (2019). *अंतर्वेद प्रवर : गणेश शंकर विद्यार्थी*. लखनऊ : लोकोदय प्रकाशन.

मिश्र, एल. (1988). *गणेश शंकर विद्यार्थी*. गोलघर-वाराणसी : संजय बुक सेंटर.

सलिल, एस. (2011). *गणेश शंकर विद्यार्थी रचनावली भाग-1*. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिकेशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड

सिंह, दी. एन. (1979). *फतेहपुर के स्वतंत्रता सेनानी*. फतेहपुर : दीपक प्रकाशन.

नोट

1. श्री मैथिलीशरण गुप्त, सुधा, गणेश जी, नवंबर,1039; पेज-435
2. डॉक्टर सुधींद्र ने लिखा है—"भूमि, भूमिवासी, जन और जन-संस्कृति का समुच्चय 'राष्ट्र' है और 'राष्ट्र' के उत्थान और प्रगति के संयोजक तत्त्वों का समीकरण राष्ट्रधर्म है। व्यक्ति के भाव, विचार और क्रिया-व्यापार द्वारा राष्ट्र के हित, कल्याण और मंगल की भावना और चेतना राषअट्रवाद है।" —'हिंदी कविता में युगांतर', जीवन की पृष्ठभूमि, पृष्ठ 37
3. श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, 'श्रेष्ठ निबंध', पृष्ठ 35
4. "क्षेत्रीयता राष्ट्र का अहित तो करती ही है, स्वयं प्रदेश का विनाश कर डालती है। इसलिए तो क्षुद्र प्रादेशिकता और क्षेत्रीयता को राष्ट्र-विघातक कहा जाता है और स्वस्थ प्रदेशाभिमान सच्ची राष्ट्रीयता का जनक है।"
5. गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबंध, पृष्ठ 36
6. श्रेष्ठ निबंध, 'राष्ट्रीयता' पृष्ठ 35
7. श्यामू सन्न्यासी 'भारत' 01 सितंबर, 1968 रविवासरीय साहित्यिक परिशिष्ट, पृष्ठ-2
8. राजस्थान भारती : भाग-1, भारतीय इतिहास को राजस्थान का अवदान, संपादक : सोभाग माथुर, शंकर गोयल, साइंटिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर
9. कॉमरेड चंद्र किशोर तिवारी को 1967 में चुनाव लड़वाने वाले उनके सहयोगी कॉमरेड पं. सूर्य प्रकाश बाजपेयी की लेखक अमित राजपूत से बातचीत से प्राप्त जानकारी
10. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग-13) खंड-3

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 112-117, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

स्वतंत्रता आंदोलन में विज्ञान संचारकों का योगदान

डॉ. दिलीप कुमार[1]

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में राजनीतिक आंदोलनकारियों, सशस्त्र क्रांतिकारियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के योगदान की चर्चा खूब होती है, लेकिन स्वाधीनता की चेतना जगाने और स्वतंत्र देश के भविष्य-निर्माण की आधारशिला रखने वाले वैज्ञानिकों या विज्ञान संचारकों के योगदान की चर्चा कम ही पढ़ने और सुनने को मिलती है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुए संघर्ष और चुनौतियों में कई गुमनाम वैज्ञानिक तथा विज्ञान संचारक भी शामिल थे। उन्हें ब्रिटिश सत्ता द्वारा भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ा। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वे राष्ट्र और समाज हित में विज्ञान के उपयोग के साथ-साथ विज्ञान के संचार हेतु भी काम करते रहे। आजादी के अमृत महोत्सव के निमित्त विज्ञान प्रसारकों के योगदान से परिचित कराने के लिए विशेष कार्यक्रमों का आयोजन समस्त शिक्षा संस्थानों में ही नहीं, बल्कि जन सामान्य के बीच भी किया जाना आवश्यक है, ताकि युवा पीढ़ी को इस बात का अहसास हो कि भारत में विज्ञान की अत्यंत समृद्ध परंपरा है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में विज्ञान संचारकों के योगदान को समझने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, विज्ञान संचारक, भारतीय विज्ञान, आजादी का अमृत महोत्सव, महिला वैज्ञानिक

प्रस्तावना

शिक्षा और विज्ञान के विकास से मानव ने प्रकृति में व्याप्त विद्युत तरंगों तथा अन्य स्रोतों की अपार शक्ति को खोजकर संचार माध्यमों की जादू नगरी का निर्माण किया है। कृषि हो अथवा उद्योग, शिक्षा हो या मनोरंजन, चिकित्सा हो या विज्ञान हर क्षेत्र में जन संचार माध्यमों का प्रबंधन एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा है। उसने मानव जीवन की दिशा बदलकर रख दी है। संचार माध्यमों की विस्तृत व्याख्या, प्रबंधन और उपयोग के अभाव में आज मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती (हाशमी, 1996)। पिछले दिनों सुप्रसिद्ध विज्ञान संचारक और भारत के महान रसायनज्ञ, उद्यमी तथा शिक्षक डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय (02 अगस्त 1861-16 जून 1944) की 160वीं जयंती के अवसर पर अनेक कार्यक्रमों की शृंखला की औपचारिक शुरुआत केंद्रीय मंत्री डॉ. जितेंद्र सिंह की मौजूदगी में की गई। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की स्वायत्त संस्था विज्ञान प्रसार, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) से संबंद्ध संस्थान नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्युनिकेशन एंड पॉलिसी रिसर्च (सीएसआईआर-एनआईएससीपीआर) और गैर-सरकारी संगठन विज्ञान भारती ने मिलकर स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में यह महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम तैयार किया है। केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी राज्य मंत्री डॉ. जितेंद्र सिंह ने इस अवसर पर कहा कि वैज्ञानिक योग्यता की तुलना में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उन्होंने यह भी कहा कि गांधीजी की 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' और कुछ नहीं, बल्कि आक्रामकता के खिलाफ एक 'मूक जैविक युद्ध' था। केंद्रीय मंत्री ने कहा कि विज्ञान से जुड़े विषयों का बेहतर उपयोग करने के लिए जरूरी नहीं कि कोई छात्र या विज्ञान का विद्वान ही ऐसा कर सकता है, बल्कि ऐसा करने के लिए व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना अधिक महत्त्वपूर्ण है। डॉ. जितेंद्र सिंह ने विज्ञान के महत्त्व पर जोर देते हुए कहा कि हमें विज्ञान की सभी धाराओं में तालमेल बिठाने और अन्य हितधारकों की भागीदारी के साथ विषय आधारित अनुसंधान परियोजनाओं को शुरू करने की आवश्यकता है। आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात करें तो हमारे आसपास वैज्ञानिक सोच का सबसे उल्लेखनीय उदाहरण कोई है तो वे खुद प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी हैं। प्रधानमंत्री मोदी ने जम्मू-कश्मीर के कटरा रेलवे स्टेशन के उद्घाटन के मौके पर वहाँ खिली हुई धूप को देखकर वहाँ सौर संयंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। यह प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसी तरह का दृष्टिकोण हमारे विज्ञान संचारकों ने आजादी के वक्त रखा था। इसलिए उनके योगदान को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है।

विभिन्न पत्रों, पुस्तकों तथा वेबसाइटों के अध्ययन में पाया गया है कि भारत में लघु तथा व्यापक दोनों ही स्तरों पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी, संचार और विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयासों को एक-दूसरे के साथ जोड़ने, समन्वित करने, उत्प्रेरित करने और उन्हें समर्थन देने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 1982 में एक शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद की स्थापना की थी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने 1989 में एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में 'विज्ञान प्रसार' का गठन किया, जिसने बड़े पैमाने पर टीवी कार्यक्रम, ऑडियो कैसेट, सीडी, प्रकाशन जैसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण के सॉफ्टवेयर विकसित करने और उनके प्रचार-प्रसार की दिशा में कार्य किया। आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा अन्य टीवी चैनल विभिन्न प्रकार के विज्ञान कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। इसके साथ ही सामुदायिक रेडियो भी विज्ञान संचार के लोकप्रिय माध्यम के रूप में उभर रहा है। केंद्र तथा राज्य सरकारों, बिड़ला समूह तथा जवाहरलाल नेहरू स्मारक निधि ने देश में विभिन्न स्थानों पर अनेक तारामंडल स्थापित किए हैं (भारत की संपदा, 2005)। सरकारी, गैर सरकारी, स्वैच्छिक, निजी तथा व्यक्तिगत स्तरों पर विज्ञान संचार एवं विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में विभिन्न प्रकार के अन्य प्रयास भी किए जा रहे हैं। अनेक सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएँ; जैसे, राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक

[1]विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एव जनसंचार विभाग, मेरी कॉलेज, गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल : prof.dlpkmr05@gmail.com

अनुसंधान परिषद, आकाशवाणी, दूरदर्शन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदि वैज्ञानिक सूचना के प्रचार-प्रसार और लोगों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति जाग्रत करने की दिशा में प्रयास कर रहे हैं (भारत की संपदा, 2019)। भारत में विज्ञान संचारकों द्वारा जन सामान्य तक अपनी पहुँच बनाने के लिए संचार के अनेक साधनों और तरीकों का उपयोग किया गया है। भारत में मौजूद अत्यधिक विविधता को ध्यान में रखते हुए संचार के प्रत्येक तरीके का अपना महत्त्व और उपयोगिता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के संग्रहण हेतु विभिन्न स्रोतों जैसे समाचारपत्रों, वेबसाइट और अन्य साहित्य का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र में स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय अखबारों तथा विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन करने के बाद उनकी विश्लेषण सामग्री को शामिल किया गया है।

चंद्रशेखर वेंकट रामन का शुरुआती काम और राष्ट्रीय आंदोलन

यह सर्वविदित है कि प्रकाश के छितराव की व्याख्या रामन के अध्ययन का केंद्र सन् 1921 से ही बन चुकी थी। इसी साल समुद्र के नीले रंग और द्रवों में प्रकाश के बिखराव पर उनका एक शोध पत्र लंदन की प्रसिद्ध रॉयल सोसाइटी तथा बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ। दो शोध पत्र 'नेचर' पत्रिका में भी छपे। अपने प्रयोगों के दौरान उन्होंने ऐसा छितराव पाया जो 'रैले छितराव' से भिन्न था। उनके इन प्रयोगों की परिणिति आगे चलकर सन् 1928 में 'रमन-प्रभाव' के रूप में हुई, जिस पर उन्हें 1930 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला (सिंह, 2020)। यह वह समय था जब भारतीयों को बहुत ही प्रताड़ना झेलनी पड़ती थी। रामन का जन्म 7 नवंबर, 1888 को दक्षिण भारत के तिरुचिरापल्ली जिले के उत्तर में तिरुवनैकावल नामक एक छोटे से गाँव में हुआ। उन्हीं दिनों सन् 1857 की क्रांति के बाद राष्ट्रवादी आंदोलन फिर से करवटें लेने लगा था। उस समय पैदा हुए रामन आगे चलकर वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में भारतीय निश्चयात्मकता और स्वावलंबन की एक शानदार मिसाल बने। रामन के जन्म के तकरीबन चार वर्ष बाद उनका परिवार विशाखापट्टनम चला गया, और वहाँ समुद्र तट के निकट रहने लगा। रामन के पिता चंद्रशेखरन अय्यर की संगीत में, विशेषकर वीणा और वायलिन जैसे वाद्यों में काफी रुचि थी। संगीत के साथ उन्हें भौतिकी, गणित और अँग्रेजी साहित्य से भी विशेष लगाव था। उन्होंने इन विषयों की कई उच्चस्तरीय किताबें भी एकत्र की हुई थीं, जिनका वे नियमित अध्ययन करते थे। इस माहौल का रामन पर काफी प्रभाव पड़ा और आगे चलकर उनका बहुत सारा वैज्ञानिक कार्य प्रकृति की परिघटनाओं और वाद्यों की ध्वनिकी पर केंद्रित रहा। ग्यारह साल की छोटी-सी उम्र में ही उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

जनवरी 1903 में रामन ने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में बी.ए. में प्रवेश लिया। उन्होंने भौतिकी को अपना मुख्य विषय चुना। रामन ने यहाँ कुल चार साल बिताए। विज्ञान के अलावा अँग्रेजी साहित्य पर भी उनकी पकड़ काफी गहरी थी। 1904 में अँग्रेजी व भौतिकी में स्वर्णपदक के साथ बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्हें इंग्लैंड जाकर पढ़ाई जारी रखने की सलाह दी गई, लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से अयोग्य करार दिए जाने पर वे इंग्लैंड न जा सके। फलस्वरूप रामन ने प्रेसिडेंसी कॉलेज से ही भौतिकी में एम.ए. करने का निश्चय किया। अपनी खोजी प्रवृत्तियों को ठोस प्रायोगिक रूप देने में वहाँ मिली शैक्षिक स्वतंत्रता का उन्होंने भरपूर फायदा उठाया। उन दिनों महाविद्यालयों में किसी भी तरह के अनुसंधान की परंपरा नहीं थी। लेकिन महत्त्वाकांक्षा, साहस और उद्यम के धनी रामन अपने प्रयोगमूलक वैज्ञानिक कार्यों में भिड़े रहे। रामन को नोबेल पुरस्कार मिलने पर कुछ यूरोपीय वैज्ञानिकों के बीच जब विवाद छिड़ा तो उनके समकालीन मेघनाद साहा ने कहा था—"यूरोपीय लेखक हमेशा यह कहते नहीं थकते कि हम भारतीयों का झुकाव व्यावहारिक दृष्टिकोण के बजाय तात्त्विक व्याख्याओं की ओर अधिक रहता है, जबकि यहाँ (रामन के मामले में) इसके ठीक विपरीत ही हुआ है। एक भारतीय द्वारा यूरोपीय विद्वानों की उन कल्पनाओं को प्रायोगिक स्वरूप दिया गया है, जिन्हें वे स्वयं भी सत्यापित न कर सके।" सोलह वर्ष की अवस्था में रामन ने कॉलेज के स्पेक्ट्रोमीटर से प्रिज्म के एक कोण को नापने का प्रयोग किया। प्रयोग के दौरान उन्होंने कोण पर आपतित प्रकाश के प्रतिबिंब का अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि प्रतिबिंबित प्रकाश थोड़ा-बहुत फैल जाता है। फैलाव या विसरण की पट्टियों की जाँच-पड़ताल करके रामन ने इनका वह कारण खोज लिया, जो उस समय के वैज्ञानिक साहित्य में कहीं भी मौजूद नहीं था। इस पर उन्होंने एक शोध पत्र लिखा और लंदन की 'द फिलॉसॉफिकल मैगजीन' में छपने के लिए भेज दिया। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने इस लेख को तैयार करने के दौरान किसी से भी कोई सहायता नहीं ली। उन दिनों रामन का प्रसिद्ध गणितज्ञ और भौतिकविद लॉर्ड रेले से भी पत्र-व्यवहार चला। लॉर्ड रैले का खयाल था कि रामन प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रोफेसर हैं। वे अपने पत्रों में रामन को ऐसे ही संबोधित करते थे। जनवरी 1907 में 18 वर्ष की आयु में रामन एम.ए. की परीक्षा में सर्वप्रथम आए।

रामन को प्रकृति में बसे रंगों, आकारों और उनकी लय ने काफी प्रभावित किया। अपने अध्ययन हेतु उन्होंने तितलियों के हजारों नमूने एकत्र किए। इसके अलावा उन्होंने विभिन्न आकृतियों के सैंकड़ों हीरे भी इकट्ठे किए। वे इन हीरों के भौतिक गुणों के सम्मोहन में ऐसे बँधे कि एक समय तो उनकी प्रयोगशाला का हर शोधकर्ता इनके अध्ययन में जुटा था। इसके अलावा रामन ने फूलों, पत्तियों और मणियों के रंगों पर भी विस्तारपूर्वक लिखा। बाद में उन्होंने समुद्र के गहरे नीले रंग की बेहतर विज्ञानसम्मत व्याख्या प्रस्तुत कर इस संबंध में उस समय तक मान्य लॉर्ड रैले के विचारों का खंडन किया। रैले का मानना था कि समुद्र का गहरा नीला रंग आकाश के नीले रंग के कारण है, लेकिन रामन ने इम परिघटना के लिए प्रकाश के आण्विक बिखराव को जिम्मेदार ठहराते हाए 'रामन-प्रभाव' की नींव डाली। चंद्रशेखर वेंकट रामन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने वैज्ञानिक संसार में भारत को ख्याति दिलाई। रामन ने उस खोए रास्ते की खोज की और नियमों का प्रतिपादन किया, जिनसे स्वतंत्र भारत के विकास और प्रगति का रास्ता खुल गया।

डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय : विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, परन्तु स्वराज नहीं

डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय का जन्म बंगाल के खुलना जिले के रूली कतिपरा नामक ग्राम में 2 अगस्त, 1861 को हुआ था। इनके पिता, श्री हरिश्चंद्र राय फारसी के विद्वान थे। उनके पिता का अँग्रेजी शिक्षा की ओर आकर्षण था, इसलिए उन्होंने अपने गाँव में एक 'मॉडल' स्कूल स्थापित किया था, जिसमें प्रफुल्लचंद्र ने प्राथमिक शिक्षा पाई। तदुपरांत इनका

परिवार कलकत्ता चला आया, जहाँ वे उस समय के सुप्रसिद्ध हेयर स्कूल में तथा बाद में अल्बर्ट स्कूल में भर्ती हुए। सन् 1879 में एंट्रेंस परीक्षा पास करके इन्होंने कॉलेज की पढ़ाई मेट्रॉपालिटन इंस्टीट्यूट में आरंभ की, पर विज्ञान के विषयों का अध्ययन करने के लिए इन्हें प्रेसिडेंसी कॉलेज जाना पड़ता था। यहाँ उन्होंने भौतिकी और रसायन के सुप्रसिद्ध विद्वान सर जॉन इलियट और सर अलेक्जैंडर पेडलर से शिक्षा पाई, जिनके संपर्क से इनके विज्ञान प्रेम में वृद्धि हुई। सन् 1882 में गिल्क्राइस्ट छात्रवृत्ति प्रतियोगिता की परीक्षा में सफल होने के कारण विदेश जाकर पढ़ने की इच्छा पूरी हुई। इसी वर्ष एडिनबरा विश्वविद्यालय में दाखिल हुए, जहाँ इन्होंने छह वर्ष तक अध्ययन किया (सिंह, 2020)। प्रफुल्लचंद्र राय के 'सादा जीवन उच्च विचार' वाले बहुआयामी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने कहा था—"शुद्ध भारतीय परिधान में आवेष्टित इस सरल व्यक्ति को देखकर विश्वास ही नहीं होता कि वह एक महान वैज्ञानिक हो सकता है"। वहीं प्रेसीडेंसी कॉलेज में विद्यार्थियों को रसायन की कक्षा में व्याख्यान देते समय भी प्रफुल्लचंद्र राय यह कहना नहीं भूलते थे कि 'साइंस कैन वेट वट स्वराज कैन नाट' अर्थात् विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, परंतु स्वराज नहीं। सन् 1892 में उन्होंने देश की प्रथम रासायनिक उद्योग कंपनी 'बंगाल केमिकल्स एंड फार्मास्युटिकल्स वर्क्स' की स्थापना की, जो आज भी बंगाल केमिकल्स के नाम से कार्यरत है। उन्हें भारतीय समाज से भी अत्यधिक प्रेम था। सन्1922 के बंगाल के भीषण अकाल में राय अपने सभी कार्यों को छोड़कर पीड़ितों की सहायता के लिए निकल पड़े। व्यक्तिगत प्रयासों से उन्होंने तीन लाख रुपये की सहायता राशि एकत्रित की। उनके आह्वान पर बंगाली ललनाओं ने महँगे रेशमी वस्त्र और आभूषण आदि सभी कुछ उनकी झोली में डाल दिए। उनके अथक प्रयासों को देखकर किसी ने सच ही कहा था कि यदि महात्मा गांधी दो प्रफुल्लचंद्र और उत्पन्न कर सकते तो भारत को स्वराज शीघ्र ही मिल जाता।

रेडियो के आविष्कारक जगदीशचंद्र बसु

डॉ. जगदीशचंद्र बसु का जन्म 30 नवंबर, 1858 को वर्तमान बांग्लादेश की राजधानी ढाका से थोड़ी दूर मुंशीगंज जिले के विक्रमपुर गाँव में हुआ था। उनका बचपन गाँव में ही बीता। उनके पिता ब्रिटिश सरकार में मजिस्ट्रेट के पद पर कार्यरत थे। जगदीशचंद्र बसु अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे। उनकी पाँच बहने थीं। बसु का लालन-पालन बड़े ही सुख-सुविधाओं के बीच हुआ। बचपन से ही जगदीशचंद्र बसु प्रकृतिप्रेमी थे। उनके माता-पिता जीते जी अपने इकलौते पुत्र की शादी कर पुत्रवधू को देखना चाहते थे। इस प्रकार जगदीशचंद्र बसु का रिश्ता उनके पिता के दोस्त की बेटी के साथ पक्का हुआ। फलतः जगदीशचंद बसु की शादी सन् 1887 में अबला देवी के साथ हुई। उस वक्त अबला देवी मद्रास मेडिकल कॉलेज की छात्रा थीं। अबला देवी एक आदर्श नारी थीं। शादी के बाद उन्होंने घर का सारा काम अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार बसु का वैवाहिक जीवन बड़ा ही सुखमय और शांतिपूर्ण ढंग से बीता। बचपन से ही बसु के अंदर 'रामायण' और 'महाभारत' के प्रति गहरी रुचि थी। उनके पिता एक अच्छे पद पर तैनात थे। इस कारण घर में किसी चीज की कमी नहीं थी। लेकिन उनके पिता ने गाँव के स्कूल में ही उनका दाखिला कराया। बसु के पिता भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि उनका पुत्र अँग्रेजी सीखकर पश्चिमी जगत् के चकाचौंध में खोने से पहले भारतीय संस्कृति से पूरी तरह अवगत हो जाए। इस प्रकार जगदीशचंद्र बसु की शुरुआती शिक्षा गाँव के ही स्कूल में हुई। बाल्यकाल से ही जगदीशचंद्र बसु पढ़ने-लिखने में कुशाग्र बुद्धि के थे। शुरू के पाँच साल उन्होंने फरीदपुर के बंगाली माध्यम स्कूल में शिक्षा ग्रहण की। बाद में उनका नामांकन कलकत्ता के जेवियर कॉलेज में हुआ, जहाँ से उन्होंने स्नातक की डिग्री हासिल की। उन्हें जीव विज्ञान के प्रति भी गहरी रुचि थी। इस कारण स्नातक के बाद चिकित्सा शास्त्र में शिक्षा ग्रहण के लिए उन्हें लंदन भेजा गया। लेकिन कुछ स्वास्थ्य समस्या के कारण वह चिकित्सा शास्त्र में अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सके। उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से विज्ञान में उच्च शिक्षा ग्रहण की। इस दौरान उन्हें कई बड़े वैज्ञानिकों से मिलने का मौका मिला। लंदन में उन्होंने विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और उसके बाद वह भारत वापस आ गए।

लंदन से भारत वापस आने के बाद उनकी नियुक्ति कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रोफेसर के रूप में हुई। कहा जाता है कि जगदीशचंद्र बसु ने अँग्रेजों की नीति का विरोध करते हुए लगातार तीन वर्ष तक कॉलेज में बिना वेतन के अध्यापन का कार्य किया। वे शायद पहले भारतीय थे, जिनकी नियुक्ति उस समय सीधे प्रोफेसर के पद पर हुई थी। अँग्रेजों के शासनकाल में किसी भी भारतीय की उच्च पद पर सीधी नियुक्ति नहीं होती थी। यहाँ तक की समान काम के लिए समान वेतन भी भारतीयों को नहीं मिलता था। कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में अध्यापन के दौरान उन्हें भी भेदभाव का सामना करना पड़ा। उनका वेतन अँग्रेज प्रोफेसरों की तुलना में आधा था। इस बात को लेकर उन्होंने विरोध किया। उन्होंने निर्णय लिया की वे अँग्रेजों से आधा नहीं, बल्कि एक समान वेतन लेंगे। फलतः उन्होंने तीन साल तक विना वेतन लिए अपनी सेवाएँ दीं। अंत में कॉलेज प्रबंधन को उनके आगे झुकना पड़ा और उन्हें पूरा वेतन का भुगतान किया गया। सर जगदीशचंद्र बसु की उपलब्धियाँ उनके समय के हिसाब से इतनी आगे थीं कि उनका मूल्यांकन करना असंभव था। कॉलेज में अध्यापन के साथ-साथ वे अपने अनुसंधान में भी निरंतर लगे रहते। उस समय कॉलेज में शोध के लिए उचित व्यवस्था का अभाव था। उन्होंने अपने अनुसंधान में अपना खुद का पैसा लगाया। जब दिन में समय नहीं मिलता था तब वे रात में जागकर अपने शोध कार्य को अंजाम देते। सतत लगन और परिश्रम से बसु ने ढेर सारी उपलब्धियाँ हासिल कीं। माइक्रोवेव पर काम करते हुए उन्होंने माइक्रोवेव के द्वारा दूर स्थित घंटी को बजाकर दिखाया। उन्होंने बंगाल के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर सर विलियम मैकेनजी के सामने अपने प्रयोग का प्रदर्शन किया था। इस प्रकार जगदीशचंद्र बसु ने विद्धुत चुंबकीय तरंगों का पहला सार्वजनिक प्रदर्शन 1894 में कलकत्ता के टाउन हॉल में किया। इसके साथ ही उन्होंने माइक्रोवेव तरंगों के लिए उपकरणों का आविष्कार किया। उन्होंने धातु और वनस्पति की संवेदनशीलता से विश्व को अवगत कराया। इस प्रकार आगे चलकर वे एक महान भौतिकशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुए। जगदीशचंद्र बसु ने मार्कोनी से पहले ही रेडियो तरंगों का सफल प्रयोग किया था, परंतु दुर्भाग्य से रेडियो का अविष्कारक मार्कोनी को कहा जाता है बसु को नहीं। जीवन के अंतिम दिनों में उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा। वे तत्कालीन बिहार के गिरिडीह में रहने लगे। 23 नवंबर, 1937 की सुबह वह स्नानघर में फिसल कर गिर गए और थोड़ी देर बाद उनकी मृत्यु हो गई (आज तक की रिपोर्ट, 2020, अगस्त 15)। इस प्रकार इस महान वैज्ञानिक ने करीब 79 वर्ष तक विज्ञान की सेवा कर भारत का मस्तक गर्व से ऊँचा किया। सर जगदीशचंद्र बसु ने विज्ञान में शोधकार्य के लिए कलकत्ता में 'बोस इंस्टीट्यूट' की स्थापना की।

मेघनाद साहा : भारतीय वैज्ञानिक, जिन्होंने तारे के अंदर की बात बताई

मेघनाद साहा प्रसिद्ध भारतीय खगोलविज्ञानी थे। उन्होंने 'साहा समीकरण' दिया, जो काफी प्रसिद्ध है। यह समीकरण तारों में भौतिक एवं रासायनिक स्थिति की व्याख्या करता है। उनका निधन 16 फरवरी, 1956 को हुआ था। तारों पर हुए बाद के रिसर्च उनके सिद्धांत पर ही आधारित हैं। तारों के अध्ययन और रिसर्च को उन्होंने एक नई दिशा दी। मेघनाद साहा का जन्म 6 अक्टूबर, 1893 को बांग्लादेश की राजधानी ढाका के निकट के गाँव शाओराटोली में हुआ। उनके पिता जगन्ननाथ साहा एक छोटे-से दुकानदार थे, जो अपने बड़े परिवार का खर्च मुश्किल से चला पाते थे। उनकी इच्छा थी कि प्रारंभिक शिक्षा के बाद मेघनाद उनके दुकान के काम में हाथ बँटाए। लेकिन मेघनाद की इच्छा आगे पढ़ने की थी। वे बचपन से बहुत मेधावी थे और उनकी विज्ञान में विशेष रुचि थी। कक्षा में भी उनके सवाल अध्यापकों को चकित कर देते थे। एक बार उन्होंने अपने शिक्षक से सूर्य के आसपास चक्र जैसी चीज के बारे में पूछा, जिसका जवाब अध्यापक नहीं दे पाए। उन्हीं दिनों देश में स्वतंत्रता संग्राम चरम पर था। मेघनाद भी उससे प्रभावित हुए। उनके विद्यालय में जब बंगाल के गर्वनर मुआयना करने आए तो उन्होंने अपने साथियों के साथ गवर्नर के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन में भाग लिया, जिसके कारण उनकी छात्रवृत्ति बंद कर दी गई तथा साथियों के साथ मेघनाद को स्कूल से निकाल दिया गया। लेकिन उन्हें एक प्राइवेट स्कूल किशोरीलाल जुबली स्कूल में प्रवेश मिल गया। साहा ने इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। कलकत्ता विश्वविद्यालय में साहा ने पूरे विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त किया।

एमएससी करने के बाद मेघनाद साहा का भारतीय वित्त विभाग में चयन तो हुआ, लेकिन सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों का साथ देने और स्कूली जीवन में गर्वनर के स्कूल दौरे का विरोध करने के कारण उन्हें सरकारी नौकरी नहीं दी गई। साहा इससे निराश नहीं हुए। उन्होंने इसे एक अवसर के तौर पर लिया और नई-नई खोजों में ध्यान लगाया। खर्च के लिए वे ट्यूशन पढ़ाने लगे। वे सुबह और शाम भौतिकी और गणित की ट्यूशन पढ़ाने जाते। कुछ ही समय बाद मेघनाद साहा अपने दोस्त सत्येंद्रनाथ बसु के साथ कलकत्ता के युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस में प्रवक्ता नियुक्त किए गए। साहा ने सूर्य और तारों से जुड़ी अहम जानकारी दी तथा तारा भौतिकी में अहम योगदान भी दिया। आइंस्टाइन ने भी मेघनाद साहा के योगदान की सराहना की। डॉ. साहा वैज्ञानिक होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। वह अपनी आर्थिक तंगी को भूले नहीं थे। जब बंगाल का विभाजन हुआ तो उन्होंने बँटवारे से प्रभावित व्यक्तियों को पुनर्स्थापित करने में योगदान दिया। मेघनाद साहा ने अपने बचपन में बाढ़ की विभीषिका को देखा था। इसलिए उन्होंने बाढ़ के कारणों और उसे रोकने का अध्ययन किया तथा अनेक नदी बाँध परियोजनाओं और बिजली परियोजनाओं में सहयोगी बने। विज्ञान की पुस्तकों की कमी दूर करके युवाओं को विज्ञान के अध्ययन हेतु प्रेरित किया। मेघनाद साहा के जीवन का एक पहलू यह भी है कि उन्होंने कई संस्थानों की स्थापना की। सबसे पहले प्रयागराज में नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज की स्थापना की। फिर इंडियन फिजिकल सोसायटी, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज ऑफ इंडिया की नींव रखी। अपने प्रयासों से उन्होंने अंतरराष्ट्रीय खगोल विज्ञान संघ की स्थापना की। 1953 में वे इंडियन साइंस एसोसिएशन के निदेशक बने। विज्ञान संबंधित बातों को सरल भाषा में लोगों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने 'साइंस एंड कल्चर' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। वैज्ञानिक होने के साथ-साथ साहा आम जनता में भी लोकप्रिय थे। वे 1952 में भारत के पहले लोकसभा के चुनाव में कलकत्ता से भारी बहुमत से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में जीतकर आए। उन्होंने पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ राष्ट्रीय योजना समिति में काम किया। 16 फरवरी, 1956 को योजना आयोग की एक बैठक में भाग लेने जाते हुए हृदय गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई।

राष्ट्रीय आंदोलन में महिला विज्ञान संचारकों का योगदान

आज जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं की सशक्त भागीदारी है। विज्ञान क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। आज अंतरिक्ष विज्ञान से लेकर रसायन, भौतिकी, जैव प्रौद्योगिकी, जीव विज्ञान, चिकित्सा, नैनो तकनीक, परमाणु अनुसंधान, पृथ्वी एवं पर्यावरण विज्ञान, गणित, इंजीनियरिंग और कृषि विज्ञान जैसे चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भारतीय महिला वैज्ञानिक अपनी छाप छोड़ रही हैं। हालाँकि, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग एवं गणित के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या समानुपातिक नहीं है। अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते महिलाओं के लिए विज्ञान की दुनिया में मुकाम हासिल करना कभी आसान नहीं रहा है। कुछ दशक पहले महिलाओं के लिए यह स्थिति कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण थी, लेकिन बीसवीं सदी के उस दौर में भी कुछ महिलाओं ने चुनौतियों को पीछे छोड़कर विज्ञान का दामन थामा और ऐसी लकीर खींची, जिसे आज भी दुनिया याद करती है। ऐसे में उन महिला वैज्ञानिकों का स्मरण आवश्यक है, जिनका कृतित्व और व्यक्तित्व भावी पीढ़ियों के लिए एक मिसाल और प्रेरणा है।

अन्ना मणि (23 अगस्त 1918 – 16 अगस्त 2001) : आठ साल की उम्र में एक बच्ची ने उपहार में कान के हीरे के बुंदे ठुकराकर अपने लिए 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' माँग लिया था। त्रावणकोर के एक संपन्न परिवार में जन्मी यही बच्ची आगे चलकर अन्ना मोदयिल मणि (अन्ना मणि) के नाम से प्रसिद्ध हुई, जो वास्तव में विज्ञान की दुनिया में किसी मणि से कम नहीं थी। यह विडंबना है कि भारत में आम लोग उनके विषय में बहुत अधिक नहीं जानते। वर्ष 1930 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त वाले भारतीय वैज्ञानिक सी.वी. रामन के विषय में तो लोग बखूबी जानते हैं, लेकिन अन्ना मणि को नहीं, जिन्होंने रामन के साथ मिलकर काम किया। मूल रूप से भौतिकशास्त्री अन्ना मणि एक मौसम वैज्ञानिक थीं। वह भारत के मौसम विभाग के उपनिदेशक के पद पर रहीं और उन्होंने मौसम विज्ञान उपकरणों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सौर विकिरण, ओजोन और पवन ऊर्जा माप के विषय में उनके अनुसंधान कार्य महत्त्वपूर्ण हैं। इन विषयों पर उन्होंने कई शोधपत्र प्रकाशित किए हैं। अन्ना मणि के मार्गदर्शन में ही उस कार्यक्रम का निर्माण संभव हुआ, जिसके चलते भारत मौसम विज्ञान के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बन सका। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ मानसून को भारत का 'वित्त मंत्री' कहा जाता है, वहाँ फसलों के लिए मौसमी पूर्वानुमान कितना महत्त्वपूर्ण है, यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान के प्रति लगाव या जिज्ञासु प्रवृत्ति का परिचय अन्ना मणि ने अपने बचपन में ही प्रदर्शित कर दिया था। शुरू में वे चिकित्सा और भौतिकी में से एक विकल्प को चुनने को लेकर दुविधा में थीं, लेकिन अंततः उन्होंने भौतिकी को चुना। वर्ष 1940 में

उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव आया, जब भारतीय विज्ञान संस्थान (आईआईएससी) ने उन्हें शोध छात्रवृत्ति प्रदान की और वह रामन की टीम के साथ काम करने लगीं। उन्हें जीवन में कई पुरस्कार मिले। वायकोम सत्याग्रह के दौरान अन्ना मणि महात्मा गांधी के काम से बहुत प्रभावित हुईं। राष्ट्रवादी आंदोलन से प्रेरित होकर उन्होंने केवल खादी के कपड़े पहनना शुरू किया। वह पहले आयुर्विज्ञान पढ़ना चाहती थीं, पर अंत में, क्योंकि उन्हें भौतिक विज्ञान में ज्यादा दिलचस्पी थी, उन्होंने वही पढ़ने का निर्णय लिया और अपनी मेधा से राष्ट्रीय आंदोलन में अद्भुत योगदान दिया।

असीमा चैटर्जी (23 सितम्बर 1917 – 22 नवंबर 2006) : यदि अन्ना मणि उच्च कोटि की भौतिकशास्त्री थीं, तो यही उपाधि रसायनशास्त्र के क्षेत्र में असीमा चैटर्जी को निर्विवाद रूप से दी जा सकती है। वर्ष 1917 में कलकत्ता के एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मीं असीमा चैटर्जी ने 'विनका एल्कोलाइड्स' पर उल्लेखनीय काम किया, जिसका उपयोग मौजूदा दौर में कैंसर की दवाएँ बनाने में किया जाता है। उनकी तमाम खोजों से वनस्पतियों को भी बहुत लाभ पहुँचा। उन्होंने कार्बनिक रसायन यानी ऑर्गेनिक केमिस्ट्री और फाइटोमेडिसिन के क्षेत्र में शानदार उपलब्धियाँ हासिल कीं। अपने शोध के जरिये उन्होंने मिर्गी और मलेरिया जैसी बीमारियों के लिए कारगर नुस्खे विकसित किए, जिन्हें आज भी दवा कंपनियाँ बेच रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र में उनके इस योगदान को उनके जीवनकाल में ही खूब सम्मान भी मिले। वर्ष 1962 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उन्हें सी.वी. रामन पुरस्कार से नवाजा। वहीं वर्ष 1975 में उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। वर्ष 1982 से 1990 तक उन्हें राज्य सभा के लिए नामित किया गया था। 22 नवंबर, 2006 को उनका निधन हो गया।

कमल रणदिवे (15 दिसंबर 1905 – 11 अगस्त 1970) : जीव वैज्ञानिक कमल रणदिवे को विज्ञान के प्रति लगाव पुणे के विख्यात फर्ग्युसन कॉलेज में अपने प्रोफेसर पिता से विरासत मे मिला था। देश में कैंसर के उपचार की व्यवस्था को शुरू करने में उनका अहम योगदान माना जाता है। अमेरिका के प्रतिष्ठित जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालय से पीएचडी करने के बाद वह भारतीय कैंसर शोध केंद्र से जुड़ीं, जहाँ उन्होंने कोशिका कल्चर का अध्ययन किया। चूहों पर प्रयोग से उन्होंने कैंसर प्रतिरोधी किस्म विकसित की। इससे उन्हें कुष्ठ रोग का टीका विकसित करने की दिशा में कुछ अहम सुराग मिले। कुष्ठ रोग निवारण के क्षेत्र में काम के लिए ही उन्हें देश के दूसरे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। कमल रणदिवे का मूल नाम कमल समर्थ था और उनका योगदान केवल शोध और अनुसंधान तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने भारतीय महिला वैज्ञानिक संघ की स्थापना भी की, जिसने आने वाली पीढ़ी की महिलाओं में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार कर उन्हें इस क्षेत्र से जुड़ने के लिए अभिप्रेरित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। (पटैरिया, 2010)।

ई. के. जानकी अम्माल (4 नवंबर, 1897–7 फरवरी, 1984): वर्ष 1897 में केरल के तेल्लिचेरी में जन्मीं एदवालेथ कक्काट जानकी अम्माल एक उच्च कोटि की पादप विज्ञानी थीं। उन्होंने गन्ने की एक विशेष मीठी किस्म को विकसित किया। उन्होंने साथी वैज्ञानिकों संग गन्ने की ऐसी किस्म भी विकसित की, जो कई तरह की बीमारियों और सूखे की स्थिति में भी पनप सके। उन्होंने हिमालय क्षेत्र में पेड़-पौधों के संकरण का गहन अध्ययन किया। वास्तव में, जंगली अवस्था में पौधों में संकरण की प्रकिया को समझने में उनके शोध-अध्ययन ने अहम भूमिका निभाई। वर्ष 1945 में उन्होंने सीडी डार्लिंगटन के साथ मिलकर 'द क्रोमोजोम एटलस ऑफ कल्चर्ड प्लांट्स' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें पौध पोलिप्लाइडी पर अपने अनुभवों और संकरण की प्रक्रिया में उसके गहरे निहितार्थों को बहुत व्यापक रूप में समझाया है। उनका योगदान केवल शोध-अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि आजादी के तुरंत बाद देश से पलायन कर रही वैज्ञानिक प्रतिभाओं को देश में रोकने और स्थानीय प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देने के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवारहलाल नेहरू के आग्रह पर उन्होंने भारतीय बोटैनिकल सोसायटी का पुनर्गठन किया। उन्हें 1957 में पद्मश्री पुरस्कार से नवाजा गया। यह सम्मान पाने वालीं वे देश की पहली महिला वैज्ञानिक थीं। उन्हें सम्मान देते हुए मैगनोलिया नाम के पौधे की एक प्रजाति-मैगनोलिया कोबस जानकी अम्माल का नामकरण उनके नाम पर किया गया। वे बोटैनिकल सर्वे ऑफ इंडिया की निदेशक भी रहीं। वर्ष 1984 में 87 साल की उम्र में उनका निधन हो गया। वनस्पति शास्त्र की फाइटोबायोलॉजी, एथनोबॉटनी, फाइटोजियोग्राफी और क्रम विकास अध्ययन में उनके योगदान को याद किया जाता है, जो आज भी शोधार्थियों का मार्गदर्शन कर रहा है (यादव, 2003)।

कमला सोहोनी (18 जून, 1911 – 28 जून, 1998) : कमला सोहोनी दिग्गज वैज्ञानिक प्रोफेसर सी.वी. रामन की पहली महिला छात्र थीं। हालाँकि, उनके लिए यह आसान नहीं रहा, जिसका उन्होंने अपने संस्मरणों में उल्लेख भी किया। कमला सोहोनी पहली भारतीय महिला वैज्ञानिक भी थीं, जिन्होंने पीएचडी की डिग्री हासिल की थी। कमला सोहोनी को उनकी उस खोज के लिए याद किया जाता है, जिसमें उन्होंने प्रत्येक प्लांट टिशू में साइटोक्रोम-सी नाम के एंजाइम का पता लगाया था। उन्होंने नोबेल विजेता फ्रेडरिक हॉपकिंस के साथ भी काम किया।

आनंदीबाई गोपालराव जोशी (31 मार्च, 1865 – 26 फरवरी, 1887) : आनंदीबाई गोपालराव जोशी भारत की पहली महिला फिजीशयन थीं। उस जमाने में उनकी शादी महज 9 साल की उम्र में हो गई थी। वे 14 साल की उम्र में माँ भी बन गई थीं, लेकिन उन्होंने अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को दम तोड़ने नहीं दिया। किसी दवाई की कमी के कारण उनके बेटे की कम उम्र में ही मृत्यु हो गई। इस घटना ने उनके जीवन को बदलकर रख दिया और उन्हें दवाओं पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने वुमंस मेडिकल कॉलेज, पेंसिलवेनिया से पढ़ाई की थी। जीवन में तमाम मुश्किलों के बावजूद उनका हौसला कभी डिगा नहीं और उन्होंने अपने संघर्ष से सफलता की एक नई गाथा लिखी।

डॉ. दर्शन रंगनाथन (4 जून, 1941-4 जून, 2001) : वर्ष 1941 में जन्मीं दर्शन रंगनाथन ने जैव रसायन यानी बायो-केमिस्ट्री क्षेत्र में अहम योगदान दिया। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस कॉलेज में व्याख्याता रहीं और रॉयल कमीशन फॉर द एक्जिबिशन से छात्रवृत्ति मिलने के बाद शोध के लिए अमेरिका गईं। भारत लौटकर उन्होंने सुब्रमण्या रंगनाथन से विवाह किया, जो आईआईटी कानपुर में पढ़ाते थे। उन्होंने आईआईटी कानपुर में ही अपने शोधकार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास किया, लेकिन कुछ गतिरोधों के कारण सफल नहीं हो सकीं। फिर भी ये गतिरोध उन्हें प्रोटीन फोल्डिंग जैसे महत्त्वपूर्ण विषय में शोध करने से नहीं रोक सके। वह 'करंट हाईलाइट्स इन ऑर्गेनिक केमिस्ट्री' नामक

शोध पत्रिका के संपादन कार्य से भी जुड़ी रहीं। वे राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की फेलो भी रहीं। साथ ही, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी, हैदराबाद की निदेशक भी रहीं। वर्ष 2001 में उनका निधन हो गया।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में राजनीतिक आंदोलनकारियों, सशस्त्र क्रांतिकारियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के योगदान के अतिरिक्त, स्वाधीनता की चेतना जगाने और स्वतंत्र देश के भविष्य-निर्माण की आधारशिला रखने वाले वैज्ञानिकों या विज्ञान संचारकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत जब अपनी आजादी के लिए लड़ रहा था, तो उस दौर के कई वैज्ञानिक सिर्फ प्रयोगशालाओं तक ही सीमित नहीं थे। देश और दुनिया में बाहर क्या हो रहा है, इस बात से वे भलीभाँति वाकिफ थे। उनके योगदान के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। बेहतर होगा कि उनके योगदान को उजागर किया जाए। विज्ञान को केवल वैज्ञानिकों पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए, क्योंकि यह जीवन के हर पहलू से जुड़ा है। आध्यात्मिक दिग्गजों ने भी भारतीय विज्ञान में बहुत बड़ा योगदान दिया है। स्वामी विवेकानंद ने बेंगलूरु में भारतीय विज्ञान संस्थान की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आजादी के अमृत महोत्सव के निमित्त विज्ञान प्रसारकों के योगदान से नयी पीढ़ी को परिचित कराने के लिए विशेष कार्यक्रमों का आयोजन समस्त शिक्षा संस्थानों में ही नहीं, बल्कि जन सामान्य के बीच भी किया जाना आवश्यक है। भारत की युवा पीढ़ी में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में ये प्रयास बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। इसके अलावा भारत की युवा पीढ़ी को इस बात का भी अहसास कराना आवश्यक है कि भारत में विज्ञान की समृद्ध परंपरा है, जिस पर उन्हें गर्व करना चाहिए।

संदर्भ

इंडिया साइंस वायर. (2021, अगस्त 04). *विज्ञान प्रसार* https://vigyanprasar.gov.in से पुन:प्राप्त.

पटैरिया, एम. (2010). *विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

भारत की संपदा. (2005, जून 20). *विकीपीडिया* https://hi.wikipedia.org/wiki/ को पुन:प्राप्त.

भारत की संपदा. (2019, जुलाई 30). *विज्ञान संचार*. https://dst.gov.in/hi/नेशनल-काउंसिल-फॉर-साइंस-एंड-टेक्नोलॉजी-कम्युनिकेशन-एन-सी-एस-टी-सी से दिनांक 16 अगस्त, 2021 को पुन:प्राप्त.

यादव, आर. (2003). *ग्रामीण विकास*. नई दिल्ली : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस.

सिंह, बी. (2020, अगस्त 15). जाँबाज जवानों से कम नहीं थे आजादी के दीवाने ये भारतीय वैज्ञानिक. *आजतक* https://www.aajtak.in/education/photo/know-about-patriot-indian-scientists-independence-day-15-august-atsn-1113031-2020-08-15-1 से दिनांक 15 अगस्त, 2021 को पुनःप्राप्त.

हाशमी, ए. एच. (1996). *संचार*. दिल्ली : पुस्तक महल प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 33(2) : 118-125, जुलाई-दिसंबर 2021
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत की आजादी का अमृत महोत्सव
विशेषांक

जनसंवाद और स्वाधीनता आंदोलन : जयशंकर प्रसाद की कहानियों का मूल्यांकन

सत्यप्रकाश सिंह[1]

सारांश

जयशंकर प्रसाद ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से उन मूल्यों को ढूँढ़ने और स्थापित करने का प्रयास करते हैं, जिनकी स्वाधीनता संघर्ष में अपनी तरह की अनिवार्य भूमिका बनती है। उनका समय सीधे-सीधे उनकी कहानियों में नहीं आता है, किंतु वे कहानियाँ उसी दौर की निर्मिति हो सकती हैं। हालाँकि, ये कहानियाँ युगीन सच्चाइयों का, यथार्थवादी हलचलों का समावेश सीधे-सीधे करती बहुत कम दिखाई पड़ती हैं, किंतु समय और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व से भागती नहीं हैं। सूक्ष्म स्तर पर वे उन्हीं मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास करती हैं, जिनसे वर्तमान को एक दिशा मिल सके। वर्तमान के पराजय-बोध को अतीत की जीत में बदलकर जनमानस को आत्मविश्वास प्रदान करती हैं और अँग्रेजों के शासन से ही नहीं, अपितु धर्म, समाज के उन बंधनों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करती हैं, जो स्वतंत्रता की संकल्पना को सीमित करते हैं। हिंदी साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन की रूपरेखा बिना उनकी कहानियाँ पूरी नहीं हो सकती हैं।

मुख्य शब्द : स्वाधीनता, पराधीनता, आत्मगौरव, राष्ट्रीय आंदोलन, अस्मिता, स्वाभिमान

प्रस्तावना

स्वतंत्रता का संबंध अनिवार्य रूप से स्वाधीनता की चेतना से है। स्वाधीन चित्त ही स्वतंत्रता की कसौटी हो सकती है, जिसके निर्माण में किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना का बहुमूल्य योगदान होता है। इसी स्तर पर किसी राष्ट्र की पहचान भी सुनिश्चित होती है। इसलिए स्वाधीनता किसी भी राष्ट्र और जाति के लिए ज्यादा गहरी और व्यापक अवधारणा है। वह मनुष्य की बुनियादी जरूरत है। परिस्थिति विशेष में गुलाम हो जाना अलग बात है, किंतु जब कोई मनुष्य स्थायी रूप से गुलामी स्वीकार करके उसे अपनी नियति मान लेता है, तब वह मनुष्य नहीं रह जाता है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति 'स्व' को समाप्त करके किसी व्यवस्था या विचार की अधीनता स्वीकार कर लेता है। अँग्रेजों ने हमारी चेतना और भाषा को बदल कर भारत में ही अँग्रेज पैदा करने की नीति का क्रियान्वयन किया। वे हमसे हमारी 'चेतना', हमारा 'स्व' छीन लेना चाहते थे, ताकि स्वतंत्रता का विचार पैदा ही न हो सके। आज अँग्रेज हमारे राजनीतिक शासक नहीं हैं, किंतु बाजार के माध्यम से वे आज भी दुनिया की बागडोर सँभाल रहे हैं। औपनिवेशिक मानसिकता के कारण, हम भारतीय दिखते हैं, हैं नहीं। राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने से पहले देश पराधीन था, किंतु लोग स्वतंत्र थे, स्वतंत्रता के पश्चात् देश तो स्वतंत्र हुआ, किंतु लोग गुलाम हो गए। इसका एक बड़ा कारण स्वाधीनता की चेतना का अभाव है। स्वतंत्रता को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए 'स्व' की तलाश आवश्यक है। यह कार्य जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ बखूबी करती हैं। प्रसाद की शुरुआती कहानियाँ 'इंदु' पत्रिका के माध्यम से सामने आती हैं। 1907 से प्रकाशित इस पत्रिका के संपादक अंबिका प्रसाद गुप्त थे, किंतु पत्रिका की प्रेरणा के केंद्र में जयशंकर प्रसाद थे। 'इंदु' के प्रथम अंक की प्रस्तावना में कहा गया है—''जातीय उन्नति के लिए साहित्य की उन्नति की आवश्यकता होती है। अर्थात् जातीय उन्नति के सवाल से साहित्य की उन्नति का सवाल जुड़ा हुआ है। स्पष्ट है कि पत्रिका का प्रकाशन समाज की जड़ता को तोड़ने, 'स्व' की तलाश और स्वाधीनता की चेतना का प्रचार-प्रसार करने के लिए किया गया था। प्रसाद 'इंदु' पत्रिका को जनसामान्य से संवाद का मंच बनाते हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से स्वतंत्रता की संकल्पना को और संभावनाशील बनाते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख प्रसाद की कहानियों की 'स्वातंत्र्य' चेतना पर आधारित है, जो उस समय की सत्ता-संरचना और उसके मध्य स्वतंत्रता के अनेक संदर्भ तलाशती हैं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख जयशंकर प्रसाद की कहानियों और उन पर उपलब्ध साहित्य समीक्षा के आधार पर लिखा गया है। इसके लिए पुस्तकों, शोध लेखों तथा इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है। विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक शैली पर आधारित इस शोध लेख में स्वतंत्रता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में स्वाधीनता के नवीन सूत्र अन्वेषित करती कहानियों और उनसे जुड़े तथ्यों को शामिल किया गया है।

स्वतंत्रता आंदोलन और जयशंकर प्रसाद

भारत का स्वतंत्रता संग्राम 'स्वाधीनता' की आकांक्षा का प्रतिबिंब है, इसलिए राजनीतिक मुक्ति तक सीमित न रहकर सभी तरह की मुक्ति की संकल्पना प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता संग्राम दो स्तरों पर लड़ा गया। एक, साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था से और दूसरा, भारतीय समाज की अपनी कमियों तथा सामाजिक कुरीतियों से। दोनों स्तरों पर मुक्ति ही वास्तविक स्वतंत्रता हो सकती है, इस विचार के साथ राजनीतिकर्मी, साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार अपने संसाधनों द्वारा स्वाधीन चेतना का प्रसार करते हैं और राष्ट्र तथा मनुष्यता की वास्तविक मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। इसी तरह का प्रयास जयशंकर प्रसाद अपनी कहानियों के माध्यम से करते हैं। 'इंदु' पत्रिका में छपी उनकी कहानियाँ लोगों से संवाद करती हुई उन्हें सोच-समझ के स्तर पर स्वाधीन बनाने का प्रयत्न करती हैं। मानसिक स्वाधीनता की यह साधना स्वतंत्रता आंदोलन को अपनी तरह से प्रभावित करने का कार्य करती है। अधिकतर कहानियाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भाववादी शैली में रची गई हैं, किंतु इस भाववाद का पुख्ता वैचारिक आधार है,

[1]सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल : satyaraghuvanshi@gmail.com

जिस पर आगे विचार किया गया है। उनकी कहानियाँ प्रेम और त्याग जैसे चारित्रिक गुणों पर विशेष बल देते हुए समर्पण और बलिदान जैसे मूल्यों की स्थापना करती हैं। प्रेमचंद और प्रसाद एक ही समय कहानियाँ लिख रहे थे और उसके माध्यम से अपने समय और उसके यथार्थ का अन्वेषण कर रहे थे। दोनों की कहानियाँ अलग परिवेश की सृष्टि करती हैं। प्रेमचंद जहाँ सामाजिक जीवन की समस्याओं को कहानी के केंद्र में लाते हैं, वहीं जयशंकर प्रसाद ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से उन मूल्यों को ढूँढ़ने और स्थापित करने का प्रयास करते हैं, जिनकी स्वाधीनता संघर्ष में अपनी तरह की अनिवार्य भूमिका बनती है।

अतीत का सार्थक उपयोग

प्रसाद की कहानियाँ भारत की पराधीनता को आधार बनाकर लिखी गई हैं। पराधीनता से मुक्ति के लिए उस दौर के राजनीतिकर्मी, साहित्यकार, पत्रकार की अपनी रणनीतियाँ हैं, कार्यक्रम हैं। प्रसाद उनसे संघर्ष के लिए स्वर्णिम अतीत और भारतीय संस्कृति को आधार बनाते हैं और वर्तमान की हारी हुई जनता के समक्ष उसके स्वर्णिम अतीत का गुणगान करते हुए उसे संवलित और सक्रिय बनाने का कार्य करते हैं। नामवर सिंह 'छायावाद' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि 'पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनरुत्थान-भावना से होता है।' अतीत के संदर्भ, अतीत की सामग्रियाँ नए संदर्भ में जब प्रकाश में आती हैं, तो स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए आती हैं और वर्तमान को अपने ढंग से प्रभावित करती हैं। ऐतिहासिक संदर्भों और सांस्कृतिक परंपरा ने भारतवासियों को अपने भूले हुए अतीत का परिचय दिया और उनमें गौरव का भाव जाग्रत किया। अपनी बात को स्वतंत्रता आंदोलन पर केंद्रित करते हुए वे लिखते हैं—"भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण-युग का सहारा लिया। वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया। हीनता का भाव दूर हुआ। जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी। इस तरह अतीत के पुनरुत्थान ने संपूर्ण देश में एक जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया" (सिंह, 1955)। प्रसाद की कहानियाँ भारतीय संस्कृति और इतिहास की समृद्धि, शक्ति और उदात्तता का विराट स्वरूप प्रस्तुत करते हुए देशप्रेम की भावना को जाग्रत करती हैं और अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करने के लिए प्रेरित करती हैं। इन कहानियों की चेतना अँग्रेजी शासन से मुक्ति तक सीमित नहीं है, अपितु जीवन की सर्वतोमुखी मुक्ति की तलाश तक विस्तारित है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के समावेश का अभिप्राय अतीतजीवी होना नहीं, अपितु वर्तमान को अतीत की चेतना से संपूर्तित करना है। प्रसाद ने स्मृति बोध के आधार पर इतिहास के स्वर्णिम पन्नों को 'ऐसा ही होता रहा है' के रूप में प्रस्तुत करते हुए, वर्तमान की निराशा का प्रत्युत्तर अतीत की जीत से देने का प्रयास किया है। एक साहित्यकार का समय बोध इसी रूप में इतिहासकार के समय बोध से अलग और सृजनशील होता है। उसका इतिहास बोध मनुष्यता की प्रगति को प्रशस्त करता है, क्योंकि साहित्य सामाजिक आदर्शों को निर्मित करता है। किसी समाज का उत्थान और पतन उसी आदर्श पर निर्भर करता है। प्रेमचंद लिखते हैं—"साहित्य सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहास में नहीं हो सकता। घटनाओं की तालिका इतिहास नहीं है और न राजाओं की लड़ाइयाँ ही इतिहास हैं। इतिहास जीवन में विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है और जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है" (आनंद, 1996)। साहित्य का आधार जीवन है। बड़ी रचना वही होती है जो अपने समय में मनुष्य के प्रत्येक प्रकार की मुक्ति के लिए संघर्ष करती है। प्रसाद की कहानियाँ इतिहास का साहित्यिक उपयोग करते हुए राष्ट्र की आत्मा की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है, किंतु इतिहास यथातथ्य रूप में उनके यहाँ कहानी नहीं बनता है। प्रसाद को अतीतजीवी मानने वाले प्रायः इस तथ्य की अनदेखी कर बैठते हैं कि एक रचनाकार मूलतः अपने समय की परिस्थितियों से जूझता है। प्रसाद अतीत का उपयोग वर्तमान को संवलित करने के लिए करते हैं। वर्तमान में रहते हुए अतीत की अंतर्यात्रा के माध्यम से बेहतर भविष्य की संकल्पना करते हैं।

अतीत, कल्पना और यथार्थ

प्रसाद की कहानियाँ अतीत और कल्पना का सम्मिश्रण हैं। अनेक कहानियाँ तो अतीत का महज संदर्भ भर लेती हैं। बाकी कल्पना के आधार पर रची जाती हैं। दरअसल, कहानीकार को जिन मूल्यों को रेखांकित करना होता है, संदर्भों को प्रस्तुत करना होता है, एक रचनाकार के लिए वह अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि इतिहास की किसी घटना का यथातथ्य वर्णन। इसलिए प्रसाद की कहानियों पर अतिशय कल्पनाशीलता का आरोप लगाने वालों को यह समझना आवश्यक है कि वे साहित्य लिख रहे थे न कि इतिहास। फिर, कल्पना कोई बुरी चीज नहीं है। उसने मानसिक आजादी देने का कार्य किया है। नामवर सिंह लिखते हैं—"स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारतवासियों को पूर्ण रूप से राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता भले ही न प्राप्त हुई हो, परंतु मानसिक स्वाधीनता अवश्य प्राप्त हुई है। …मानसिक स्वाधीनता विचारों और भावों के अबाध प्रसार के लिए द्वार खोल देती है" (सिंह, 1955)। विचारों और भावों के अबाध प्रसार ने मुक्ति के अनेक संदर्भों की तलाश की। उस दौर विशेष में कल्पना अपने ढंग से अपने समय को निर्मित करने का प्रयास करती है। स्वतंत्रता आंदोलन की दिशा तय करने में इस स्वाधीन मन की विशेष भूमिका है। मधुरेश 'स्वाधीनता आंदोलन और प्रसाद की कहानियाँ' नामक लेख में प्रसाद पर कई आरोप लगाते हैं। जैसे—"अपने युग की हलचलों को वे तथ्यात्मक और यथार्थवादी ढंग से अंकित करने की वैसी कोई कोशिश नहीं करते, जिससे इन हलचलों के वास्तविक स्वरूप और सूक्ष्म ब्योरों को समझने में सहायता मिल सके। पराधीनता से उपजी हताशा और पीड़ा की क्षतिपूर्ति, वे किसी कदर आत्ममुग्ध भाव से, सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारत के गौरव और गरिमा का बखान करके करते हैं" (शंभुनाथ, 1989)। मधुरेश के इस निष्कर्ष को ध्यान से पढ़ें तो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें रेखांकित की जा सकती हैं। जैसे कि प्रसाद की कहानियाँ तथ्यात्मक और यथार्थवादी नहीं हैं। सूक्ष्म ब्योरों का अभाव है। सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर वह भारत के गौरव और गरिमा का आत्ममुग्ध भाव से प्रचार करते हैं। कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को आधार बनाकर रची जाती हैं, किंतु समाज का दृष्टिगोचर यथार्थ ही रचना का आधार नहीं हो सकता है। रचना का यथार्थ सामाजिक यथार्थ से इस मायने में ज्यादा भरा-पूरा होता है कि वह सामाजिक अपूर्णताओं को भी पूरा करने का कार्य करता है। साहित्य का सत्य यथातथ्यता नहीं है। वह

मनुष्य की 'जय यात्रा' की संकल्पना है। अर्थात् 'समाज जैसा है से जैसा होना चाहिए' की यात्रा है। इसलिए वह यथास्थितिवाद को तोड़ता है। फिर साहित्य का यथार्थ सतह पर तैरती स्थूल वस्तु नहीं है, वह रचना में अंतर्निहित होता है, जिसे तलाश पाना श्रमसाध्य कार्य है। जहाँ तक सूक्ष्म ब्योरों का प्रश्न है तो प्रत्येक रचनाकार का, अभिव्यक्ति का अपना तरीका होता है। यह बात ठीक है कि सामाजिक यथार्थ प्रेमचंद की कहानियों में जिस तरह सूक्ष्म ब्योरों के साथ आता है वैसा प्रसाद की कहानियों में नहीं आता है, जबकि प्रसाद की कहानियों में व्यक्ति का मानसिक द्वंद्व और प्रतिरोध-चेतना अत्यंत सूक्ष्म ब्योरों के साथ अभिव्यक्त हुई है। जहाँ तक गौरव और गरिमा की आत्ममुग्ध अभिव्यक्ति का सवाल है, उसका जवाब मधुरेश इसी लेख में स्वतः दे देते हैं। जो उनके आशय को भी स्पष्ट करता है और अंतर्विरोध को भी। उन्होंने लिखा है—"स्वाधीनता आंदोलन के काल में जातीय इतिहास और संस्कृति के प्रति गौरव और गरिमा से मंडित दृष्टि, अस्मिता की पहचान तथा अभिव्यक्ति का शक्तिशाली माध्यम हो सकती है। जयशंकर प्रसाद अपने लेखन के आरंभिक काल से ही यह समझते हैं। ...स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान अपने इस इतिहास का स्मरण निश्चय ही एक स्फूर्तिदायक और प्रेरणाप्रद अनुभव रहा होगा। इस स्मरण में पुनरुत्थानवादी तत्त्व एकदम न हों, ऐसा नहीं है। लेकिन अधिकांश रूप में लेखक अपने जातीय अभिमान और राष्ट्रीय स्वाधीनता की रक्षा के लिए कटिबद्ध पात्रों के निर्माण द्वारा जैसे अपने ही काल में घटित हो रहे स्वाधीनता संघर्ष को बल प्रदान करता है" (शंभुनाथ, 1989)। मधुरेश यहाँ पुनरुत्थानवादी तत्त्व की बात शायद हिंदू पुनरुत्थान के संदर्भ में करते हैं, जो प्रसाद के यहाँ जातीय बोध के संदर्भ में व्यक्त हुआ है। इसका संबंध धर्म से उतना नहीं है जितना संस्कृति से है। इसलिए ये कहानियाँ हिंदी साहित्य ही नहीं, स्वाधीनता आंदोलन की विरासत के रूप में हमारे सामने आती हैं।

प्रसाद की कहानियाँ ऐतिहासिक कालखंड पर जरूर लिखी गई हैं, किंतु उनमें किसी ऐतिहासिक घटना का समावेश हो ही, यह जरूरी नहीं है। अनेक कहानियाँ सीधे-सीधे स्वतंत्रता संघर्ष के सूत्र उपलब्ध नहीं कराती हैं। इसलिए अनेक विद्वान उन कहानियों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी सामयिक हलचल से दूर की कहानी मानते हैं। मधुरेश ने 'छाया' कहानी संग्रह की कहानियों पर लिखते हुए कहा है—"इन कहानियों को पढ़कर कहीं ऐसा नहीं लगता कि ये कहानियाँ अपने इतिहास का उपयोग अपने वर्तमान के लिए कर रही हों। इन आरंभिक कहानियों में प्रसाद की कहानी कला के ऐसे अनेक तत्त्व उपलब्ध हैं, जो आगे चलकर विकास पाते हैं। निःसंदेह उनके ऐतिहासिक विकास-क्रम की दृष्टि से भी ये महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। लेकिन यहाँ इतिहास का अपने राष्ट्रीय संदर्भों में उपयोग का कोई आग्रह नहीं दिखाई देता। इनमें से अधिकांश कहानियाँ प्रेम के उदात्त रूप को उद्घाटित करने के साथ ही, उसके लिए सब कुछ बलिदान कर देने की भावना पर जोर देने वाली हैं" (शंभुनाथ, 1989)। 'तानसेन' कहानी में रामप्रसाद के गायन से प्रसन्न होकर मुगल सरदार जब उससे कुछ माँगने को कहता है तब रामप्रसाद अपनी प्रतिस्पर्धिनी सौसन को माँगता है। सौसन रानी से अपनी मुक्ति माँगकर रामप्रसाद का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है। मुगल सरदार उसको सौसन से धर्मानुसार विवाह करने की अनुमति प्रदान करता है। देखा जाय तो यह प्रतिस्पर्धा पर प्रेम की स्थापना की कहानी है, जहाँ दोनों का सामर्थ्य उन्हें करीब लाने का कार्य करता है। रामप्रसाद, जो अब तानसेन बन चुका है, द्वारा यह कहना कि अब से हमारा धर्म प्रेम है, प्रेम को युगीन मूल्य के रूप में स्थापित करता है। स्वतंत्रता आंदोलन केवल अँग्रेजों से मुक्ति का आंदोलन नहीं रहा। वह एक सांस्कृतिक आंदोलन था। जिसमें भारतीय संस्कृति और परंपरा के उन मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा की गई, जो पाश्चात्य सभ्यता की 'एंटी थीसिस' थे ही, भारतीयता की पुनःस्थापना करने वाले भी थे।

अभिजात्य वर्ग का अँग्रेजों से स्वाभाविक जुड़ाव

प्रसाद की कहानी 'ग्राम' जमींदारी और महाजनी संस्कृति का यथार्थ चित्रण करती है। ग्राम जीवन की विडंबना को रेखांकित करती हुई यह कहानी तत्कालीन जमींदारों के अँग्रेजी शासन के प्रति लगाव और व्यवहार के स्तर पर अनुकरण के कारण उपजते वर्ग भेद के संकट पर विचार करती है। जमींदार, सामंत और समाज का प्रभु-वर्ग अँग्रेजी शासन के प्रति लगाव का भाव रखते थे। उन्हें लगता था कि उनके वर्गीय हित अँग्रेजों के शासन में अधिक सुरक्षित रहेंगे। इसलिए शुरूआती दौर में वे स्वतंत्रता आंदोलन से दूर ही रहे, किंतु सामान्य जनता के संघर्ष के कारण उन्हें भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में आंदोलन का समर्थन करना पड़ा। मोहनलाल की वेश-भूषा और उसका व्यवहार इस तथ्य की तरफ इशारा करता है। प्रसाद लिखते हैं—"विलायती पिक का वृचिस पहने, हंटिंग कोट, धानी रंग का साफा, अँग्रेजी, हिंदुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अंग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं" (सिंह, 2005)। स्त्री को ट्रेन के सेकेंड क्लास में चढ़ने से रोकते हुए, अपना हंटर घुमाते हुए उनका स्टेशन से बाहर निकलना और अँग्रेजी काठी से सजे हुए घोड़े पर सवार होकर निकल जाना उनके वर्ग चरित्र और भारत की वर्गीय असमानता को स्पष्ट करता है। यह प्रसाद की शुरुआती दौर की कहानी है जो स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों को पकड़ने का प्रयास करती है। "बालिकाएँ स्वच्छंद भाव से क्रीड़ा कर रही हैं। अकस्मात् अश्व के पद-शब्द ने उन सरला कामिनियों को चौंका दिया। वे सब देखती हैं, तो हमारे पूर्व-परिचित बाबू मोहनलाल घोड़े को रोककर उस पर से उतर रहे हैं। वे सब उनका भेष देखकर घबड़ा गईं और आपस में कुछ इंगित करके चुप रह गईं" (सिंह, 2005)। एक ऐसा भेष, जो एक पूरे वर्ग को किसी व्यक्ति या वर्ग से कमतर या डर कर रहने को मजबूर करता हो, वहाँ स्वाधीनता आंदोलन की क्या रूपरेखा हो सकती है, यह उस समय के राजनीतिज्ञों की ही नहीं, संस्कृतिकर्मियों की भी चिंता रही है। हालाँकि, समस्या तब और पकड़ में आती, जब गाँव सही पकड़ में आता। प्रसाद के गाँव रोमानियत से भरे हुए हैं। वर्णन करते हुए उनकी दृष्टि भी रोमानी हो जाती है। जमींदारी प्रथा को लेकर कोई नाराजगी भी इस कहानी में नहीं दिखाई पड़ती है। स्त्री के पति के प्रति कुंदनलाल की धूर्तता उसके पति की मृत्यु का कारण है, जिसको लेकर उसके मन में क्षोभ है, किंतु वह उस दूसरे जमींदार को धर्मात्मा मानती है, जिन्होंने बहुत 'सामान्य कर' पर उसे खेती के लिए भूमि दी है। प्रसाद का जमींदारी प्रथा से कोई रोष नहीं दिखाई पड़ता है, किंतु उन्होंने महाजनों के पास गिरवी रखी जाने वाली झूठी शान-शौकत वाली जमींदारी की विसंगतियाँ तथा उसके दिन लदने की घोषणा इस कहानी से जरूर कर दी थी। मोहनलाल, जिसने अँग्रेजों का आदर्श ओढ़ रखा है, उसके सामने प्रसाद उस किशोरी की माँ को खड़ा करते हैं। दोनों दो दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाले

पात्र हैं। मोहनलाल उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो मानकर चल रहा है कि अँग्रेजों के साथ रहकर ही अपने वर्गीय हितों की रक्षा की जा सकती है। जबकि वह स्त्री, जिसकी स्थिति का जिम्मेदार मोहनलाल के पिता हैं, वह जिस सहजता और संघर्ष के साथ जीवन जी रही है, वह स्त्री के सामर्थ्य का प्रतीक तो है ही, उस वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करती है, जो अपनी संपत्ति और वैभव से वंचित होकर भी आत्मसम्मान और गौरव से जीने का प्रयास कर रहा है। आत्मगौरव का यह भाव एक स्तर पर स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ जाता है और सामान्य मनुष्य के आत्मविश्वास को बढ़ाने का प्रयास करता है।

शौर्य, साहस और पक्षधरता

'सिकंदर की शपथ' कहानी में यूनानियों के बरछे की चमक से 'मिंगलौर-दुर्ग' घिरा हुआ है। प्रसाद लिखते हैं—"यूनानियों के दुर्ग तोड़ने वाले यंत्र दुर्ग की दीवालों से लगा दिए गए हैं और वे अपना कार्य बड़ी शीघ्रता से कर रहे हैं। दुर्ग की दीवाल का एक हिस्सा टूटा और यूनानियों की सेना उसी भग्न मार्ग से जयनाद करती हुई घुसने लगी, पर वह उसी समय पहाड़ से टकराए हुए समुद्र की तरह फिरा दी गई और भारतीय युवक वीरों की सेना उनका पीछा करती हुई दिखाई पड़ने लगी। सिकंदर उनके प्रचंड अस्त्राघात को रोकता पीछे हटने लगा" (प्रसाद रचनावली, 2018)। अफगानिस्तान में अश्वक वीरों के साथ, निमंत्रित भारतीय वीर, जो कि संख्या में सात हजार है, ग्रीकों की असंख्य सेना पर भारी पड़ रहे हैं। अतीत का यह प्रसंग बहुत से लोगों को स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं लगेगा, किंतु वर्तमान की हार से निराश जनमानस में उत्साह का भाव भरने के लिए इससे उचित प्रसंग की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भारतीयों का शौर्य जिस प्रकार सिकंदर के लिए चिंता का विषय है, वैसी ही चिंता तत्कालीन साम्राज्यवादी शासन की भी है। सिकंदर जब कपट से दुर्ग के सरदार को मारने में सफल हो जाता है और सरदार-पत्नी संधि को विवश हो जाती है, तब भी उसकी चिंता का कारण भारतीय वीर ही हैं। संधि के मुताबिक भारतीय वीर स्वदेश को लौट रहे हैं। दुर्ग के समीप एक पहाड़ी पर उन्होंने डेरा जमाया और भोजन का प्रबंध करने लगे, तभी एक ग्रीक सैनिक आकर उन्हें सिकंदर का प्रस्ताव देता है—"शहंशाह सिकंदर ने तुम लोगों को दया करके अपनी सेना में भरती करने का विचार किया है। आशा है इस संवाद से तुम लोग बहुत प्रसन्न होगे" (प्रसाद रचनावली, 2018)। भारतीय वीरों द्वारा सिकंदर का यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है। जिसका कारण है कि अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ देने के लिए वे तैयार नहीं हैं। परिणामस्वरूप उन पर सिकंदर की सेना का आक्रमण होता है और भारतीय वीर वीरता से लड़ते हुए सपरिवार अपने प्राणों का सर्वोच्च बलिदान देते हैं। यह कहानी साम्राज्यवादियों के छल-कपट के साथ भारतीयों के शौर्य, बलिदान और पक्षधरता में विश्वास का पक्ष प्रस्तुत करती है। अँग्रेजों का साथ न देना, अपने भाइयों से विश्वासघात न करना और मुक्ति के लिए मरने तक संघर्ष करना, यही वे मूल्य हैं जिन्हें प्रसाद वर्तमान संदर्भों में स्थापित करते हैं।

'चित्तौड़-उद्धार' राजकुलों की पारस्परिक फूट तथा उसके मध्य कर्तव्य भावना की स्थापना करने वाली कहानी है। चित्तौड़ की बाल विधवा राजकुमारी का विवाह, उसके पिता द्वारा, बदला लेने के लिए छलपूर्वक राजकुमार हमीर से कर दिया जाता है। हमीर अपने पैतृक सिंहासन का उद्धार करना चाहता है, इसलिए उसे ऐसा करने से पूर्व राजकुमारी को पूरी तरह स्वीकारने में संकोच है। अंततः राजकुमारी के सहयोग से ही वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो पाता है—"मेरे ही स्नेह से आप पिता के ऊपर चढ़ाई नहीं कर सकते और पितरों के ऋण उद्धार नहीं पा रहे हैं। इस जन्म में आपसे उद्धार नहीं हो सकता और होने की इच्छा भी नहीं। कभी, किसी भी जन्म में। चित्तौड़-अधिष्ठात्री देवी ने मुझे स्वप्न में जो आज्ञा दी है, मैं उसी कार्य के लिए रुकी हूँ। पिता इस समय चित्तौड़ में नहीं हैं, इससे यह न समझिए कि मैं आपको कायर समझती हूँ, किंतु इसलिए कि युद्ध में उनके न रहने से उनकी कोई शारीरिक क्षति नहीं होगी। मेरे कारण जिसे आप बचाते हैं, वह बात बच जाएगी" (प्रसाद रचनावली, 2018)। हमीर द्वारा चित्तौड़ का उद्धार राजकुमारी की सूझ-बूझ का परिणाम है। इस प्रकार प्रसाद राष्ट्र की मुक्ति में स्त्रियों की अनिवार्य भूमिका तलाशते हैं। यह भूमिका तलाशना उनकी रचनात्मकता का सर्वोत्कृष्ट योगदान है। मधुरेश लिखते हैं—"चित्तौर का उद्धार' लुप्त मर्यादा की पुनःप्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है। इसमें पुरुषों के साथ स्त्रियों की भूमिका के महत्त्व का संकेत भी कहानी में स्पष्ट है" (शंभुनाथ, 1989)।

साझी विरासत का यथार्थ

'सलीम' कहानी भारत की साझी संस्कृति के सुनहरे पक्ष को प्रस्तुत करती है। सलीम, वजीरी है। इस्लाम मानने वाला है और इस्लाम की एक व्याख्या के अनुसार तथाकथित काफिरों के खिलाफ है। वह मानता है कि मुसलमान होने के नाते अन्य मुसलमानों को भी अनिवार्य तौर पर उस के जैसा ही सोचना और व्यवहार करना चाहिए। यहाँ प्रसाद उसका परिचय भारत की मूल चेतना से कराते हैं और यह बताने का प्रयास करते हैं कि भारत में धर्म का आधार संप्रदाय कभी नहीं रहा है। हिंदू और मुसलमान समान संस्कृति साझा करते रहे हैं तथा एक भारत का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। नंदराम कहता है—"ओ हो, हिंदुस्तानी भाई! हम लोग हिंदुस्तान के रहने वालों को हिंदू ही सा देखते हैं। तुम बुरा न मानना। कहते हुए नंदराम ने उसका हाथ पकड़ लिया" (प्रसाद रचनावली, 2018)। सलीम की तल्खी और स्वयं को मुसलमान बताने के बावजूद नंदराम उससे यह कहता है। सलीम, जो अपने आश्रयदाता नंदराम को मारना चाहता है और प्रेमकुमारी को पाना चाहता है, उसके सामने अमीर जैसे मुसलमान खड़े होते हैं। सलीम आश्चर्यचकित है कि ये कैसे लोग हैं। दरअसल प्रसाद यही बताना चाहते हैं कि यही भारत है और ऐसे ही भारत के लोग हैं। अस्सी वजीरियों ने पूरे गाँव को घेर लिया। संकट केवल नंदराम पर ही नहीं है, अमीर जैसे मुसलमानों पर भी है। अमीर और नंदराम जिस तरह से मिलकर वजीरियों का सामना कर रहे हैं, वह संदर्भ सीधे-सीधे भारत के स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ता है। एक रचनाकार इसी तरह से लोगों के सोचने-समझने के तरीके को प्रभावित करता है। प्रसाद महज मुक्ति की संकल्पना नहीं कर रहे थे, अपितु मुक्ति की व्यावहारिक दिशा की तलाश कर रहे थे। जहाँ जीवन-मरण का युद्ध चल रहा हो, वहाँ भी प्रसाद यह बात नहीं भूलते हैं कि मुक्ति की दिशा कैसी होगी और उन्हें कैसा भारत बनाना है। अर्थात् सांस्कृतिक परंपरा के आलोक में ही वे भारत की स्वतंत्रता की संकल्पना करते हैं। तभी एक स्वाधीन भारत का अस्तित्व संभव हो सकता था। इस पुनरुत्थानवादी

चेतना को कुछ लोग हिंदू पुनरुत्थान से जोड़कर देखते हैं। लेकिन यही भारत की मूल चेतना है। हिंदू एक जीवनशैली है, संस्कार है। संप्रदाय नहीं। फिर यह विचार तो उस समय के चिंतन के केंद्र में है ही कि भारत अपनी जमीन पर खड़ा होगा अथवा विजेताओं की प्रेरणा से विकसित होगा। प्रेमकुमारी से दुर्व्यवहार करने पर अमीर उसे मार देना चाहता है, किंतु शरणागत की हत्या के लिए नंदराम तैयार नहीं होता है—"एक दिन टूटे हाथ को सिर से लगाकर जब प्रेमा को सलाम करते हुए सलीम उस गाँव से विदा हो रहा था, तब प्रेमा को न जाने क्यों उस अभागे पर ममता हो आई उसने कहा—'सलीम तुम्हारे घर पर कोई और नहीं है, तो वहाँ जाकर क्या करोगे? यहीं पड़े रहो" (प्रसाद रचनावली, 2018)। जिस प्रेमकुमारी ने उसे दुर्व्यवहार के कारण अपने छुरे से घायल किया था, वही उसे माफ करते हुए अपना आतिथ्य प्रदान करने का प्रयास करती है। भारत की सांस्कृतिक जीत में ही भारत की वास्तविक मुक्ति है, प्रसाद ऐसा मानते हैं।

मधुरेश ने 'स्वाधीनता आंदोलन और प्रसाद की कहानियाँ' नामक लेख में एक अजीब निष्कर्ष प्रस्तुत किया है—"प्रेमचंद उर्दू से हिंदी में आए थे। संभवतः इसी के परिणामस्वरूप वे स्वाधीनता आंदोलन में मुसलमानों की राष्ट्रीय भूमिका की बेहतर समझ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ...प्रसाद चूँकि भारतीय अस्मिता की खोज ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भों में करते हैं, उनके यहाँ इस सम्मिलित हिस्सेदारी का कोई बहुत स्पष्ट रूप दिखाई नहीं देता" (शंभुनाथ, 1989)। यह एक तरह से प्रेमचंद की दृष्टि से प्रसाद को देखना है। प्रसाद ने मुसलमानों को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उसमें मुसलमानों को लेकर कोई दुराग्रह नहीं दिखाई पड़ता है। 'जहाँनारा' कहानी औरंगजेब द्वारा 'दारा' का कत्ल और 'शाहजहाँ' का तख्त हथियाने की कथा को आधार बनाकर लिखी गई है। प्रसाद जहाँ औरंगजेब की क्रूरता को कहानी का हिस्सा बनाते हैं, वहीं जहाँनारा को पिता के प्रति प्रेम, सेवाभाव और सत्य के पक्षधर के रूप में चित्रित करते हैं। जहाँनारा को उन्होंने जिस स्वाभिमान और गरिमा समन्वित व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है, वह यह बताने के लिए पर्याप्त है कि प्रसाद मुसलमानों के नहीं, गलत प्रवृत्तियों के खिलाफ हैं। फिर चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। इसी लेख में मधुरेश लिखते हैं—"उनके लेखन के परवर्ती दौर में भी, 'गुंडा' जैसी कहानी में, जो 1936 में प्रकाशित उनके अंतिम संग्रह 'इंद्रजाल' में संकलित है, मुसलमान हिंदुओं के विरुद्ध और अँग्रेजों के साथ हैं। कुबरा मौलवी के साथ नन्हकू सिंह का संघर्ष उस समझ का परिणाम हो सकता है, जो भारतेंदु-युग से ही कुछ लेखकों में सक्रिय दिखाई देती है, जिसके अनुसार, मुसलमानों के प्रति हिंदुओं की कटुता का कारण सदियों से उनके द्वारा किए गए अत्याचारों में ढूँढ़ा जा रहा था" (शंभुनाथ, 1989)। कई बार निष्कर्ष पर पहुँचने की जल्दबाजी में हम ऐसी समझ का प्रदर्शन करते हैं कि स्वयं हमारी समझ प्रश्नों के घेरे में आ जाती है। अगर हम मधुरेश की ही बात मान लें, तो स्वीकार करना होगा कि उस दौर में हिंदू-मुसलमान में कोई वैमनस्य नहीं था। फिर स्वयं प्रेमचंद ने जिहाद जैसी कहानी क्यों लिखी होगी? 1930 में 'हंस' के संपादकीय में यह क्यों कहा होगा—'मुसलमान किसी प्रश्न को राष्ट्र की आँख से देखने के बजाय उसे मुस्लिम दृष्टि से देखता है।' 1931 में 'हंस' में ही मलकाना राजपूत मुसलमानों की शुद्धि विषयक लेख में सांप्रदायिक सौहार्द के लिए घर वापसी का विरोध किया है तो यह भी कहा है कि मुसलमानों को अब धर्म प्रचार नहीं करना चाहिए। एक रचनाकार अपने समय में सक्रिय अनेक धाराओं, विचारों, घटनाओं का अन्वेषण करता है। समय विशेष के नायकों और खलनायकों की पहचान करता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह किसी के खिलाफ है। सच को नजरअंदाज कर देने से समाज से वह सच्चाई समाप्त नहीं हो जाती है। जब हम स्वीकार करने की स्थिति में ही नहीं होते हैं तब किसी समस्या का समाधान प्राप्त कर पाना कठिन हो जाता है। प्रसाद सच को स्वीकार करने का साहस करते हैं।

स्वतंत्रता और सुरक्षा का द्वंद्व

'नूरी' प्रसाद की महत्त्वपूर्ण कहानी है। उसके पिता बंदी बनाए जा चुके हैं और वह अकबर के आश्रय खाने में उनकी दयापात्र है। याकूब से प्रेम करती है। याकूब, जिसके जीवन का लक्ष्य है अपनी मातृभूमि कश्मीर की मुक्ति। यही कश्मीर नूरी की भी जन्मभूमि है। याकूब, बादशाह अकबर की हत्या करने को तत्पर है। दोनों बंदी बना लिए जाते हैं। याकूब कश्मीर भेज दिया जाता है और नूरी को सजा के रूप में तहखाने में बंदी बनाया जाता है। अट्ठारह वर्ष बाद दोनों संयोगवश मिलते हैं। याकूब, जो कश्मीर के लिए बंदी बनाया गया, छूटकर अब प्रेम करने वाली नूरी से मिलना चाहता है। देश के लिए संघर्ष के बाद उसकी इच्छा नूरी को अंतिम बार देखने की है—"मेरा नाम याकूब खाँ है। मैंने अकबर के सामने तलवार उठाई और लड़ा भी। जो कुछ मुझसे हो सकता था वह कश्मीर के लिए मैंने किया। इसके बाद बिहार के भयानक तहखाने में बेड़ियों से जकड़ा हुआ कितने दिनों तक पड़ा रहा। सुना है सुल्तान सलीम ने वहाँ के अभागों को फिर से धूप देखने के लिए छोड़ दिया है। मैं वहीं से ठोकरें खाता हुआ चला आ रहा हूँ। हथकड़ियों से छूटने पर किसी अपने प्यार करने वाले को देखना चाहता था" (प्रसाद रचनावली, 2018)। यह प्रसाद की कहानी कला की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि उनके यहाँ प्रेम कई स्तरों पर सक्रिय और एक दूसरे को संवलित करता हुआ प्रकट हुआ है। सलीम के कारण फतेहपुर के तहखानों से जो कैदी छोड़े गए, उसमें नूरी भी एक है। अकबर स्वयं में व्यवस्था है। वहाँ सभी तरह की सुख-सुविधाएँ हैं। याकूब और नूरी के प्रति उसका लगाव भी है, किंतु स्वतंत्रता और मातृभूमि के प्रति स्नेह, सोने के पिंजरे से अधिक मूल्यवान होती है। सुरक्षित जीवन त्याग कर उस मूल्यवान निधि को प्राप्त करना उस दौर का मूल-मंत्र है, जो यह कहानी जनसामान्य से संवाद करते हुए स्थापित करती है।

ऐसे ही प्रेम, समर्पण और साहस की कहानी है—'इंद्रजाल'। बेला और गोली, कंजरों के दल से हैं। जो खेल दिखाकर और नाच-गाकर अपनी जीविका चलाते हैं। बेला की शादी भूरे से बचपन में तय होने के बावजूद बेला और गोली एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। कंजरों के सरदार मैकू द्वारा बेला को एक हजार रुपये में ठाकुर को बेच दिया जाता है। भूरे, जो उसका पति होने वाला है, इस अनैतिक व्यवहार का विरोध तक नहीं कर पाता है, जबकि बेला का प्रेम गोली को बेला की मुक्ति के भाव से जोड़ता है। उसे संघर्ष में शामिल होने को प्रेरित करता है। इस प्रकार कहानी बेला की मुक्ति के माध्यम से स्त्री मुक्ति से जुड़ जाती है। जिसका आधार बनता है प्रेम और साथीपन। बेला की मुक्ति दो दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण है। एक है, सामंती व्यवस्था से घुमंतू जाति का टकराना; और दूसरा है, एक पुरुष का दूसरे पुरुष के साथ रह रही स्त्री को स्वीकार करना। यहाँ एक स्त्री को अपने

रिश्ते में पुरुष नहीं 'साथी' मिलता है। यह प्रसाद की प्रेम संबंधी चेतना है। प्रसाद की नायिकाएँ सुरक्षित जीवन की आकांक्षी नहीं हैं। पिंजरा सोने का हो सकता है, लेकिन है तो पिंजरा ही—"बेला ठाकुर साहब की एकमात्र प्रेमिका समझी जाती है। अब उसकी प्रतिष्ठा अन्य कुल-वधुओं की तरह होने लगी है। नए उपकरणों से उसका घर सजाया गया है। उस्तादों से गाना सीखा है। गढ़ के भीतर ही उसकी छोटी-सी साफ-सुथरी हवेली है। ठाकुर साहब की उमंग की रातें वहीं कटती हैं। फिर भी ठाकुर कभी-कभी प्रत्यक्ष देख पाते कि बेला उनकी नहीं है" (सिंह, 2005)। बेला का उनका नहीं होना और गोली का बने रहना स्वतंत्रता की चेतना का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

नवीन और तार्किक संबंधों की तलाश है कहानी

उनके यहाँ प्रेम जीवन से भागने के बजाय जुड़ने, त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित करता है। युग की अनेक सीमाएँ उनकी कहानियों में विद्यमान हैं, किंतु अनेक बार प्रेम उन सीमाओं का अतिक्रमण करता है। 'मदन-मृणालिनी' कहानी में जाति, समुद्र यात्रा से धर्म भ्रष्ट होने का संदर्भ उठाया गया है। कहानी का अंत भी इसका कोई विशेष समाधान नहीं दे पाता है। फिर भी मृणालिनी का प्रेम मदन को जीवन में कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। मदन सफल व्यवसायी बनता है। आर्थिक रूप से कमजोर हो चुके मृणालिनी के परिवार, जिसने बचपन में उसे सहारा दिया था, की सहायता करता है। वह अपनी सारी संपत्ति मृणालिनी को सौंप कर स्वदेश प्रस्थान कर जाता है। 'छोटा जादूगर' यथार्थवादी कहानी होने के साथ आधुनिक बोध की भी कहानी है। कहानी के 'मैं' का उस छोटे जादूगर से जो संबंध बनता है, वह दया, सहानुभूति का नहीं, अपितु करुणा और विश्वास का बनता है। कहानी की कथावस्तु में गरीबी है, विडम्बनापूर्ण जीवन स्थितियां हैं, किंतु छोटा जादूगर द्वारा कहीं भी सहानुभूति लेने का प्रयास नहीं है। उस बच्चे का चरित्र जिस स्वाभिमान, आत्मसम्मान जैसे मूल्यों के साथ रचा गया है, वह हिंदी साहित्य की बड़ी उपलब्धि है। उपलब्धि इसलिए कि वह चरित्र यह सोचने का अवसर प्रदान करता है कि विपरीत परिस्थिति में भी दो व्यक्तियों के मध्य बराबरी का संबंध विकसित हो सकता है—"तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर, आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती" (सिंह, 2005)। पिता जेल में हैं। माँ बीमार है। परिस्थिति, जो कि इस कहानी में एक चरित्र ही है, वह छोटा जादूगर को उम्र से पहले बड़ा बना देती है। प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' के हामिद की तरह, जो मेले में कुछ खाने के बजाय, खिलौने लेने के बजाय अपनी दादी के लिए चिमटा लेकर आता है। दोनों कहानियों की अपनी परिस्थितियाँ हैं, किंतु प्रेमचंद हामिद का चरित्र इस तरह रचते हैं कि पाठक की सामान्य सहानुभूति उसके साथ रहे, जबकि प्रसाद छोटा जादूगर का चरित्र इस तरह रचते हैं कि उसके प्रति समानुभूति ही हो सकती है, सहानुभूति नहीं। आप उस चरित्र के साथ खड़ा होना चाहें तो बराबरी के स्तर पर ही खड़े हो सकते हैं। प्रसाद ने 'यथार्थवाद और छायावाद' नामक लेख में लिखा है—"यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है कि साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन में दुख और अभावों का वास्तविक उल्लेख" (प्रसाद रचनावली, 2018)। यहाँ प्रसाद लघुता की स्थापना तो करते ही हैं, साथ ही उसे आधुनिक बोध के अनुरूप नवीन और तार्किक चेतना से भी संयुक्त करते हैं। इस तरह सामान्य मनुष्य को कहानी में विशेषत्व और बराबरी के साथ प्रस्तुत करते हुए उसे केंद्रीयता प्रदान करते हैं।

धर्म, धर्मसत्ता और स्वतंत्रता

'देवरथ' कहानी धर्म-संस्थानों की सर्वसत्ता में कसमसाती एक भैरवी की कहानी है। जो आर्यमित्र से प्रेम करने के बावजूद उसे स्वीकार नहीं कर पाती है। आर्यमित्र यह जानकर भी उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने को तैयार है कि वह भैरवी रह चुकी है, किंतु सुजाता अपने जीवन की उस स्थिति से निकलने में असमर्थ है। वह यथार्थ, उसे नए जीवन के प्रति उत्साहित नहीं होने देता है। आर्यमित्र के माध्यम से प्रसाद उस सीमा का अतिक्रमण करने का प्रयास अवश्य करते हैं, किंतु वह अतिक्रमित नहीं हो पाता है। सुजाता कहती है—"किंतु आर्यमित्र! मैं वह अमूल्य उपहार जो स्त्रियाँ, कुलवधुएँ अपने पति के चरणों में समर्पण करती हैं, कहाँ से लाऊँगी? वह वरमाला जिसमें दूर्वा-सदृश कौमार्य हरा-भरा रहता हो, जिसमें मधूक-कुसुम-सा हृदय-रस भरा हो, कैसे कहाँ से तुम्हें पहना सकूँगी?" (भारत पुस्तक भंडार, 2018)। आर्यमित्र का प्रेम उसे उस धर्मसत्ता से टकराने का साहस प्रदान करता है। यह साहस उसके इस दृढ़ विश्वास में प्रकट होता है: "कठोर से भी कठोर मृत्यु-दंड मेरे लिए कोमल है। मेरे लिए इस स्नेहमयी धरणी पर बचा ही क्या है? स्थविर! तुम्हारा धर्मशासन घरों को चूर-चूर करके विहारों की सृष्टि करता है। कुचक्र में जीवन को फँसाता है। पवित्र गार्हस्थ्य बंधनों को तोड़कर तुम लोग भी अपनी वासना-तृप्ति के अनुकूल ही तो एक नया घर बनाते हो, जिसका नाम बदल देते हो। तुम्हारी तृष्णा तो साधारण गृहस्थों से भी तीव्र है, क्षुद्र है और निम्न कोटि की है।...तो मरूँगी स्थविर; किंतु तुम्हारा काल्पनिक आडंबरपूर्ण धर्म भी मरेगा। मनुष्यता का नाश करके कोई धर्म खड़ा नहीं रह सकता" (भारत पुस्तक भंडार, 2018)। धर्म जब संस्थानीकृत होने लगता है, तब अनेक बार वह सहज जीवन की यहाँ तक कि मनुष्यता की अवहेलना करने लगता है। सुजाता शक्ति के उस केंद्र का प्रतिरोध करती है। हालाँकि, उसका प्रतिरोध आत्मयातना तक सीमित है, बावजूद इसके कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। परमानंद श्रीवास्तव उचित ही लिखते हैं—"यह प्रतिरोधी स्वर प्रसाद की कथा भूमिका का एक जरूरी पक्ष है। प्रसाद इसे कई बार आत्मोत्सर्ग तक सीमित करते हैं। इससे प्रतिरोध का मूल्य कम नहीं हो जाता। आत्मयातना भी प्रसाद के यहाँ एक प्रकार का नैतिक प्रतिरोध है। देवरथ के भीषण चक्र से पिसती हुई सुजाता एक अनैतिक धर्मव्यवस्था को कटघरे में तो छोड़ ही आती है" (शंभुनाथ, 1989)।

नैतिकता की यह चेतना सामाजिक जागरूकता के परिप्रेक्ष्य में विकसित होती है। जिसका एक आधार धर्म भी हो सकता है। यहाँ भी धर्म का और धर्म-संस्थाओं के अधर्मयुक्त व्यवहार का द्वंद्व दिखाया गया है। ऐसी ही एक कहानी है 'विराम-चिह्न'। इस कहानी का नायक राधे, जो कि तथाकथित निम्नजाति का है, धर्मसत्ता को चुनौती देते हुए धर्म के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के मध्य असमान व्यवहार के विरुद्ध संघर्ष करता है। वह अछूतों का मंदिर में प्रवेश चाहता है, जिसे समाज का प्रभु-वर्ग संभव नहीं होने देना चाहता है। बुढ़िया धर्मभीरु है। वह उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व

करती है, जो प्रभु-वर्ग की संस्कृति को आत्मसात् कर चुकी है और मंदिर में प्रवेश को अनुचित मानते हुए अपने पुत्र राधे को मंदिर प्रवेश से मना करती है, जबकि राधे महंत के जमादार कुंजबिहारी से कहता है—"अकेले-अकेले बैठकर भोग-प्रसाद खाते-खाते बच्चू लोगों को चरबी चढ़ गई है। दरशन नहीं रे, तेरा भात छीनकर खाऊँगा। देखूँगा, कौन रोकता है" (सिंह, 2005)? राधे उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वर्ग चेतना तो है ही, यह भी ज्ञान है कि धर्म संस्थानों के पीछे एक पूरा अर्थतंत्र है, शुद्ध बनने-बनाने की पूरी संस्कृति है, जिस पर एक वर्ग-विशेष का कब्जा है। सामाजिक मुक्ति के लिए इस गढ़ का टूटना आवश्यक है। मंदिर पर भीषण संघर्ष होता है। राधे घायल होकर गिर जाता है। राधे का दल भागने लगता है। उसी समय उसकी माँ वहाँ पहुँच जाती है। राधे के साथी भी इकट्ठा होकर मंदिर में घुसने का प्रयास करते हैं। उन्हें सफलता मिलती है, किंतु राधे और बुढ़िया को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। कहानी यह बताने का प्रयास करती है कि किसी भी प्रकार का परिवर्तन जागरूकता और बदलाव में शामिल होने की माँग करता है। सामाजिक संस्थाओं की मनुष्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है, किंतु वही संस्थाएँ, जिनका निर्माण समाज के कल्याण और विकास के लिए किया गया है, समाज की बेड़िया बन गई हैं। उनसे तनाव का रिश्ता बनाना जरूरी हो जाता है। तभी मानव समाज विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। प्रेमचंद लिखते हैं—"वही संस्थाएँ जिनका निर्माण समाज में कल्याण के निमित्त किया गया था, अंत में समाज के पाँव की बेड़ियाँ बन गईं। वही दूध, जो एक मात्रा में अमृत है, उस मात्रा से बढ़कर विष हो जाता है। मानव समाज में शांति का स्थापन करने के लिए जो-जो योजनाएँ सोच निकाली गईं वह सभी कालांतर में या तो जीर्ण हो जाने के कारण अपना काम न कर सकीं या कठोर हो जाने के कारण कष्ट देने लगीं। जो पहले कुलपति था वह राजा बने। फिर इतना शक्तिशाली बन बैठा कि अपने को भगवान का कारकुन समझने लगा, जिससे बाजपुर्स (सवाल-जवाब) करने का किसी मनुष्य को अधिकार न था" (राम आनंद, 1996)। प्रेमचंद इस कथन के माध्यम से सामाजिक संस्थाओं का सत्ता विषयक चरित्र रेखांकित करते हैं।

व्यक्तिगत त्याग और बलिदान

प्रसाद की कहानियों में उनके युग की सीमा परिलक्षित होती है। जो एक स्तर पर उन कहानियों की सीमा भी हो जाती है। अनेक कहानियों में उनके नायक सामंती वर्ग से आते हैं। उनके साथ-साथ उनकी संस्कृति भी आती है। जिसको लेकर प्रसाद के मन में कोई विरोध का भाव नहीं दिखाई पड़ता है। 'गुंडा' कहानी का नायक नन्हकू सिंह जमींदार परिवार से आता है। इसलिए उसका मलूकी से या फिर मन्नू तमोली से यहाँ तक कि दुलारी से बनने वाला संबंध सामान्य नहीं कहा जा सकता है। यह कहानी सामंती व्यवस्था की कमियों की तरफ संकेत करती है। पन्ना की मुक्ति के लिए नन्हकू सिंह, जिस प्रकार अपने छोटे समूह के साथ अँग्रेजों से संघर्ष करता है और मारा जाता है, वह यह चेतना अवश्य प्रदान करता है कि संगठित सत्ता का प्रतिकार संगठित होकर ही किया जा सकता है। उबाल के साथ नहीं, सुचिंतित रणनीति के साथ किया जा सकता है। गौरतलब है कि प्रसाद कहानी में घटनाक्रम का समय 1881 बताते हैं। जाहिर तौर पर उनका इशारा 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से सीखने की तरफ रहा होगा। यह प्रसाद की कहानी कला है, जो अतीत के माध्यम से वर्तमान को संवलित करती है और बेहतर भविष्य गढ़ने की चेतना प्रदान करती है। अतीत की वर्तमानता के वे अप्रतिम रचनाकार हैं।

प्रसाद लिखते हैं—"समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्रबल के सामने झुकते देखकर काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने, एक नवीन संप्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मिटना, सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वंद्वी पर शस्त्र न उठाना, सताए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उसका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुंडा कहते थे" (सिंह, 2005)। जाहिर तौर पर इस प्रजाति से प्रसाद को सहानुभूति है। नन्हकू सिंह व्यवस्था की नजर में गुंडा है। दुलारी ने जिस प्रकार उसके चरित्र का वर्णन किया है, वह भी इसी तथ्य की तरफ संकेत करता है कि सामान्य लोगों के लिए उसके मन में करुणा है। उसका टकराव मौलवी कुबरा से दुलारी के लिए होता है। ऐसे में दुलारी का पक्ष कहानी में महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कहानी में मौलवी कुबरा अपने अतीत को नवाबी दौर से जोड़कर देखता है और उसी श्रेष्ठता की तलाश में अँग्रेजों का साथ देता है—"अभी वह सूअर की बच्ची उतरी नहीं। जाओ, कोतवाल के पास मेरा नाम लेकर कहो कि मौलवी अलाउद्दीन कुबरा ने बुलाया है। आकर उसकी मरम्मत करें। देखता हूँ तो जब से नवाबी गई, इन काफिरों की मस्ती बढ़ गई है" (सिंह, 2005)। नन्हकू सिंह यदि सामंती वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो मौलवी कुबरा भी उसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों का विवाद परिस्थितिवश होता है, किंतु मूँछों की लड़ाई में बदल जाता है। नन्हकू सिंह उसका कहीं जिक्र नहीं करता है। अँग्रेजों का साथ देने के कारण दोनों एक बार फिर आमने-सामने आते हैं और कुबरा मारा जाता है।

पन्ना और चेतसिंह की स्वतंत्रता नन्हकू सिंह अपनी जान देकर सुनिश्चित करता है। पन्ना की मुक्ति स्वयं उसकी मुक्ति है। पन्ना का प्रेम उसे अँग्रेजों से संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' में लहनासिंह, जो कि युद्ध के मोर्चे पर है, अपनी जान देकर सूबेदार और उसके पुत्र की रक्षा करता है, जबकि गुंडा कहानी में नन्हकू सिंह पन्ना और उसके पुत्र चेतसिंह को बचाने के लिए अँग्रेजों से संघर्ष करता है और मारा जाता है। दोनों प्रेम की नई परिभाषा गढ़ते हैं। प्रेम दोनों को रचता है। वही प्रेम विस्तृत होकर आगे सामाजिक लगाव का कारण बनता है। लहनासिंह परिस्थिति विशेष में होते हुए अपने प्राणों का बलिदान करता है। देशप्रेम के साथ व्यक्तिगत प्रेम की रक्षा करता है, जबकि नन्हकू सिंह परिस्थिति को ओढ़ता है। उसका व्यक्तिगत प्रेम राष्ट्र प्रेम का अनजाने ही कारण बन जाता है। सवाल है कि देश बनता कैसे है? महज सीमाओं से? नहीं। देश के लोग, देश से जुड़ी हर चीज, संस्थाएँ सभी देश हैं। सभी की मुक्ति का प्रश्न आत्मा की मुक्ति से जुड़ता है। यह कहानी इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि वह बहुत सूक्ष्म स्तरों पर राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की तलाश करती है। रमेशचंद्र शाह ने लिखा है—"आखिर नन्हकू के इस बलिदान का क्या अर्थ निकला, क्या बचा सका वह इसके द्वारा? एक खानदानी मलबे की प्रतिष्ठा? उसकी अपनी प्रेम-भावना के खंडहर? ऐसी प्रेम-भावना के, जिसके चरितार्थ होने की

कहीं कोई संभावना थी ही नहीं? ऐसे सवालों से घिरकर क्या तब हम यही सोचने को बाध्य नहीं हो जाते कि यह आत्म-बलिदान एक निरर्थक बलिदान था। निरा आत्मघात या कि आत्मजिंघासा थी यह, सिर्फ एक रोमानी-आदर्शवादी प्रेमी की ही नहीं, बल्कि एक समूचे शहर और समूची पीढ़ी की, जो भीतर से खोखली हो चुकी है" (शाह, 1981)। वास्तव में यह कहानी और वह शहर वही नहीं है, जो रमेशचंद्र शाह द्वारा समझा जा रहा है। इसके लिए कहानी के विवरणों को आत्मसात् करना होगा और प्रसाद के निहितार्थों को पकड़ना होगा। कहानी में काशी भारत का प्रतिनिधित्व करता है। सामंती समाज, अँग्रेजों का कुचक्र, स्त्री पराधीनता, अतीत की तलाश इत्यादि समस्याएँ तत्कालीन भारत की समस्याएँ हैं और उसमें भारतीय मूल्यों द्वारा मर्यादित चरित्र की तलाश प्रसाद की साहित्य साधना का मूल है। प्रेम—जो कि बंधनों का अस्वीकार करता है, जड़ताओं को तोड़ने का प्रमुख साहित्यिक यंत्र रहा है, प्रक्रिया में विश्वास करता है, परिणाम में नहीं—को प्रसाद 'युग के मूल्य' के रूप में स्थापित करते हैं। इसलिए नन्हकू सिंह का बलिदान निरर्थक नहीं है। जहाँ इस कहानी की व्याख्या नितांत व्यक्तिगत संदर्भों में करने के सूत्र प्राप्त होते हैं, वहीं यह कहानी सर्वाधिक प्रखर तरीके से स्वतंत्रता की चेतना से जुड़ती है।

निष्कर्ष

जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ स्वतंत्रता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में लिखी गई हैं। इसलिए मुक्ति के अलग-अलग संदर्भों को अन्वेषित करती हैं। वे जिस समय लिख रहे थे, अँग्रेज अपनी 'फूट डालो और राज करो' की नीति को स्थायी बनाने में लगे हुए थे। स्वतंत्रता संग्राम के समक्ष नई-नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहे थे। भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता की आवाज को दबाने के लिए वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया ही जा चुका था। 'इंदु' पत्रिका, जिसमें जयशंकर प्रसाद की शुरुआती कहानियाँ छपती थीं, वह स्वयं अँग्रेजी सरकार को 'न्यायप्रिय' जैसे विशेषणों से प्रसन्न करती रहती थी। गरम दल के स्वतंत्रता सेनानियों का पक्ष लेने से बचती थी। उसी पत्रिका को प्रसाद जनसंवाद का माध्यम बनाते हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से अँग्रेजों के 'नैरेटिव' का 'एंटी नैरेटिव' जनमानस तक संप्रेषित करते हैं। उनकी कहानियाँ सीधे-सीधे स्वतंत्रता आंदोलन की अभिव्यक्ति नहीं करती हैं, किंतु ऐसे अनेक सूत्र वहाँ उपस्थित होते हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ते हैं। उनके यहाँ परतंत्रता के कारणों का संकेत है, सही स्वतंत्रता की तलाश है और उसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष करते अनेक ऐसे चरित्र हैं, जो 'चित' को स्वाधीन करने की ओर तत्पर होते हैं और स्वतंत्रता की एक सुचिंतित रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। जहाँ पर दलित, स्त्री जैसे हाशिये का समाज भी मुक्ति का उत्सव मना सकता है। देखा जाए तो, उनकी कहानियाँ वस्तुतः सांस्कृतिक जागरण की कहानियाँ हैं। राष्ट्रीय जागरण उसी सांस्कृतिक जागरण का एक हिस्सा बनकर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उनकी कहानियों में व्यक्त हुआ है। अतीत के सार्थक उपयोग से वर्तमान को संवलित करते हुए भविष्य के निर्माण का कार्य उनकी कहानियाँ करती हैं। वर्तमान के पराजय-बोध को अतीत की जीत में बदलकर जनमानस को आत्मविश्वास प्रदान करती हैं और अँग्रेजों के शासन से ही नहीं, अपितु धर्म, समाज के उन बंधनों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करती हैं, जो स्वतंत्रता की संकल्पना को सीमित करते है। हिंदी साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन की रूपरेखा बिना उनकी कहानियों के पूरी नहीं हो सकती है।

संदर्भ

आनंद, आर. (सं.). (1996). *प्रेमचंद रचनावली*, (प्रथम संस्करण ed., Vol. 7). दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन.

प्रसाद रचनावली. (2018). दिल्ली : भारत पुस्तक भंडार.

शाह, आर. (1981). *जयशंकर प्रसाद*. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी.

शंभुनाथ (सं.). (1989). *राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और प्रसाद*. कलकत्ता : भारतीय साहित्य संस्थान.

सिंह, न. (1955). *छायावाद*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

सिंह, व. (सं). (2005). जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियां. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

आईआईएमसी द्वारा आयोजित पाँच दिवसीय सत्रारंभ समारोह में बांये से श्री ओम बिरला, श्री अनुराग ठाकुर, श्री हरिवंश नारायण सिंह, श्री आरिफ मोहम्मद खान, श्री अपूर्व चंद्र एवं प्रोफेसर संजय द्विवेदी

लोकतंत्र को सशक्त बनाता है स्वतंत्र और निष्पक्ष मीडिया : ओम बिरला

आईआईएमसी का सत्रारंभ समारोह संपन्न, प्रख्यात पत्रकारों ने किया विद्यार्थियों का मार्गदर्शन

लोकसभा अध्यक्ष, केरल के राज्यपाल और केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री हुए शामिल

जन संचार के शिक्षण, प्रशिक्षण तथा शोध के क्षेत्र में गौरवपूर्ण स्थान रखने भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) का पाँच दिवसीय सत्रारंभ समारोह 25 अक्टूबर से 29 अक्टूबर, 2021 तक आयोजित किया गया। कोविड महामारी के कारण इस वर्ष यह कार्यक्रम ऑनलाइन माध्यम से आयोजित हुआ। समारोह का शुभारंभ 25 अक्टूबर को **लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला** ने किया। आईआईएमसी के महानिदेशक **प्रो. संजय द्विवेदी**, अपर महानिदेशक **श्री आशीष गोयल** एवं सत्रारंभ समारोह के संयोजक एवं डीन (अकादमिक) **प्रो. गोविंद सिंह** सहित संस्थान के सभी केंद्रों के संकाय सदस्यों एवं विद्यार्थियों ने कार्यक्रम में हिस्सा लिया।

इस अवसर पर लोकसभा अध्यक्ष ने पत्रकारिता एवं जन संचार के विद्यार्थियों को सलाह दी कि वे तथ्यों के आधार पर खबर बनाएँ और अपनी रिपोर्टिंग से सकारात्मक और रचनात्मक संदेश पूरी दुनिया तक पहुँचाएँ। उन्होंने कहा कि भारत लोकतंत्र की जननी है और स्वतंत्र एवं निष्पक्ष मीडिया लोकतंत्र को सशक्त बनाता है। श्री बिरला ने कहा कि हमारी सभ्यता, संस्कृति और विचारों में लोकतंत्र है। विश्व में भारत का लोकतंत्र सबसे समृद्ध है। संविधान के सहारे भारतीय लोकतंत्र ने विकास और समृद्धि की यात्रा तय की है। उन्होंने कहा कि आज पूरा देश स्वतंत्रता की हीरक जयंती मना रहा है। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में व्यापक प्रगति हो रही है। पूरी दुनिया हमारी कर्मठता, नवाचार, संकल्प शक्ति और सामूहिक शक्ति से परिचित है। आजादी के आंदोलन के इतिहास की तरह आजादी के बाद की 75 वर्षों की यात्रा भारतीयों के परिश्रम, इनोवेशन और उद्यमशीलता का प्रतिबिंब है। श्री बिरला ने कहा कि सामाजिक चेतना जाग्रत करने में मीडिया की बड़ी भूमिका है। मीडिया सरकार और राजनीतिक दलों की जवाबदेही तय करता है और शासन एवं प्रशासन तथा जनता के बीच द्विपक्षीय संवाद को सुगम बनाता है। आज पत्रकारिता का दायरा बढ़ता जा रहा है। लोगों तक मीडिया की पहुंच बढ़ी है, लेकिन इसके साथ ही पत्रकारों का दायित्व भी बढ़ा है। पत्रकार का दायित्व होता है कि वह निडर भी रहे और मुखर भी रहे।

लोकसभा अध्यक्ष के अनुसार कोरोना महामारी के इस दौर में मीडिया की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों की जिंदगी बचाने में भी हम कामयाब हुए हैं, लेकिन हमें मीडिया और सोशल मीडिया के बीच के अंतर को समझना होगा। उन्होंने कहा कि सोशल मीडिया को भी जवाबदेह बनाने की आवश्यकता है। श्री बिरला ने आईआईएमसी के सभी विद्यार्थियों को संसद की कार्यवाही देखने के लिए आमंत्रित भी किया।

समस्याओं का समाधान दे रहे हैं युवा : प्रो. द्विवेदी

नवागत विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हुए आईआईएमसी के महानिदेशक **प्रो. संजय द्विवेदी** ने कहा कि भारत में मीडिया का प्रभाव

पिछले दो दशकों में तेजी से बढ़ा है। मीडिया का इस्तेमाल और उपयोग करने वाले लोग भी बढ़े हैं। तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के साथ चलते हुए मीडिया आज एक बड़े उद्योग में बदल गया है। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि देश में नई संभावनाओं के द्वार आपका इंतजार कर रहे हैं। आप समस्या का हिस्सा बनना चाहते हैं या फिर समाधान का, ये तय करना आपके हाथ में है। अगर आपकी नीयत साफ है और अपने कर्तव्य के प्रति आपकी निष्ठा है, तो आपका हर निर्णय किसी समस्या के समाधान की तरफ आपको ले जाएगा। प्रो. द्विवेदी के अनुसार सफलता और असफलता से हमारा वर्तमान और भविष्य तय नहीं होता है। जब तक भारत के युवाओं में नया करने का, रिस्क लेने का और आगे बढ़ने का जज्बा है, तब तक हमारे देश के भविष्य की चिंता करने की किसी को जरूरत नहीं है।

मीडिया ने दिलाई लोक संस्कृति को नई पहचान : मालिनी अवस्थी

कार्यक्रम के प्रथम दिन प्रख्यात लोक गायिका **सुश्री मालिनी अवस्थी** ने 'लोक संस्कृति और मीडिया' विषय पर अपनी बात रखते हुए कहा कि लोक संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि अखबारों ने लोक संस्कृति को बचाने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए हैं। इस दौरान प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता **श्री अनंत महादेवन** ने 'भारत में टीवी और सिनेमा का बदलता स्वरूप' और एनडीटीवी की पत्रकार **सुश्री नगमा सहर** ने 'टीवी न्यूज का भविष्य' विषय पर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया।

मीडिया के लिए जरूरी है 'तथ्य' और 'सत्य' : आरिफ मोहम्मद खान

समारोह के दूसरे दिन **केरल के राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान** ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि समाज को सूचना देना, सामाजिक सौहार्द बनाए रखना और लोगों के कल्याण के लिए कार्य करना प्रत्येक पत्रकार का धर्म है। पत्रकारिता के क्षेत्र में लंबे समय तक बने रहने के लिए धैर्य, परिश्रम और प्रतिभा के साथ-साथ 'तथ्य' और 'सत्य' का होना बहुत जरूरी है। श्री खान के मुताबिक मीडिया की आजादी लोकतंत्र का महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसे सँभालकर रखना है, लेकिन यह आजादी जिम्मेदारी के साथ आती है। इसलिए हम सभी को जिम्मेदार भी होना है। किसी भी जिम्मेदारी को निभाने के लिए आदर्श आचार और व्यवहार संहिता ही धर्म है। बदलते परिवेश में पत्रकारों के सामने कई चुनौतियां हैं। इसलिए पत्रकारों को स्थापित मूल्यों को ध्यान में रखकर निर्भीक तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए।

राज्यपाल श्री खान के अनुसार ऐसे समाचार या विचार, जो समाज में नफरत और निराशा फैला सकते हैं, उन्हें प्रकाशित करने से बचना चाहिए। समाज का हित और विकास ही पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य है और पत्रकारों को इसी दिशा में काम करना होगा। उन्होंने कहा कि आपके समाचार का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका मूल्यांकन आपको स्वयं करना चाहिए। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की मर्यादा को ध्यान में रखकर पत्रकारों को समाज में तथ्य पेश करने चाहिए। श्री खान ने कहा कि सूचना क्रांति ने पत्रकारिता के क्षेत्र को व्यापक और समृद्ध किया है। मीडिया के विद्यार्थियों को नकारात्मक पत्रकारिता के जाल में फंसने की बजाय, स्वस्थ पत्रकारिता सीखनी चाहिए और समाज में जो कुछ अच्छा काम हो रहा है, उसकी सूचना भी लोगों तक पहुंचानी चाहिए।

खेती धंधा नहीं, धर्म है : दत्त

राज्यपाल के अलावा खेती विरासत मिशन, पंजाब के कार्यकारी निदेशक **श्री उमेंद्र दत्त** ने 'कृषि संस्कृति और भारत' विषय पर अपनी बात रखते हुए कहा कि भारत में खेती धंधा नहीं, धर्म है। उन्होंने कहा कि खेती का मतलब बाजार नहीं होता। खेती वही, जो भोजन दे और भोजन वही, जो अच्छा स्वास्थ्य दे।

सूचनाएँ पहुँचाना दूरदर्शन का लक्ष्य : अग्रवाल

दूरदर्शन के महानिदेशक **श्री मयंक अग्रवाल** ने 'सरकारी सूचना तंत्र' विषय पर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हुए कहा कि दूरदर्शन आज अन्य चैनलों से इसलिए अलग है, क्योंकि उसका एजेंडा टीआरपी नहीं, बल्कि लोगों को सूचनाएँ पहुँचाना एवं जागरूक करना है।

आत्मविश्वास से मिलेगी जीत : यथिराज

इस अवसर पर पैरालंपिक मैडल विजेता श्री सुहास यथिराज ने आईआईएमसी के विद्यार्थियों के साथ अपनी जीत का रहस्य भी साझा किया। उन्होंने कहा कि जब तक आप खुद कोशिश नहीं करेंगे, आपको कोई आगे नहीं ले जा सकता। संघर्ष के दौरान आपको सफलता और असफलता दोनों मिलेंगी, लेकिन आपको आत्मविश्वास के साथ इन सबका सामना करना है।

चुनौतियों को 'आर्थिक अवसरों' में बदलने का समय : प्रो. शर्मा

कार्यक्रम के तीसरे दिन देश के प्रख्यात पत्रकार और शिक्षाविद विद्यार्थियों से रूबरू हुए। इस दौरान 'भारत का आर्थिक भविष्य' विषय पर चर्चा करते हुए गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, नोएडा के पूर्व कुलपति **प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा** ने कहा कि अगर भारत को आत्मनिर्भर बनना है, तो अपनी उत्पादन क्षमता और आयात की तुलना में निर्यात को बढ़ाना होगा। तकनीकी क्षेत्रों में भारतीय मानव संसाधन पूरी दुनिया में काम कर रहा है, लेकिन इन लोगों के द्वारा तैयार किए गए तकनीकी उत्पाद का फायदा मल्टीनेशनल कंपनियाँ उठाती हैं। इससे भारतीय ज्ञान और प्रतिभा से प्राप्त मुनाफा विदेशी कंपनियों को प्राप्त होता है। इसे रोकने के लिए भारत को स्वदेशी तकनीक की ओर जाना होगा। उन्होंने कहा कि अगर हम स्वदेशी उत्पाद खरीदेंगे, तो उससे न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को लाभ मिलेगा, बल्कि तकनीक के विकास में भी सहयोग होगा।

शिक्षा प्रणाली को आधुनिक बनाने पर जोर : प्रो. मित्तल

भारतीय विश्वविद्यालय संघ की महासचिव **प्रो. पंकज मित्तल** ने 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' से जुड़े महत्त्वपूर्ण विषयों से विद्यार्थियों को अवगत कराया। प्रो. मित्तल ने कहा कि भारत की शिक्षा नीति अपनी शिक्षा प्रणाली को छात्रों के लिए सबसे आधुनिक और बेहतर बनाने का काम कर रही है।

सीखे हुए कौशल को प्रयोग में लाना समय की जरूरत : प्रो. नेहरू

इस अवसर पर श्री विश्वकर्मा कौशल विश्वविद्यालय, हरियाणा के

भारतीय जन संचार संस्थान
सत्रारंभ 2021-22
दिनांक : 25 अक्टूबर से 29 अक्टूबर, 2021
आज़ादी का अमृत महोत्सव
श्री ओम बिरला
माननीय अध्यक्ष लोकसभा
श्री हरिवंश नारायण सिंह
माननीय उपसभापति राज्यसभा
श्री अनुराग ठाकुर
माननीय केंद्रीय मंत्री सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
श्री आरिफ मोहम्मद खान
महामहिम राज्यपाल केरल
डॉ. एल. मुरुगन
केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण राज्य मंत्री
श्री अपूर्व चंद्र
सचिव सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
सत्रारंभ के सितारे
हर दिन तीन सत्र
[प्रातः 10:30 से 12:00]
[दोपहर 12:15 से 01:15]
[अपराह्न 02:00 से 04:00]
श्रीमती मालिनी अवस्थी
श्री अनंत महादेवन
सुश्री अनुराधा प्रसाद
सुश्री नगमा सहर
ले. ज. (से.) सैयद अता हसनैन
मे. ज. (से.) ध्रुव कटोच
श्री सुकुमार रंगनाथन
श्री सुधीर चौधरी
प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा
प्रो. राज नेहरू
सुश्री स्मिता प्रकाश
श्री विष्णु त्रिपाठी
श्री सुहास यथिराज
प्रो. पंकज मित्तल
श्री मयंक अग्रवाल
सुश्री मनीषा कपूर
श्री संक्रान्त सानु
प्रो. निर्मल मणि अधिकारी
श्री केएनआर नंबूदिरी
श्री पराग करंदीकर
श्री राजेश रैना
श्री सुसांता मोहंती
श्री उमेंद्र दत्त
श्री सुप्रिय प्रसाद
श्री राणा यशवंत
सुश्री सिमरत गुलाटी
श्री हर्षेंद्र सिंह वर्धन
श्री कल्याण रंजन
सीधा प्रसारण :
LIVE
LIVE

कुलपति **प्रो. राज नेहरू** ने कहा कि जो कौशल हमने सीखा है, उसे समाज के प्रयोग में किस तरह लाना है, इस पर कार्य करने की आवश्यकता है। जीवन को बेहतर बनाने के लिए विद्यार्थियों को नई-नई स्किल सीखनी चाहिए।

जनता के हित में हो विज्ञापन : मनीषा कपूर

भारतीय विज्ञापन मानक परिषद की महासचिव **सुश्री मनीषा कपूर** ने कहा कि सभी विज्ञापनों के केंद्र में आम जनता होती है, इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी है कि विज्ञापन जनता के हित में हों।

"मोबाइल, इंटरनेट और डिजिटलाइजेशन से मीडिया के स्वरूप में परिवर्तन आया है। इस बदलते दौर में 'फैक्ट' और 'फेक' के बीच लक्ष्मण रेखा खींचने की जरूरत है। मीडिया को तकनीक का इस्तेमाल देश की एकता और अखंडता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए करना चाहिए।"

— अनुराग ठाकुर

'पत्रकारिता का स्वर्णिम युग'

एक विशेष सत्र में 'पत्रकारिता की चुनौतियाँ एवं अवसर' विषय पर देश के प्रख्यात पत्रकारों ने विद्यार्थियों को संबोधित किया। 'हिंदुस्तान टाइम्स' के प्रधान संपादक **श्री सुकुमार रंगनाथन** ने कहा कि आज तकनीक ने मीडिया को एक नई ताकत दी है। यह पत्रकारिता का स्वर्णिम युग है। 'एशियन न्यूज इंटरनेशनल' (एएनआई) की प्रधान संपादक **सुश्री स्मिता प्रकाश** के अनुसार आज लोग सोशल मीडिया के थोड़े से ज्ञान से ही अपनी राय बना लेते हैं। मीडिया के विद्यार्थियों को इस आदत से बचना चाहिए। 'जी न्यूज' के प्रधान संपादक **श्री सुधीर चौधरी** ने कहा कि आज इनोवेशन और टेक्नोलॉजी पर विद्यार्थियों को सबसे ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। पत्रकारिता में सफल होने का यही मूल मंत्र है। 'दैनिक जागरण' के कार्यकारी संपादक **श्री विष्णु त्रिपाठी** ने पत्रकारिता और सामाजिक सरोकारों की आवश्यकता से विद्यार्थियों को अवगत कराया। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता में जब सामाजिक सरोकार प्रबल होंगे, तभी पत्रकारिता की सार्थकता है।

'नॉलेज ऐरा' में 'नॉलेज बेस्ड इकोनॉमी' की महत्त्वपूर्ण भूमिका : हरिवंश

कार्यक्रम के चौथे दिन **राज्यसभा के उपसभापति श्री हरिवंश नारायण सिंह** ने 'मीडिया और जन सरोकार' विषय पर विद्यार्थियों से संवाद किया। उन्होंने कहा कि 'नॉलेज ऐरा' में 'नॉलेज बेस्ड इकोनॉमी' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 21वीं सदी में भारत ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था का केंद्र होगा। उन्होंने कहा कि एक पत्रकार को समाज से जुड़े प्रत्येक विषय की जानकारी होनी चाहिए। आज तकनीक ने पत्रकारों की इस क्षमता को बढ़ाया है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने पत्रकारिता की दुनिया में बड़ा परिवर्तन किया है। उन्होंने कहा कि शब्दों का सौंदर्य, विचारों का विस्तार, पत्रकारिता की गंभीरता और अभिव्यक्ति की मर्यादा, अखबारों के पन्नों में दिखाई देती है। तकनीक के इस युग में मीडिया के नए माध्यम तो आएंगे, लेकिन लिखे हुए शब्दों की मर्यादा सदैव बरकरार रहेगी।

मीडिया के विद्यार्थियों को सलाह देते हुए राज्यसभा के उपसभापति ने कहा कि अगर आपकी स्किल अच्छी नहीं होगी, तो आप बेहतर पत्रकारिता नहीं कर सकते। इसलिए आपको हर दिन कुछ नया सीखना चाहिए और उसे समाज के हित में प्रयोग करना चाहिए। उन्होंने कहा कि पाठक ही आपका उपभोक्ता है। सूचना और मनोरंजन के साथ-साथ जनता को शिक्षा देना भी पत्रकारों का कर्तव्य है। श्री हरिवंश के अनुसार भाषा की मर्यादा और तथ्यों की सत्यता मीडिया के लिए बेहद जरूरी है। तथ्यों को सार्वजनिक रूप से कहने में पत्रकारों को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। खबरों की दौड़ में झूठी या गलत खबरें देकर पत्रकारिता की साख को हम नुकसान पहुँचा रहे हैं। अगर पत्रकारिता की साख कायम रहेगी, तो जन सरोकार के मुद्दों पर काम करना पत्रकारों के लिए आसान होगा। उन्होंने कहा कि सोशल मीडिया की भाषा पर प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना चाहिए।

'चीन और पाकिस्तान मुख्य चुनौती'

इस अवसर पर 'राष्ट्रीय सुरक्षा की चुनौतियाँ' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा का आयोजन भी किया गया। सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ कश्मीर के चांसलर लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) सैयद अता हसनैन ने कहा कि भारत के सुरक्षा परिदृश्य में चीन और पाकिस्तान मुख्य चुनौतियों के रूप में हमारे सामने हैं। आने वाले समय में युद्ध नहीं, बल्कि साइबर हमले का ट्रेंड होगा। वहीं, मेजर जनरल (सेवानिवृत्त) ध्रुव कटोच ने कहा कि कोविड के कारण पूरे विश्व में 'बायोलॉजिकल वॉरफेयर' की स्थिति पैदा हो गई है। भारत ने ज्ञान और अनुसंधान के दम पर इससे निपटने में सफलता भी हासिल की है।

'भाषाई पत्रकारिता ही भारत का भविष्य'

'भारतीय भाषाई पत्रकारिता के भविष्य' पर आयोजित महत्त्वपूर्ण सत्र में देश के प्रख्यात पत्रकारों ने भी विद्यार्थियों को संबोधित किया। 'महाराष्ट्र टाइम्स' के संपादक श्री पराग करंदीकर ने कहा कि अब युवा 'नोटिफिकेशन न्यूज' पढ़ना ज्यादा पसंद करते हैं। नोटिफिकेशन की एक लाइन में आए समाचार से ही वे अपनी राय बना लेते हैं। 'न्यूज 18' के समूह संपादक श्री राजेश रैना के अनुसार भाषाई पत्रकारिता ही भारत का भविष्य है। आज डिजिटल चैनल 'हाइपर लोकल' हो रहे हैं और टीवी चैनल अपने रीजनल चैनल शुरू कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि अगर आप मीडिया फील्ड में ऑलराउंडर नहीं हैं, तो आपका कार्यक्षेत्र बहुत सीमित हो जाएगा। उड़िया समाचार पत्र 'समाज' के संपादक श्री सुसांता मोहंती ने कहा कि कोविड के दौरान क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार पत्रों के प्रसार में कमी आई है, लेकिन इन समाचार पत्रों के डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर पाठकों की संख्या बढ़ी है। इस मौके पर मलयालम समाचार पत्र 'जन्मभूमि' के संपादक श्री केएनआर नंबूदिरी ने कहा कि डिजिटल माध्यमों ने भाषाई पत्रकारिता को एक नई दिशा दी है।

'फैक्ट' और 'फेक' के बीच लक्ष्मण रेखा खींचने की जरूरत : अनुराग ठाकुर

सत्रारंभ समारोह के समापन अवसर पर केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री अनुराग ठाकुर ने विद्यार्थियों से बातचीत करते हुए कहा कि मोबाइल, इंटरनेट और डिजिटलाइजेशन से मीडिया के स्वरूप में परिवर्तन

आया है। इस बदलते दौर में 'फैक्ट' और 'फेक' के बीच लक्ष्मण रेखा खींचने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि आधुनिक तकनीक के द्वारा जनता से सीधा संवाद किया जा सकता है। मीडिया को तकनीक का इस्तेमाल देश की एकता और अखंडता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए करना चाहिए।

मीडिया के विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए श्री अनुराग ठाकुर ने कहा कि कोविड के दौर में संचार के मायने बदल गए हैं। लोगों तक सूचनाएं पहुंचाने के नए तरीके सामने आए हैं। आज वैश्विक मीडिया परिदृश्य बदल रहा है और जब आप पढ़ाई पूरी करके मीडिया इंडस्ट्री में पहुंचेंगे, तब तक ये और भी ज्यादा परिवर्तित हो चुका होगा। उन्होंने कहा कि भविष्य के पत्रकार के तौर पर आने वाले समय में आप जो भी कहेंगे या लिखेंगे, वो लोगों को किसी भी मुद्दे पर अपनी राय बनाने में मदद करेगा। इसलिए आपको बहुत सोच समझकर कहने और लिखने की आदत डालनी होगी।

केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री के अनुसार आज तकनीक हर क्षेत्र में पहुँच गई है। कोविड ने हमारी हर योजना को प्रभावित किया है। लेकिन इस दौर में हमारे सामने नई शुरुआत करने का अवसर है। चीजों को नए तरीके से देखने और समझने का अवसर है। आज पूरे विश्व को ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो दुनिया में रचनात्मक परिवर्तन ला सकें। श्री ठाकुर ने कहा कि सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय वर्तमान एवं भविष्य की चुनौतियों को ध्यान में रखकर अपनी तैयारी कर रहा है। सरकार का ये मानना है कि सही सूचना के प्रयोग से आम आदमी किसी भी विषय पर सही निर्णय ले सकता है। इसलिए मीडिया और सोशल मीडिया के बदलते समय में सरकार मानव केंद्रित संचार व्यवस्था पर काम रही है, जिससे सूचना तुरंत आम आदमी तक पहुंचाई जा सके। उन्होंने कहा कि सरकार की योजना समाज के अंतिम व्यक्ति तक जानकारी पहुंचाने की है और स्थानीय और क्षेत्रीय मीडिया की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है।

सही सूचना का सही प्रयोग बेहद जरूरी : चंद्र

इस अवसर पर सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव एवं आईआईएमसी के अध्यक्ष श्री अपूर्व चंद्र ने कहा कि समाचारों का माध्यम पहले सिर्फ अखबार ही होते थे, लेकिन तकनीक के परिवर्तन के कारण आज सब कुछ आपके मोबाइल में सिमट गया है। आज आपके पास सूचनाओं का भंडार है, लेकिन कौन-सी सूचना महत्त्वपूर्ण है और कौन-सी नहीं, यह आम आदमी को पता नहीं चल पाता। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय इस दिशा में गंभीरता से कार्य कर रहा है, ताकि लोग सही सूचना का सही प्रयोग कर पाएँ।

सोशल मीडिया और टीवी एक-दूसरे के पूरक : प्रसाद

'टीवी न्यूज का भविष्य' विषय पर विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए 'न्यूज 24' की प्रबंध निदेशक सुश्री अनुराधा प्रसाद ने कहा कि जब हम अखबार पढ़ते हैं तो हमें एक दिन पुरानी खबरें वहाँ मिलती हैं, लेकिन टीवी और डिजिटल मीडिया में आपको एक मिनट पहले की खबर भी मिल जाती है। जिस तरह टीवी चैनल और अखबार एक-दूसरे के पूरक हैं, उसी तरह सोशल मीडिया और टेलीविजन भी एक-दूसरे के पूरक हैं।

'सफलता का माध्यम नहीं है अँग्रेजी'

लेखक **श्री संक्रांत सानु** ने 'अँग्रेजी : समाचार की भाषा बनाम शिक्षा के माध्यम की भाषा' विषय पर विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि दुनिया के 20 सबसे विकसित देशों में से सिर्फ 4 विकसित देशों में ही अँग्रेजी का उपयोग होता है और वह भी इसलिए क्योंकि यह उनकी अपनी भाषा है। बाकी 16 देशों में लोग अपनी मातृभाषा का ही इस्तेमाल करते हैं। काठमांडू विश्वविद्यालय के प्रो. निर्मल मणि अधिकारी ने 'भारतवर्ष की संचार परंपरा' विषय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत से अन्य देशों में पढ़ाई करने गए लोगों ने अँग्रेजी भाषा में पढ़ाई की और फिर उसी की नकल कर भारत की शिक्षा पद्धतियों का निर्माण किया। इस कारण भारत की शिक्षा व्यवस्था और संचार परंपरा पर अँग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता गया।

पूर्व छात्रों का नए विद्यार्थियों से संवाद

समारोह के समापन सत्र में आईआईएमसी के पूर्व छात्रों ने नए विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। पूर्व विद्यार्थियों के इस सत्र में 'आज तक' के न्यूज डायरेक्टर **श्री सुप्रिय प्रसाद**, 'इंडिया न्यूज' के प्रधान संपादक **श्री राणा यशवंत**, जनसंपर्क विशेषज्ञ **सुश्री सिमरत गुलाटी**, 'इफको' के जनसंपर्क प्रमुख **श्री हर्षेंद्र सिंह वर्धन** एवं आईआईएमसी एलुमिनाई एसोसिएशन के अध्यक्ष **श्री कल्याण रंजन** ने हिस्सा लिया।

कार्यक्रम के अंत में संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने इस ज्ञान यज्ञ में भाग लेने वाले सभी वक्ताओं का धन्यवाद दिया।

प्रस्तुति : अंकुर विजयवर्गीय

भारतीय जन संचार संस्थान

प्रकाशन विभाग

नई सदस्यता/नवीनीकरण फार्म

प्रमुख
प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
नया जेएनयू परिसर, अरुणा आसफ अली मार्ग
नई दिल्ली - 110 067

महोदय/महोदया,
मैं/हम आपकी शोध पत्रिकाओं का ग्राहक बनना चाहता हूँ /चाहते हैं :

1.	संचार माध्यम (हिंदी अर्द्धवार्षिक)	200 रुपये प्रति अंक (400 रुपये वार्षिक)
2.	कम्युनिकेटर (अँग्रेजी त्रैमासिक)	200 रुपये प्रति अंक (800 रुपये वार्षिक)
3.	संचार सृजन (द्विभाषी त्रैमासिक)	100 रुपये प्रति अंक (300 रुपये वार्षिक)
4.	राजभाषा विमर्श (हिंदी त्रैमासिक)	100 रुपये प्रति अंक (300 रुपये वार्षिक)

कैलेंडर वर्ष (जनवरी-दिसंबर)..... के लिए ग्राहक शुल्क के रूप में दिनांक.....को.....…..
.....के नाम आहरित.……रुपये का डिमाँड ड्रॉफ्ट/चेक संख्या...…….. संलग्न है।

पत्रिका (पत्रिकाएँ) निम्नलिखित पते पर भेजी जा सकती हैं :

नाम.....
पता.....
.....
.....

दिनांक ***हस्ताक्षर***

नोट :

- डिमाँड ड्रॉफ्ट भारतीय जन संचार संस्थान, दिल्ली के पक्ष में देय होना चाहिए।
- व्यक्तियों की ओर से चेक स्वीकार्य नहीं हैं। हालाँकि संस्थानों/विश्वविद्यालयों/स्थापित कंपनियों की ओर से चेक स्वीकार किए जा सकते हैं।

Name of Account Holder	**IIMC REVENUE**
Address	**Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110 067**
Bank Name and Branch	**State Bank of India, R K Puram, New Delhi - 110022**
IFSC Code	**SBIN0001076**
Type of Bank Account	**SB**
Account No.	**40321700410**

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives
इफको नैनो यूरिया
(तरल)
विश्व का पहला नैनो उर्वरक
फसल उपज बढ़ाए
किसान की लागत करे कम
पर्यावरण प्रदूषण रोकने में सहायक
मृदा की पोषण गुणवत्ता बढ़ाए
500 मिली बोतल मात्र ₹ 240/- में
IFFCO
NANO UREA
Liquid
Nano Urea (4 % w/v)
Net Volume 500 mL
कम से कम एक यूरिया बैग के बराबर
Is Equivalent to at least One Bag of Urea
इफको नैनो यूरिया का वादा, लागत कम, लाभ ज्यादा
IFFCO Nano Urea Promises, Less Cost, More Profit
IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

संचार माध्यम

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी 'पीयर रिव्यूड' और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका का प्रकाशन अभी छमाही हो रहा है, परंतु शीघ्र ही इसका प्रकाशन पुनः तिमाही करने की योजना है।

'संचार माध्यम' में निम्नलिखित श्रेणी के शोध–पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध–पत्र :** इस प्रकार के शोध–पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए। जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध–पत्र सिर्फ़ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तसवीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध–पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ़/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिजॉल्यूशन उच्च स्तर का हो, ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभवित न हो। पीडीएफ़ फ़ाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध–पत्र :** लघु शोध आधारित आलेख लगभग 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4–5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध–पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध–पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध–पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा :** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा :** 'संचार माध्यम' में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा : 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम–से–कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती–जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पियर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पियर रिव्यू) प्रक्रिया

'संचार माध्यम' में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध–पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन–परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध–पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4–6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित है:–

क. जस के तस स्वीकार करने लायक,

ख. मामूली सुधार की आवश्यकता,
ग. मध्यम सुधार की आवश्यकता,
घ. अधिक सुधार की आवश्यकता
ङ. अस्वीकृत। 'संचार माध्यम' तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम–से–कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

टाइटल कोड: DELHIN28999

भारतीय जन संचार संस्थान

संचार माध्यम
जुलाई–दिसम्बर 2021, खंड–33, अंक–2
आईएसएसएन : 2321–2608
सदस्यता शुल्क ₹200 प्रति अंक
(वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹400)

हिंदी विषयवस्तु विशेषज्ञ

लेखकों

को

संचार और पत्रकारिता पर

पाठ्य पुस्तक

लेखन के लिए

आमंत्रण

विषय*

- संचार सिद्धांत • प्रिंट मीडिया का इतिहास एवं विकास
- मीडिया नैतिकता एवं मीडिया कानून
- मीडिया व्यवसाय और प्रबंधन • रेडियो पत्रकारिता
- रिपोर्टिंग (टीवी/प्रिंट) • सम्पादन (टीवी/प्रिंट)
- फीचर लेखन • डाटा पत्रकारिता • आर्थिक पत्रकारिता
- अपराध पत्रकारिता • विधि पत्रकारिता
- सिने–टीवी पत्रकारिता • दृश्य–श्रृव्य माध्यम
- मैगजीन (पत्रिका) पत्रकारिता
- मीडिया संगठनों का इतिहास–विकास

* जिन लेखकों ने उपर्युक्त विषयों पर भारतीय जन संचार संस्थान के पूर्व प्रकाशित विज्ञापन के अंतर्गत पुस्तक लेखन के लिए आवेदन भेजे हुए हैं उन्हें फिर से आवेदन भेजने की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वारा जमा किए गए पुराने आवेदनों पर ही विचार किया जाएगा।

संपर्क सूत्रः

प्रो. (डॉ.) वीरेंद्र कुमार भारती
प्रमुख – प्रकाशन विभाग एवं संपादक, 'कम्युनिकेटर' जर्नल
भारतीय जन संचार संस्थान, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
अरुणा आसफ अली मार्ग, जे.एन.यू. नया परिसर, नई दिल्ली–110 067
ईमेलः iimcpublications@gmail.com/vkbharti.iimc@gmail.com
फोनः 011-26741542/26741357. वेबसाइटः www.iimc.gov.in

आवेदन भेजने की अंतिम तिथि
31.01.2022

पुस्तक लेखन से संबंधित संपूर्ण जानकारी एवं आवेदन फॉर्म डाउनलोड करने के लिए हमारी वेबसाइट www.iimc.gov.in पर विजिट करें।

मुद्रक और प्रकाशक प्रो. (डॉ.) वीरेन्द्र कुमार भारती, प्रमुख-प्रकाशन विभाग, द्वारा भारतीय जन संचार संस्थान के लिए चंद्र प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110092 से मुद्रित तथा भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नया जेएनयू परिसर, नई दिल्ली – 110 067 से प्रकाशित। संपादक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार